

Karikavali with Sidhantmuktavali

of

Vishwanath Panchanan Bhattacharya

With

A Hindi Commentary Called 'Chandrika, illustrated by

"Chitravali"

by

Shri Chandradhari Singh Sharma
(alias Shri Himker Saheb)

Proprietor,

Jani [illegible] Estates.



First Edition] [Price Rs 3/-

1939



Babu Chandradhari Sinha

भूमिका।

मानव-वृन्द की समस्त प्रवृत्तियों का मूल 'सुख की खोज' है। इन्द्रिय-जन्य सांसारिक सुख यद्यपि सुलभ होता है तथापि उसकी अवश्यम्भावी भङ्गुरता दीर्घदृष्टि विवेकी जनों को इस ओर से शीघ्र ही परावृत्त करने लगती है। क्षणिक सुखकी प्राप्ति से असन्तुष्ट होकर बुद्धिमान् मनुष्यप्राणी नित्य सुख की खोज में अमृतत्व की प्राप्ति में संलग्न हो जाता है। हमारे दर्शन एवं शास्त्र इसी खोजके सुन्दर फल हैं।

पाश्चात्य शिक्षाभिमानी आधुनिक विकासवादी भलेही अपने मूल पुरुषोंको अज्ञानी, असभ्य और जंगली बताकर ज्ञान, सभ्यता और संस्कृति का सेहरा अपने शिर बान्ध लें पर हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि हमारे मूलपूर्वज त्रिकालज्ञ ऋषि-मुनि थे जिन्हों ने अपने समस्त अलौकिक ज्ञान का भण्डार वेदों में सञ्चित कर रक्खा है। हमारे ये वेद इसबातके अकाट्य प्रमाण हैं कि हमारे पूर्वजोंने किस प्रकार अमृतत्व की जिज्ञासा प्रारम्भ की तथा किन साधनोंसे किस प्रकार अमृतत्व का लाभ किया और हमारे कल्याण का मार्ग सदाके लिये परिष्कृत बना रक्खा।

हम 'आधुनिक विकासवाद' के सर्वाङ्ग समर्थक नहीं। हमारी समझ से समय की प्रगति ऊर्ध्वमुखीन नहीं अपितु अधोमुखीन है। समय के प्रभाव से मनुष्य में शक्तिका ह्रास होता गया जिसके परिणाम स्वरूप वेदों के निगूढ़ तत्वोंका समझना कठिन होता गया। मनुष्य की इस वर्द्धिष्णु असमर्थता तथा अयोग्यता को ध्यान में रखकर समय समय पर अधिकारी पुरुषों ने आवश्यकतानुसार वेदों की टीका, व्याख्या तथा नाना प्रकार से रहस्योद्घाटन किया। उनकी यह कल्याणेच्छा उपनिषद्, दर्शन, विविध शास्त्र, पुराण तथा इतिहास के रूप में आज भी हमारे सम्मुख विद्यमान है।

आवश्यक होने पर भी विस्तार भयसे हम इस विषय के वर्णन का अपना लोभ संवरण कर लेते हैं कि किस प्रकार मूलतत्व जिज्ञासा वेद मन्त्रों में बीजरूपेण वर्तमान है, किस प्रकार यही बीज ब्राह्मण और उपनिषदों के रूप में पल्लवित हुआ तथा किस प्रकार इसी पौधे ने वेदान्त के प्रकाण्ड वृक्ष का रूप धारण किया पर सभी तो वेदान्त के परमोच्च तत्व के अधिकारी नहीं। अतः यज्ञ-यागात्मक क्रिया कल्प का प्रतिपादन करने वाले मीमांसा शास्त्र की रचना हुई जिसके द्वारा मध्यमाधिकारी अपनी तत्व-जिज्ञासा शान्त करते थे। इसी कोटि के अधिकारियों की भिन्न रूचि तथा भिन्न प्रवृत्तिको देखते हुए सांख्य, पातञ्जल इत्यादि दर्शनों का आविर्भाव हुआ।

पर अभागे मनुष्य प्राणी को तत्व निर्णय करने की अक्षमता काल की महिमा बढ़ती ही गयी और अन्त में न्याय दर्शन का आविर्भाव हुआ जो 'सर्व शास्त्रोपकारक' है जिस की प्रशंसा में पक्षिल स्वामी को भी मुक्तकण्ठ से यह स्वीकार करना पड़ा है कि

सेयमान्वीक्षिकी विद्या प्रमाणादि प्रकाशिका
प्रदीपः सर्वविद्यानां उपायः सर्वकर्मणाम्
आश्रयः सर्व धर्माणां विद्योद्देशे प्रकीर्तिता।

पर अब तो न्याय दर्शन अति कठोर शास्त्र समझा जाता है जिसकी कठिनाई से त्रस्त होकर लोग इसके अध्ययन से अपना मुँह मोड़ने लगे हैं। तर्क विद्यार्णव विश्वनाथ पञ्चानन अपने प्रियतम राजीव नाम के शिष्य को तर्क में अक्षय देखकर दयासे आर्द्र हो गये और न्याय पदार्थों का इतस्ततः संकलन कर सिद्धान्तमुक्तावली का सीधा सरल स्वरूप उन्होंने खड़ाकर दिया। पर खेद का विषय है कि उक्त मुक्तावली भी अब सकल साधारण के लिये ज्ञान गम्य नहीं रही।

भौतिक विकास के इस युग में राजस और तामस प्रकृति के मनुष्यों को प्रधानता हो गई है। सत्त्व तो ढूँढने पर भी नहीं मिलता। सत्व-हीनता के कारण लोग तपस्या से पराङ्मुख होगये हैं। कष्ट के भय से किसी विषय की दीर्घ-कालिक साधना का अभाव-सा हो रहा है। बाल विवाह की बुरी प्रथा ने तो ब्रह्मचर्याश्रम का एक प्रकार से समूल उच्छेद ही कर डाला है। इस के फल स्वरूप बस आ गया है केवल आर्थिक चिन्ता का असह्य भार। इस आर्थिक चिन्ता से सारा संसार व्यग्र हो रहा है। विद्योपार्जन अब जीविकोपार्जन का एकमात्र लक्ष्य हो गया है। उस का उपशम या आत्मसाक्षात्कार से कोई सम्बन्ध नहीं रहा।

ऐसी अवस्था में सब शास्त्रों में ज्ञान-लाभ के लिये अति सुलभ ग्रन्थों की रचना आदरणीय होती जा रही है। समय का प्रभाव ही ऐसा है कि लोग किसी शास्त्र के विधिवत् अध्ययन में अधिक समय लगाना चाहते नहीं। अतः वे चाहते हैं ऐसी सरल रचना जिसके द्वारा अत्यल्प समय में उन जटिल ग्रन्थों का ज्ञान लाभ कराया जा सके।

समय की यह बढ़ती हुई मांग देखते हुये शास्त्रीय विषयों पर उपयुक्त सरल ग्रन्थों का अभाव हमारे हृदय में बहुत दिनों से खटक रहा था। इसी भावना से प्रेरित होकर

हमने मुक्तावली को हिन्दी बाना पहनाने के इस कठिन कार्य में हाथ डाला है। हम यह अच्छी तरह समझते हैं कि 'सिद्धान्तमुक्तावली' ऐसे संस्कृत भाषा के दुर्गम्य न्याय दर्शन के ग्रन्थ के भाल में राष्ट्रभाषा हिन्दी की बिन्दी लगाना हम जैसे अनधिकारी का कार्य नहीं है। यह कार्य्य हम से सुचारू रूपेण कभी भी सम्पन्न न हो सकेगा। हम यह भी भलीभांति जानते हैं कि इस कार्य को करके हम सुयश के भागी नहीं हो सकेंगे प्रत्युत लाञ्छना ही के मिलनेकी पूरी संम्भावना है फिर भी हमने इस दूरूह कार्य का बीड़ा उठाही तो लिया और अपने इस चिर संञ्चित भावना को कार्य में परिणत करही डाला क्यों और किस लिये? केवल भारत और भारती (राष्ट्र भाषा हिन्दी) की सेवा के लिये। सेवा का अधिकार तो सब को समान है।

जहाँतक हो सका हमने इस ग्रन्थ को सुलभ से सुलभ बनाने को भरपूर चेष्टा की है। अन्य अन्यान्य-ग्रन्थों से भी कुछ कुछ सहयता लेकर इस ग्रन्थ को सजाने का प्रयत्न किया है जिससे इस एकही ग्रन्थ से समस्त न्याय दर्शन के पदार्थों का सार-रूपेण ज्ञान कराया जा सके। इस ग्रन्थ में हमने पदार्थ की चित्रावली भी लगादी है जिससे न्याय की कठोरता और जटिलता परिणत हो गई है मृदुता, सरलता और सुलभता में।

इस चित्रसारिणी के बनाने मे हमें जिन कठिनाइयों का सामना और जैसा अथक परिश्रम करना पड़ा है वह सब तबही सार्थक होगा जब इस चित्रसारिणी से देशका कुछ उपकार हो। मुक्तावली को अति सुलभ बनानाही हमारा एकमात्र ध्येय रहा है। न्याय पदार्थ की शुद्धता का पूर्ण रूपेण संरक्षण करते हुए, उसको बारिकीयों पर से ध्यान न हटाते हुये, उसकी उलझनों को धैर्य पूर्वक सुझलातेहुए हमने यह भाषान्तर प्रस्तुत किया है। यह केवल भाषान्तरही नहीं है। आवश्यकतानुसार ग्रन्थान्तर की भी बात इसकी पाद टिप्पणी में दे दी गयी है। कहीं कहीं हमने अपना स्वतन्त्र-मत भी प्रस्थापित किया है। जैसे रूप-चित्र में की टिप्पणी में भास्वर नीलादि का हमने उल्लेख किया है यद्यपि यह न्याय वैशेषिक सिद्धान्त के विरुद्ध है तथापि हमने अपने स्वातन्त्र्य का उपयोग करते हुए ऐसा लिखने का साहस किया है क्योंकि भास्वर नीलादि के चाक्षुष प्रमाण से शनि ग्रहादि में उपलब्धि होती है। न्याय-शास्त्र के पारिभाषिक शब्दों का कोष बहुत जगहों से संकलित कर विस्तर रूपसे इस में जोड़ दिया गया है। चित्रावली और न्याय कोष इस ग्रन्थ की विलक्षणता है। पदार्थों

की शुद्धता को अक्षुण्ण बचाये रखते हुए इस दुर्गम और जटिल ग्रन्थ को अति सरल, सुगम और सुबोध्य बनाने में हमने अपनी ओरसे कुछभी उठा नहीं रक्खा है। अत्यल्प श्रम से जो न्याय पदार्थका कुछ ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं वे इस 'न्यायकोष युक्त सचित्र सिद्धान्तमुक्तावली के हिन्दी अनुवाद' का अध्ययन करने के अधिकारी हैं। हमे पूर्ण विश्वास है कि ईश्वर हमारी इस सेवा को जगदुपकार में अवश्य परिणत करेगा।

कृतज्ञता प्रकाश

हमारे न्याय शास्त्र के गुरु, नैयायिकप्रवर, देशप्रसिद्ध, स्मार्त श्री सदन मिश्र जीके सुपुत्र, स्वर्णपदकभूषित, न्यायोपाध्याय, लालगंजग्रामवास्तव्य' श्रोत्रियप्रवर पण्डित श्री पुण्यनाथ मिश्र जी हैं। ये जगतप्रसिद्ध पूज्यपाद पण्डित प्रवर श्रीशंकर मिश्र के साक्षात् वंशधर हैं। इस वंश में सरस्वती निरवच्छिन्न विद्याधारा बहाती आ रही है। उच्च कोट की विद्याके साथ साथ इस वंश की आचारपरायणता, सरलता पवित्रता और धार्मिकता सुवर्ण में सुगन्ध के दृष्टान्त का स्मरण कराती है।

हमसे जो कुछ जनता की सेवा बन पड़ी है सब इन्हीं महानुभाव की कृपा का प्रसाद है। हमारी आशा है कि हमारे वंशज भी इनकी ओर और इनके वंशजो की ओर हमारे ही समान श्रद्धा और भक्ति दिखलावेंगे। उपकृत रहना अन्तःकरण के विकास का एक प्रमुख लक्षण है।

श्री चन्द्रधारी सिंह शर्म्मा

चन्द्र-नगर ड्यौढ़ी
मधुबनी।

श्री श्री विश्वनाथोविजयते ।

सर्वेष्वप्यङ्गेषु बहुधा व्यापादितेषु ग्रन्थेषु परिष्कारमालेषु न्यायदर्शनेषु न्यायादिषु च दर्शनेषु शिक्षार्थिनां धीमतामपि विशेषतो नितरां दुरवगाहमिति सुविदितमेव विदुषाम् ।

तथा तत्त्वचिन्तामणिदीधितिगादाधर्यादिग्रन्थपरिशीलनात् प्राक् विरचितेषु प्रकरणग्रन्थेषु सिद्धान्त मुक्तावली सहितो भाषापरिच्छेदः न्यायनय जिज्ञासुभिः प्रायः सर्वैरपि विद्यार्थिभिर्महता प्रयत्नेन समादरेण परिशीलनेन समधीयते ।

साम्प्रतं सर्वोपयोगिदर्शनशास्त्रावगमे महार्घ्यं विना नैयायिकग्रन्थ मुखेनुगमनम् मातृभाषयैव ग्रन्थानामपि सारज्ञं विद्यार्थिनामतितमां दुःखगम्यमेवेति तेषां सौक-र्याय न्यायशास्त्रावगमाय विदुषां तर्कशिक्षाणां मनोविनोदनाय च विरचिता सा चन्द्रिकाभिधा सिद्धान्त मुक्तावलीसहित भाषापरिच्छेदस्य व्याख्या नवीना हिन्दीमयी व्याकरणादि समस्तशास्त्रपारावार पारीणेन मिथिला प्रदेशान्तर्गत चन्द्रनगराधिपति-ना व्याकरण न्याय मधिकृत्य न्यायाचार्यपदवीधारिणा प्राक्तनाचार्यपदवीन सुशीलेन विनीतप्रेमेण मधुरभाषणशीलेन श्रीमता चन्द्रधारिसिंह शर्ममहोदयेन । तदेषा चन्द्रिका-भिधा हिन्दीभाषा टिप्पणीरूपा जिज्ञासुभिः सदुपयोगार्हा महानुभावैः समादरणीया जाता ।

सिद्धान्तमुक्तावलीसमेतभाषापरिच्छेदस्यास्य विशेषतो हिन्दी भाषाभिज्ञ विद्यार्थिनां स्वरूपज्ञानाद्येव साहाय्येनानाय सतो मूलग्रन्थतात्पर्यनिर्णये प्रभविष्यतीत्यत्रैव इति मे सुदृढो विश्वासः ।

इति निवेदयति ।

श्रीप्रमथ नाथ तर्कभूषणदेव शर्मा

महामहोपाध्याय, डाइरेक्टर, हिन्दूविश्वविद्यालय

काशी

श्री श्री गौर कृष्णःशरणम् ।

चैत्रकृष्ण १३ सं० १९९४ वै

काश्याम्

मिथिलाऽवतंसवंश मौक्तिकरत्नायेन श्री मता श्रीचन्द्रधारि सिंह शर्मणा हिन्दी भाषयाऽऽरचितां न्याय सिद्धान्त मुक्तावलीव्याख्यां स्थालीपुलाकन्यायेनावेक्ष्य दर्शयन्तोऽस्य ग्रन्थस्य जिगमिषून् स्वकीयलेखादन्तरमायासनुभवतः फलप्रशालिनामलयानी मान्यौक्तिकं प्रविविक्तविचिकित्समुपचिकीर्षुणि चेतस्यायत्ततां टीकाकस्यानुमाय प्रमाणवमानमानसोऽन्तरमान्तमिव संमर्दं कतिपयाभिनन्दनाक्षरैः अभिप्रायदीप्तिगतदोषचन्द्रिकामाविष्कर्तुः सर्वथोनंमात्रक माशासानोमुधा विस्तरात् विरमतीति शम ।

दामोदर गोस्वामी (काशी)

श्रीमन्माध्व संप्रदायाचार्यःदार्शनिक सार्वभौमः

साहित्य दर्शनाद्याचार्यः न्यायरत्न तर्करत्नम् ।

ओं शिवः ।

मिथिलाजनपदान्तर्गत चन्द्रनगराधीश्वरः खण्डवलाकुलकमलभास्करः श्रीमान चन्द्रधारि सिंहशर्मा महाशयो व्याकरणाध्ययनप्रादुर्भावित व्युत्पत्तिप्रतिभासितो न्याय व्यवसायपरायणः प्रथमानया हिन्दीभाषया मुक्तावली टीकां चन्द्रिकां प्रचुरचित्र रुचिरा मरचयत्। स्थालीपुलाकन्यायेन यामवलोकमानस्य मे मानसं प्रमोद-मावहति। सेयं समीचीना वैशेषिक शास्त्रं समासतोऽवसातुमुत्सुकानामुपकृतयेऽवश्यं भविष्यतो त्यस्या उपादातव्यतायां न विद्यते विप्रतिपत्तिः।

इत्यभिप्रैति।

श्री श्री शंकरतर्करत्नदेव शर्मा

हिन्दू विश्वविद्यालय-

न्याय प्रधाना ध्यापकः

विद्याधर्मेण शोभते ।

एकस्याभाषायाः परस्यां भाषायामनुवादोऽतिकठिनः तत्रापिदार्शनिकग्रन्थस्यानुवादस्तु नितरामतिकठिनतमः। श्रीमद्भिश्चन्द्रधारि सिंह शर्म्मभिरतिपरिश्रमेणातिविशदश्शुद्धो नुवादो विदुषां मनोहरोऽकारितमाम् इतिस्थाली पुलाक न्यायेनावलोक्यनितरांवैषीदेष श्रीमतांजनः प्रमोद रसाप्लावित हृदय सरोजः।

चन्डी चरण शुक्लः

भूतपूर्व गोयनका विद्यालय प्रधानाध्यक्षः।

(काशी)

श्रीगुरुः शरणम् ।

श्रीमद्भि मिथिलामण्डलमण्डनायमानैः सुप्रसिद्ध चन्द्रधारि महोदयैः मुक्तावली चन्द्रिका-नाम्नो हिन्दीभाषाग्रथिता मुक्तावलीटीका प्रणीय विदुषामग्रे स्थापिता। प्रस्तार रूपेण न्याय शास्त्रसिद्धपदार्थानां कोष्ठकानिच कृतानि। इदंकार्यं सिंह महोदयानामतीवप्रशंसार्हम्। प्रायः 'काणादंपाणिनीयंच सर्वशास्त्रोपकारकं" मिति उक्तरीत्या धर्म शास्त्रादि ज्ञानमपि न्याय शास्त्रापरिज्ञाने असम्भावनीयमेव।

प्रत्यक्षं चानुमानंच शास्त्रंच विविधागमम्॥ त्रयंसुविदितंकार्यं धर्म शुद्धिम भीप्सता॥ पुराणन्याय मीमांसा धर्म शास्त्राङ्ग मिश्रिताः॥ वेदाः स्थानानिविद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश। इत्यादि स्मृति वचनान्यप्यमुमेवार्थं मुपोद्बलयन्ति।। समये ऽस्मिन संस्कृतभाषा प्रचार-स्यातीव विरलतया महती विद्यानां धर्मस्य चा विशुद्धिः प्रसक्ता अतः भाषयाऽपि न्याय शास्त्रार्थ-

प्रचारणं धर्म विवृद्धि कामानामभीप्सितमेवेदानीं वर्तते । तदिदं सर्वापेक्षितं महत्कार्यं श्रीचन्द्रधारी सिंह महोदयैरेतद्ग्रन्थ निर्माण मुखेन उपक्रान्त मिति दृष्ट्वा सभया महानानन्दोऽनुभूयते । कुशाग्रधिषणानामपि दुरवगाहे महत्यस्मिन-न्यायशास्त्र प्रपञ्चे सिंहमहोदयैः स्वग्रन्थ द्वारा यत्पदार्थ निरूपणं कृतं दृष्टवतः कस्यवासचेतसः स्तोनुमानि चेतांसिनस्युः । इदं-प्रथमोप्ययं प्रयत्नः प्रायेण साफल्य मासमादेति वक्तुम स्माकं जिह्वा नैव कुण्ठी भवति । शनिग्रहस्य नील भास्वर रूपवत्व कथनं कालिक परत्वस्यातीन्द्रियत्व कथनं नित्यगतस्य तस्य नित्यत्व कथनं च यद्यपि तत्रापवादभूतं दृश्यते तथापि भूयसा हि व्यपदेशा भवन्ति ।

अनन्तरत्न प्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्य विलोपि जात मित्यादि रीत्यासिंहम-होदयस्य कृतेः शोभा न कथमपि न्यूनीभवतिप्रत्युत तदीय प्रतिभावैचित्र्य मुखेन सचेतसां चेतश्चमत्करोत्येवेतिभाषामय न्याय शास्त्र प्रणयनेन प्रत्यग्रमुदीयमानायास्मै सभया सानन्दं बहुशोधन्यवादा वितीर्यन्ते, इत्यलम्

श्री गीर्वाण वाग्वर्धिनी सभाया इति मतं सम्मन्यते ।

सभापतिः	मन्त्री
श्री गणेश दीक्षितः	हरिराम शुक्लः

श्री राजेश्वर शास्त्रि द्राविडस्याप्ययमर्थः सम्मतः

श्रीः

श्री मदमृतमयापवरकिरणनिकरनिराकृत निरवशेष मदांग (?) समावरणा करुणा तिमिर समुदयमगाधिकदयोदय कोविद कुल कोमल मनः कुमुदानवरत समुल्लासना लसस्वभाव श्री चन्द्रधारि सिंह शर्म सूरिभि विरचितां न्याय सिद्धान्त मुक्तावली टीकां चन्द्रिकां स्रवत्सुधा बिन्दुवृन्दतया चन्द्रिकमिवा मन्दानन्द सन्दोह प्ररोहप्रदां स्थालीपुलाकन्यायेन निरीक्ष्य नितरामन्वरतूतुपम् ।

अश्रम मकृत श्रमाणा मधुरीण धिषणा नामपि अदमीयार्थ बोधो जायता मित्यैदम्पर्येण तात्पर्येण भाषा शब्द विग्रहाऽपि अजात विग्रहा संस्कृतार्थाऽपि स्वयमसंस्कृता अनपेक्षित व्याकरणापि विदामुपादेया रुचिररचनाञ्चिता परोपकृतिप्रयुक्तजातात्मलाभा कृतिरियंविपश्चितांचेतांसि चिरं प्रचुरं चमत्करिष्यति इति पृथु प्रत्याशासे । कलल कलेवरे कलौ श्रीसरस्वती निरतिशय प्रेम गेह देहाना मीदृशां पुरुष धौरेयाणां वैरल्यं तथापि सन्तीति मत्वा बहु मुख मखिलस्य चेतसि सम्मदः समुल्लसति । सदागम परायण मानसाना मूदृशाणां शरदां शतं सशर्मावस्थानं स्यादित्यनन्तेशमनन्त मनन्त मर्थये । संख्यातिगाश्च धन्यवादाः प्रदीयन्ते इति कृतं भूरि भाषितेन ।

इति हरिहर कृपालु द्विवेदी

काशीस्थः

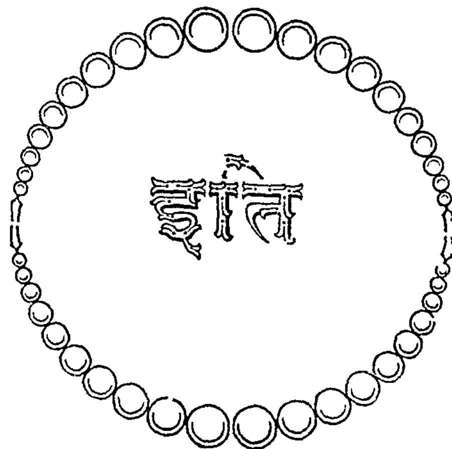
महामहो पाध्यायः गोयनका विद्यालय प्रधानाध्यक्षः

उपमान परिच्छेद

शब्द परिच्छेद

स्मृति प्रक्रिया

गुण निरूपण


इति

॥ शुद्धाशुद्धि ॥

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पङ्क्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पङ्क्ति
न्याय	वैशेषिक	१	२२	ज्ञानान्तर	ज्ञानानन्तर	१२५	७
द्रवत्व	द्रव्यत्व	८	३१	वन्हिभाव	वह्न्यभाव	१३२	१
भेदसाधकत्व	स्वतोभेदसाधकत्व	१४	९	साध्यतावच्छेदक	साध्यतावच्छेदकत्व	,,	१६
विरुद्ध	दोनों	१५	२७	तद्वृत्ती	तद्वृत्ती	१३३	२५
अन्त्यविशेष	विशेषअन्त्य	१६	९	द्रव्यस्वरूप	द्रव्यत्वस्वरूप	१३४	२
अत्यन्ताभाव	गन्धाद्यत्यन्ताभाव	२२	१४	और परामर्श	परामर्श और	१५४	३०
अतिव्याप्तिके	अतिव्याप्ति वारणके	३७	९	कोटिकरादि	कोटरादि	१५७	४
द्रवत्वधर्म	द्रवत्वत्वधर्म	५७	२२	साध्याप्रसिद्धः	साध्याप्रसिद्धिः	१५७	२९
काठिन्य दो प्रकार से हो सकते हैं	काठिन्य	५९	२४	यहाँ	के अन्तर्गत	१६१	१३
				शां	शक्तिग्र	१६९	३०
प्रत्यक्ष	प्रत्यक्षत्व	६८	२१	कृत	कृति	१७३	२४
क्षणादियों से	क्षणादि	७१	६	व्यापारत्व	व्यापार	१७३	२६
अवच्छेदक के	०	७३	३०	लक्षणा	द्वन्द्व	१८९	९
रूपवात्	रूपत्वात्	७९	२४	ज्ञायते अर्थः	जानाति अर्थ	१९५	२१
उभय को धरने वाला	उभय को विषय करने वाला	८०	२८	मरण	स्मरण	२०२	२५
				.वना	भावना	२१४	२७
विशेष गुण नाश-यत्वे	विशेष गुण नाशाश्रयत्वे	९३	२९	स्यन्त	इत्यत	२४५	५
				कलपत्	कल्पनात्	२६३	१७
इन्द्रियत्व	इन्द्रिय	१०६	११	सुपाधिरित्य	सुपाधित्वमित्य	२६८	२
,,	,,	,,	१८	पक्षतरत्व	पक्षेतरत्व	२७२	१०
संयोग	मनः संयोग	१११	२०	कृतिता	कृतिसाध्यता ज्ञान	२८७	२४
योगजा	योगज लक्षण	११५	१०	ुति	श्रुति	२९८	१७
सम्बन्ध	सम्बद्ध	११६	२७	र्ग	स्वर्ग	३०७	२७
सार्वज्ञा	सर्वज्ञत्वा	११९	२१				
,,	,,	,,	२२				

उपर्युक्त अशुद्धियों के अतिरिक्त और भी कई अशुद्धियाँ रह गई हैं जो टाइप के टूटने से हुई हैं।

चित्रावली

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	चि०
अणुपरिमाण	अकारण जो अणुपरिमाण	१	१
कारण कारण	कारण करण	१	२ क
उद् | भूत नित्य अग्र अनि० पृथ्वी	उद् | भूत नित्य प्र० अनि० पृथ्वी		
चक्षुपर	नि. रसेन्द्रिय घ्राणेन्द्रिय पर	८	१२
चक्षुरूप	अ. रसनेन्द्रिय घ्राणेन्द्रिय रूप	८	१२
यवायानुयोगी	समवायानु योगी	६	
(२१) धर्म	(२१) धर्मि	१४	१६
अन्यतर पर्याप्ति	पर्याप्ति अन्यतर	१४	१६
दोकपालों मे विभाग	कपाल में क्रियासे कपालद्वयविभाग जन्य आकाश कपाल विभाग	१७	२०
वृक्षहस्तविभागज विभाग	वृक्षहस्त विभाग जन्य शरीरतरुविभाग		
गतः नित्य	गत अनित्य	१८	२१
कारणगुणपूर्वक जीवात्मामे और अकारण गुण पूर्वक परमात्मामे	सर्वत्र अकारण गुण पूर्वक	१९	
लक्षण	लक्षणा	२१	
श्रोत	श्रोत्र	२१	
(७) स्पर्शमात्र	स्पर्श	२२	२४
(८) प्रत्यक्ष	अभाव प्रत्यक्ष	२२	२४
प्रतिवन्धकाभाव	प्रतिवन्धकाभाव इत्यादि	२३	
(३) मनः × विषय आत्म मनः संयोग	हटादो	२४	२५
राप	पार	२५	२६

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	चित्र
कामना	ज्ञान	२५	२६
(१४) ज्ञानका जनक है	हटादो	२६	२८
(२३) आत्मा में रहता है	,,		
प्रतियोगीक	प्रतियोगिक	२६	२८
(८) नित्यगतनित्य अनित्यगत अनित्य है	परमात्मामें नित्य जीवत्मामें अनित्यहै	२८	
गुरूत्वत्व	गुरूत्वत्त्व	२९	३१
(४) पृथिवी जलमें रहताहै	हटादो		
नित्य	अनित्य	२९	३२
पृथिव्यादि चारमें	पृथिवी मात्रमें	३०	३४
(५) सामान्य गुण है	विशेष गुणहै	३०	३४
(११) स्थितिस्थापक कारण, गुणपूर्वक है इससे भिन्न अकारण गुण पूर्वकहै	स्थिति स्थापक और वेग कारण गुणपूर्वक है। भावना अकारण गुण पूर्वक है।	३०	३४
तद्वृत्ति	तदवृत्ति		
नदी	नदी जलस्पर्श	३१	३५
(४) किसीके प्रत्यक्ष मे कारण नही है	हटादो	३१	
आत्मामे रहता है	,,	३२	३७
रूढ़ि	रूढ़ि		
(४) आकाशमे रहता है	हटादो		
गुण कर्मान्यत्व	गुणकर्मान्यत्व विशिष्ट सत्वात्	३८	
वह्निभावात्	वह्न्यभावात्	५३	
सिद्धिभाव सिद्ध्याभाव	सिद्ध्यभाव ५४, ४५, ४६		

हमे दुःख है कि हम अपनी मुक्तावली को पाठकों के सम्मुख नितान्त शुद्ध रूपमें उपस्थित न करसके। इस त्रुटि के लिये हम उदाराशय पाठकों के क्षमा-प्रार्थी हैं। पदार्थ को समझने में भ्रान्ति उत्पन्न करने वाली अशुद्धियां तो शुद्धिपत्र के द्वारा दूर कर दी गई हैं, पर प्रेस के दोष से मात्रा या वर्ण इत्यादि के अन्यथा हो जाने से जो अशुद्धियां ग्रन्थ में आ गई हैं उन्हे अति सामान्य समझ उनके शोधन का भार अपने उदार पाठकों पर रखने के लिये हमे वाध्य होना पड़ाहै।

॥ ० ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ ० ॥

अथ-न्याय सिद्धान्तमुक्तावली

चन्द्रिका टीका सहिता

कारिकावली—१

नूतनजलधररुचये गोपवधूटीदुकूलचौराय ।
तस्मै कृष्णाय नमः संसारमहीरुहस्य बीजाय ॥१॥

* विवादग्रस्तसत्त्वाय कणादासस्थिताय च ।
जगदुद्धारबीजाय जगन्नाथाय ते नमः ॥

का० अर्थ—

नवीन मेघकी कान्तिके सदृश (कज्जोन्मुख) कान्तिवाले, तथा गोपोंकी युवती स्त्रियोंके कपड़ोंको चुरानेवाले संसाररूप वृक्षके बीज (निमित्त कारण) जो विश्व प्रसिद्ध कृष्ण भगवान् उन्हें (मेरा) नमस्कार है।

मु० मङ्गल—

चूड़ामणीकृतविधुर्वलयीकृतवासुकिः ।
भवो भवतु भव्याय लीलाताण्डवपण्डितः ॥१॥

मु० अर्थ—

चूड़ामणिके समान व्यवहृत हुआ है चन्द्रमा जिनसे (अर्थात् आरोपित चूड़ामणित्व वचन्द्रसमलंकृत) एवम् वलयके समान व्यवहृत किया गयाहै वासुकी नाग जिनसे ऐसे जो स्वेच्छा हेतुक ताण्डव नृत्यमें निपुण भव (महादेव) वह कल्याणके लिये हों।

---

* (टि०) विवादसे ग्रस्त है सत्त्व जिसका (एतावता बौद्धादि षड्विध नास्तिकों के वितण्डावाद से सन्दिग्ध हो गया है आस्तिकाभिमत—"ईश्वरोऽस्ति" इत्याकारक सत्त्व जिसका) पुनः कणादसे प्राप्त है स्थिति जिसकी (अर्थात् कणादप्रणीत न्याय शास्त्र प्रतिपादित युक्ति परम्पराही से स्थिति=अवस्थान जिसका) पुनः जगत्=जीव मात्रके उद्धारका बीज=निमित्त कारण है (याने ब्रह्माण्डमें सुखी, दुःखी स्थावर, जंगम सबका उद्धार करने वाला) ऐसे तुम जगतके नाथको मैं नमस्कार करता हूं। स्थित शब्द में "क्त" प्रत्यय भावमें किया गया है।



विषयनिर्देश—

निजनिर्मितकारिकावलीमतिसंक्षिप्तचिरन्तनोक्तिभिः ।
विशदीकरवाणि कौतुकान्ननु राजीवदयावशंवदः ॥ २ ॥

वि० अर्थ—

मैं अपने राजीव नामके शिष्यके प्रति दयासे वशीभूत होकर प्राचीन आचार्य्योंके शब्दसे अत्यन्त संक्षिप्त वचन प्रतिपाद्य युक्तिके अनुसार स्वरचित कारिकावलीको अनायास विशद करता हूं।

विषयनिर्देश—

* सद्द्रव्या गुणगुम्फिता सुकृतिनां सत्कर्मणां ज्ञापिका ।
सत्सामान्यविशेषनित्यमिलिताऽभावप्रकर्षोज्ज्वला ॥
विष्णोर्वक्षसि विश्वनाथकृतिना सिद्धान्तमुक्तावली ।
विन्यस्ता मनसोमुदं वितनुतां सद्युक्तिरेषा चिरम् ॥३॥

वि० अर्थ—

इस श्लोकके दो पक्षोमें अर्थ होते हैं जिसमें मुक्तावली (मोतीमाला) उपमान है और न्याय-सिद्धान्तावली रूप ग्रन्थ उपमेय है; एतावता सद्द्रव्यादि पदवत्त्व धर्म्मसे मुक्तावली निरूपित सादृश्य ग्रन्थात्मक उपमेयमें ग्रन्थकारसे रूपक के लिये सूचित किया गया है। यथा—न्याय-सिद्धान्तावली सद्द्रव्य है नव द्रव्यसे युक्त है, चौवीस गुणोंसे गुथी है, उत्क्षेपणादि पञ्चविध कर्मकी बोधिका है, सामान्य, (जाति) विशेष, नित्यमिलित (समवाय) पदार्थोंसे युक्त है, अभाव पदार्थके प्रकर्षकी (वाद प्रतिवादपूर्वक स्थापनकी या चातुर्विध्यकी) प्रकाशिका है और सत् (साधु) युक्ति (उपपत्ति) सहित है। द्वितीयपक्षमें-सत् (उत्तम) द्रव्यसे (हीरकादिसे) युक्त (है,) गुणसे (सूत्रसे) गुथी (है), धार्मिकोंके धर्म्मकी ज्ञापिका (है), क्रमिक सामान्य, विशेष, (छोटी बड़ी) गुटिकासे निरन्तर संगठित (है), अभाव (तेजोऽभाव=अन्धकार) में प्रकर्षसे प्रकाश करनेवाली है, एवम् सत् (उत्तम) युक्ति (गुटिकाओंके योग) से रमणीय है, ऐसा मोती-माला-स्वरूप यह ग्रन्थ विष्णुके वक्षस्थल (हृदय) में विश्वनाथ (ग्रन्थकार) से अर्पित किया हुआ विद्वानों के मनोमोदको चिरकाल बढ़ावे।

मुक्तावली—

(१) विघ्नविघाताय कृतं मङ्गलं शिष्यशिक्षायै निबध्नाति। (२) नूतनेत्यादि। ननु मङ्गलं न विघ्नध्वंसं प्रति नवा समाप्तिं प्रति कारणं विनापि मङ्गलं नास्तिकादीनां ग्रन्थे निर्विघ्नपरिसमाप्तिदर्शनादिति चेन्न ॥

* (टि०) सद्द्रव्येति पाठान्तरम्।

सु० अर्थ—

(१) (ग्रन्थकी समाप्ति और उसके प्रचार आदिके प्रतिबन्धकरूप) विघ्नके ध्वंसार्थ किये हुये मंगलको ग्रन्थारम्भ ही में ग्रन्थकार निबद्ध करते हैं, ताकि शिष्यलोगभी ग्रन्थारम्भ में मंगलाचरण करें। (२) यहां ग्रन्थकार शङ्का करते हैं कि—आप ग्रन्थसमाप्तिके प्रति या विघ्नध्वंसके प्रति मंगलमें कारणता नहीं मान सकते क्योंकि नास्तिकोंके ग्रंथ बिना मंगलके भी निर्विघ्न समाप्त होते हैं। कारणता सर्वत्र अनन्यथा सिद्ध अन्वय और व्यतिरेकके ग्रहसे सिद्ध होती है। नास्तिक ग्रन्थमें मङ्गलाभावमें भी समाप्ति होनेके कारण व्यतिरेक व्यभिचार है। * एवम् कादम्बरी ग्रन्थमें मङ्गल रहते भी समाप्ति नहीं है, अतः अन्वय व्यभिचार है। किन्तु ऐसा सम्यक् नहीं है।

(३) अविगीतशिष्टाचार विषयत्वेन मङ्गलस्य सफलत्वे सिद्धे तत्र च फलजिज्ञासायां सम्भवति दृष्टफलकत्वे अदृष्टफलकल्पनाया अन्याय्यत्वात् उपस्थितत्वाच्च समाप्तिरेवहि फलं कल्प्यते। (४) इत्थं च यत्र मङ्गलं न दृश्यते तत्रापि जन्मान्तरीयं तत्कल्प्यते। (५) यत्र च सत्यपि मङ्गले समाप्तिर्न दृश्यते तत्र बलवत्तरो विघ्नो विघ्नप्राचुर्यं वा बोध्यं, प्रचुरस्यैवास्य बलवत्तरविघ्ननिराकरणकारणत्वं, विघ्नध्वंसस्तु मङ्गलस्य द्वारमित्याहुः प्राञ्चः॥

(३) (समाधान) "मङ्गलं सफलम् अविगीतशिष्टकृतिविधेयत्वात्" "मङ्गलं समाप्तिफलकम् समाप्तीतर फलाजनकत्व समानाधिकरण सफलत्वात्" यहां प्रथम अनुमान से अनिन्दित और सफल कर्म्मारम्भमें भ्रमरहित शिष्टोंका प्रयत्न विशेष मङ्गलाचरणमें रहनेके कारण फलकारणत्वकी सिद्धि होती है। किस फलकी कारणता है? ऐसी फलजिज्ञासा में समाप्तिरूप दृष्ट फलको त्यागकर अदृष्टफलकल्पना आचार्य्योंसे अयुक्त मानी जाने के कारण उपस्थित समाप्तिरूप मङ्गलका फल द्वितीय अनुमानसे सिद्ध करते हैं। (४) ऐसा अनुमान होने पर नास्तिक ग्रन्थमें जहां मङ्गल प्रत्यक्ष नहीं है और समाप्ति है वहां "अयं नास्तिकग्रन्थः स्वानुकूलव्यापारवत्पुरुष प्रयत्न जन्यत्वरूप साध्यतावच्छेदक सम्बन्धेन मङ्गलवान्" स्वप्रतियोगि चरमवर्णघटितत्वसम्बन्धेन समाप्तिमत्वात् (चरमवर्णध्वंसरूप फलवत्वात्) भारतादिवत्, इस जन्मान्तरीय मङ्गलानुमान द्वारा उक्त व्यतिरेक व्यभिचारका वारण होता है। (५) जहां मङ्गलाचरण है और समाप्ति नहीं है वहां बलवत्तर विघ्न या विघ्नका प्राचुर्य्य समझना चाहिये। "बलवत्तर विघ्नध्वंसंप्रति प्रचुरमङ्गलं कारणम्" अथवा "प्रचुर विघ्नध्वंसं प्रति प्रचुरमङ्गलङ्कारणम्" इस प्रकार कार्य्यकारण भाव माननेसे बलवत्तर विघ्न या प्रचुर विघ्नके ध्वंसानुकूल प्रचुर मङ्गलके अभाव प्रयुक्त विघ्नध्वंस और मङ्गलके कार्य कारण भावमें अन्वय व्यभिचार नहीं लगा। विघ्नध्वंस समाप्तिके जननमें मङ्गलका द्वार है अर्थात् विघ्नध्वंस द्वारा मङ्गल समाप्तिका कारण है ऐसा प्राचीनोंका मत है।

टि० * "मंगलम् समाप्ति जनकत्वाभाववत् समाप्ति समानाधिकरणाभाव प्रतियोगित्वात्" यथा घटः इस अनुमानसे मंगलमें समाप्ति जनकत्वा भाव सिद्ध होता है।

(६) नव्यास्तु मङ्गलस्य विघ्नध्वंस एव फलं समाप्तिस्तु बुद्धिप्रतिभादिकारणकलापात् । (७) नच स्वतः सिद्धविघ्नविरहवता कृतस्य मङ्गलस्य निष्फलत्वापत्तिरितिवाच्यम् । (८) इष्टापत्तेः, विघ्नशङ्कया तदाचरणात् । तथैव शिष्टाचारात् । (९) नच तस्य निष्फलत्वे तद्बोधकवेदाप्रामाण्यापत्तिरिति वाच्यं, सति विघ्ने तन्नाशस्यैव वेदबोधितत्वात् । (१०) अत एव पापभ्रमेण कृतस्य प्रायश्चित्तस्य निष्फलत्वेऽपि न तद्बोधकवेदाप्रामाण्यम् । (११) मङ्गलं तु विघ्नध्वंसविशेषे कारणं विघ्नध्वंसविशेषे च विनायकस्तवपाठादि । (१२) क्वचिच्च विघ्नात्यन्ताभाव एव समाप्तिसाधनं प्रतिबन्धकसंसर्गाभावस्यैव कार्यजनकत्वात् । (१३) इत्थं च नास्तिकादीनां ग्रन्थेषु जन्मान्तरीयमङ्गलजन्यदुरितध्वंसः, स्वतःसिद्धविघ्नात्यन्ताभावो वास्तीति न व्यभिचार इत्याहुः ॥

(६) नवीनों (गङ्गेशोपाध्याय आदि) के मतसे मङ्गल विघ्नध्वंसही के प्रतिकारण है। ग्रन्थ समाप्ति तो मङ्गल कर्त्ताको जो शास्त्रीय बुद्धि और नव नव स्फूर्तिशालिनी प्रज्ञारूप प्रतिभा और विघ्नध्वंस इन सब कारणोंसे होती है। (७) (पूर्वपक्ष) जिस पुरुषको विघ्न हुआ ही नहीं उससे किये हुए मङ्गलको विफलता (वैयर्थ्य) हो जायगी। (८) (समाधान) विघ्नरहित पुरुषकृत मङ्गलमें निष्फलतापत्तिको मैं इष्ट करता हूं, विघ्न सन्देहसे मङ्गलाचरण किया गया है वैसे ही शिष्टोंका आचार है। (९) (शङ्का) मङ्गलको यदि निष्फल कहें तो "मङ्गलम् वेद बोधित कर्त्तव्यताकम् अलौकिकाविगीतशिष्टकृतिविषयत्वात् दर्शपौर्णमासादिवत्" इस अनुमानसे एवं सकल कर्मारम्भमें भ्रमरहित शिष्ट पुरुषोंके व्यवहारसे कल्पित "विघ्नध्वंसकामो मङ्गलमाचरेत्" इत्यादि मङ्गलमें सफलताबोधक श्रुतिको अप्रामाण्य हो जायगा। (समाधान) उक्त श्रुति विद्यमान विघ्नावस्थामें उस ही विघ्नध्वंसके लिये प्रवृत्ति कराती है। अर्थात् विघ्नसमानाधिकरण मङ्गलमें विघ्नध्वंसजनकत्व श्रुतिप्रतिपाद्य है। (१०) अतएव पाप भ्रमसे निष्पाप पुरुषकृत प्रायश्चित्ताचरणमें निष्फलत्व होने पर भी "पापी प्रायश्चित्तमाचरेत्" एतदर्थक वेद वाक्य में अप्रामाण्य नहीं होता। (११) मङ्गलके बाद जायमान विघ्नध्वंसके प्रति मङ्गल कारण है और गणेशस्तवपाठके बाद जायमान विघ्नध्वंस के प्रति गणेशस्तवपाठ आदि कारण हैं। (१२) किसी किसी स्थलमें विघ्नका अत्यन्ताभावही समाप्तिका कारण है क्योंकि कार्य्य सामान्य के प्रति प्रतिबन्धक का संसर्गाभावको कारणता है। (१३) इस प्रकारसे यहां यह पर्य्यवसित हुआ कि नास्तिकादिकृत ग्रन्थोंमें जन्मान्तरीयमङ्गलसे विघ्नका ध्वंस है या स्वतः सिद्धविघ्नात्यन्ताभाव है जिससे ग्रन्थ समाप्त हुआ।

(१४) संसारेति। संसार एव महीरुहो वृक्षस्तस्य बीजाय। (१५) एतेन ईश्वरे प्रमाणमपि दर्शितं भवति। (१६) तथाहि यथा-घटादि कार्य्यं कर्तृजन्यं तथा क्षित्यङ्कुरादिकमपि। (१७) नच तत्कर्तृत्वमस्मदादीनां संभवतीत्यतस्तत्कर्तृत्वेनेश्वरसिद्धिः। (१८) न च शरीराजन्यत्वेन कर्त्रजन्य-

त्वसाधकेनसत्प्रतिपक्ष इति वाच्यम्, अप्रयोजकत्वात् (१६) मम तु कर्तृत्वेन कार्यत्वेन कार्यकारणभावएव अनुकूलस्तर्कः। (२०) "द्यावाभूमी जनयन्देव एकः विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता" इत्यादय आगमा अप्यनुसन्धेयाः ॥ १ ॥

(१४) इसका अर्थ कारिकार्थमें ही स्पष्ट किया गया है। (१५) संसारके प्रति ईश्वर निमित्त कारण है इस कथनसे ईश्वरमें प्रमाण भी दिखलाया गया है। (१६) कार्य्य किसी कर्त्तासे जन्य है तथा पृथ्वी, अङ्कुर आदि कार्य्य भी किसी कर्त्तासे जन्य है। (१७) यह पृथिव्यादि रूप कार्य्य कर्तृत्व अस्मदादिनिष्ठ सम्भव नहीं है अतः उक्त कार्य्य कर्तृत्व हेतु से ईश्वर-सिद्ध होता है। "एतावता क्षित्यङ्कुरादिकं सकर्तृकं कार्यत्वात् घटवत्" इस अनुमानसे ईश्वर की सिद्धि हुई। (१८) (शङ्का) यदि कहें कि "क्षित्यङ्कुरादिकं कर्तृजन्यत्वाभाववत् शरीराजन्यत्वात् गगनादिवत्" इस अनुमानसे हेतु को सत्प्रतिपक्षित होनेके कारण पूर्वोक्त अनुमान में हेत्वाभास दोष लग जाता है। ऐसी शङ्का नहीं कर सकते। (समाधान) "शरीराजन्यत्वं कृत्यजन्यत्वव्यभिचारिनवा" इत्याकारक व्यभिचार शङ्का निवर्त्तक तर्क हेतु में नहीं रहने के कारण यह अनुमान अप्रयोजक हो जायगा तब सत्प्रतिपक्ष कैसे? क्योंकि समान बल रहनेपर सत्प्रतिपक्ष होता है। (१६) मुझ ईश्वरवादीको "यदि कार्य्यत्वं सकर्तृकत्व व्यभिचारिस्यात् तदा कृतित्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्य्यतावच्छेदकं न स्यात्" इत्याकारक व्यभिचारशङ्कानिवर्त्तक तर्क मिलता है अतः मेरे अनुमान में हेतु प्रयोजक है। (२०) "द्यावाभूमी जनयन्देव एकः" "विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता" इत्यादि श्रुति भी ईश्वर सत्वमें प्रमाण है।

॥ इति मङ्गलवादः ॥



पदार्थान्विभजते = पदार्थोंका विभाग करते हैं।

कारिका—२

* द्रव्यं गुणस्तथा कर्म सामान्यं सविशेषकम्।
समवायस्तथाऽभावः पदार्थाः सप्तकीर्त्तिताः ॥२॥

का० अर्थ—

(नैयायिक का अविरोधी वैशेषिक सिद्धान्त)

द्रव्य, गुण, कर्म्म, सामान्य, विशेष, समवाय, और अभाव, ये सात पदार्थ प्राचीनों से बार-बार कहे गये हैं। (नकि मुझसे ही कहे जाते हैं)।

(का* टि) कर्म और अभाव इन दोनों में अतिरिक्त पदार्थत्व सूचन करने के लिये दो " " पदों का उपादान किया गया।

मुक्तावली।

(१) अत्र सप्तमस्याभावत्वकथनादेव षण्णां भावत्वं प्राप्तं तेन भावत्वेन पृथगुपन्यासो न कृतः। (२) एते च पदार्था वैशेषिके प्रसिद्धाः नैयायिकानामप्यविरुद्धाः। (३) प्रतिपादितं चैवमेव भाष्ये। (४) अत एवोपमानचिन्तामणौ सप्तपदार्थभिन्नतया शक्तिसादृश्यादीनामतिरिक्तपदार्थत्वमाशङ्कितम्। (५) ननु कथमेत एव पदार्थाः शक्ति सादृश्यादीनामप्यतिरिक्तपदार्थत्वात्। (६) तथाहि। मण्यादि समवहितेन वह्निना दाहो न जन्यते तच्छून्येन तु जन्यते। (७) तत्र मण्यादिना वह्नौ दाहानुकूला शक्तिर्नाश्यते उत्तेजकेन मण्याद्यपसारणेन च जन्यत इति कल्प्यते। (८) एवं सादृश्यमप्यतिरिक्तः पदार्थः। (९) तद्धि न षट्सु भावेष्वन्तर्भवति सामान्येऽपि सत्त्वात्। (१०) यथा गोत्वं नित्यं तथाश्वत्वमपीति सादृश्यप्रतीतेः। (११) नाप्य भावे सत्वेन प्रतीयमानत्वादिति चेन्न,

मु० अर्थ।

(१) कारिका में सातवें पदार्थ को अभाव कहने ही से पूर्व ६ पदार्थों में भावत्व प्राप्त हो जाता है। इसलिये लेख गौरवग्रस्त "पदार्थो द्विविधः भावोऽभावश्च तत्र भावः षड्विधः," इत्यादि रीति का अनुसरण न किया गया। (२) ये सात पदार्थ वैशेषिक शास्त्र में प्रसिद्ध हैं। और नैयायिकों को भी विरुद्ध नहीं हैं। (३) वैसे ही भाष्यमें प्रतिपादित हैं (न्याय सूत्र, प्रथम अध्याय प्रथम आह्निक तृतीय सूत्र भाष्य) (४) इसी कारण से न्यायतत्व चिन्तामणि के उपमानखण्ड ग्रन्थमें शक्ति और सादृश्यको सात पदार्थोंसे भिन्न पदार्थ मानने के लिये शङ्का की है। (यदि ये सात पदार्थ नैयायिकके अविरुद्ध नहीं रहते तो शक्ति और सादृश्यमें अतिरिक्तत्वका पूर्व पक्ष करना अनुचित होता)। (५) (प्र०) जब सातसें अतिरिक्त शक्ति और सादृश्य पदार्थ हैं तब सातही पदार्थ क्यों माने गये? (६) (उपपादन) ऐसा है कि चन्द्रकान्तमणि मन्त्र और औषधि प्रभृतिके ठीक तौरसे रहने पर आगसे, दाह उत्पन्न नहीं होता है किन्तु न रहनेहीं से होता है। (वक्तव्यका सारांश यह है कि दाहके प्रति वह्नित्वेन कारणता माननेमें यहां अन्वय व्यभिचार लगेगा उसका वारण करनेके लिये शक्ति मानिये। जब मानते हैं तब दाहानुकूल शक्तिमत्वेन कारणता मानी जायगी अब व्यभिचार नहीं लग सकता है क्योंकि–) (७) उस स्थलमें चन्द्रकान्तमणि प्रभृति से अग्नि की दाहानुकूला शक्ति नष्ट हो जाती है— शक्तिमद्वह्नि नहीं है। अगर वही चन्द्रकान्तमणि सूर्यकान्तमणिके साथ कर दिया जाय या चन्द्रकान्तमणि हटा दिया जाय तो (दोनों स्थितियोंमें) दाहानुकूलाशक्ति फिर उत्पन्न होजाती है तब दाह होने में कोई बाधा नहीं है। उस शक्तिका अन्तर्भाव सात पदार्थों में नहीं होसकता है इस लिये उसे अतिरिक्त पदार्थ मानना आवश्यक है। (८) इस प्रकार सादृश्य भी एक

अतिरिक्त पदार्थ है। (९) यह सादृश्य ६ भाव पदार्थोंके अन्तर्गत नहीं है। क्योंकि जातिमें छै भाव पदार्थान्तर्गत एक भी पदार्थ नहीं रहता है किन्तु सादृश्य रहता है इसलिये एक और सादृश्य नामका भाव पदार्थ मानना अभ्यर्हित है। (१०) जैसा गोत्व नित्य है वैसा अश्वत्व भी नित्य है। इस रूप से अश्वत्व में गोत्व के सादृश्य की प्रतीति होती है। इससे सादृश्यमें जाति वृत्तित्वकी सिद्धि हुई। अतएव "सादृश्यं न द्रव्यादिभावषट्कान्तर्गतं जातिवृत्तित्वात्" इस अनुमान में स्वरूपासिद्धिदोष नहीं लगा। (११) सादृश्य अभाव पदार्थके अन्तर्गत भी नहीं है; क्योंकि उसकी प्रतीति भावरूपहीसे होती है (अभावकी प्रतीति तो वैसी नहीं है)।

(१२) मण्याद्यभावविशिष्टवह्न्यादेर्दाहादिकं प्रति स्वातन्त्र्येण मण्यभावादेरेव वा हेतुत्वं कल्प्यते। (१३) अनेनैव सामञ्जस्ये अनन्तशक्तितत्प्रागभावध्वंसकल्पनानौचित्यात्। (१४) न चोत्तेजके सति प्रतिबन्धकसद्भावेऽपि कथं दाह इति वाच्यम्। (१५) उत्तेजकाभाव विशिष्टमण्यभावस्य हेतुत्वात्। (१६) सादृश्यमपि न पदार्थान्तरं किन्तु तद्भिन्नत्वे सति तद्गतभूयोधर्मवत्त्वम्। (१७) यथाचन्द्रभिन्नत्वे सति चन्द्रगताह्लादकत्वादिमत्वम् मुखेचन्द्रसादृश्यमिति॥

(१२) (शक्तिके पूर्वपक्षका उत्तर) चन्द्रकान्तमणि मन्त्र और जड़ी–बूटी इत्यादि से रहित अग्नि अथवा चन्द्रकान्तमणिका अभाव और अग्नि ये दोनों स्वतन्त्र रूपसे दाहके प्रति कारण हैं। (१३) जब उक्त कारणता की कल्पनासे ही निर्वाह (उक्त व्यभिचारका वारण) हो जाता है तब अनन्त शक्ति, उनके प्रागभाव और ध्वंस मानकर अनुचित गौरव क्यों सहा करें? (१४) (प्र०) चन्द्रकान्तमणि जब प्रतिबन्धक है तब सूर्य्यकान्तमणिके साथ हो जाने पर अग्निसे दाह कैसे होगा? (चन्द्रकान्तमण्यभावरूप कारण तो नहीं रहा)। (१५) (उ०) इसलिये सूर्य्यकान्तमणि रहित जो चन्द्रकान्तमणि उसका अभाव दाह के प्रति कारण है। प्रकृतमें सूर्य्यकान्तमणिसे रहित चन्द्रकान्तमणि नहीं है। तब उसका अभाव रह गया। अतः शक्तिको न मानने पर भी दाह होनेमें कोई अनुपपत्ति न हुई। (१६) सादृश्य भी अतिरिक्त पदार्थ नहीं है किन्तु उससे भिन्न और उस पर रहनेवाला धर्म ही सादृश्य है। (अर्थात् उपमान और उपमेय इन दोनों में रहनेवाला धर्म ही सादृश्य है। साधारण धर्म प्रयोज्यता उसमें नहीं मानते हैं)। (१७) * जैसा कि चन्द्रमासे भिन्न कान्तामुख है किन्तु चन्द्रमामें जो आह्लादकत्व (सुख विशेष जनकत्व) है वही मुखमें भी है। इसलिये आह्लादकत्व से अतिरिक्त सादृश्य नहीं है। वस्तुतः सुखत्वव्याप्यजाति ही यहां सादृश्य है। उसको स्वावच्छिन्न जन्यता निरूपित जनकतावच्छेदक प्रत्यक्षीय विषयतावत्व सम्बन्धसे उपमेयोपमान साधारणत्व है।

॥ इति सप्तपदार्थ सामान्य निरूपणम् ॥

* का० (टि०) सादृश्यात्मकधर्म दो प्रकार के होते हैं। जातिरूप और उपाधिरूप। (१) जातिरूप = घट सदृशः पटः। (२) उपाधिरूप = गोत्वम् नित्यम् तथा अश्वत्वमपि।

द्रव्याणिविभजते=द्रव्योंका विभाग करते हैं।

कारिका नं० ३—

क्षित्यप्तेजोमरुद्व्योम कालदिग्देहिनो मनः।
द्रव्याणि............

का० अर्थ—

क्षिति, अप, तेज, मरुत्, व्योम, काल, दिक्, देही, और मन (ये नव) द्रव्य (पदार्थ) हैं।

मुक्तावली।

(१) क्षित्यबिति। (२) क्षितिः पृथिवी, आपो जलानि, तेजो वह्निः, मरुद् वायुः, व्योम आकाशः, कालः समयः, दिगाशा, देही आत्मा, मनः, एतानि नव द्रव्याणीत्यर्थः। (३) ननु द्रव्यत्वजातौ किं मानम्? (४) नहि तत्र प्रत्यक्षं प्रमाणं घृतजतुप्रभृतिषु द्रव्यत्वाग्रहादिति चेत्। (५) न।

मु० अर्थ—

(१) अर्थान्तर भ्रम वारणार्थ क्षिति आदि पदोंका विवरण किया जाता है। (२) क्षिति पदका पृथ्वी, अप पदका जल, तेजस् पदका वह्नि, मरुत् पदका वायु, व्योम पदका आकाश, काल पदका समय, दिक् पदका दिशा, देहिन् पदका आतमा और मनस् पदका मन अर्थ है और यही नव द्रव्य हैं। (३) प्र० सकल द्रव्य में रहनेवाला द्रव्यत्व जाति) है इसमें क्या प्रमाण? (४) * "इदं द्रव्यम्—इदं द्रव्यम्"—इस अनुगताकारक प्रतीतिसे द्रव्यत्व जातिमें प्रत्यक्ष प्रमाण मानना उचित नहीं। इसका कारण यह है कि प्रत्यक्षयोग्य सकल आधार में जिस जातिका आपामर साधारण को प्रत्यक्ष होता है वही जाति प्रत्यक्ष सिद्ध मानीजाती है। घी और लाह प्रभृति में सकल साधारणको द्रव्यत्वका प्रत्यक्ष नहीं होता है। क्योंकि उक्त पदार्थों में द्रव्यपद निरूपितशक्तिज्ञान (जो उक्त प्रत्यक्ष में कारण है) सकल साधारण को नहीं है। (५) नहीं।

(६) कार्यसमवायिकारणतावच्छेदकतया संयोगस्य विभागस्य वा समवायिकारणतावच्छेदकतया तत्सिद्धेरिति। (७) ननु दशमं द्रव्यं तमः कुतो-नोक्तं? तद्धि प्रत्यक्षेण गृह्यते तस्य च रूपवत्त्वात् कर्म्मवत्त्वाच्च द्रव्यत्वं, तच्च गन्धशून्यत्वान्न पृथिवी, नीलरूपवत्त्वाच्च न जलादिकं, तत्प्रत्यक्षे चालोक निरपेक्षं चक्षुः कारणमिति चेत्। (८) न। (९) आवश्यक तेजोऽभावे-नोपपत्तौ द्रव्यान्तरकल्पनाया अन्याय्यत्वात्। (१०) रूपवत्ताप्रतीतिस्तु

* का न० ३ टि० इसलिये प्रत्यक्ष प्रमाण से सकल द्रव्य साधारण द्रव्यत्व जाति सिद्ध नहीं की जा सकती किन्तु अनुमान प्रमाण ही से सकल द्रव्य में द्रवत्व जाति की सिद्धि होती है।

भ्रमरूपा । (११) कर्म्मवत्ताप्रतीतिरप्यालोकापसरणौपाधिकी भ्रान्तिरेव । (१२) तमसोऽतिरिक्तत्वेऽनन्तावयवादिकल्पनागौरवं च स्यात् । (१३) स्वर्णस्य यथा तेजस्यन्तर्भावस्तथा वक्ष्यते ॥

(६) * (अनुमानका आकार) समवाय सम्बन्धावच्छिन्न कार्य्यत्वावच्छिन्न कार्य्यतानिरूपित वा संयोगत्वावच्छिन्न कार्य्यता निरूपित वा विभागत्वावच्छिन्न कार्य्यता निरूपित जो तादात्म्य सम्बन्धावच्छिन्न कारणता वह किसी धर्मसे अवच्छिन्ना है। क्योंकि कारणता किसी न किसी धर्म से अवच्छिन्ना अवश्य रहती है । जैसे कि घटका कारण दण्ड है उस दण्ड में रहनेवाली कारणता दण्डत्वावच्छिन्न होती है। (समवाय सम्बन्ध से कार्य्यके प्रति तादात्म्य सम्बन्ध से द्रव्य कारण है) । (७) (प्रश्न) अन्धकार को दशम द्रव्य क्यों नहीं कहा है ? वह प्रत्यक्ष प्रमाण से ज्ञायमान है। उसको रूपवत् और क्रियावत् होने के कारण द्रव्य कहना चाहिये "तमोद्रव्यं रूपवत्वात् क्रियावत्वाच्च"—यह पूर्व पक्षीका अनुमान है। वह गन्धशून्य है इसलिये पृथ्वी नहीं है, नीलरूपाश्रय है इसलिये जलादि भी नहीं है। तस्मात् दशम द्रव्य उसको मानना चाहिये। उसके प्रत्यक्ष में प्रकाश के विनाही चक्षु कारण है। अर्थात् तमोभिन्न द्रव्य विषयक चाक्षुप प्रत्यक्ष के प्रति आलोक संयोग कारण है। (८) (उत्तर) यह नहीं। (९) क्योंकि जब अन्धकार को तेज (जिसका मानना आवश्यक है) काही अभावरूप मानलेने से उपपत्ति (समन्वय) हो जाती है, तब अन्धकार को द्रव्यान्तर क्यों मानना चाहिये ? (१०) अन्धकार में जो रूपका भान होता है वह भ्रम मात्र है। (११) और क्रियाका भी जो भान होता है वह भी दीपादि के संचाररूप उपाधि से भ्रान्ति ही है, उक्त अनुमान स्वरूपासिद्धि दोषग्रस्त होनेके कारण तमसमें द्रव्यत्व का साधक नहीं हो सकता है। (१२) अन्धकार को यदि अतिरिक्त द्रव्य मानेंगे तो उसके अनन्त अवयव, अनन्त प्रागभाव और अनन्त ध्वंसकी कल्पना से गौरव भी होगा इसलिये अन्धकार दशम द्रव्य नहीं माना गया। (१३) सोनेका जिस प्रकार तेजमें अन्तर्भाव होता है वह आगे कहा जायगा।

इति नवद्रव्याणि।

* टि० (क) समवायसम्बन्धावच्छिन्नत्व तीनों कार्य्यताओं में विशेषण समझना चाहिये।

(ख) कारणता वच्छेदक धर्म लाघव से जाति रूप माना जाता है उसकाभी साधक ये ही अनुमान प्रमाण हैं, यह अधिकरण सिद्धान्त है।

(ग) कार्य्यत्वा वच्छिन्न कार्य्यता के बदले संयोगत्वावच्छिन्न कार्य्यताका निवेश किया है। इसका कारण यह है कि एकही वस्तु अवच्छेद्य और अवच्छेदक दोनों नहीं हो सकता है जो दोष कार्य्यत्वावच्छिन्न कार्य्यता में विद्यमान है क्योंकि जोही कार्य्यत्व अवच्छेदक है वही कार्य्यता अवच्छेद्य है। इसलिये संयोगत्वावच्छिन्न कार्य्यता का निवेश किया है। अब संयोगत्वावच्छिन्न कार्य्यता में भी दोष पाया जाता है। क्योंकि जो विभुद्वय संयोग मानते हैं उनके मतसे संयोगत्वावच्छिन्न कार्य्यताही अप्रसिद्ध है। इसमें कारण यह है कि संयोगत्व नित्य विभुद्वय संयोगमें है। कार्य्यता उसमें नहीं है। तब अतिप्रसक्त होनेके कारण संयोगत्व कार्य्यतावच्छेदक नहीं हो सकता। इसलिये निर्दुष्ट विभागत्वावच्छिन्न कार्य्यता घटित पञ्चक अनुमानसे द्रव्यत्व जातिकी सिद्धि की गई है। संयोग वा विभाग तो द्रव्यों में समवाय सम्बन्धेन रहता है जो कहीं एक जगह पाया जायगा

गुणान्विभजते=गुणों का विभाग करते हैं ।

का० नं० ३, ४, ५ ।

अथ गुणा रूपं रसो गन्धस्ततः परम् ॥३॥
स्पर्शः संख्या परिमितिः पृथक्त्वं च ततः परम् ।
संयोगश्च विभागश्च परत्वं चापरत्वकम् ॥४॥
बुद्धिः सुखं दुःखमिच्छा द्वेषोयत्नोगुरूत्वकम् ।
द्रवत्वं स्नेह संस्कारावदृष्टं शब्द एव च ॥५॥

का० अर्थ ।

(१) रूप (२) रस (३) गन्ध (४) स्पर्श (५) संख्या (६) परिमाण (७) पृथक्त्व (८) संयोग (९) विभाग (१०) परत्व (११) अपरत्व (१२) बुद्धि (१३) सुख (१४) दुःख (१५) इच्छा (१६) द्वेष (१७) यत्न (१८) गुरुत्व (१९) द्रवत्व (२०) स्नेह (२१) संस्कार (२२) धर्म (२३) अधर्म (२४) शब्द, ये चौवीस गुण हैं । (अदृष्ट शब्द से धर्म और अधर्म विशेष रूप से लिये जाते हैं क्योंकि अदृष्टत्व जाति नहीं है) ।

मुक्तावली ।

(१) एते गुणाश्चतुर्विंशतिसंख्याकाः कणादेन कण्ठतः च शब्देन च दर्शिताः । (२) तत्र गुणत्वादिकजातिसिद्धिरग्रे वक्ष्यते ।

मु० अर्थ ।

(१) ये चौवीस गुण कणाद से कण्ठ द्वारा और च शब्द से दिखलाये गये हैं । "रूप रस गन्ध स्पर्श संख्या परिमाण पृथक्त्व संयोग विभाग परत्वापरत्व बुद्धि सुख दुःखेच्छा द्वेष प्रयत्नाश्च गुणाः" यह कणाद का सूत्र है । (१ अ० ३ य सू०) यहां च कार से सात लिये जाते हैं । * (२) गुणत्वादि जाति जिस रीति से सिद्ध होती है वह आगे गुणनिरूपण के आरम्भ में "द्रव्यकर्मभिन्ने सामान्यवति या कारणता" इत्यादि ग्रन्थ से कहा जायगा ।

इति गुणाः ।



* (टि०) गुणत्वादि=गुणत्व, रूपत्व इत्यादि ।

कर्माणिविभजते=कर्मोंका विभाग करते हैं।

का० न० ६

उत्क्षेपणं ततोऽपक्षेपणमाकुञ्चनं तथा।
प्रसारणं च गमनं कर्माण्येतानिपञ्च च॥

का० अर्थ—

(१) उत्क्षेपण (वस्तुको ऊपर फेंकना), (२) अपक्षेपण (वस्तुको नीचे फेंकना), (३) आकुञ्चन (यथा पटादि विस्तृत पदार्थों को संकुचित करना), (४) प्रसारण (संकुचित पदार्थों को विस्तृत करना) और (५) गमन (चलना-फिरना) ये पाँच कर्म हैं।

मुक्तावली।

(१) कर्मत्वजातिस्तु प्रत्यक्षसिद्धा। (२) एव मुत्क्षेपणत्वादिक मपि॥

मु० अर्थ—

(१) कर्मत्व जाति तो प्रत्यक्ष सिद्ध है। (२) * इसी प्रकार उत्क्षेपणत्वादि पाँच जातियां भी प्रत्यक्ष सिद्ध हैं।

(३) नन्वत्र भ्रमणादिकमपि पञ्चकर्मातिरिक्तया कुतो नोक्तमत आह—

* (३) जब यहां भ्रमणादि भी पांच अतिरिक्त कर्म हैं तब केवल उत्क्षेपणादि पांचही को क्यों कर्म कहा है? इसलिये कहते हैं।

का० न० ७।

भ्रमणं रेचनं स्पन्दनोर्ध्वज्वलनमेवच।
तिर्यग्गमनमप्यत्र गमनादेव लभ्यते॥

का० अर्थ—

(१) भ्रमण (गोलाकार चलना), (२) रेचन (खिसकना), (३) स्पन्दन (ढुलकना), (४) ऊर्ध्वज्वलन (दीप-शिखादिवत् ऊर्ध्वमुख जलना) और (५) तिर्यग्गमन (सर्पादि के समान टेढ़ा चलना)। ये पांच कर्म भी गमनके अन्तर्गत होने से गमन पदही से लिये जाते हैं।

इति कर्माणि।



* (टि०) उत्क्षेपणत्वादि पांच—उत्क्षेपणत्व, अपक्षेपणत्व, आकुञ्चनत्व, प्रसारणत्व और गमनत्व।

सामान्यं निरूपयति=सामान्य का निरूपण करते हैं ।

का० नं० ८ ।

सामान्यं द्विविधंप्रोक्तं परंचापरमेवच ।
द्रव्यादित्रिकवृत्तिस्तु सत्ता परतयोच्यते ॥

का० अर्थ--

सामान्य दो प्रकार का कहा गया है--पर और अपर । द्रव्य, गुण और कर्ममें रहनेवाली सत्ता परसामान्य कही जाती है ।

मुक्तावली ।

(१) तल्लक्षणंतु नित्यत्वेसति अनेकसमवेतत्वम् । (२) अनेकसमवेतत्वं संयोगादीनामप्यस्त्यत उक्तं नित्यत्वे सतीति । (३) नित्यत्वे सति समवेतत्वं गगनपरिमाणादीनामप्यस्त्यत उक्तमनेकेति । (४) नित्यत्वेसति अनेकवृत्तित्वमत्यन्ताभावेऽप्यस्त्यतो वृत्तित्व सामान्यं विहाय समवेतत्वमित्युक्तम् ।

मु० अर्थ—

(१) सामान्य (जाति) का लक्षण है कि नित्य हो और अनेक में समवाय सम्बन्ध से वृत्ति हो । (२) * अगर जाति का लक्षण केवल इतनाही करें कि अनेक में समवाय सम्बन्ध से जो वृत्ति हो वही जाति है तब संयोगादि में अतिव्याप्ति हो जायगी । क्योंकि संयोगादि भी अनेक में समवाय सम्बन्ध से रहता है । इसलिये जाति-लक्षण में नित्यत्व का निवेश करना चाहिये । संयोग और विभाग आदि अनित्यही है इसलिये संयोगादि अब अतिव्याप्ति नहीं होगी, यहां नित्यत्व ध्वंसाप्रतियोगित्व या प्रागभावाप्रतियोगित्वरुप ही निविष्ट है, दोनों का निवेश करना विफल है । (३) + अगर जातिका लक्षण केवल इतनाही करें कि नित्य हो और समवाय सम्बन्धेन वृत्ति हो तब गगनपरिमाणादिमें अतिव्याप्ति हो जायगी क्योंकि गगनपरिमाणादि नित्य हैं और गगनमें समवाय सम्बन्ध से रहते भी हैं । इसलिये अनेक का निवेश किया है । (४) ÷ फिर यदि जाति का लक्षण ऐसा करें कि नित्य हो और अनेक में वृत्ति हो तो अत्यन्ताभाव में अतिव्याप्ति हो जायगी । क्योंकि अत्यन्ताभाव नित्य है और अनेक में स्वरुप सम्बन्ध से वृत्ति भी होता है । इसलिये वृत्तित्वमात्रको छोड़ कर समवायसम्बन्धेन वृत्तित्व का निवेश किया है ।

* (टि०) आदि पद से विभाग द्वित्व द्विपृथक्त्व प्रभृतिका ग्रहण है ।

\+ (टि०) आदि पद से=गगन का एकत्वादि ग्राह्य है । गगन को एक मात्र होने से उसका परिमाणादि अनेक में नहीं रहता है इसलिये अब अति व्याप्ति नहीं होगी ।

÷ (टि०) अब अत्यन्ताभाव में अतिव्याप्ति नहीं होगी । क्योंकि अत्यन्ताभाव स्वरुपसम्बन्ध से वृत्ति होता है न के समवाय सम्बन्ध से ।

(५) एकव्यक्तिमात्रवृत्तिस्तु न जातिः, तथा चोक्तम्—

(कं)-व्यक्तेरभेद (खं)-स्तुल्यत्वं (गं)-सकरोऽ(घं)-थानवस्थितिः।
(ङं)-रूपहानि (च)-रसंबन्धो जातिबाधकसंग्रहः॥

(५) एक वस्तु मात्र में वृत्ति जो धर्म वह जातिरूप नहीं होता है। जैसा कि कहा है—

(कं)-"व्यक्तिका (आश्रयका) अभेद, (ख)-तुल्यत्व, (गं)-सङ्कर, (घं)-अनवस्था, (ङं)-रूपहानि और (चं)-असम्बन्ध" ये छः जाति के बाधक हैं।

(क) व्यक्त्यभेद का उदाहरण।

आश्रय जिसका एक मात्र हो वह जाति नहीं है यथा—आकाशत्व का आश्रय एक मात्र है, इसलिये यह जाति नहीं है।

*(खं) तुल्यत्व का उदाहरण।

घटत्व और कलशत्व में समनियतत्व है; इसलिये ये दोनों भिन्न-भिन्न जाति नहीं हैं। नियम है कि जो स्वभिन्नजातिसमनियत होता है वह जाति नहीं है। तब यदि घटत्व और कलशत्व भिन्न हो तब स्वभिन्नजातिसमनियतत्वरूप तुल्यत्व घटत्व और कलशत्व दोनों में रह जायगा; इसलिये इन दोनों में एक भी जाति नहीं होगी।

+ (गं) साङ्कर्य्य का उदाहरण।

परस्पर अत्यन्ताभाव के अधिकरण में रहनेवाले दो धर्मों का एक अधिकरण में समावेश (रहना) सङ्कर है। यथा—भूतत्व और मूर्त्तत्व जाति नहीं है, क्योंकि भूतत्व का अत्यन्ताभाव मनमें है जहां मूर्त्तत्व है एवम् मूर्त्तत्व का अत्यन्ताभाव आकाशमें है जहां भूतत्व है। एवं पृथ्वी, जल, वायु और तेज में भूतत्व तथा मूर्त्तत्व दोनों का समावेश है। इसलिये भूतत्व या मूर्तत्व कोई जाति नहीं है। (किन्तु नवीन आचार्य्य लोग साङ्कर्य्य को जाति-बाधक नहीं मानते हैं अतएव उनके मतसे भूतत्व और मूर्त्तत्व दोनों ही जाति है)।

(घं) अनवस्था का उदाहरण।

अप्रामाणिक अनन्त पदार्थ की कल्पना अनवस्था कहलाती है। इस अनवस्था दोष के डरसे जातियों में जाति नहीं मानी जाती है क्योंकि जातियों में अगर जातित्व नाम की एक जाति मानी जाय तो वह जातित्वरूप जाति एवं घटत्व—पटत्वादिरूप जाति इन जातियों में एक जातित्वरूप जाति फिर मानी जायगी एवं इस जातिके साथ घटत्व—पटत्वादि नाना

* (टि०) तुल्यत्व सामनैयत्य परस्पर व्यापकत्व या "व्यापकत्वेसति व्याप्यत्व" अर्थात् बराबर जगह में रहना। वह भेद मात्र का निषेधक होता है जैसा कि घटत्व, कलशत्व में।

+ (टि०) समानाधिकरण जातिद्वय में व्याप्यव्यापकभाव रहता ही है इस नियम को मानकर प्राचीन साङ्कर्य्य को जातिबाधक कहते हैं। किन्तु जिस हेतु दीधितिकारप्रभृति नवीन इस नियम को नहीं मानते इसलिये साङ्कर्य्य में जाति बाधकता स्वीकार नहीं करते हैं।

जातियोंमें फिर एक जातित्व नामकी जाति मानी जायगी। इस प्रकार विश्राम कहीं नहीं होने से अनन्त जाति कल्पना प्रयुक्त अनवस्था लग जायगी। इस हेतु जातियों में जाति नहीं मानी जाती है।

* (ङे) रूपहानिका उदाहरण।

(ङे) (क) रूपहानि=स्वरूप की हानि अर्थात् स्वतो व्यावर्त्तकत्व की हानि। अगर विशेषत्व जाति मानली जाय तो विशेष में स्वतोव्यावर्त्तकत्व (भेद साधकत्व) का भङ्ग हो जायगा। इसलिये विशेष जातिमत् नहीं हो सकता।

ङे (ख) एक परमाणु में दूसरे परमाणु का भेद है। इस भेदके साधन करनेके हेतु यह अनुमान है—"अयम् परमाणुः तत्परम णुतोभिन्नः तद्विशेषात् यहां तद्व्यक्तित्व तादात्म्य सम्बन्ध से तद्व्यक्तिस्वरूप है अतएव परमाणुनिष्ठतद्व्यक्तित्व परमाणुस्वरूप होने के कारण भेद साधक नहीं हो सकता है, यदि तद्व्यक्तित्व परमाणुसे भिन्न मानें तथापि तद्विशेषात्मक ही होगा। विशेष में स्वेतरभेद स्वतः सिद्ध है। अतः स्वतः व्यावृत्तत्व विशेषमें सिद्ध हुआ।

ङे (ग) विशेषत्व को जाति मानने से विशेष में सिद्ध जो स्वतोव्यावर्त्तकत्व उसकी हानि हो जायगी, क्योंकि नियम है कि—"सामान्याश्रयस्य सामान्यरूपेणैव व्यावर्त्तकत्वम्"।

चै असम्बन्ध का उदाहरण।

\+ च (क) प्रतियोगित्व और जात्यतिरिक्त निष्ठ प्रतियोगितानिरूपितानुयोगित्वान्यतर सम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगितानिरूपक समवाया भाव यहां असम्बन्ध पदार्थ है। वह समवाय और अभावमें जातिमत्वका बाधक है।

(चै) (ख) जहां पर जाति से अतिरिक्त पदार्थ समवाय सम्बन्ध से रहता है वहां जात्यतिरिक्तनिष्ठ प्रतियोगिता निरूपितानुयोगिता सम्बन्धसे समवाय रहता है।

(चै) (ग) जो पदार्थ समवाय सम्बन्ध से रहता है वहां प्रतियोगिता सम्बन्ध से समवाय रहता है।

(चै) (घ) इन दोनोंसे जो भिन्न है उनमें प्रतियोगित्व और जात्यतिरिक्तनिष्ठ प्रतियोगिता निरूपितानुयोगित्वान्यतर सम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिता निरूपक समवायाभाव रहता है।

---

* (टि०) अवयवियों में परस्पर भेद अवयव भेद कृत होनेसे द्व्यणुक तक भेद सिद्ध करनेके लिये विशेष मानने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन निरवयव परमाणुओं में अवयव भेद कृत भेद असम्भव है। इस हेतु नित्य द्रव्य में (पृथ्वी, जल, तेज, वायु-इन चारों के परमाणुओं में तथा आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन इन सबों में भिन्न भिन्न विशेष मानना आवश्यक है।

\+ (टि०) (क) प्रतियोगिता सम्बन्धेन समवाय जन्यद्रव्य-गुण कर्म, सामान्य और विशेष इन पांचो पदार्थों में रहता है। जात्यतिरिक्त जो (जन्य-द्रव्य, गुण, कर्म, विशेष तन्निष्ठ प्रतियोगिता निरुपितानुयोगित्व सम्बन्धेन समवाय द्रव्य में रहता है। इसलिये प्रतियोगित्व और जात्यतिरिक्तनिष्ठप्रतियोगितानिरुपितानुयोगित्वान्यतर सम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगितानिरुपक समवायाभाव समवाय और अभाव इन दोनों पदार्थों में रहता है इसलिए इन दोनों पदार्थों में जाति नहीं मानी जाती है।

(६) द्रव्यादीति। (७) परत्वमधिकदेशवृत्तित्वम, अपरत्वमल्पदेशवृत्तित्वम्। (८) सकल जात्यपेक्षयाऽधिकदेशवृत्तित्वात् सत्तायाः परत्वं, तदपेक्षया चान्यासां जातीनामपरत्वम् ॥

(६. ७) अधिक देशमें वृत्ती जो जाति वह "परसामान्य" और अल्प देशमें वृत्ति जो जाति वह "अपर सामान्य" कही जाती है।

+ (८) जितनी जातियाँ हैं उनमेंसे प्रत्येक प्रत्येक जातिके प्रति सत्ता अधिक देश वृत्ति है, इसलिये वह प्रत्येक जातिके प्रति परसामान्य है और सत्ताको छोड़कर जितनी जातियाँ हैं उनमेंसे प्रत्येक प्रत्येक जाति सत्ताको अपेक्षा अल्पदेश वृत्ति है, इसलिये सत्ताके प्रति तत्तत् जाति अपर सामान्य है।

का० नं० ९, १०।

परभिन्ना च या जातिः सैवापरतयोच्यते।
द्रव्यत्वादिकजातिस्तु परापरतयोच्यते।
व्यापकत्वात्परापि स्याद्व्याप्यत्वादपरापि च।

का० अर्थ।

पर सामान्य से भिन्न जो जाति वही अपर (व्याप्य) जाति कहलाती है। और द्रव्यत्वादि जातियां पर और अपर दोनों सामान्य कहलाती हैं। द्रव्यत्वादि जाति घटत्वापेक्षया व्यापक होने के कारण पर सामान्य और सत्ता पेक्षया व्याप्य होने के कारण अपर सामान्य भी कही जाती हैं।

मुक्तावली।

[१] पृथिवीत्वाद्यपेक्षया व्यापकत्वादधिक देश वृत्तित्वात् द्रव्यत्वादेः परत्वं सत्तापेक्षया व्याप्यत्वादल्पदेश वृत्तित्वाच्च द्रव्यत्वस्यापरत्वं, तथा च धर्मद्वय समावेशादुभयमविरुद्धम् ॥

मु० अर्थ –

(१) पृथ्वीत्वादि जातियों में प्रत्येक के प्रति द्रव्यत्वादि जिस हेतु अधिक देशवृत्ति है याने व्यापक हैं। इसलिये द्रव्यत्वादि में परत्व हैं और सत्ताकी अपेक्षा द्रव्यत्वादि अल्पदेश वृत्ती हैं याने व्याप्य हैं इसलिये द्रव्यत्वादि में अपरत्व भी है। तब यही पर्य्यवसान हुआ कि द्रव्यत्वादि में विरुद्ध धर्मों का (परत्व और अपरत्वका) समावेश होने पर भी कोई दोष नहीं हुआ (विभिन्न दो पदार्थों से निरूपित होने के कारण)।

द्रव्यत्वादि = द्रव्यत्व, गुणत्व, और कर्मत्व प्रत्येक "पर" "अपर" दोनों सामान्य कहे जाते हैं। द्रव्यत्व = पृथिवीत्वादि जातिके अन्तर्गत प्रत्येकके प्रति "पर" और सत्ताके प्रति

+ (टि०) इस का कारण यह है कि द्रव्य, गुण और कर्म तीनों में सत्ता रहती है। अन्य अन्य जाति वैसी नहीं है। अतएव प्राचीन ग्रन्थों में महासामान्य शब्द से सत्ताका व्यवहार किया है।

"अपर" है। गुणत्व=रूपत्वादि चौवीस के अन्तर्गत प्रत्येक के प्रति "पर" और सत्ताके प्रति "अपर" है। कर्मत्व=उत्क्षेपणत्वादि पाँच के अन्तर्गत प्रत्येक के प्रति "पर" और सत्ताके प्रति "अपर" है।

इति सामान्यम्।

विशेषं निरूपयति=विशेष का निरूपण करते हैं।

का० नं० १०—

अन्त्यो नित्यद्रव्य वृत्तिर्विशेषः परिकीर्तितः ॥१०॥

का० अर्थ—

अन्त्य विशेष है और वह नित्य द्रव्यों में रहता है।

मुक्तावली।

(१) अन्ते अवसाने वर्तते इत्यन्त्यः, यदेपक्षया विशेषो नास्तीत्यर्थः। (२) घटादीनां द्व्यणुकपर्यन्तानां तत्तदवयवभेदात्परस्परं भेदः परमाणूनां परस्पर भेदको विशेष एव। (३) स तु स्वत एव व्यावृत्तः, तेन तत्र विशेषान्तरापेक्षा नास्तीति भावः।

मु० अर्थ—

(१) अन्तमें अर्थात् व्यावर्तक अवसान में जो रहे वही "अन्त्य" कहा जाता है। जिसकी अपेक्षा कोई भी दूसरा विशेष (भेदक) नहीं हो यही तात्पर्य्य है। (२) * घटादिसे लेकर द्व्यणुक पर्यन्त तत्तत् अवयवोंके भेदसे तत्तत् अवयवियोंका भेद समझा जाता है; किन्तु तत्तत् परमाणुओंका परस्पर भेदक उक्त विशेषही है। (३) + वह विशेष स्वयंही अपना भेदक है इसलिये तत्तत् परमाणुओं में रहनेवाले तत्तत् विशेषोंमें परस्पर भेद सिद्ध करने के लिये किसी अन्य विशेष पदार्थ की आवश्यकता नहीं है। (दूसरे विशेषका भेदक कोई दूसरा विशेषान्तर स्वीकृत तत्तत् विशेष की अपेक्षा प्रयोजन नहीं है)।

इति विशेष निरूपणम्।

---

* (टि०) यथा—यह अवयवी (घट) उस अवयवी (घट) से भिन्न है। इसका कारण यही है कि इस अवयवी (घट) के अवयव (कपाल) उस अवयवी के अवयव (कपाल) से भिन्न है। इसका कारण यही है कि इस अवयवरूप अवयवीका अवयव (कपालादि) उस अवयवरूप अवयवीके अवयव (कपालादि) से भिन्न है, इसी प्रकार क्रमशः ऊपर जाते जाते द्व्यणुक तक भेद स्थिर हो जानेके बाद शङ्का होती है कि अब परमाणु-परमाणुका भेदक कौन होगा? इसलिये विशेष माना गया है जो परमाणुओंपर रहता है और स्वयं अपना भेदक (व्यावर्तक) अपनेही है।

+ (टि०) स्वतो व्यावृत्त शब्द का परिष्कृतार्थ है वस्तुविशिष्टानुमित्यविषय। वैशिष्ट्यनियामक सम्बन्ध ये हैं—स्वविशेष्यकत्व, स्वेतरलिंगजन्यत्व, और स्वेतरभेद प्रकारकत्व।

समवायं दर्शयति=समवाय का निरूपण करते हैं।

का० नं० ११।

घटादीनां कपालादौ द्रव्येषु गुणकर्मणोः।
तेषु जातेश्च सम्बन्धः समवायः प्रकीर्तितः॥

का० अर्थ—

घटादि (अवयवी) कपालादि (अवयवों) में; गुण और कर्म द्रव्य में; जाति-द्रव्य तथा गुण कर्म में, और विशेष नित्य-द्रव्य में; जिस सम्बन्ध से रहते हैं वह "समवाय" सम्बन्ध कहा जाता है।

मुक्तावली।

(१) अवयवावयविनोर्जातिव्यक्त्योर्गुणगुणिनोः, क्रियाक्रियावतोर्नित्यद्रव्यविशेषयोश्च यः सम्बन्धः स समवायः (२) समवायत्वंनित्यसम्बन्धत्वम्॥

मु० अर्थ।

(१) अवयवी+अवयव में; जाति+व्यक्ति में; गुण और क्रिया+द्रव्य में; एवम् विशेष नित्य द्रव्य में जिस सम्बन्ध से रहते हैं वह "समवाय" सम्बन्ध है। (२) (समवायका लक्षण) समवायत्व नित्यसम्बन्धत्व है।

(३) तत्र प्रमाणंतु गुणक्रियादिविशिष्टबुद्धिर्विशेषणविशेष्यसम्बन्धविषया, विशिष्टबुद्धित्वात्, "दण्डीपुरुष" इति विशिष्ट बुद्धिवत् इत्यनुमानम्। (४) एतेन संयोगादिबाधात्समवायसिद्धिः।

* (३) समवाय में प्रमाण—

"लाठी वाला पुरुष" यह एक विशिष्ट बुद्धि है। यह विशेषण और विशेष्य के सम्बन्ध को विषय करती है। उसी प्रकार गुण क्रियादि से युक्त की बुद्धि विशिष्ट बुद्धि होने के कारण, विशेषण, विशेष्य सम्बन्ध विषयक ही होती है। (यह अनुमान का स्वरूप है)। + (४) यह अनुमान संयोगादि (सम्बन्ध) को सिद्ध करने में बाधित होने के कारण समवाय को ही सिद्ध करता है।

(५) नच स्वरूपसम्बन्धेन सिद्धसाधनम्, अर्थान्तरं वा, अनन्त स्वरूपाणां सम्बन्धत्वकल्पने गौरवाल्लाघवादेकसमवायसिद्धिः। (६) नच समवायस्यैकत्वे वायौ रूपवत्ताबुद्धिप्रसङ्गः, तत्र रूपसमवायसत्त्वेऽपि रूपाभावात्।

* (टि०) समवायमें प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है, अनुमान प्रमाण है।

+ (टि०) (क) संयोगादि—संयोग सम्बन्ध और स्वरूप सम्बन्ध।

(ख) दो द्रव्योंमें संयोग होता है; इसलिये दण्ड और पुरुष दोनोंमें संयोग सम्बन्ध उचित है क्योंकि दोनों द्रव्य हैं। किन्तु "गुणवद्द्रव्यम्" इस प्रतीतिमें एक गुण है और एक द्रव्य है। इसलिये संयोग सम्बन्ध नहीं हो सकता।

* (५) अगर आप यह कहें कि गुण और द्रव्य में समवाय सम्बन्ध नहीं मान कर स्वरूप सम्बन्ध ही मानना उचित है। इस हालत में सिद्ध साधन या अर्थान्तर हो जायगा। (नैयायिक का समाधान)—ये सिद्ध साधन और अर्थान्तर दोष देना युक्त नहीं है। क्योंकि "गुणवद्द्रव्यं" इत्यादि स्थल में स्वरूप सम्बन्ध के मानने से गुण, द्रव्य आदि अनन्त होने के कारण अनन्त द्रव्यादियों में सम्बन्धत्व की कल्पना करनी होगी, जिससे गौरवदोष होगा। इसी दोष से बचने के लिये एक समवाय सम्बन्ध मानना आवश्यक है। × (६) (शङ्का) अगर समवाय सम्बन्ध एकही मानें तो वायु में रूप प्रत्यय को प्रमात्व हो जाय? (उत्तर) वायु में रूपका समवाय रहने पर भी रूप का अभाव होने के कारण रूपवत्ता बुद्धि में प्रामाण्यापत्ति नहीं होती है।

(७) न चैवमभावस्य वैशिष्ट्यम् संबन्धान्तरं सिध्येदिति वाच्यम् (८) तस्य नित्यत्वे भूतले घटानयनानन्तरमपि घटाभावबुद्धिप्रसङ्गात्। घटाभावस्य तत्र सत्वात् तस्य नित्यत्वात्।

(७) (वैशिष्ट्य सम्बन्धवादी का प्रश्न):—

अच्छा! फिर आप जब गौरव के भयसे पदार्थान्तरही मानने लगे तो अनन्तस्वरूप सवन्धके बदले लाघवात् वैशिष्ट्यको अभावका सम्बन्ध मानिये। तब एकही वैशिष्ट्य सम्वध से अनन्त अभावोंका प्रत्यय हो जायगा। (८) + (स्वरूप सम्बन्धवादीका उत्तर) अगर वैशिष्ट्य सम्बन्ध नित्य हो तब जहां (जिस भूतलमें) घट नहीं है वहां घट लानेके बाद भी घटाभाव को नित्य होनेके कारण और उसका (घटाभावका) उक्त भूतलमें सम्बन्धरहनेके भी कारण घटाभाव की प्रतीति प्रमा हो जायगी जो नहीं होती है, इसलिये वैशिष्ट्य सम्बन्ध नित्य नहीं हो सकता।

---

* (टि०) सिद्धसाधन = प्रतिपक्षी लोग तो यहां स्वरूपसम्बन्ध उसको मानतेही हैं। अगर नैयायिक भी उसका स्वीकार करलें तो प्रतिपक्षिमतसे सिद्ध "स्वरूप सम्बन्ध" को पुनः सिद्ध करना यह एक "सिद्ध साधन" दोषहै। अर्थान्तर = जिस विषयको सिद्ध करने चले उससे भिन्नही पदार्थका सिद्ध हो जाना "अर्थान्तर" दोषहै।

× (टि०) जिसका सम्बन्ध जहां रहता है वह पदार्थ भी वहां रहताहै; सम्बन्धि सत्ताका नियामक सम्बन्धका सत्ता है। इस युक्तिसे वायुमें रूपमानना पड़ेगा; क्योंकि रूपसमवाय, स्पर्शसमवाय एक है, तब "वायूरूपवान्" इस प्रतीतिमें प्रमात्व होना चाहिये-यह पूर्वपक्षहै। तत्प्रतियोगिकत्व विशिष्टसम्बन्ध की अधिकरणता तदधिकरणताका नियामक मानकर नैयायिक समाधान देते हैं जो विशिष्टकी अधिकरणता विलक्षण होनेके कारण रूपप्रतियोगिकत्व विशिष्ट समवायकी अधिकरणता वायुमें न रहनेसे रूपाधिकरणता नहीं रहसकती। अतएव उक्त प्रतीति को प्रमात्व नहीं हुआ। "तद्वति तत्प्रकारकानुभवत्व" प्रमात्व का लक्षण है।

+ (टि०) स्वरूपसम्बन्धवादी वैशिष्ट्यसम्बन्धवादीको कहते हैं कि अगर आप वैशिष्ट्यसम्बन्ध मानते हैं तो नित्य मानते हैं या अनित्य? अगर नित्य मानते हैं तो यह दोष है (जो कि उपपादित हो चुका है)।

(९) अन्यथा देशान्तरेऽपि तत्प्रतीतिर्न स्यात् वैशिष्ट्यस्य च तत्र सत्वात्। (१०) मम तु घटे पाकरक्ततादशायां श्यामरूपस्य नष्टत्वान्न तद्वत्ताबुद्धिः। (११) वैशिष्ट्यस्या नित्यत्वे त्वनन्त वैशिष्ट्य कल्पने तवैव गौरवम्। (१२) इत्थं च तत्तत्कालीन तत्तद्भूतलादिकं तत्तदभावानां संबन्धः॥

(९) यदि घटा भावही अनित्य माना जाय तब घट शून्य देश में भी घटाभावका प्रत्यक्ष नहीं होगा। इसका कारण यह है कि घट सामान्या भाव एकही लाघवात् माना जाता है सो तो नष्ट हो गया। (१०) (स्वरूपसम्बन्धवादी जो एकही नित्य समवायसम्बन्ध मानते हैं उस समवायसम्बन्ध पर दोषदेकर निवारण करते हैं) उत्तर—नित्य एक समवायसम्बन्धवादीके मतमें तो श्यामरूपवाला कच्चा घटके पक जाने के बाद श्यामरूपका समवायसम्बन्ध मात्र रहने पर भी श्यामरूपका नाश हो जाने के कारण (घट पक कर लाल हो जाने के बाद) उस घटमें श्याम रूपका प्रत्यय नहीं होता है। +(११) (स्वरूप सम्बन्ध वादी गौरव देते हैं) अगर आप वैशिष्ट्य सम्बन्ध को अनित्य मानें तब अनन्त वैशिष्ट्य सम्बन्ध की कल्पना करनी होगी। जिसके कारण (उलटे) आपही को गौरव हो जायगा। * (१२) (स्वरूपसम्बन्धवादीका सिद्धान्त)। (इसलिये परामर्श यह हुआ कि) तत्तत् कालीन जो तत्तत् भूतल वेही तत्तत् अभावोंके सम्बन्ध हैं॥

॥ इति समवाय निरूपणम् ॥

अभावम् विभजते=अभावका विभाग करते हैं।

का० नं० १२. १३.

अभावस्तु द्विधा संसर्गान्योन्याभावभेदतः।
प्रागभावस्तथा ध्वंसोऽप्यत्यन्ताभाव एव च ॥१२॥
एवं त्रैविध्यमापन्नः संसर्गाभाव इष्यते।

का० अर्थ।

संसर्गाभाव तथा अन्योन्याभाव के प्रभेदसे अभाव दो प्रकारके होते है। जिनमें संसर्गाभावके तीन प्रभेद हैं। यथा—प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव और अत्यन्ताभाव।

+ (टि०) (प्रश्न) स्वरूपसम्बन्धवादीभी अनन्त स्वरूपसम्बन्ध मानते हैं और वैशिष्ट्यसम्बन्धवादी को भी अनन्त वैशिष्ट्यसम्बन्ध मानना पड़ा। इस हालत में भी स्वरूपसम्बन्धवादी वैशिष्ट्यसम्बन्धवादी को गौरव दोष क्यों देते हैं? (उत्तर) जिस समयमें जिस देशमें जिस अभावकी प्रतीति होती है तत्समयविशिष्ट तद्देश उस अभावका स्वरूपसम्बन्ध कहा जाता है, नके इन तत्तत् भूतलादियों से भिन्न, कोई दूसरा अभावका स्वरूपसम्बन्ध होता है। इस लिये स्वरूपसम्बन्ध माननेवालेको एकही वस्तु माननी पड़ी; केवल नाम मात्र से दो मालूम पड़ते हैं। किन्तु अनन्त वैशिष्ट्यसम्बन्धवादी सप्तपदार्थसे भिन्न अनन्त वैशिष्ट्यसम्बन्ध तो मानते ही हैं, साथ साथ तत्तज्ज्ञान कालीन जो तत्तद्भूतलादि (जो स्वरूप सम्बन्धरूप है) उनकोभी मानते हैं। इसलिये वैशिष्ट्यसम्बन्धवादीका उक्त दो प्रकारकी वस्तु मानने के कारण सुतरां गौरव सिद्ध हुआ।

* (टि०) तत्तत् कालीन= "घटा भाववद् भूतलम" इत्याकारक यथार्थ प्रतीति कालीन।

मुक्तावली।

(१) अभावत्वंद्रव्यादिषट्कान्योऽन्याभाववत्वम्। (२) संसर्गाभावान्योन्याभावभेदादित्यर्थः। (३) अन्योन्याभावस्यैकविधत्वात्तद्विभागाभावात्संसर्गाभावं विभजते॥

मु० अर्थ।

* (१) द्रव्यादि ६ के जो ६ स्वतन्त्रअन्योन्याभाव तद् वत्वही "अभाव" का लक्षण है। (२) संसर्गाभाव और अन्योन्याभावके भेद से अभाव दो प्रकारका होता है– +(३) अन्योन्याभाव के एक होने के कारण उसका विभाग नहीं हो सकता। इसलिये संसर्गाभावही का विभाग करते हैं॥

(४) प्राग भाव इति॥

(४) 'प्रागभाव' इत्यादि ग्रन्थ पर विचार॥

(५) संसर्गाभावत्वम्, अन्योन्याभावभिन्नाभावत्वम्। (६) अन्योन्याभावत्वम् तादात्म्यसंबन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताका भावत्वम्। (७) विनाश्यभावत्वं प्रागभावत्वम्। (८) जन्याभावत्वं ध्वंसत्वं। (९) नित्य संसर्गाभावत्वम् अत्यन्ता भावत्वम्।

(५) अन्योन्याभावसे भिन्न जो अभाव वही संसर्गाभाव है। ×(६) तदात्म्य (ऐक्य) सम्बन्धावच्छिन्न जो प्रतियोगिता उसका निरूपक जो अभाव वही अन्योन्याभाव है ÷ (७) विनष्ट होनेवाला जो अभाव उसे प्रागभाव कहते हैं। *(८) जो अभाव उत्पन्न होता है (जन्य) वह "ध्वंस" कहाता है। (९) नित्य जो संसर्गाभाव वही अत्यन्ताभाव है।

---

* (टि) इन ६ के ६ अन्योन्या भाव इन छौ में नहीं रहेंगे किन्तु सातवां पदार्थ जो है अभाव है उसी में रहेंगे। अतएव लक्षण में अतिव्याप्त्यादि दोष नहीं लगा।

+ (टि) जिज्ञासा होती है कि जब अन्योन्याभाव और संसर्गाभाव दोनोंका उल्लेख है तब अन्योन्याभावका विभाग नहीं किया और संसर्गाभावका किया। इस वैषम्यकी निवृत्ति के लिये कहा है।

× (टि०) यथा देवदत्त तादात्म्य सम्बन्ध से अपने ही में (देवदत्त में) हैं जैसे कि घट अपने (घट) में तादात्म्य सम्बन्ध से ह किन्तु पटादि में नहीं ह। अतएव इसमें उसका अन्योन्याभाव रहता है। तादात्म्य सम्बन्धावच्छिन्न जो प्रतियोगिता वह घटनिष्ठ प्रतियोगिता उसका निरूपक जो अभाव वह घटका अन्योन्याभाव, वह अन्योन्याभाव पटादिमें रहता ह। यहां पर प्रतियोगिता सम्बन्धकी प्रतियोगिता नहीं समझनी चाहिये किन्तु अभाव की।

÷ (टि०) प्रागभाव का नाश मात्र होता है किन्तु उत्पत्ति नहीं होती है वह अनादि और सान्त है। प्रागभावका प्रत्यक्ष कपालद्वय संयोगक्षण में होता है।

* (टि०) (क) ध्वंस की उत्पत्ति होती ह किन्तु नाश नहीं होता।

(ख) ध्वंस का ध्वंस नहीं होता है क्योंकि ध्वंसका यदि ध्वंस हो तो प्रथम ध्वंसके प्रतियोगीका पुनः उद्भव हो जायगा।

(१०) यत्तुभूतलादौ घटादिकमपसारितं पुनरानीतं च तत्र घटकालस्य संबन्धाघटकतया अत्यन्ताभावस्य नित्यत्वेऽपि घटकाले न घटात्यन्ताभावबुद्धिः। (११) तत्र उत्पाद विनाश शाली चतुर्थोऽयमभाव इति केचित्॥

* (१०) जिस भूतलमें (जहां पहले घटादि थे) घटादि हटा दियेगये और पुनः कालान्तरमें वही लाये गये वहां पर (अत्यन्ताभाव के नित्य होने के कारण घटादिके रहनेसे भी घटादिके अत्यन्ताभाव का अन्वय क्यों नहीं होता है ? (उत्तर यह है कि) अत्यन्ताभाव के नित्य रहने परभी घटादि वर्तमान रहनेके समय घटाद्य भाव का तत्कालरूप विशेषण युक्त भूतल रूप स्वरूप सम्बन्ध नहीं रहनेके कारण घटादि भाव काल में घटाद्य भावों की प्रतीति नहीं होती है। (११) संसर्गाभावके अन्तर्गत तीनों अभावोंको मान ही कर उत्पादविनाश-शाली एक चौथा अभावभी कोई आचार्य मानते हैं।

(१२) अत्र ध्वंसप्रागभावयोरधिकरणे नात्यन्ताभाव इति प्राचीन मतं, श्याम घटे रक्तो नास्तीति रक्त घटे श्यामो नास्तीतिधीश्च प्रागभावं ध्वंसं चावगाहते न तु तदत्यन्ताभावम्। (१३) नव्यास्तु तत्र विरोधे माना भावात् ध्वंसादिकालावच्छेदेनाप्यत्यन्ताभावो वर्तते इति प्राहुः। (१४) नन्वस्तु अभावानामधिकरणात्मकत्वं लाघवादिति चेन्न, अनन्ताधिकरणात्मकत्व-कल्पनापेक्षयातिरिक्तकल्पनायाएव लघीयस्त्वात्।

+ (१२) अभावप्रकरणमें प्राचीन आचार्य्योंका मत है कि ध्वंस और प्रागभाव के अधिकरणमें अत्यन्ताभाव नहीं रहता है। श्यामघटमें (कच्चे घट में) रक्तरूप नहीं है और रक्तघट (पके घड़े) में श्यामरूप नहीं है, इसका अभिप्राय यह नहीं है कि श्यामघटमें रक्त-रूपका और रक्तघटमें श्याम रूपका अत्यन्ता भाव है। किन्तु श्याम घटमें रक्तरूपका प्राग-भाव है, इसकारण "श्यामघटे रक्तो नास्ति" यहज्ञान रक्त के प्रागभावको विषय करता है एवम् रक्तघटमें श्यामरूपका ध्वंस है। अतः "रक्तघटे श्यामो नास्ति" यह ज्ञान श्यामरूपके ध्वंसको विषय करता है। × (१३) नवीन आचार्य्योंका मत है कि ध्वंस और प्रागभाव के अधिकरणमेंभी अत्यन्ताभाव रहता है। विरोधमें कुछ प्रमाण नहीं रहनेके कारण ऐसा कहाहै कि जिस समय जिस अधिकरणमें प्रागभाव रहताहै उस समय उसी अधिकरणमें अत्यन्ताभाव भी रहता है। एवम् स जिसमय जिसअधिकरणमें ध्वंसरहता है उससमय उसी अधिकरणमें अत्यन्ताभावभी रहता है, ÷ (१४) (शङ्का) करते हैं कि लाघवके हेतु तत्तत् अभावोंको तत्तत् अधिकरण रूपही मानो (किन्तु ऐसा नहीं) तत्तत् अभावोंको तत्तत् अधिकरणस्वरूप माननेकी अपेक्षा एक स्वतन्त्र अभाव पदार्थ ही माननेमें लाघव है। क्योंकि अभावको अधिकरण स्वरूप मानने से अनन्त अधिकरणों में अभावत्व की कल्पना करनी होगी।

* (टि०) इसलिये विशेषण के रहने पर भी विशेषण+विशेष्य का सम्बन्ध नहीं रहने के कारण विशेषणकी प्रतीति नहीं होती है।

+ (टि०) अवगाहते—विषयी करोति [विषय करता] है।

× [टि०] यथा—श्याम घटमें रक्त रूपके प्रागभावको रहनेपर भी उसी घटमें रक्त रूपका अत्यन्ताभावभी रहताहै। एवं रक्त घटमें श्याम रूपका ध्वंसाभाव रहने परभी उसी अधिकरणमें श्याम रूपकाअत्यन्ताभाव भी रहताहै।

÷ [टि०] मीमांसक प्रभाकर का मत। नैयायिक का उत्तर।

(१५) एवं च आधाराधेयभावोऽप्युपपद्यते। (१६) एवं च तत्तच्छब्दगन्धरसाद्यभावानां प्रत्यक्षत्वमुपपद्यते। (१७) अन्यथा तत्तदधिकरणानां तत्तदिन्द्रियाणामग्राह्यत्वादप्रत्यक्षत्वं स्यात्। (१८) एतेन ज्ञानविशेषकालविशेषाद्यात्मकत्वमत्यन्ताभावस्येति प्रत्युक्तमप्रत्यक्षत्वापत्तः॥

(१५) अभावोंको तत्तत् अधिकरणस्वरूप नहीं मानकर एक स्वतन्त्रपदार्थ माननेसे आधाराधेयभाव कीभी उपपत्ति होती है। अन्यथा आधाराधेयभाव नहीं होगा एकपदार्थमें आधाराधेयभाव नहीं होता है। (१६) अभावको स्वतन्त्रपदार्थ माननेसे तत्तत् शब्द गन्ध और रसादिके अभावोंका प्रत्यक्षभी उपपन्न होता है। * (१७) अभावको स्वतन्त्रपदार्थ नहीं माननेसे (अधिकरणस्वरूपमानने पर) तत्तत् शब्दाभाव का अधिकरण पृथ्वी, तत्तत् गन्धाभावका जल एवं तत्तत् रसाद्यभावका तेज भी है। इन अधिकरणोंका श्रोत्रादि इन्द्रियसे ग्रहण नहीं होने के कारण तत्तत् शब्द, गन्ध, और रसादि के अभावोंका प्रत्यक्ष नहीं होगा। (१८) जो कोई अत्यन्ताभाव को ज्ञानविशेषस्वरूप अथवा कालविशेष (प्रतियोग्यनधिकरण काल) स्वरूप मानते हैं उन सबों के मतभी उक्त युक्तिसेही खण्डित होगये। क्योंकि। (१) ज्ञानविशेषवादी या (२) कालविशेषवादी अत्यन्ताभावको प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं कर सकते हैं॥ इति—अभाव निरूपणम्।

इदानीं पदार्थानां साधर्म्यं वैधर्म्यं च वक्तुं प्रक्रमते—

(अर्थ) अब पदार्थों के साधर्म्य और वैधर्म्य का प्रतिपादन प्रारम्भ करते हैं।

का० नं० १३

सप्तानामपि साधर्म्यं ज्ञेयत्वादिकमुच्यते ॥१३॥

का० अर्थ।

+ द्रव्यादि सातो पदार्थों का साधर्म्य ज्ञेयत्व, वाच्यत्व और प्रमेयत्व है।

मुक्तावली।

(१) समानो धर्मोयेषां ते सधर्माणःतेषां भावः साधर्म्यं समानो धर्म इति फलितार्थः (२) एवंविरुद्धो धर्मोयेषां ते विधर्माणः तेषां भावो वैधर्म्यं विरुद्धो धर्म इति फलितार्थः। (३) ज्ञेयत्वं ज्ञान विषयता सा च सर्वत्रैवास्ति ईश्वरादिज्ञानविषयतायाः केवलान्वयित्वात्। (४) एवमभिधेयत्वप्रमेयत्वादिकं बोध्यम्।

* (टि०) सर्वसम्मत नियम है कि जो व्यक्ति जिस इन्द्रियसे गृहीत होता है वह उस व्यक्ति में रहनेवाली जाति और उसका अभाव ये सब उसी इन्द्रियसे ग्राह्य होते हैं। अब देखिये कि शब्द, गन्ध, रसादि, श्रोत्रेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय और रसना प्रभृति इन्द्रियोंसे क्रमशः ग्राह्य है। इसलिये उक्त शब्द, गन्ध, रसादिके अभाव अगर पृथ्वी, जल, और तेज स्वरूपही क्रमशः मान लिये जांय तो शब्द, गन्ध, रसादिके अभावका प्रत्यक्ष नहीं होगा। क्योंकि पृथ्वी, जल, और तेज श्रोत्रेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय और रसनेन्द्रियसे क्रमशः ग्राह्य नहीं है। अतः अभावको अधिकरण स्वरूप न मानकर स्वतन्त्र मानना चाहिये।

+ (टि०) ज्ञेयत्वादि = ज्ञेयत्व, वाच्यत्व, प्रमेयत्व, = ज्ञानविषयता, पदशक्यत्व, और यथार्थ ज्ञानविषयत्व।

गु० अर्थ।

(१) भिन्नपदार्थोंका धर्म एक ही है वेपदार्थ सधर्मा कहे जातेहैं और सधर्मा पदार्थो के साथ साधर्म्य याने (समानधर्म) अर्थात् एक धर्म कहाता है। यही फलितार्थ हुआ। (२) इसीप्रकार भिन्नपदार्थोंके धर्म (आपसे में) विरुद्ध है (व्यभिचरत है) वे पदार्थ विरुद्ध धर्मी कहाते हैं। और विरुद्ध धर्मीपदार्थोंके साथ वैधर्म्य अर्थात् विरुद्ध धर्म कहलाता है यही फलितार्थ हुआ। ० (३) ईश्वरादि का जो ज्ञान उसकी विषयता को केवलान्वयी होने के कारण ज्ञेयत्व धर्म सातों पदार्थों में रहता है। (४) इसी प्रकार अभिधेयत्व और प्रमेयत्व केवलान्वयि होने के कारण सातों पदार्थों में है ऐसा समझना चाहिये।

का० नं० १४।

द्रव्यादयः पञ्चभावा अनेके समवायिनः।

सत्तावन्तस्त्रयस्त्वाद्या गुणादिर्निर्गुणक्रियः ॥१४॥

का० अर्थ—

द्रव्यादि पांचभाव पदार्थोंके साधर्म्य हो हैं। यथा—(१) अनेकत्वेसति भावत्व, समवायित्व (२) द्रव्य, गुण और कर्मोंका साधर्म्य सत्तावत्व है और गुणादि छौ पदार्थों का निर्गुणत्व एवम् निःक्रियत्व साधर्म्य है।

मुक्तावली।

(१) द्रव्यगुण कर्म समान्य विशेषाणां साधर्म्यमनेकत्वं समवायित्वं च। (२) यद्यप्यनेकत्वमभावेऽप्यस्ति तथाप्यनेकत्वे सति भावत्वं पञ्चानां साधर्म्यम् (३) तथा चानेकभाववृत्तिपदार्थविभाजकोपाधिमत्वमिति फलितोऽर्थः। (४) तेन प्रत्येकं घटादावाकाशादौ च नाव्याप्ति ॥

मु० अर्थ।

(१) द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य और विशेष इन पांचो के अनेकत्व और समवायित्व साधर्म्य है। (२) अगर उक्त पांचो भावोंका साधर्म्य अनेकत्व मात्र कहें तो अभाव में अतिव्याप्ति हो जायगा। (क्योंकि अभाव भी अनेक है)। इसलिये अनेकत्वे सति भावत्व साधर्म्य है। (३) अनेकत्वेसति भावत्व का फलितार्थ है कि अनेक भाव में वृत्ति जो पदार्थ विभाजक उपाधि (धर्म) तद्वत्वत्व। + (४) ऐसा कहने से अब प्रत्येक घटादि (एक, एक घट, पटादिमें) और आकाशादि (आकाश, काल, दिशा) में भी अव्याप्ति नहीं होगी।

* (टि०) केवलान्वयी = एक जातीय सम्बन्धसे सब जगह रहनेवाला। हमलोगोंकी सतपदार्थान्तर्गत सब पदार्थका ज्ञान नहीं है। तब फिर ज्ञेयत्व सब पदार्थ में कैसे रहा। इसलिये यहाँ है कि ईश्वर एवं योगियोंको भी सब पदार्थका ज्ञानहै, इसलिये ज्ञेयत्व सब पदार्थों में रह सकताहै।

+ (टि०) एक, एक घट, पटादि में, और आकाश काल दिशा में जिस हेतु एकत्व है उस हेतु अनेकत्वका समावेश करनेसे अव्याप्ति स्पष्ट है; इसलिये व्यापकर "अनेकत्वे सति" का अभिप्राय अनेक भावमें वृत्ती पदार्थ विभाजक उपाधि माना है। यथा—अनेक भावमें वृत्ती जो पदार्थ विभाजक उपाधि द्रव्यत्वादि हुए। वह प्रत्येक घटादिमें और आकाशादिमें रह गया। स्ववृत्तित्व और स्वेतर भाववृत्तित्व उभय सम्बन्धसे भावविशिष्टत्व अनेक भाववृत्तित्वका अर्थ समझना चाहिये।

(५) समवायित्वं च समवायसबन्धेन सम्बन्धित्वं नतु समवायवत्वं सामान्यादाव भावात्।(६) तथा च समवेतवृत्तिपदार्थविभाजकोपाधिमत्वमिति फलितोऽर्थः। (७) तेन नित्यद्रव्येषु नाव्याप्तिः॥

(५) समवायित्व से अनुयोगित्व प्रतियोगित्वान्यतर सम्बन्ध से समवाय विशिष्टत्व अर्थ समझना। न कि समवायवत्व समझना। (अभिप्राय यह है कि समवाय सम्बन्ध अपने अनुयोगी अर्थात् द्रव्य, गुण और कर्म्म में एवं अपने प्रतियोगी सामान्य तथा विशेषमें भी उक्त अनुयोगित्व प्रतियोगित्वान्यतर सम्बन्धसे है)। इसलिये द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य और विशेष पाँचो गृहीत हुए। अगर समवायवत्व करें तो अनुयोगी मात्र द्रव्य, गुण और कर्म ये तीनही लिये जायँगे। सामान्य और विशेष का ग्रहण नहीं होगा जिसका ग्रहण होना आवश्यक है। (६) जैसा कि—समवेतमें (अवयवीद्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य और विशेषमें) वृत्ति जो पदार्थ विभाजक उपाधि (द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्व, समान्यत्व और विशेषत्व) तदधिकरणत्व फलित अर्थ हुआ। (७) इस लक्षणकी नित्य द्रव्यमें (पृथ्वी, जल, तेज, वायुके परमाणु और आकाश काल दिशा आत्मा तथा मनमें) अव्याप्ति नहीं होगी।

(८) सत्तावन्त इति। (९) द्रव्यगुणकर्मणां सत्तावत्वमित्यर्थः॥

(९) द्रव्य, गुण, कर्म इन तीनोंका साधर्म्य सत्तावत्व है।

(१०) गुणादिरिति। (११) यद्यपि गुणक्रिया शून्यत्व माद्यक्षणे घटादावतिव्याप्तं क्रियाशून्यत्वंच गगनादावतिव्याप्तं तथापि गुणवदवृत्ति धर्मवत्वं कर्मवदवृत्ति पदार्थ विभाजकोपाधिमत्वं तदर्थः। (१२) नहि घटत्वादिकं द्रव्यत्वं वा गुणवदवृत्ति कर्मवदवृत्ति वा किन्तु गुणत्वादिकं तथा। (१३) आकाशत्वादिकंतु न पदार्थ विभाजकोपाधिः॥

* (११) गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभावका अगर गुण शून्यत्व और क्रिया शून्यत्व साधर्म्य कहें तो घटादिमें अतिव्याप्ति हो जायगी। एवम् आकाशादिमें भी अतिव्याप्ति हो जायगी। क्योंकि घटादि (द्रव्य) के उत्पत्ति क्षणमें गुण एवं कर्म नहीं रहते हैं और पुनः आकाशमें भी—क्रिया नहीं है। अतः वहां भी अतिव्याप्ति हुई। इसलिये गुणवत (द्रव्य) में अवृत्ति जो धर्म तदाश्रयत्व कर्माश्रय (मूर्त्त=पृथ्वी, जल, तेज, वायु, मन) में अवृत्ती जो पदार्थ विभाजक उपाधि तदाश्रयत्व यही निर्गुणत्व और निःक्रियत्व का क्रमिक अर्थ है। (१२) गुणत्वादि ई गुणवत् (द्रव्य) में और कर्मवत् में अवृत्ति है; नकि घटत्वादि और द्रव्यत्वादि अवृत्ती होगा। घटत्वादि और द्रव्यत्व गुणवत् और कर्मवत् में वृत्ति ही है। (१३) (पदार्थविभाजक निवेशका फल) आकाशत्वादि आकाशत्व, कालत्व, दिशात्व, आत्मत्व वे चार कर्मासमानाधिकरण होने पर भी पदार्थविभाजक उपाधि नहीं है। (किन्तु द्रव्यविभाजक उपाधि है) इसलिये आकाशादि चारोंमे भी अतिव्याप्ति नहीं हुई।

* (टि०) गुणवत् द्रव्यमें अवृती जो गुणत्व, कर्मत्व, सामान्यत्व, विशेपत्व, समवायत्व, प्रभावत्व धर्म्म सो गुण, कर्म्म, सामान्य, और विशेष इन्ही छौ पदार्थों में रहेंगे। और कर्मवत् में याने पृथ्वी, जल, तेज, वायु और मन में अवृती जो पदार्थ विभाजक उपाधि (गुणत्व, कर्म्मत्व, सामान्यत्व, विशेपत्व समवायत्व और अभावत्व) तदधि करणत्व [गुणादि छौ] में रहेंगे।

गुणवान् में
वालोऽ...

का० नं० १५।

सामान्य परिहीनास्तु सर्वे जात्यादयो मताः।
पारिमाण्डल्यभिन्नानां कारणत्वमुदाहृतम् ॥१५॥

का० अर्थ।

सामान्यादि चार पदार्थोंका साधर्म्य सामान्य शून्यत्व है। अणुपरिमाण, परम महत् परिमाण अतीन्द्रिय सामान्य और विशेषसे भिन्नका साधर्म्य कारणत्व है।

(१) सामान्यानधिकरणत्वं सामान्यादीना मित्यर्थः। (२) पारिमाण्डल्येति। (३) पारिमाण्डल्यमणुपरिमाणं कारणत्वं तद्भिन्नानामित्यर्थः। (४) अणुपरिमाणं तु न कस्यापि कारणम्। (५) तद्धि स्वाश्रयारब्ध द्रव्य परिमाणारम्भकं भवेत् तच्च न संभवति परिमाणस्य स्वसमानजातीयोत्कृष्टपरिमाणजनकत्वनियमान्महदारब्धस्य महत्तरत्वयदणुजन्यस्याणुतरत्वप्रसङ्गात्। (६) एवं परममहत्परिमाणमतीन्द्रियसामान्यं विशेषाश्च बोध्याः। (७) इदमपि योगिप्रत्यक्षे विषयस्य न कारणत्वम् ॥

(१) सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव-इन चारोंका साधर्म्य सामान्य शून्यत्व है। + (२) पारिमाण्डल्य अणुपरिमाणको कहते हैं। अणुपरिमाणसे भिन्नका साधर्म्य कारणत्व है। (४) अणुपरिमाण किसी का कारण नहीं है। (५) * अणुपरिमाणको कारणता माननेसे अणुपरिमाण (परमाणुपरिमाण, द्व्यणुक परिमाण) स्वाश्रयपरमाणु और द्व्यणुकसे आरब्ध, जो द्व्यणुक और त्रसरेणु इनके परिमाणका आरम्भक उक्त परमाणुका और द्व्यणुकका परिमाण होंगे—यह नहीं हो सकता है। नियम है कि (परिमाण) अपने सजातीय जो उत्कृष्ट परिमाण उसका ही जनक होता है। इस नियमके अनुसार जैसे महत् परिमाण महत्तर परिमाणका जनक होता है वैसे ही अणुपरिमाण अणुतर परिमाणका जनक होगा। तब परमाणु और द्व्यणुक में रहनेवाला जो परिमाण है वह द्व्यणुक और त्रसरेणुके परिमाणको अणुतर नहीं होने के कारण द्व्यणुक और त्रसरेणुके परिमाणका जनक नहीं होगा। (६) इसी प्रकार आकाशादियोंके परम महत् परिमाण अतीन्द्रिय जाति (मनस्त्व, गुरुत्वादि) और विशेष पदार्थ इन सबोंका भी किसीके प्रति कारणता नहीं है। (७) × परन्तु यह "पारिमाण्डल्य भिन्नानां" इत्यादि ग्रन्थ तभी लागू हो सकता है यदि योगियोंके प्रत्यक्षके प्रति विषयोंमें कारणता न मानी जाय (जैसा कि नवीन आचार्योंका मत है)।

+ (टि०) अणुपरिमाण परमाणु और द्व्यणुकमें रहता है।

* (टि०) जैसे कपालद्रव्य के महत् परिमाण से उत्कृष्ट परिमाण घट में उत्पन्न होता है। इसी सिलसिले से अगर परमाणु और द्व्यणुक में रहनेवाले परिमाण को कारण मानें तब द्व्यणुक तथा त्रसरेणु के परिमाण,-परमाणु और द्व्यणुकके परिमाणसे भी अणुतर हो जायेंगे। अणु से उत्कृष्ट अणुतर और महत् से उत्कृष्ट महत्तर होते हैं। और ऐसे होने से त्र्यणुकादिका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है। क्योंकि प्रत्यक्ष में महत्त्व कारण है इसलिये अणु परिमाण में कारणता का स्वीकार नहीं किया गया।

× (टि०) योगियों के प्रत्यक्ष में अगर विषय को कारण मान लें तो जिस लिये योगियों को अणु परिमाण, परम महत् परिमाण, अतीन्द्रिय सामान्य, विशेष, इन पदार्थोंका प्रत्यक्ष होता है, इसलिये अणुपरिमाण इत्यादि भी विषय विधया उस प्रत्यक्ष के प्रति कारण हो जायेंगे।

(८) ज्ञायमानसामान्यं न प्रत्यासत्तिः। (९) ज्ञायमानं लिङ्गं नानुमितिकरणमित्यभिप्रायेणोक्तम्। (१०) मानसप्रत्यक्षे आत्ममहत्त्वस्य कारणत्वान्महत्परिमाणं आकाशादेर्बोध्यम्। (११) तस्यापि न कारणत्वमित्याचार्याणामाशय इत्यन्ये। (१२) तन्न। (१३) ज्ञानातिरिक्तं प्रत्येवाकारणताया आचार्यैरुक्तत्वात्॥

+ (८) ज्ञायमान सामान्य (ज्ञान विषय जो धर्म) प्रत्यासत्ति (सन्निकर्ष) नहीं है। किन्तु सामान्यका ज्ञान प्रत्यासत्ति है। × (९) ज्ञायमान लिंग (व्याप्तिविशिष्ट पक्षधर्मता ज्ञान विषय जो हेतु) अनुमितिमें कारण नहीं है (किन्तु लिंग विषयक व्याप्ति विशिष्ट पक्षधर्मता ज्ञान कारण है)। इसी अभिप्रायसे पहले कहा है। (१०) "अहं सुखी, अहं दुःखी" इत्याकारक आत्माके मानस प्रत्यक्षके प्रति आत्माका परम महत् परिमाणरूप महत्त्व भी कारण होता है। इसलिये आकाश काल दिशा इन्हीं तीनके परम महत् परिमाणोंमें किसीके प्रति कारणता नहीं है। यह समझना चाहिये। (११) कई एक तार्किक ऐसा भी कहते हैं कि आत्माका भी परम महत् परिमाण किसीके प्रति कारण नहीं है। यह उदयनाचार्य्यका आशय है। (१२) किन्तु ऐसी बात नहीं है। (१३) उक्त आचार्य्यका यही आशय है कि ज्ञानसे भिन्नके प्रति आत्माका परम महत् परिमाण कारण नहीं है (नकि ज्ञानके प्रति भी कारण नहीं है।)

इति साधर्म्य वैधर्म्य निरूपणम्।



नन्‌ कारणत्वं किम्, अत आह—

(अर्थ) कारणत्व=कारणता कौन पदार्थ है? इस जिज्ञासा से कहते हैं।

का० १६, १७।

* अन्यथासिद्धिशून्यस्य नियता पूर्ववर्तिता।
कारणत्वं भवेत्तस्य त्रैविध्यं परिकीर्तितम्॥१६॥
समवायिकारणत्वं ज्ञेयमथाप्यसमवायिहेतुत्वम्।
एवं न्यायनयज्ञैस्तृतीयमुक्तं निमित्तहेतुत्वम्॥१७॥

का० अर्थ—

अन्यथा सिद्धिसे शून्यगत कार्यसे नियत पूर्ववर्तित्वको "कारणता" कहते हैं उसके तीन प्रभेद हैं। प्रथमका नाम समवायि कारणता है, द्वितीयका नाम असमवायि कारणता है और तृतीयका नाम निमित्त कारणता है।

तस्य कारणत्वस्य॥१६, १७॥ (अर्थ) कारिकामें तत् पदका अर्थ कारणत्व है।

+ (टि०) अगर ज्ञायमान सामान्य प्रत्यासत्ति मानें तो मनस्त्व भी अलौकिक प्रत्यक्ष विशेष में कारण हो जाने से ग्रन्थासङ्गति हो जायगी।

× (टि०) सारांश यह हुआ कि अगर:—(१) योगी के प्रत्यक्ष में विषय कारण नहीं हो। (२) ज्ञायमान सामान्य प्रत्यासत्ति नहीं हो। (३) और ज्ञायमान लिंग अनुमिति में करण नहीं हो तभी अणु परिमाणादि को कारणता का निषेध संगत होगा।

* (टि०) कार्याव्यवहित प्राक्क्षणावच्छेदेन कार्य्य व्यापकत्व नियत पूर्व वृत्तित्वका परिष्कृत अर्थ है।

का० नं० १८ ।

यत्समवेतं कार्यं भवति ज्ञेयंतु समवायिजनकं तत् ।
तत्रासन्नं जनकं द्वितीयमाभ्यां परं तृतीयं स्यात् ॥१८॥

जिसमें समवाय सम्बन्धसे कार्य उत्पन्न होता है उसे समवायि कारण जानना चाहिये और उक्त समवायि कारणमें समवाय या स्वसमवायि समवेतत्व अन्यतर सम्बन्धसे वृत्ती होकर जो कार्यका जनक हो वह "असमवायि" कारण है। और इन दोनोंसे भिन्न जो कारण वह निमित्त कारण है।

(१) तत्रेति । (२) समवायिकारणे आसन्नं प्रत्यासन्नं कारणं द्वितीयमसमवायिकारणमित्यर्थः । (३) अत्र यद्यपि तुरीतन्तुसंयोगानां पटासमवायि कारणत्वंस्यात् । (४) एवं वेगादीनामभिघाताद्यसमवायिकारणत्वंस्यात् । (५) एवं ज्ञानादिकमपीच्छाद्यसमवायिकारणंस्यात् । (६) तथापि पटासमवायि कारणलक्षणे तुरीतन्तुसंयोगभिन्नत्वं देयम् । (७) तुरीतन्तुसंयोगस्तु तुरीपटसंयोगं प्रत्यसमवायिकारणं भवत्येव। (८) एवं वेगादिकमपि वेगस्पन्दाद्यसमवायिकारणं भवत्येवेति, तत्तत्कार्यासमवायिकारणलक्षणे तत्तद्भिन्नत्वं देयम् ।

(१+२) समवायिकारणमें आसन्न=प्रत्यासन्न (वृत्ती) जो कारण वह द्वितीय अर्थात् "असमवायि" कारण है। (३) ऐसा लक्षण करनेसे तुरी और तन्तुओंका जो संयोग वह पटका असमवायि कारण होना चाहिये ? क्योंकि पटसमवायिकारण तन्तुमें वृत्ती है और कारण भी है। असमवायिकारणनाशको द्रव्यनाशकत्व नियम है अतएव इष्टापत्ति नहीं कर सकते हैं। (४) इस प्रकार अभिघात और स्पर्शके प्रति वेग और नोदन (संयोग) भी यथाक्रम असमवायि कारण होना चाहिये। (५) तथा ज्ञानादि (ज्ञान और इच्छा) भी इच्छादि (इच्छा और प्रवृत्ति) के प्रति असमवायि कारण होना चाहिये। (६) * (उक्त दोषोंका निवारण करनेके हेतु) पटके असमवायि कारणके लक्षणमें तुरीतन्तु संयोग भिन्नत्व (तन्तु भिन्न समवेतान्यत्व) का निवेश करना उचित है। तन्तुओंमें समवेतहो और तुरीतन्तु संयोगसे भिन्नहो, ऐसा जो पटका कारण वही उसका असमवायि कारण है। (७) + तुरी और तन्तुका संयोग भी तुरीपट संयोगके प्रति असमवायि कारण होताही है। (८) (क) इस प्रकार वेगादि भी वेग और स्पन्दनादिके असमवायि कारण होताही है। (ख) इस हेतु तत्तत् विशेष कार्यके असमवायि कारणके लक्षणमें तत्तत् भिन्नत्वका निवेश करना चाहिये नकि सामान्य लक्षणमें।

---

* (टि०) अगर तुरी तन्तु संयोग भी पटका असमवायि कारण मानें तो क्या दोष ?

(उत्तर)—नैयायिक लोग असमवायि कारणके नाश से कार्यका नाश मानते हैं । अब अगर तुरी तन्तु संयोगको पटके प्रति असमवायि कारण मानें तो उस संयोगके नाश होजाने से पटका भी नाश होजायगा। किन्तु ऐसा देखने में नहीं आता है। इसहेतु तुरी तन्तु संयोग में पटा-समवायि कारणत्व इष्ट नहीं है।

+ (टि०) तुरी तन्तु संयोग पटका असमवायि कारण नहीं है किन्तु तुरी पट संयोगका अवश्य है। अतः असमवायि कारणके सामान्य लक्षण में तुरी तन्तु संयोग भिन्नत्व का निवेश नहीं करना चाहिये। अन्यथा उक्त संयोग में अव्याप्ति होजायगी।

(९) आत्मविशेषगुणानां तु कुत्राप्यसमवायिकारणत्वं नास्ति तेन तद्भिन्नत्वं सामान्यलक्षणे देयमेव। (१०) अत्र समवायिकारणे प्रत्यासन्नं द्विविधं कार्यैकार्थ प्रत्यासत्त्या कारणैकार्थप्रत्यासत्त्या च। (११) आद्यं यथा। (१२) घटादिकं प्रति कपालसंयोगादिकमसमवायिकारणम्। (१३) तत्र कार्येण घटेन सह कारणस्य कपालसंयोगस्यैकस्मिन्कपाले प्रत्यासत्तिरस्ति। (१४) द्वितीयं यथा। (१५) घटरूपं प्रति कपालरूपमसमवायिकारणम्। (१६) तत्र स्वगतरूपादिकं प्रति समवायिकारणं घटः, तेन सह कपालरूपस्यैकस्मिन्कपाले प्रत्यासत्ति रस्ति। (१७) तथा च क्वचित्समवायसंबन्धेन क्वचित्स्वसमवायिसमवेतत्व संबन्धेनेति फलितोऽर्थः॥

(९) आत्माके विशेष गुण किसीभी कार्य्यके प्रति असमवायि कारण नहीं होते हैं। इसलिये आत्म विशेषगुण भिन्नका असमवायि कारणके सामान्य लक्षणमें निवेश आवश्यक है। (१०) समवायि कारणमें दो प्रकारसे वृत्तित्व हो सकता है। यथा—(क) कार्य्यैकार्थ-प्रत्यासत्त्या (याने असमवायिकारण अपने कार्य्यके साथ एक अधिकरणमें समवाय सम्बन्धसे) (ख) कारणैकार्थप्रत्यासत्त्या (असमवायि कारण और उसके कार्य्यका समवायि कारण ये दो, एक अधिकरणमें समवाय सम्बन्धसे)। (११) पहले का उदाहरण। (१२) घटादिके प्रति (अवयवीके प्रति) कपालद्वय संयोग (अवयवोंका संयोग) असमवायि कारण है। (१३) * कार्य्यैकार्थप्रत्यासत्त्या यथा—घटरूप कार्य्यके साथ कपालद्वय संयोगको कपाल-स्वरूप अधिकरणमें समवाय सम्बन्धसे रहनेके कारण सामानाधिकरण्यरूप कार्य्यैकार्थ प्रत्यासत्ति घट गई। (१४+१५) घटरूपके प्रति कपालका रूप असमवायि कारण है। (१६) यथा घट गत रूपादिके प्रति घट समवायि कारण है। जिस घटके साथ कपाल रूपका भी कपालात्मक एकाधिकरणमें (एकार्थ समवेतत्व) रूप सम्बन्ध है। अब कारणैकार्थ प्रत्यासत्ति घट गई। (१७) कार्य्यैकार्थ प्रत्यासत्ति और कारणैकार्थ प्रत्यासत्ति इन दोनोंका फलितार्थ यह है कि किसी स्थलमें समवाय सम्बन्धसे और किसी स्थलमें स्वसमवायि समवेतत्व सम्बन्धसे वृत्तित्व असमवायि कारणके लक्षणमें प्रविष्ट है।

(१८) इत्थं च कार्यैकार्थकारणैकार्थान्यतरप्रत्यासत्त्या समवायिकारणे प्रत्यासन्नं कारणं ज्ञानादिभिन्नमसमवायिकारणमिति सामान्यलक्षणं पर्यवसन्नम्। (१९) आभ्यां समवायिकारणासमवायिकारणाभ्यां परं भिन्नं कारणं तृतीयं निमित्तकारणमित्यर्थः॥

(१८) × ऐसा होने पर आत्माके विशेष गुण ज्ञानादियोंको छोड़कर कार्य्यैकार्थप्रत्यासत्तिसे या कारणैकार्थ प्रत्यासत्तिसे समवायि कारणमें प्रत्यासन्न (वृत्ति) जो कारण वह असमवायि कारण है। यही पर्य्यवसित हुआ। (१९) इन दोनों समवायि कारण और असमवायि कारणों से भिन्न जो कारण वह तृतीय=निमित्त कारण है।

* (टि०) घट—कपाल—कपालद्वय संयोग।

× (टि०) जिसका जो सम्बन्ध जहाँ रहता है उस सम्बन्ध से वह वस्तु भी वहीं रहता है। यथा कपाल रूपका जो स्वसमवायि समवेतत्व सम्बन्ध है वह सम्बन्ध घट में है। इस लिये कपाल रूप स्वसमवायि समवेतत्व सम्बन्ध से घटमें रहा।

इदानीमन्यथासिद्धत्वमेव कियतांपदार्थानामत आह।

(अर्थ) अब (कार्य्यके प्रति) अन्यथा सिद्ध कितने पदार्थ होते हैं। अतः अन्यथा सिद्धका निर्वचन करनेके लिये कहते हैं।

का० नं० १९, २०।

येनसह पूर्वभावः कारणमादाय वा यस्य।
अन्यं प्रति पूर्वभावे ज्ञाते यत्पूर्वभावविज्ञानम् ॥१९॥
जनकं प्रति पूर्ववृत्तितामपरिज्ञाय न यस्य गृह्यते।
अतिरिक्तमथापि यद्भवेन्नियतावश्यकपूर्वभाविनः ॥२०॥

का० अर्थ।

*जिस कार्य्यके प्रति कारणकी नियत पूर्व वृत्तित्व जिस रूपसे गृहीत होता है; जिसको कारणके द्वारा ही अन्वय व्यतिरेक हो (अन्य द्वारा नहीं हो); जिसमें दूसरेके प्रति पूर्ववृत्तिता का ज्ञान होकर ही कार्य्यके प्रति पूर्ववृत्तिताका ज्ञान हो; यत्कार्य्यजनकके प्रति पूर्ववृत्तिताका ज्ञान होकरही तत्कार्य्यके प्रति जिसमें पूर्ववृत्तिताका ज्ञानहो; लघु नियत पूर्व वृत्तिको छोड़कर जो भी कोई हो ये सब अन्यथा सिद्ध हैं।

(१) यत्कार्य्यंप्रति कारणस्य पूर्व वृत्तिता येन रूपेण गृह्यते तत्कार्यं प्रति तद्रूपमन्यथा सिद्ध मित्यर्थः। (२) यथाघटंप्रति दण्डत्वमिति।

+ (१) जिस कार्य्यके प्रति कारणमें पूर्व वृत्तिता जिस रूपसे गृहीत हो उस कार्य्यके प्रति वह रूप प्रथम अन्यथा सिद्ध है। (२) जैसा कि घटके प्रति दण्डत्व प्रथम अन्यथा सिद्ध है।

(३) द्वितीयमन्यथासिद्धमाह। (४) कारणमिति। (५) यस्य स्वातन्त्र्येणान्वयव्यतिरेकौ न स्तः, किं तु कारणमादायैवान्वयव्यतिरेकौ गृह्येते तदन्यथा सिद्धम्। (६) यथा दण्ड रूपम् ॥

(३) द्वितीय अन्यथा सिद्ध दिखलाते हैं। × (४+५) जिस कार्य्यके प्रति जिसको स्वातन्त्र्येण (कारणाघटित परम्परा सम्बन्धसे) अन्वयव्यतिरेक नहीं है किन्तु कारण द्वारा (कारण घटित परम्परा सम्बन्धसे) ही अन्वय व्यतिरेक है, वह उस कार्य्यके प्रति द्वितीय अन्यथा सिद्ध है। (६) ÷ जैसा कि दण्डका रूप।

---

* (टि०) लघुनियत पूर्ववृत्ति — जिसमें कारणता माननेसे लाघव हो।

+ (टि०) घट कार्यके प्रति कारण दण्डमें पूर्व वृत्तिता दण्डत्वेन रूपेण गृहीत है इसलिये दण्डत्व प्रथम अन्यथा सिद्ध है।

× (टि०) अन्वयः — तत्सत्त्वे (कारणसत्त्वे) तद्भिन्न सकल कारणसत्त्वे तत्सत्त्वं (कार्यसत्त्वम्) व्यतिरेकः — तदसत्त्वे (कारणासत्त्वे) तदसत्त्वं (कार्यासत्त्वम्)।

÷ [टि०] घट कार्य्यके प्रति दण्ड रूपको साक्षात् अन्वय व्यतिरेक नहीं है किन्तु घट कार्य्यका कारण दण्डके द्वारा अर्थात् स्वाश्रय दण्डजन्य भ्रमिजन्य कपालद्वय संयोगवत्व सम्बन्धसे ही अन्वय व्यतिरेक है।

(७) तृतीयमाह। अन्यं प्रतीति। (८) अन्यम् प्रति पूर्व वृत्तित्वं गृहीत्वैव यस्य यत्कार्यं प्रति पूर्व वृत्तित्वं गृह्यते तस्य तत्कार्यं प्रत्यन्यथासिद्धत्वम्। (९) यथाघटादिकंप्रत्याकाशस्य ॥

(७) तृतीय अन्यथा सिद्ध कहते हैं। (८) कारण और कार्यसे भिन्नके प्रति पूर्व वृत्तिताका ज्ञान होकर ही जिसमें जिस कार्य्यके प्रति पूर्व वृत्तिताका ज्ञान होता है, वह उस कार्य्यके प्रति तृतीय अन्यथा सिद्ध है। (९) जैसे कि घटादिके प्रति आकाश।

(१०) तस्यहि घटादिकं प्रति कारणत्वमाकाशत्वेनैव स्यात्। (११) आकाशत्वं हि शब्दसमवायिकारणत्वम्। (१२) एवं च तस्य शब्दं प्रति जनकत्वं गृहीत्वैव घटादिकं प्रति जनकत्वं ग्राह्यमतस्तदन्यथासिद्धम्। (१३) ननु शब्दाश्रयत्वेन तस्य कारणत्वे काऽन्यथासिद्धि रिति चेत्, पञ्चमीति गृहाण। (१४) नन्वाकाशस्य शब्दं प्रति जनकत्वे किमवच्छेदकमिति चेत्कवत्वादिकं विशेषपदार्थो वेति ॥

(१०) घटके प्रति आकाशको आकाशत्व रूपसेही कारणता होगी। (११) आकाशत्व शब्दसमवायि कारणत्व रूप है। (१२) इस कारण आकाशमें शब्दके प्रति जनकता ग्रहण करकेही घटादिके प्रति जनकता ग्रहण किया जासकता है। इस लिये आकाश तृतीय अन्यथा सिद्ध है। (१३) (शङ्का और समाधान) आकाशको शब्दाश्रयत्व रूपसे कारणता मानने पर आकाश कौन अन्यथा सिद्ध होगा? ऐसा कहें तो पांचवां अन्यथा सिद्ध मानना चाहिये। * (१४) (शङ्का और समाधान) आकाशमें जो शब्दका जनकता है, उसका अवच्छेदक कौन होगा? अगर ऐसा पूछें तो यह उत्तर है कि कथत्व या खवत्व अथवा विशेष पदार्थ होगा ॥

(१५) चतुर्थ अन्यथा सिद्धमाह। (१६) जनकंप्रतीति। (१७) यत्कार्यजनकं प्रति पूर्ववृत्तित्वं गृहीत्वैव यस्य यत्कार्यं प्रति पूर्ववृत्तित्वं गृह्यते तस्य तत्कार्यं प्रत्यन्यथा सिद्धत्वम्। (१८) यथा कुलाल पितुर्घटं प्रति। (१९) तस्य हि कुलाल पितृत्वेन घटं प्रति जनकत्वे एवान्यथा सिद्धिः। (२०) कुलालत्वेन जनकत्वे त्विष्टापत्तिः, कुलालमात्रस्य घटं प्रति जनकत्वात् ॥

(१५) चौथा अन्यथा सिद्ध कहते हैं। (१६ + १७) जिस कार्य्य जनक के प्रति पूर्व वृत्तिताका ज्ञान होकर ही जिसमें (कुलाल पितामें) जिस कार्य्य (घट कार्य्य) के प्रति पूर्व वृत्तिताका ज्ञान हो वह (कुलाल पिता) उस कार्य्यके (घट कार्य्य के) प्रति चतुर्थ-अन्यथा सिद्ध है। (१८) यथा कुलाल पिता घटके प्रति चतुर्थ अन्यथा सिद्ध है। (१९) उसको (कुलाल पिताको) कुलाल पितृत्वेन घटके प्रति कारणता मानने ही से वह (कुलाल पिता) अन्यथा सिद्ध है, नकि कुलालत्वेन जनकता मानने से वह (कुलाल पिता) अन्यथा सिद्ध है। (२०) कुलालत्वेन जनकता तो उसमें (कुलाल पितामें) इष्टही है। जिस हेतु कुलाल मात्र घटके प्रति कारण है ॥

* (टि०) "क" जब आकाशत्व शब्द समवायि कारणता रूप है तब फिर आकाशत्व शब्द समवायि कारणता वच्छेदक नहीं हो सकता है क्योंकि आत्माश्रय लग जायगा; इसलिये पूछा है।

"ख" जिस हेतु ककारादि नाना प्रकार और अनित्य है इसलिये गौरवसे बचनेके हेतु विशेष पदार्थही को शब्दके जनकताका अवच्छेदक माना गया है।

(२१) पञ्चममन्यथासिद्धमाह। (२२) अतिरिक्तमिति। (२३) अवश्य क्लृप्तनियत पूर्व वर्तिन एव कार्य संभवे तद्भिन्न मन्यथा सिद्ध मित्यर्थः। (२४) अतएव प्रत्यक्षे महत्वं कारणम् (२५) अनेक द्रव्यवत्त्व मन्यथा सिद्धम्। (२६) तत्रहि महत्त्वमवश्यं क्लृप्तं तेनानेकद्रव्यवत्त्वमन्यथासिद्धम्। (२७) नच वैपरीत्ये किं विनिगमकमिति वाच्यम्, महत्त्वत्व जातेः कारणतावच्छेदकत्वे लाघवात्।

(२१) पांचवां अन्यथा सिद्ध कहते हैं। (२२×२३) जिसको कारणता मानने से लाघव हो ऐसा जो लघुनियतपूर्ववर्त्ती वह कारण है और उससे भिन्न सभी अन्यथा सिद्ध हैं। (२४) इसलिये प्रत्यक्ष के प्रति महत्व कारण है। (२५) अनेक द्रव्यत्व (अणुभिन्न द्रव्यत्व) अन्यथा सिद्ध है। (२६) क्योंकि प्रत्यक्ष के प्रति महत्व अवश्य क्लृप्त है। अनेक द्रव्यत्व अन्यथा सिद्ध है। (२७) (शङ्का) अगर अनेक द्रव्यत्व को ही प्रत्यक्ष के प्रति कारण मानें और महत्वको अन्यथा सिद्ध मानें तो क्या प्रत्युत्तर हो सकता है? (प्रत्यक्ष के प्रति महत्वको कारण मानने से) कारणताका अवच्छेदक एक महत्वत्व जाति मात्र होगा अनेक द्रव्यत्वको कारण मानें तो कारणताका अवच्छेदक अधिक होंगे। यथा-(१) अणुभेद और (२) द्रव्यत्व। इस स्थितिमें गौरव लाघवके हेतु महत्वहीको प्रत्यक्षके प्रति कारण मानना आवश्यक है।

का० नं० २१, २२।

एते पञ्चान्यथासिद्धा दण्डत्वादिकमादिमम्।
घटादौ दण्डरूपादि द्वितीयमपि दर्शितम् ॥२१॥
तृतीयं तु भवेद्व्योम कुलालजनकोऽपरः।
पञ्चमो रासभादिः स्यादेतेष्वावश्यकस्त्वसौ ॥२२॥

का० अर्थ।

ये (उक्त) पाँच अन्यथा सिद्ध हैं उनमें पहला घटादि कार्यके प्रति अन्यथा सिद्ध दण्डत्वादि है, दूसरा दण्ड रूपादि है। तीसरा आकाश है, चौथा कुलाल पिता है और पाँचवां गदहा इत्यादि है। इन पांचों अन्यथा सिद्धोंमें यही पांचवां अन्यथा सिद्ध आवश्यक है।

[१] रासभादिरिति। [२] यद्यपि यत्किञ्चिद्घटव्यक्तिं प्रति रासभस्य नियत पूर्व वृत्तित्वमस्ति, तथापि घटजातीयं प्रति सिद्धकारणभावैर्दण्डादिभिरेवतद्व्यक्तेरपि संभवे रासभोऽन्यथासिद्ध इति भावः॥

(१+२) यद्यपि किसी न किसी घटकार्य (व्यक्ति) के प्रति गदहेको भी नियत पूर्ववृत्तिता हो सकती है। तथापि दसजातीय घटान्तर कार्य्यके प्रति दण्डादिही में कारणता सिद्ध है। उसी (सिद्ध कारणताके दण्डादि) सेही उक्त घट कार्यका भी निर्वाह हो सकता है। इस हेतु रासभ सर्वथा अन्यथा सिद्ध हुआ—यही तात्पर्य है।

(३) एतेष्विति । (४) एतेषु पञ्चस्वन्यथासिद्धेषु मध्ये पञ्चमोऽन्यथा-सिद्ध आवश्यकः, तेनैव परेषां चरितार्थत्वात (५) तथाहि । दण्डादिभिरवश्य क्लृप्तनियतपूर्ववृत्तिभिरेव कार्यसंभवे दण्डत्वादिकमन्यथासिद्धम् ॥

(३×४) इन पाँचो अन्यथा सिद्धोंमें पांचवां अन्यथा सिद्ध मानना आवश्यक है। क्योंकि प्रथम अन्यथा सिद्धसे लेकर चौथा अन्यथा सिद्ध पर्य्यन्त पांचवें अन्यथा सिद्धमें ही अन्तर्भूत हो जाते हैं। (५+६) यथा लघु नियत पूर्व वृत्ती (जो) दण्ड उससे ही घटकार्य की सम्भावना है तो तद्भिन्न दण्डत्वादि सभी अन्यथा सिद्ध हैं।

(७) न च वैपरीत्ये किं विनिगमकमिति वाच्यम्, दण्डत्वस्य कारणत्वे दण्डघटितपरम्परायाः संबन्धत्वकल्पने गौरवात् । (८) एवमन्येषामप्यनेनैव चरितार्थत्वं संभवतीति ।

(७) अगर उलटाही करके कारणता मानें (दण्डत्वको ही कारण और दण्डको अन्यथा सिद्ध मानें) तो दण्डमें कारणताका नियामक सम्बन्ध कौन होगा ? दण्डत्वको कारणता माननेमें स्वाश्रयजन्य भ्रमिजन्य कपालद्वय संयोगवत्व सम्बन्धसे कारणता माननी होगी। इसलिये दण्डत्व कारणता पक्षमें दण्डघटित परम्परा सम्बन्धको कारणतावच्छेदकत्व की कल्पनामें गौरव होगा। (८) इस प्रकार दण्डरूप, आकाश और कुलालपिताकाभी पंचम अन्यथा सिद्धमें ही संग्रह हो सकता है।

का० नं० २३ ।

समवायिकारणत्वं द्रव्यस्यैवेति विज्ञेयम् ।
गुणकर्ममात्रवृत्ति ज्ञेयमथाप्यसमवायि हेतुत्वम् ॥२३॥

का० अर्थ ।

समवायि कारणत्व द्रव्यमात्र वृत्ती होता है। एवम् असमवायि कारणत्व गुण और कर्म मात्रमें रहता है ॥

(१) समवायीतिस्पष्टम । गुणकर्मेति । (२) असमवायि कारणत्वं गुणकर्मभिन्नानां वैधर्म्यं नतु गुणकर्मणोः साधर्म्यमित्यत्र तात्पर्यम् । (३) अथवा असमवायिकारणवृत्तिसत्ता भिन्न जातिमत्वं तदर्थः । (४) तेन ज्ञानादीनामसमवायिकारणत्व विरहेऽपि न क्षतिः ॥

(१+२) गुण कर्म से भिन्न जो पाँच पदार्थ हैं उनके वैधर्म्य असमवायि कारणत्व हैं। मूल का यह तात्पर्य नहीं कि वह गुण और कर्म का साधर्म्य है। (३) अथवा असमवायि कारणत्व पदका असमवायि कारण में वृत्ती जो सत्ताभिन्नजाति=(गुणत्व, कर्मत्व) तादृश जातिमत्व ही अर्थ है। तब गुण और कर्मका साधर्म्य मानने में भी क्षति नहीं है। (४) (असमवायि कारणत्वका इस प्रकार जाति घटित परिष्कार करनेसे) आत्माके विशेष गुण ज्ञानादियोंमें असमवायि कारणता न रहनेसे भी कोई हानि नहीं हुई। (अव्याप्ति दोष नही लगा।)

इति कारणत्व निरूपणम् ।

का० नं० २४ ।

अन्यत्र नित्यद्रव्येभ्य आश्रितत्वमिहोच्यते ।

का० अर्थ ।

नित्यद्रव्यों से भिन्नका साधर्म्य आश्रितत्व है ।

मुक्तावली ।

(१) नित्यद्रव्याणि परमाणवाकाशादीनि विहायाश्रितत्वं साधर्म्यमित्यर्थः । (२) आश्रितत्वं तु समवायादिसम्बन्धेन वृत्तिमत्वम् । (३) विशेषणतया नित्यानामपि कालादौ वृत्तेः ॥

मु० अर्थ ।

(१) पृथ्वी, जल, तेज और वायु इन चारों के परमाणु तथा आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन ये सब नित्य द्रव्य हैं। इनसे भिन्नका साधर्म्य आश्रितत्व है। (२) इस स्थलमें आश्रितत्व शब्दका अर्थ (कालिकादि सम्बन्धातिरिक्त) समवाय संयोग स्वरूप अन्यतम सम्बन्धसे वृत्तिमत्त्व है। (३) विशेषणता (कालिक) सम्बन्धसे तो नित्य द्रव्य भी कालादिमें रहता है। इसलिये आश्रितत्वका उक्त परिष्कार किया गया है।

इदानीं द्रव्यस्यैव विशिष्य साधर्म्यं वक्तुमारभते—

(अर्थ) अब खास करके द्रव्यही के साधर्म्य कहनेके लिये आरम्भ करते हैं।

का० नं० २४, २५ ।

क्षित्यादीनां नवानां तु द्रव्यत्वंगुणयोगिता ॥२४॥
क्षितिर्जलं तथा तेजः पवनो मन एव च ।
परापरत्वमूर्तत्वक्रियावेगाश्रया अमी ॥ २५ ॥

का० अर्थ ।

पृथिव्यादि नवोंका साधर्म्य द्रव्यत्व और गुणवत्त्व है ।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और मन इन सबों के साधर्म्य परत्व, अपरत्व, मूर्त्तत्व, क्रियावत्त्व और वेगवत्त्व हैं ।

मुक्तावली ।

(१) पृथिव्यप्तेजोवायुमनसां परत्वापरत्ववत्त्वं मूर्त्तत्वं क्रियावत्त्वं वेगवत्त्वं च साधर्म्यम् । (२) न च यत्र घटादौ परत्वमपरत्वं वा नोत्पन्नं तत्राव्याप्तिरिति वाच्यम् ।

मु० अर्थ ।

(१) इसका अर्थ अभी लिखागया है। (२) शङ्काः—(अगर कहें) कि जिन घटादियों में परत्व और अपरत्व उत्पन्न नहीं हुए हैं, वहां (उन घटादियों में) अव्याप्ति लग जायगी।

परत्वादिसमानाधिकरणद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वस्य विवक्षितत्त्वात्।

समा०—उस स्थल में भी परत्वादियों के अधिकरणमें रहनेवाली जो द्रव्यत्व-व्याप्यजाति (पृथ्वीत्व, जलत्व, तेजस्त्व, वायुत्व, मनस्त्व) तादृश जातिमत्त्वरूप परत्व का निःकृष्टार्थ करने पर उसे रहनेके कारण दोष नहीं होता।

(३) मूर्तत्वमपकृष्टपरिमाणवत्त्वम्, तच्च तेषामेव, गगनादिपरिमाणस्य कुतोऽप्यपकृष्टत्वाभावात्। (४) पूर्ववत् कर्मवत्त्वं कर्मसमानाधिकरण-द्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वं, वेगवत्त्वं वेगवद्वृत्तिद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वं च बोध्यम् ॥२४॥ २५॥

* (३) मूर्त्तत्व, अपकृष्ट परिमाणवत्त्व को कहते हैं। (अपकृष्ट परिमाण याने परम महत् परिमाण से भिन्न परिमाण) पृथ्वी, जल, तेज, वायु और मनमें रहता है। आकाश, काल, दिशा और आत्मामें जो परिमाण है उसको किसी भी परिमाणसे छोटा नहीं होनेके कारण अपकृष्ट परिमाण पृथ्वी, जल, तेज, वायु और मनहीमें रहता है। (४) अगर पृथिव्यादि पाँचोका साधर्म्य वेगवत्त्व और क्रियावत्त्व करें तो जिसमें क्रिया वा वेग उत्पन्न नहीं हुए हैं वहाँ अव्याप्ति होगी। (उस स्थितिमें) पूर्ववत् (परत्वादि समाना-धिकरण इत्यादिके समान) कर्मवत्त्व और वेगवत्त्वसे कर्म वा वेगसमानाधिकरण जो द्रव्यत्वव्याप्यजाति (पृथ्वीत्व, जलत्व, तेजस्त्व, वायुत्व और मनस्त्व) तादृश जातिमत्त्व समझना चाहिये। इससे कर्म वा वेग हीन पृथिव्यादि पाँच में अव्याप्ति नहीं होगी।

का० नं० २६।

कालखात्मदिशां सर्वगतत्वं परमं महत्।
क्षित्यादिपञ्चभूतानि चत्वारि स्पर्शवन्ति हि ॥२६॥

का० अर्थ—

काल, आकाश, आत्मा और दिशा इन सबोंका साधर्म्य सर्वगतत्व (सर्वमूर्त-संयोगित्व) और परममहत् परिमाणवत्त्व है। पृथिव्यादि पाँचों का साधर्म्य भूतत्व है और पृथिव्यादि चारों का साधर्म्य स्पर्शवत्त्व है।

मुक्तावली।

(१) कालाकाशात्मदिशां सर्वगतत्वं सर्वमूर्तसंयोगित्वं परममहत्त्वं च। (२) परममहत्त्वत्वं जातिविशेषः, अपकर्षानाश्रयपरिमाणत्वं वा।

मु० अर्थ।

(१) इसका अर्थ अभी लिखा गया है। (२) परममहत्त्वत्व एक जाति विशेष या मूर्त्तद्रव्यमें नहीं रहनेवाला जो परिमाण तादृश परिमाणत्व है।

* (टि०) अपकृष्ट = परिच्छिन्न = छोटा।

(३) क्षित्यादीति। (४) पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानां भूतत्वम्। (५) तच्च बहिरिन्द्रियग्राह्यविशेषगुणवत्त्वम्। (६) अत्र ग्राह्यत्वं लौकिकप्रत्यक्षस्वरूपयोग्यत्वं बोध्यम्। (७) तेन ज्ञातो घट इत्यादिप्रत्यक्षे ज्ञानस्याप्युपनीतभानविषयत्वात्तद्वति आत्मनि नातिव्याप्तिः। (८) नवा प्रत्यक्षाविषयरूपादिमति परमाण्वादावव्याप्तिः, तस्यापि स्वरूपयोग्यत्वात्। (९) महत्त्वलक्षणकारणान्तरासन्निधानाच्च न प्रत्यक्षम्। (१०) अथवा आत्मावृत्तिविशेषगुणवत्त्वं तत्त्वम्। (११) चत्वारीति। (१२) पृथिव्यप्तेजोवायूनां स्पर्शवत्त्वम् ॥ २६ ॥

* (३+४) पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश इन पदार्थोंका साधर्म्य भूतत्व है। (५) भूतत्व बहिरिन्द्रियग्राह्य विशेष गुणवत्त्वरूप है। * (६) इसमें ग्राह्यत्व शब्दसे लौकिक प्रत्यक्ष स्वरूपयोग्यत्व समझना चाहिये। स्वरूपयोग्यत्वके परिष्कार करनेसे बहिरिन्द्रिय जन्यलौकिकप्रत्यक्षीयविषयतावच्छेदकजातिमत् जो विशेषगुण तद्वत्त्वही भूतत्वका पर्यवसित लक्षण हुआ। * (७+८) यदि ऐसा पर्यवसित लक्षण नहीं करके बहिरिन्द्रियजन्य ज्ञान-विषयविशेषगुणवत्त्व ही भूतत्वका लक्षण करें तो यथाक्रम आत्मा और परमाणुमें अतिव्याप्ति और अव्याप्ति हो जायगी। यथा बहिरिन्द्रियजन्य जो ज्ञान सो "ज्ञानविषयतावान् घटः" इत्याकारक ज्ञान है, उस ज्ञानका विषय जो विशेषगुण सो ज्ञान हुआ, तद्वत्त्व आत्मामें रहनेके कारण आत्मामें अतिव्याप्ति होगी। एवं परमाणुके रूपको अतीन्द्रिय होनेके कारण बहिरिन्द्रियजन्यज्ञानविषय विशेषगुण परमाणुकारूप नहीं होगा। तब तादृश विशेषगुणवत्त्व परमाणुमें नहीं रहनेके कारण उसमें अव्याप्ति होगी।

उक्त पर्यवसित लक्षण करने पर आत्मा और परमाणुमें यथाक्रम अतिव्याप्ति और अव्याप्ति न होगी। क्योंकि ज्ञानविषयता और ज्ञानके ऊपर अलौकिकप्रत्यक्षीयविषयता रहनेके कारण बहिरिन्द्रियजन्यलौकिकप्रत्यक्षीयविषयतावच्छेदकजातिज्ञानत्व जाति न होगी। तब तादृश जातिमत् विशेषगुणमें ज्ञानका ग्रहण न होगा, किन्तु रूपादि लिये जायँगे। तद्वत्त्व आत्मामें नहीं रहा और परमाणुमें रहगया क्योंकि उसमेंभी स्वरूपयोग्यत्व है। इसलिये उक्त दोनों पदार्थोंमें यथाक्रम अतिव्याप्ति और अव्याप्ति न हुई। (९) परमाणु एवं द्व्यणुकके रूपादियोंमें प्रत्यक्षकी योग्यता तो है किन्तु महत्त्व (जोकि प्रत्यक्षके प्रति दूसरा कारण है) को सामानाधिकरण्य सम्बन्धेन नहीं रहनेके कारण परमाणु और द्व्यणुकके रूपादियोंका प्रत्यक्ष नहीं होता है। (१०) अथवा आत्मामें न रहनेवाले जो विशेषगुण तादृश विशेषगुणवत्त्व ही भूतत्वका निर्दुष्ट लक्षण है। (११) पाठ धारण। (१२) पृथिव्यादि चारोंका साधर्म्य स्पर्शवत्त्व है।

* (टि०) ज्ञान विषयताका या विषयता सम्बन्धेन ज्ञानका घटमें उपनीत भान है। ज्ञानलक्षण नामक द्वितीय अलौकिक सन्निकर्षसे जो भान होता है वही उपनीतभान कहलाता है। सो इस प्रकार होता है—जब ज्ञान विषयताका कोई ज्ञान और घटके साथ चक्षुःसंयोग तथा घटमें ज्ञान विषयताका बाध निश्चयाभाव ये तीनों रहते हैं तब ज्ञान विषयत्व प्रकारक घटविशेष्यक औपनायिक चाक्षुष प्रत्यक्ष होता है। "ज्ञातो घटः" (ज्ञानविषयतावान् घटः) इत्याकारक ज्ञान होता है। इस ज्ञानमें ज्ञान विषयताका भान ज्ञानलक्षण नामक द्वितीय अलौकिक सन्निकर्षसे और घटका भान चक्षुःसंयोग नामक लौकिक सन्निकर्षसे हुआ है। जिसका भान अलौकिक सन्निकर्षसे होता है उस पदार्थके ऊपर अलौकिकप्रत्यक्षीयविषयता और जिसका भान लौकिक सन्निकर्षसे होता है उस पदार्थके ऊपर लौकिकप्रत्यक्षीय विषयता रहा करती है। इसलिये ज्ञान विषयताके ऊपर अलौकिकप्रत्यक्षीयविषयता और घटके ऊपर लौकिकप्रत्यक्षीयविषयता सर्व सम्मत है।

का० नं० २७ ।

द्रव्यारम्भश्चतुर्षु स्यादथाकाशशरीरिणाम् ।
अव्याप्यवृत्तिः क्षणिको विशेषगुण इष्यते ॥२७॥

का० अर्थ ।

पृथ्वी, जल, तेज एवं वायु इन चारोंका साधर्म्य द्रव्यारम्भकत्व अर्थात् द्रव्यसमवायिकारणत्व है । तथा आकाश और जीवात्मा इन दोनोंका साधर्म्य अव्याप्यवृत्तिविशेषगुणवत्त्व और क्षणिकविशेषगुणवत्त्व है ।

मुक्तावली ।

(१) पृथिव्यप्तेजोवायुषु चतुर्षु द्रव्यारम्भकत्वम् । (२) न च द्रव्यानारम्भके घटादावव्याप्तिः, द्रव्यसमवायिकारणवृत्तिद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वस्य विवक्षितत्वात् ॥

मु० अर्थ ।

(१) इसका अर्थ अभी लिखा गया है । (२) शङ्का—अगर ऐसा ही अर्थ करें तो घटादि (अन्त्यावयवि) में अव्याप्ति होगी । क्योंकि वे द्रव्यारम्भक नहीं हैं ।

समा०—द्रव्यारम्भक पदका अभिप्रेत अर्थ यह है कि द्रव्यके समवायिकारणमें रहनेवाली जो द्रव्यत्वव्याप्यजाति (पृथ्वीत्वादिजाति) तादृश जातिमत्त्व है अब अव्याप्ति दोष नहीं है ।

(३) आकाशशरीरिणामिति । (४) आकाशात्मनामव्याप्यवृत्तिक्षणिकविशेषगुणवत्त्वं साधर्म्यमित्यर्थः । (५) आकाशस्य विशेषगुणः शब्दः, स चाव्याप्यवृत्तिर्यदा किंचिदवच्छेदेन शब्द उत्पद्यते तदान्यावच्छेदेन तदभावस्यापि सत्त्वात् । (६) क्षणिकत्वं च तृतीयक्षणवृत्तिध्वंसप्रतियोगित्वम् । (७) योग्यविभुविशेषगुणानां स्वोत्तरवर्त्तिगुणनाश्यत्वात्प्रथमशब्दस्य द्वितीयशब्देन नाशः । (८) एवं ज्ञानादीनामपि ज्ञानादिकं यदात्मनि विभौ शरीराद्यवच्छेदेनोत्पद्यते तदा घटाद्यवच्छेदेन तदभावोऽस्त्येव ।

(३+४) इसका अर्थ पहले लिखा गया है । (५) आकाशका विशेष गुण शब्द है । शब्द जिस कालमें कहीं (यथा शङ्खाद्यवच्छेदेन) उत्पन्न होता है उसी कालमें वह शब्द (आकाशही में) (घटाद्यवच्छेदेन) नहीं रहनेके कारण अव्याप्यवृत्ती है । (६) तीसरे क्षणमें नष्ट होनेवाले का नाम क्षणिक है । * (७) योग्यविभुके तो विशेषगुणका नाश उनके अपनेसे पीछे उत्पन्न होनेवाले गुणोंके द्वारा होनेके कारण प्रथम शब्दका नाश द्वितीय शब्दसे होता है । (८) इस प्रकार जिस समय व्यापक आत्मामें जब ज्ञान, सुख, दुःख, इच्छा द्वेष और प्रयत्न शरीराद्यवच्छेदेन उत्पन्न होते हैं उसी समय आत्मामें घटाद्यवच्छेदेन ज्ञानादि का अभाव भी है । (इसलिये ज्ञानादि भी अव्याप्यवृत्ती सिद्ध हुए) शब्दही के समान ज्ञानादि भी अव्याप्यवृत्ती है ।

* (टि०) योग्यविभुविशेषगुण=शब्दादि । अयोग्यविभुविशेषगुण=धर्म, अधर्म, संस्कार ।

(९) एवं ज्ञानादिकमपि क्षणद्वयावस्थायि। (१०) इत्थं चाव्याप्यवृत्तिविशेषगुणवत्त्वं क्षणिकविशेषगुणवत्त्वं चार्थः। (११) पृथिव्यादौ रूपादिर्विशेषगुणोऽस्तीत्यतोऽव्याप्यवृत्तीत्युक्तम्। (१२) पृथिव्यादावव्याप्यवृत्तिः संयोगादिरस्तीत्यतो विशेषगुणेत्युक्तम्। (१३) न च रूपादीनामपि कदाचित्तृतीयक्षणे नाशसंभवात्क्षणिकविशेषगुणवत्त्वं क्षित्यादावतिव्याप्तमिति वाच्यम्॥

(९) इस प्रकार ज्ञानादि भी दोही क्षण रहते हैं। (१०) इससे यही पर्य्यवसित हुआ कि आकाश और जीवात्माका साधर्म्य अव्याप्यवृत्ति विशेषगुणवत्त्व और क्षणिकविशेषगुणवत्त्व है। (११) रूपादिविशेषगुण तो पृथिव्यादिमें भी है। अतः पृथ्वीमें अतिव्याप्ति के लिये अव्याप्यवृत्तित्व विशेषगुणका विशेषण किया गया, अब दोष नहीं होगा। क्योंकि रूप व्याप्यवृत्ति है। (१२) अव्याप्यवृत्ति संयोगादि तो पृथ्वीमें भी है। इस हेतु उसीमें पुनः अतिव्याप्ति बचानेके लिये विशेषगुणका निवेश किया है, अब दोष नहीं होगा। क्योंकि संयोगादि विशेषगुण नहीं है। (१३) (आपने आकाश और आत्माका साधर्म्य क्षणिकविशेषगुणवत्त्व और क्षणिक का लक्षण तृतीयक्षणवृत्तिध्वंसप्रतियोगित्व किया है, ऐसा लक्षण करने पर भी पृथिव्यादिमें अतिव्याप्ति हो जायगी) यथा—किसी कालमें रूपादिका नाश तृतीय क्षणमें भी हो सकता है, तब उक्त रूप तृतीयक्षणवृत्तिध्वंसप्रतियोगी होनेके कारण क्षणिकविशेषगुण होगया और वह पृथिव्यादितीनमें है। इसलिये पृथिव्यादितीनमें अतिव्याप्ति लग जाती है।

(१४) चतुःक्षणवृत्तिजन्यावृत्तिजातिमद्विशेषगुणवत्त्वस्य तदर्थत्वात्। (१५) अपेक्षाबुद्धिः क्षणत्रयं तिष्ठति, क्षणचतुष्टयं तु न किमपि जन्यज्ञानादिकं तिष्ठति। (१६) रूपत्वादिकं तु क्षणचतुष्टयस्थायिन्यपि रूपादौ वर्तत इति तद्व्युदासः।

* (१४) इसलिये क्षणिक विशेषगुणका अभिप्रेत चतुःक्षण वृत्ति जन्यावृत्ति जातिमद् विशेषगुण है। चार क्षण रहनेवाले जो जन्य (घट पटादि तथा रूपरसादि) उनमें अवृत्ती जो जाति (शब्दत्व और बुद्धित्वादि) तादृश जातिमत् जो विशेषगुण, वही क्षणिक विशेषगुणसे गृहीत किये जायेंगे। + (१५) अपेक्षाबुद्धि तीन क्षण रहती है। चौथे क्षणमें अपेक्षाबुद्धिका नाश हो जाता है। कोई भी जन्यज्ञानादि चार क्षण तक नहीं रहता है। (१६) रूपत्वादिजाति चार क्षण तक (बहुत काल तक) रहनेवाले रूपादिमें रहती है। इसहेतु रूपत्वादिजाति नहीं लीजासकती है। अत एव पृथि ादिमें अतिव्याप्ति नहीं हुई।

* (टि०) सामान्य रीतिसे तो रूप बहुत दिनों तक रहता है। किन्तु क्वचित् स्थलमें रूपका नाश तृतीय क्षणमें भी हो सकता है।

+ (टि०) 'अयमेकः, अयमेकः' इत्याकारक जो बुद्धि वही अपेक्षा बुद्धि है।

(१७) ईश्वरज्ञानस्य चतुःक्षणवृत्तित्वाज्ज्ञानत्वस्य तद्वृत्तित्वाज्जन्येत्युक्तम्। (१८) यद्याकाशजीवात्मनोः साधर्म्यं तदा जन्येति न देयं, द्वेषत्वादिकमादाय लक्षणसमन्वयात्। (१९) परममहत्त्वस्य तादृशगुणत्वाद्य चतुर्थक्षणे द्वित्वादीनामपि नाशाभ्युपगमाद्द्वित्वादीनामपि तथात्वात्तद्वारणाय विशेषेति। (२०) त्रिक्षणवृत्तित्वं वा वाच्यम्, इच्छात्वादिकमादायात्मनि लक्षणसमन्वयः ॥ २७ ॥

(१७) अगर उक्त लक्षणमें जन्यपदका निवेश नहीं करें तो ईश्वरमें अव्याप्ति हो जायगी। क्योंकि ईश्वरका ज्ञान नित्य होनेके कारण चतुःक्षण वृत्ति है। उसमें अवृत्तिज्ञानत्वजाति न हुई। इसलिये जन्य पदका निवेश किया गया। (१८) यदि आकाश और जीवात्माका ही साधर्म्य यह माना जाय तब जन्य पद निवेशका कुछ प्रयोजन नहीं है। क्योंकि ज्ञानत्व जातिको छोड़कर क्षणद्वयमात्रावस्थायिद्वेषादि गुणोंमें रहनेवाली द्वेषत्वादिजातिको लेकर जीवात्मामें लक्षणसमन्वय हो जायगा। (१९) अगर उक्त लक्षणमें विशेष पदका निवेश नहीं करें तो परममहत्परिमाणको लेकर कालादिमें अतिव्याप्ति हो जायगी। यथा—चतुःक्षणवृत्तिजन्यमें अवृत्ती जो परममहत्त्वत्व जाति तादृश जातिमत् परममहत् परिमाण है। जो परममहत्परिमाण कालादिमें है इसलिये कालादिमें अतिव्याप्ति हुई। परन्तु विशेष पदके निवेश करनेसे अतिव्याप्ति नहीं होगी क्योंकि परममहत्परिमाण विशेषगुण नहीं है। अगर परममहत्त्वत्व धर्मको जाति नहीं मानें उस स्थितिमें यद्यपि परममहत्परिमाणको लेकर कालादिमें अतिव्याप्ति नहीं होगी परन्तु द्वित्वत्वादि लेकर नवो द्रव्योंमें अतिव्याप्ति हो जायगी। यथा—चतुःक्षणवृत्ति जो रूपादि उसमें अवृत्ती जो द्वित्वत्वादिजाति तादृश जातिमत्द्वित्व नवो द्रव्योंमें है। इसलिये अतिव्याप्ति हुई, किन्तु विशेषपदके निवेश करनेसे उक्त अतिव्याप्ति नहीं होगी। क्योंकि द्वित्वादि संख्या विशेषगुण नहीं है। (२०) आत्मा और आकाशका साधर्म्य जो चतुःक्षण इत्यादि कहा है उस स्थलमें चतुःक्षणके स्थानमें त्रिक्षणका ही निवेश करें तो समन्वय हो सकता है। यथा—त्रिक्षणवृत्ति जो रूपादि उसमें अवृत्ती जो इच्छात्वजाति और शब्दत्व तादृश जातिमत् विशेषगुण आत्मा और आकाशमें क्रमशः रहजायगा।

का० नं० २८।

रूपद्रवत्वप्रत्यक्षयोगिनः प्रथमास्त्रयः।
गुरुणी द्वे रसवती द्वयोर्नैमित्तिको द्रवः ॥ २८ ॥

का० अर्थ।

प्रथम तीनके (पृथ्वी, जल और तेजके) साधर्म्य–रूप, द्रवत्व और प्रत्यक्षविषयत्व ये तीन हैं। पृथ्वी और जलके साधर्म्य गुरुत्व और रस ये दो हैं। पृथ्वी और तेजका साधर्म्य नैमित्तिकद्रवत्व है।

मुक्तावली।

(१) पृथिव्यप्तेजसां रूपवत्त्वं, द्रवत्ववत्त्वं, प्रत्यक्षविषयत्वं चेत्यर्थः। (२) न च चक्षुरादीनां भर्जनकपालस्थवह्नेरूष्मणश्च रूपवत्त्वे किं मानमिति वाच्यं, तत्रापि तेजस्त्वेन रूपानुमानात्। (३) एवं वाय्वानीतपृथिवीजलतेजोभागानामपि पृथिवीत्वादिना रूपानुमानं बोध्यम्, (४) न च घटादौ द्रुतसुवर्णादिभिन्ने तेजसि च द्रवत्ववत्त्वमव्याप्तमिति वाच्यं, द्रवत्ववद्वृत्तिद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वस्य विवक्षितत्वात्। (५) घृतजतुप्रभृतिषु पृथिवीषु जलेषु द्रुतसुवर्णादौ तेजसि च द्रवत्वसत्त्वात्तत्र च पृथिवीत्वादिसत्त्वात्तदादाय सर्वत्र लक्षणसमन्वयः। (६) न च प्रत्यक्षविषयत्वं परमाण्वादावव्याप्तमतिव्याप्तं च रूपादाविति वाच्यं, चाक्षुषप्रत्यक्षविषयवृत्तिद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वस्य विवक्षितत्वात्। (७) आत्मन्यतिव्याप्तिवारणाय चाक्षुषेति।

मु० अर्थ।

(१) इसका अर्थ ऊपर लिखागया है। * (२) शङ्का—चक्षुरादिमें (कृष्ण तारामवर्त्ति तेजमें) तथा भर्जन कपालस्थित वह्निमें (भूजा भूजनेवाले पात्रके अन्तर्गत अग्निमें) और ऊष्मा (गर्मी) में रूप है इसमें क्या प्रमाण है? उत्तर—उन सबोंमें भी तेजस्त्वहेतुसे रूपका अनुमान करते हैं। चक्षुरिन्द्रियप्रभृति तैजसपदार्थ होनेके कारण रूपवाला है। + (३) इसीप्रकार वायुसे लाये हुए पृथ्वी, जल और तेजके भागोंमें भी पृथिवीत्व जलत्व आदि हेतुओंसे रूपका अनुमान करना चाहिये। (४) शङ्का—घटादिरूप पृथ्वीमें पिघले हुए सोने और चान्दीसे भिन्न तैजसपदार्थ और वह्निमें द्रवत्व नहीं रहने के कारण अव्याप्ति दोष लगजायगा। उत्तर—द्रवत्व पदसे द्रवत्ववत्में वृत्ती जो द्रव्यत्वव्याप्यजाति (पृथ्वीत्व, जलत्व और तेजस्त्वजाति) तादृश जातिमत्त्व विवक्षित है। (५) घृत, जत्वादिरूप पृथ्वीमें, जल और पिघलेहुए सुवर्णादिरूप तेजमें द्रवत्व एवं पृथ्वीत्व, जलत्व और तेजस्त्व के भी रहनेके कारण सब स्थलों में उक्त जाति घटित लक्षणका समन्वय करसकते हैं। (६) (पृथिव्यादि तीनोंका साधर्म्य प्रत्यक्षविषयत्व भी किया है) इसमें शङ्का—परमाण्वादिमें अव्याप्ति और रूपादिमें अतिव्याप्ति होती है। क्योंकि परमाणुमें प्रत्यक्षविषयत्व नहीं है रूपादिमें है। उत्तर—प्रत्यक्षविषयत्वपदसे चाक्षुषप्रत्यक्षविषय (घटपटादि) में वृत्ती जो द्रव्यत्वव्याप्यजाति (पृथ्वीत्व, जलत्व और तेजस्त्व जाति) तादृश जातिमत्त्वकी विवक्षा करने से दोष नहीं होगा। × (७) आत्मामें अतिव्याप्ति वारणके हेतु चाक्षुषपदका निवेश किया गया है। (अब दोष नहीं होगा क्योंकि आत्माका चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं होता है)।

* (टि०) (क) अनुमानका आकार—"चक्षुः रूपवत् तेजस्त्वात्। (ख) भर्जनकपालस्थो वह्निः रूपवान् तेजस्त्वात्। (ग) ऊष्मा रूपवान् तेजस्त्वात्।"

+ (टि०) (अनुमानस्वरूप) (क) "वाय्वानीत पृथ्वी भागः रूपवान् पृथ्वीत्वात्" (ख) "वाय्वानीतजल भागः रूपवान् जलत्वात्" (ग) वाय्वानीततेजो भागः रूपवान् तेजस्त्वात्।

× (टि०) अगर चाक्षुषपदका निवेश नहीं करें तो आत्मामें अतिव्याप्ति होगी। यथा—प्रत्यक्षविषय जो आत्मा उसमें वृत्ती जो द्रव्यत्वव्याप्य आत्मत्वजाति तादृश जातिमत्त्व आत्मामें है, इसलिये अतिव्याप्ति दोष हुआ।

(८) गुरुणी इति। (९) गुरुत्ववत्त्वं पृथिवीजलयोरित्यर्थः। (१०) न च घ्राणेन्द्रियादीनां वाय्वानीतपार्थिवादिभागानां रसादिमत्त्वे किं मानमिति वाच्यं, तत्रापि पृथिवीत्वादिना तदनुमानात्।

(८+९) इसका अर्थ पहले लिखा गया है। (१०) शङ्का—घ्राणादि इन्द्रिय तथा वायुसे लाये हुए पार्थिवभाग भी रसवाले हैं—इसमें क्या प्रमाण है? समा०—पृथ्वीत्वादि हेतुओं से घ्राणेन्द्रिय में तथा वायूपनीत पार्थिवभागमें भी इसका अनुमान हो सकता है॥

(११) द्वयोरिति। (१२) पृथिवीतेजसोरित्यर्थः।

(११+१२) पृथ्वी और तेज इन दोनोंका साधर्म्य नैमित्तिकद्रवत्व है।

(१३) न च नैमित्तिकद्रवत्ववत्त्वं घटादौ वह्न्यादौ चाव्याप्तमिति वाच्यं, नैमित्तिकद्रवत्वसमानाधिकरणद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वस्य विवक्षितत्वात्।

(१३) शङ्का—पृथ्वी और तेजका नैमित्तिकद्रवत्व साधर्म्य करने से घटादि (पृथ्वीमें) और वह्न्यादिमें अव्याप्ति लग जायगी। उत्तर-पूर्ववत् यहां भी नैमित्तिक द्रवत्वके अधिकरणमें वृत्ति जो द्रव्यत्वव्याप्यजाति (पृथ्वीत्व और तेजस्त्वजाति) तादृश जातिमत्त्वकी विवक्षा करनेसे अव्याप्ति दोष नहीं होगा।

का० नं० २६।

आत्मानो भूतवर्गाश्च विशेषगुणयोगिनः।

का० अर्थ।

आत्मा और भूतवर्ग (पञ्चभूत) का साधर्म्य विशेषगुण है।

मुक्तावली।

(१) पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मनां विशेषगुणवत्त्वमित्यर्थः।

मु० अर्थ।

(१) इसका अर्थ अभी लिख चुके हैं।

का० नं० २६।

यदुक्तं यस्य साधर्म्यं वैधर्म्यमितरस्य तत्॥ २९॥

का० अर्थ।

जिसका जो साधर्म्य कहा गया है वह धर्म इतरका (अपनेसे भिन्नका) विरुद्ध (अवृत्ति) धर्म है ऐसा समझना चाहिये।

मुक्तावली।

(२) ज्ञेयत्वादिकं विहायेति बोध्यम्।

मु० अर्थ।

(२) ज्ञेयत्व, वाच्यत्व और प्रमेयत्व इन तीनों धर्मोंको छोड़कर जो जिसका समान धर्म कहा गया है वह इतरका विरुद्धधर्म है, ऐसा समझना चाहिये।

(३) तत्तु न कस्यापि वैधर्म्यं केवलान्वयित्वात्।

० (३) क्योंकि उक्त ज्ञेयत्वादि तीनों धर्मोंके केवलान्वयी होनेके कारण किसीके भी विरुद्ध धर्म नहीं हैं।

का० नं० ३० ।

स्पर्शादयोऽष्टौ वेगाख्यः संस्कारो मरुतो गुणाः।
स्पर्शाद्यष्टौ रूपवेगौ द्रवत्वं तेजसो गुणाः॥

का० अर्थ ।

स्पर्शादिआठ—स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व और वेगनामक संस्कार ये नवगुण वायुके हैं। एवं स्पर्शादिआठ, रूप, वेग और नैमित्तिकद्रवत्व ये ग्यारहगुण तेजके हैं।

का० नं० ३१

स्पर्शादयोऽष्टौ वेगश्च गुरुत्वं च द्रवत्वकम्।
रूपं रसस्तथा स्नेहो वारिण्येते चतुर्दश॥

का० अर्थ।

स्पर्शादिआठ, वेग, गुरुत्व, सांसिद्धिकद्रवत्व, रूप, रस और स्नेह ये चौदहगुण जलके हैं।

का० नं० ३२, ३३ ।

स्नेहहीना गन्धयुताः † क्षितावेते चतुर्दश।
बुद्ध्यादिषट्कं संख्यादिपञ्चकं भावना तथा॥
धर्माधर्मौ गुणा एते ह्यात्मनः स्युश्चतुर्दश।
संख्यादिपञ्चकं कालदिशोः शब्दश्च ते च खे॥

का० अर्थ ।

स्नेहको छोड़कर और गन्धको लेकर उक्त अव्यवहितपूर्वकारिकामें प्रतिपादित चौदह गुणही पृथ्वीके गुण हैं। बुद्ध्यादि छः, संख्यादि पाँच, भावना, धर्म और अधर्म ये चौदह गुण जीवात्माके हैं।

संख्यादि पाँच, काल और दिशाके गुण हैं। संख्यादिपाँच और शब्द ये छः गुण आकाश के हैं।

---

* (टि०) 'वायोर्नवैकादश तेजसो गुणाः, जलक्षितिप्राणभृतां चतुर्दश।
दिक्कालयोः पञ्च षडेव चाम्बरे, महेश्वरेऽष्टौ मनसस्तथैव च'॥
इस श्लोकके अनुसारही उद्देश क्रमको छोड़कर वायु प्रभृतिके गुणोंका निरूपण करते हैं।

† (टि०) पृथ्वीके गुण चौदह हैं। यथा—स्पर्शादिआठ, वेग, गुरुत्व, नैमित्तिकद्रवत्व, रूप, रस और गन्ध. बुद्ध्यादि छ (बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष तथा प्रयत्न)। संख्यादि पाँच (संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग)।

का० नं० ३४।

संख्यादयः पञ्च बुद्धिरिच्छा यत्नोऽपि चेश्वरे।
परापरत्वे संख्याद्याः पञ्च वेगश्च मानसे॥

का० अर्थ।

संख्यादिपांच एवं बुद्धि, इच्छा, और यत्न ये आठ गुण परमेश्वरके हैं। संख्यादिपांच परत्व, अपरत्व और वेग ये आठगुण मनके हैं।

मुक्तावली।

(१) ते च खे आकाशे। ३०, ३१, ३२, ३३, ३४।
(२) साधर्म्यवैधर्म्ये निरूप्य संप्रति प्रत्येकं पृथिव्यादिकं निरूपयति—

मु० अर्थ।

(१+२) समानधर्म और विरुद्धधर्मका निरूपण करके अब क्रमशः पृथिव्यादि का निरूपण करते हैं।

का० नं० ३५।

तत्र क्षितिर्गन्धहेतुर्नानारूपवती मता।
षड्विधस्तु रसस्तत्र गन्धस्तु द्विविधो मतः॥

का० अर्थ।

नवों द्रव्योंमें केवल पृथ्वी गन्धका समवायि कारण है और नाना रूपवती है। पृथ्वीही में सातों तरहके रूप और दोनों तरहके गन्ध (दुर्गन्ध और सुगन्ध) हैं।

मुक्तावली।

(१) गन्धहेतुरिति गन्धसमवायिकारणमित्यर्थः। (२) यद्यपि गन्धवत्त्वमात्रं लक्षणमुचितं, तथापि पृथिवीत्वजातौ प्रमाणोपन्यासाय कारणत्वमुपन्यस्तम्, तथाहि (३) पृथिवीत्वंहि गन्धसमवायिकारणतावच्छेदकतया सिध्यति, अन्यथा गन्धत्वावच्छिन्नस्याकस्मिकत्वापत्तेः।

मु० अर्थ।

(१) पृथिव्यादि नवों द्रव्योंके बीचमें केवल पृथ्वी गन्धका समवायि कारण है। (२) यद्यपि पृथ्वीका लक्षण गन्धवत्त्व मात्र ही समुचित है तथापि पृथ्वीत्व एकजाति है। इसमें प्रमाण दिखानेके लिए कारणत्वका उपादान किया है। * (३) गन्धसमवायिकारणतावच्छेदकत्वेन (गन्धकी जो समवायिकारणता, तादृश कारणताका जो अवच्छेदक, तादृश अवच्छेदकत्वेन) पृथ्वीत्व जातिकी सिद्धि होती है। यदि गन्धत्वावच्छिन्नकेप्रति पृथ्वीको हेतु नहीं मानें तो पृथ्वीमात्र में गन्धहोता है इतरमें नहीं ऐसा नियम नहीं होगा।

* (टि०) पृथ्वीत्व जातिके साधक अनुमानका स्वरूप='समवायसम्बन्धावच्छिन्न, गन्धत्वावच्छिन्न गन्धनिष्ठकार्यता निरूपित तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नायाकारणता साकिञ्चिद्धर्मावच्छिन्ना कारणतात्वात्। घटनिष्ठकार्यतानिरूपितकपालनिष्ठकारणतावत्'।

(४) न च पाषाणादौ गन्धाभावाद्गन्धवत्त्वमव्याप्तमिति वाच्यं, तत्रापि गन्ध-सत्त्वात् । (५) अनुपलब्धिस्त्वनुत्कटत्वेनाप्युपपद्यते, कथमन्यथा तद्भस्मनि गन्ध उपलभ्यते । (६) भस्मनो हि पाषाणध्वंसजन्यत्वात्पाषाणोपादानोपादेयत्वं सिध्यति । (७) यद्द्रव्यं यद्द्रव्यध्वंसजन्यं तत्तदुपादानोपादेयमिति व्याप्तेः । (८) दृष्टं चैतत्खण्डपटे महापटध्वंसजन्ये । (९) इत्थं च पाषाण परमाणोः पृथिवीत्वात्तज्जन्यस्य पाषाणस्यापि पृथिवीत्वं, तथा च तस्यापि गन्धवत्त्वे बाधकाभावः ।

(४) शङ्का:—पाषाणादि रूप पृथ्वीमें गन्ध नहीं रहनेके कारण गन्धवत्त्व अव्याप्ति दोषसे ग्रस्त हो गया । समा०-पाषाणादियोंमें भी गन्ध रहनेके कारण अव्याप्ति नहीं है । (५) पाषाणादिरूप पृथ्वीमें अनुत्कट (जो मालुम न पड़सके) गन्ध है, इसलिये उसमें गन्धका पता नहीं चलता । अगर पाषाणमें गन्ध नहीं रहता तो उसके भस्ममें गन्धका प्रत्यक्ष कैसे होता ? (६) पाषाणका भस्म पाषाणके ध्वंससे उत्पन्न होनेके कारण पाषाणके उपादान (समवायि कारण) का उपादेय (कार्य) सिद्ध होता है । (७) जो द्रव्य (भस्मादि) जिस द्रव्यके (पाषाणादिके) ध्वंससे उत्पन्न होता है वह द्रव्य (भस्मादि) उसके उपादानका (पाषाण परमाणुका) उपादेय होता है—ऐसा नियम है । (८) उक्त व्याप्ति महापटके (बड़े कपड़ेके) ध्वंससे उत्पन्न खण्डपट (कपड़ेके टुकड़े) में देखी गयी है । (९) तब यही पर्य्यवसित हुआ जो पाषाण परमाणुके पृथ्वी होनेके कारण उससे उत्पन्न होनेवाला पाषाण भी पृथ्वी स्वरूप है । तब पाषाणको भी गन्धवाला होनेमें कोई बाधक नहीं है ।

(१०) नानारूपेति । (११) शुक्लनीलादिभेदेन नानाजातीयं रूपं पृथिव्यामेव वर्तते न तु जलादौ, तत्र शुक्लस्यैव सत्त्वात् । (१२) पृथिव्यां तु एकस्मिन्नपि धर्मिणि पाकवशेन नानारूपसंभवात् । (१३) नच यत्र नाना रूपं नोत्पन्नं तत्राव्याप्तिरिति वाच्यं, रूपद्वयवद्वृत्तिद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वस्य विवक्षितत्वात्, रूपनाशवद्वृत्तिद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वस्य वा वाच्यत्वात् ।

(१० + ११) शुक्ल और नीलादि भेदसे सातप्रकार के रूप पृथ्वी मात्रमें रहते हैं । जलमें तो केवल शुक्लही रूप रहता है । (१२) पृथ्वीमें तो एक व्यक्ति में भी पाक (अग्निसंयोग) होनेके कारण नाना रूपोंकी सम्भावना रहती है । (१३) शङ्का—जिस पृथ्वीमें नाना रूपोंकी उत्पत्ति नहीं हुई है उस पृथ्वीमें अव्याप्ति लग जायगी । समा०—उस स्थल में भी दो प्रकार के परिष्कार करनेसे अव्याप्ति नहीं लगेगी, वे यों हैं— (क) दो रूप-वाली (पृथ्वी) में रहने वाली जो द्रव्यत्वव्याप्य (पृथ्वीत्व) जाति तादृश जातिमत्त्व की (ख) अथवा रूपनाशवाली (पृथ्वी) में रहने वाली जो द्रव्यत्वव्याप्य (पृथ्वीत्व) जाति तादृश जातिमत्त्व की विवक्षा करने से दोष नहीं होगा ।

(टि०) प्रथम लक्षण 'अयमेकः, अयमेक, इमौ द्वौ' यह अपेक्षाबुद्धिविशेषविषयत्वरूपद्वित्वघटित होनेके कारण गौरवान्वित है । इसलिये 'रूप नाशवत्' इत्यादिसे दूसरा लक्षण किया है ।

(१४) वैशेषिकनये पृथिवीपरमाणौ रूपनाशस्य रूपान्तरस्य च सत्त्वात्। (१५) न्यायनये घटादावपि तत्सत्त्वाल्लक्षणासमन्वयः ॥

(१४) वैशेषिकमतके अनुसार पृथ्वीपरमाणु में ही अग्निसंयोगसे रूपकानाश तथा रूपान्तर की उत्पत्ति होती है । (१५) न्यायके मतसे घटादिमें भी (अवयव और अवयवी दोनों में भी) अग्निसंयोग से रूपका नाश और रूपान्तरकी उत्पत्ति होती है। इससे पर्यवसित हुआ कि वैशेषिक और न्याय इन दोनोंके मतसे पूर्वोक्त लक्षण दोष रहित है।

(१६) षड्विध इति । (१७) मधुरादिभेदेन यः षड्विधो रसः स पृथिव्यामेव । (१८) जले च मधुर एव रसः । (१९) अत्रापि पूर्ववद्रसद्वयवद्वृत्तिद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वं लक्षणार्थोऽवसेयः।

* (१६+१७) मीठा, खट्टा, कडुआ इत्यादि भेदसे जो छः प्रकारके रस हैं वे पृथ्वी मात्रमें रहते हैं। (१८) जलमें केवल मधुर रस है। (१९) इस स्थलमें भी जिस पृथ्वीमें नाना रसोंकी उत्पत्ति नहीं हुई है उस पृथ्वीमें अव्याप्तिदोष वारणके हेतु पूर्वोक्तरीतिसे लक्षणका परिष्कार करना चाहिये। यथा—रसद्वयवाली या रसनाशवाली (पृथ्वी) में रहनेवाली जो द्रव्यत्वव्याप्य (पृथ्वीत्व) जाति तादृश जातिमत्त्व पृथ्वीका लक्षण है ।

(२०) गन्धस्त्विति । द्विविध इति । (२१) वस्तुस्थितिमात्रं न द्विविधगन्धवत्त्वं लक्षणं द्विविधत्वस्य व्यर्थत्वात् । (२२) द्वैविध्यं च सौरभासौरभभेदेन बोध्यम् ॥

(२०) पृथ्वीमें दो प्रकारके गन्ध रहते हैं। (२१) वस्तु स्थिति मात्र दिखलानेके हेतु पृथ्वीमें दो प्रकारके गन्ध कहे गये हैं। पृथ्वीका लक्षण द्विविधगन्धवत्त्व नहीं है किन्तु गन्धवत्त्व मात्र ही पृथ्वीका लक्षण है। अन्यथा द्विविधपदका उपादान व्यर्थ हो जायगा। (२२) गन्ध सौरभ और असौरभ भेदसे दो प्रकार के जानना चाहिये ।

का० नं० ३६ ।

स्पर्शस्तस्यास्तु विज्ञेयो ह्यनुष्णाशीतपाकजः ।

का० अर्थ ।

पाकजअनुष्णाशीतस्पर्शवत्त्व भी पृथ्वीका लक्षणजानना चाहिये।

* (टि०) पृथ्वीको छोड़कर किसीमें भी छवों रस नहीं है।

मुक्तावली।

(१) तस्याः पृथिव्याः। (२) अनुष्णाशीतस्पर्शवत्त्वं वायोरपि वर्तत इत्युक्तं पाकज इति। (३) इत्थं च पृथिव्याः स्पर्शोऽनुष्णाशीत इति ज्ञापनार्थं तदुक्तम्। (४) वस्तुतस्तु पाकजस्पर्शवत्त्वमात्रं लक्षणम्, अधिकस्य वैयर्थ्यात्। (५) यद्यपि पाकजस्पर्शः पटादौ नास्ति तथापि पाकजस्पर्शवद्वृत्तिद्रव्यत्व-व्याप्यजातिमत्त्वमर्थो बोध्यः।

मु० अर्थ।

(१) इस कारिकामें तत्पदसे पृथ्वीको समझना चाहिये। (२) उक्तलक्षणमें अगर पाकज शब्द नहीं देंगे तो वायुमें अतिव्याप्ति हो जायगी। क्योंकि अनुष्णाशीतस्पर्श वायुमें भी है। * (३) तात्पर्य यह है कि पृथ्वीका स्पर्श अनुष्णाशीत है। इस बातको समझाने के लिये यह कहा गया है। (४) वास्तविकमें पृथ्वीका लक्षण पाकजस्पर्शवत्त्व मात्रही साधु है। क्योंकि अधिक कहना व्यर्थ है। (५) पाकजस्पर्शवत्त्व लक्षण करनेसे पटादिमें अव्याप्ति हो जायगी (क्योंकि उसका स्पर्शपाकज नहीं है) तथापि उससे पाकजस्पर्शवाली (पृथ्वी) में रहनेवाली जो द्रव्यत्वव्याप्य (पृथ्वीत्व) जाति तादृश जातिमत्त्व अर्थ समझना चाहिये। तादृश जातिमत्त्व पटादि रूप पृथ्वीमें भी प्रसिद्ध है। इसप्रकार जातिघटित लक्षण करनेसे कहीं भी दोष नहीं होगा।

का० नं० ३६, ३७।

नित्यानित्या च सा द्वेधा नित्या स्यादणुलक्षणा ॥३६॥
अनित्या तु तदन्या स्यात्सैवावयवयोगिनी।
सा च त्रिधा भवेद्देहमिन्द्रियं विषयस्तथा ॥३७॥

का० अर्थ।

नित्य तथा अनित्य प्रभेदसे पृथ्वी दो प्रकारकी है। परमाणुरूप पृथ्वी नित्य है और उससे भिन्न पृथ्वी अनित्य (कार्यरूप) है। यही अनित्यपृथ्वी अवयववती है। यह अनित्य पृथ्वी शरीर, इन्द्रिय, और विषय भेदसे तीन प्रकारकी होती है।

मुक्तावली।

(१) सा पृथिवी द्विविधा, नित्या अनित्या चेत्यर्थः। (२) अणुलक्षणा परमाणुरूपा पृथिवी नित्या। (३) तदन्या परमाणुभिन्ना पृथिवी द्व्यणुकादिरूपा सर्वाऽप्यनित्येत्यर्थः। (४) सैव अनित्या पृथिव्येवावयववतीत्यर्थः।

मु० अर्थ।

(१) इसका अर्थ अभी लिखा गया है। (२) अणुलक्षण परमाणुरूप पृथ्वी नित्यहै।
(३) परमाणुसे भिन्न द्व्यणुकसे लेकर अन्त्यावयविपर्यन्त सभी पृथ्वी अनित्य है।
(४) इसका अर्थ पहले लिखा गया है।

* (टि०) अनुष्णाशीत, स्पर्श, वायुमें पाकज नहीं है। एवं पाकजअनुष्णाशीतस्पर्शवत्त्वरूप पृथ्वीके लक्षणके अभिप्रायसे नहीं कहा है किन्तु वस्तुस्थिति ज्ञापनके अभिप्रायसे कहा है।

(५) ननु अवयविनि किं मानं, परमाणुपुञ्जैरेवोपपत्तेः। (६) न च परमाणूनामतीन्द्रियत्वाद्घटादेः प्रत्यक्षं न स्यादिति वाच्यम्, एकस्य परमाणोरप्रत्यक्षत्वेऽपि तत्समूहस्य प्रत्यक्षत्वात्। (७) यथैकस्य केशस्य दूरेऽप्रत्यक्षत्वेऽपि तत्समूहस्य प्रत्यक्षत्वम्। (८) न चैको घटः स्थूल इति बुद्धेरनुपपत्तिरिति वाच्यम्, एको महान्धान्यराशिरितिवदुपपत्तेः।

(५) बौद्धशङ्का—अवयवोंसे अतिरिक्त अवयवी मानने में क्या प्रमाण है? 'अयं घटः' इत्यादि प्रतीतिका निर्वाह तो एक विलक्षणसंस्थान (संयोग) विशिष्ट—परमाणुपुञ्जसे ही हो सकता है तब अवयवीका स्वीकार क्यों करें? (६) प्रश्नकार बौद्धकी शङ्काका समर्थन—अगर यह कहें कि परमाणुके अतीन्द्रियहोनेके कारण अतीन्द्रियपरमाणुपुञ्जरूप घटादियोंका प्रत्यक्ष नहीं होगा; सोभी नहीं कह सकते। क्योंकि एक परमाणुका प्रत्यक्ष नहीं होने पर भी परमाणुके समूहका प्रत्यक्ष हो सकता है। (७) जैसे कि एक केश के दूरसे अप्रत्यक्ष होने पर भी उसके समूहका प्रत्यक्ष होता है। (८) अगर यह कहें कि "एको स्थूलः घटः" ऐसी प्रतीति परमाणुपुञ्जवादमें नहीं हो सकती। ये भी नहीं कह सकते। जैसे कि एक एक धान्यमें तादृशव्यवहारप्रयोजक महत्त्वके न रहने परभी उनके समुदायके अभिप्रायसे यह एक महान् धान्यराशि है, ऐसा प्रयोग होता है। इसी प्रकार घटमें भी उक्त बुद्धि होजायगी।

(९) मैवं, परमाणोरतीन्द्रियत्वेन तत्समूहस्यापिप्रत्यक्षायोग्यत्वात्। (१०) दूरस्थकेशस्तु नातीन्द्रियः, सन्निधाने तस्यैव प्रत्यक्षत्वात्। (११) न च तदानीमदृश्यपरमाणुपुञ्जाद्दृश्यपरमाणुपुञ्जस्योत्पन्नत्वान्नप्रत्यक्षत्वे विरोध इति वाच्यम्, अदृश्यस्य दृश्यानुपादानत्वात्। (१२) अन्यथा चक्षुरूष्मादिसन्ततेरपि कदाचिद्दृश्यत्वप्रसङ्गात्॥

(९) समा०—ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि परमाणु अतीन्द्रिय है। इसलिये उनके समूहभी प्रत्यक्षके योग्य नहीं है। (१०) दूरस्थ केश अतीन्द्रिय नहीं है। क्योंकि आँखोंके समीप लानेसे उस केशका प्रत्यक्ष होता है। (११) शङ्का—प्रत्यक्ष कालमें नहीं देखने योग्य परमाणुपुञ्जसे देखने योग्य परमाणुपुञ्जरूप घटादिकी उत्पत्ति होती है। तव घटादिके प्रत्यक्ष होनेमें कोई विरोध नहीं है। समा०—अदृश्यपदार्थ तो दृश्यपदार्थका उपादान अर्थात् उत्पन्न करनेवाला नहीं हो सकता। (१२) यदि अदृश्य पदार्थसे दृश्य पदार्थकी भी उत्पत्ति हो तो अनुद्भूतरूपवाले तेजरूप चक्षुका तथा अनुद्भूत रूपवाली गर्मीका साक्षात्कार हो जाय।

(१३) नचातितप्ततैलादौ कथमदृश्यदहनसंततेर्दृश्यदहनोत्पत्तिरिति वाच्यम्, तत्र तदन्तःपातिभिरदृश्यदहनावयवैः स्थूलदहनोत्पत्तेरुपगमात्। (१४) न चादृश्येन द्व्यणुकेन कथं दृश्यत्रसरेणोरुत्पत्तिरितिवाच्यं, यतो न दृश्यत्वमदृश्यत्वं वा कस्यचित्स्वभावादाचक्ष्महे किंतु महत्त्वोद्भूतरूपादिकारणसमुदायवशाद् दृश्यत्वं तदभावे चादृश्यत्वम्। (१५) तथा च त्रसरेणोर्महत्त्वात्प्रत्यक्षत्वं न तु द्व्यणुकादेस्तदभावात् (१६) न हि त्वन्मतेऽपि संभवतीदं परमाणौ महत्त्वाभावात्॥

* (१३) शङ्का—यहां यह शङ्का होती है कि अत्यन्त तप्ततैलादिमें किस रीतिसे अदृश्य अग्निकी परम्परासे दृश्य अग्निकी उत्पत्ति होती है? समा०—इस स्थलमें तैलादिके भीतर रहनेवाले दृश्यही अग्निके भागोंसे स्थूल अग्निकी उत्पत्ति मानते हैं। इससे यही पर्य्यवसित हुआ कि अदृश्यपदार्थसे दृश्यपदार्थकी उत्पत्ति नहीं होती है। (१४) शङ्का—यदि अदृश्य से दृश्यकी उत्पत्ति नहीं हो तब अदृश्य द्व्यणुकसे दृश्यत्रसरेणुकी उत्पत्ति कैसे हुई? समा०—इसी हेतु हमलोग दृश्यत्व (दर्शनयोग्यत्व) और अदृश्यत्व (दर्शनायोग्यत्व) किसी पदार्थको स्वाभाविक नहीं मानते। किन्तु महत्त्वपरिमाण तथा उद्भूतरूपादि कारणके समुदायसे पदार्थोंमें दर्शनविषयकी योग्यता होती है। एवम् उनके (महत्त्वपरिमाण और उद्भूतरूपादि कारणके) अभावसे पदार्थोंमें दर्शनकी अयोग्यता होती है। (१५) त्रसरेणुमें महत्त्व परिमाण रहनेके कारण उसका प्रत्यक्ष होता है और द्व्यणुक तथा परमाणुमें महत्त्व परिमाण नहीं रहनेके कारण उन दोनोंका प्रत्यक्ष नहीं होता है। (१६) तुम्हारे मतमें तो यह नहीं हो सकता क्योंकि तुमने तो परमाणुपुञ्जही का प्रत्यक्ष माना है परमाणुमें महत्त्वरूप प्रत्यक्ष कारणका अभाव है।

(१७) इत्थं चावयविसिद्धौ तेषामुत्पादविनाशयोः प्रत्यक्षसिद्धत्वाद-नित्यत्वम् (१८) तेषां चावयवावयवधाराया अनन्तत्वे मेरुसर्षपयोरपि साम्यप्रसङ्गः।

(१७) ऐसा होनेपर यही पर्य्यवसित हुआ कि अवयवसे अवयवी भिन्न है और पूर्वोक्तविचारसे अवयवीरूपकार्य्यद्रव्य सिद्ध होनेपर उनके उत्पन्न और विनष्ट होनेके कारण उनमें अनित्यत्व भी सिद्ध है। (१८) उन कार्य्यरूप अवयवियोंकी अव्यवस्थित अवयवावयव-धारा विना किसी सीमाके अनन्त मानें तो मेरु (पर्वत) और सरसों इन दोनोंमें समानता हो जायगी। क्योंकि दोनोंके अवयव अनन्त हैं।

* (टि०) तात्पर्य यह है कि अगर कोई तैलादिसे भरी हुई कराही अग्निपर रख दी जाय तो वह तैलादि स्वयं गरम होते होते जल उठेगा। तैलादि वाले पात्रके नीचे वाला अग्निसंयोग द्वारा जो तैलादिके भीतर अनुद्भूत रूप गर्मी होती है वह किस प्रकार उद्भूत अग्नि के धधरेको उत्पन्न करता है।

(१९) अतः क्वचिद्विश्रामो वाच्यः। (२०) यत्र तु विश्राम स्तस्यानित्यत्वेऽसमवेतभावकार्योत्पत्तिप्रसङ्ग इति तस्य नित्यत्वम्। (२१) महत्परिमाणतारतम्यस्य गगनादौ विश्रान्तत्वमिवाणुपरिमाणतारतम्यस्यापि क्वचिद्विश्रान्तत्वमस्तीति तस्य परमाणुत्वसिद्धिः॥

(१९) इसलिये अवयवियोंकी अवयवावयव धाराका कहीं विश्राम मानना उचित है। (२०) जहां पर अवयवावयव धाराका विश्राम है अगर उसको अनित्य मानें तो विना समवायिकारणके भी भाव कार्यकी उत्पत्ति हो जायगी (जो सिद्धान्तसे विरुद्ध है) इसलिये अवयवावयविधाराके विश्रामवाले अवधिको नित्य मानना उचित है। (२१) जिस प्रकार महत्परिमाणके तारतम्यका आकाशादिमें विश्राम है उसीप्रकार अणुपरिमाणके तारतम्यका विश्राम जहां है वही परमाणु है (इस रीतिसे अन्त्यावयव परमाणु सिद्ध हुआ)।

(२२) न च त्रसरेणावेव विश्रामोऽस्त्विति वाच्यं, त्रसरेणुः सावयवः चाक्षुषद्रव्यत्वात् घटवदित्यनुमानेन तदवयवसिद्धौ, त्रसरेणोरवयवाः सावयवाः महदारम्भकत्वात् कपालवदित्यनुमानेन तदवयवसिद्धेः॥

(२२) शङ्का—अगर अणुपरिमाणतारतम्यका विश्राम त्रसरेणुहीमें मानलें तो क्या हानि है? समा०—जैसे घट नेत्रग्राह्यद्रव्य होनेके कारण सावयव है उसी प्रकार त्रसरेणुभी नेत्रग्राह्यद्रव्य होनेके कारण सावयव है। इस अनुमानके द्वारा त्रसरेणुके अवयव द्व्यणुक सिद्ध हुए। एवं द्व्यणुक—त्रसरेणुरूपमहान्कार्य्यके आरम्भक होनेके कारण सावयव है। जैसाकि कपाल घटरूपमहान्कार्य्यके आरम्भक होनेके कारण सावयव हैं। इस अनुमानसे द्व्यणुकका अवयव (अर्थात् त्रसरेणुके अवयवकाभी अवयव) परमाणु सिद्ध हुआ।

* (२३) न चेदमप्रयोजकम्, अपकृष्टमहत्त्वं प्रत्यनेकद्रव्यवत्त्वस्य प्रयोजकत्वात्। (२४) न चैवं क्रमेण तदवयवधारापि सिद्ध्येदिति वाच्यम्, अनवस्थाभयेन तदसिद्धेरिति॥

* (२३) शङ्का—अगर कहें कि महदारम्भकत्वहेतु अप्रयोजक है (व्यभिचारशङ्कानिवारकतर्क रहित है) समा०—सो नहीं कहसकते क्योंकि अपकृष्टमहत्त्वके प्रति अनेकद्रव्यत्व प्रयोजक है। याने अपकृष्टमहत्त्वके प्रति अणु भिन्न समवेतद्रव्यत्वको प्रयोजकता है। यही प्रयोज्य-प्रयोजकभाव अनुकूलतर्क है। (२४) अगर कहें कि इस प्रकार परमाणुके अवयवोंकी धाराभी सिद्ध हो जाय, यह ठीक नहीं है क्योंकि अनवस्थारूप दोषके भयसे तथा मेरु (पर्वत) और सरसोंके समान होनेके भयसे उसके अवयवोंकी धारा नहीं मानसकते हैं। यही पर्य्यवसित हुआ कि अणुपरिमाणके तारतम्यकी अवधि परमाणुनामका पदार्थ सिद्ध हुआ।

* (टि०) यहां पर व्यभिचारशङ्काका स्वरूप 'महदारम्भकत्वंसावयवत्वव्यभिचारि न वा' अर्थात् महदारम्भकत्व निरवयवमें रहता है अथवा नहीं? (२) यहां पर तर्कका स्वरूप महदारम्भकत्व यदि सावयवत्वका व्यभिचारी हो तब विभुत्वका समानाधिकरण हो जाय।

(२५) सा चेति । सा कार्यरूपा पृथिवी त्रिधेत्यर्थः । (२६) शरीरेन्द्रियविषयभेदादित्यर्थः ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

(२५) उस कार्यरूपपृथ्वीके तीन प्रभेद हैं । (२६) शरीर, इन्द्रिय और विषय ।

तत्र देहमुदाहरन्ति=उनमें शरीरका उदाहरण देते हैं ।

का० नं० ३८ ।

योनिजादि भवेद्देहमिन्द्रियं घ्राणलक्षणम् ।
विषयो द्व्यणुकादिश्च ब्रह्माण्डान्त उदाहृतः ॥

का० अर्थ ।

(क) योनिज और अयोनिज वस्तुएं शरीररूपपृथ्वी हैं ।

(ख) घ्राणादि इन्द्रियरूप पृथ्वी है ।

(ग) द्व्यणुकसे ब्रह्माण्डपर्यन्तविषयरूप पृथ्वी है ।

मुक्तावली ।

(१) योनिजमयोनिजं चेत्यर्थः । (२) योनिजमपि द्विविधं, जरायुजमण्डजं च । (३) जरायुजं मानुषादीनाम् । (४) अण्डजं सर्पादीनाम् । (५) अयोनिजं स्वेदजोद्भिज्जादिकम् । (६) स्वेदजाः कृमिदंशाद्याः । (७) उद्भिज्जास्तरुगुल्माद्याः । (८) नारकिणां शरीरमप्ययोनिजम् ॥

मु० अर्थ ।

(१) कारिकाके आदिपदसे अयोनिजका ग्रहण होता है । (२) योनिजशरीर भी जरायुज तथा अण्डज भेदसे दो प्रकारके हैं । (३) उनमें जरायुज मनुष्यादिके शरीर हैं । (४) सर्पादिके शरीर अण्डज हैं । (५) अयोनिजशरीर भी स्वेदज तथा उद्भिज्जादि भेदसे अनेक प्रकारके हैं । (६) पसीनासे उत्पन्न होनेवाले कीड़े फतिङ्गे और मच्छड़ इनसबोंके शरीर स्वेदज हैं । (७) भूमिको भेदकरके (भूमफोड़कर) उत्पन्न होनेवाले वृक्ष, लतादिरूपशरीर उद्भिज्ज हैं । (८) नरकमें रहनेवाले जीवोंके शरीर भी अयोनिज हैं ।

(९) नच मानुषादिशरीराणां पार्थिवत्वे किं मानमिति वाच्यं, गन्धादिमत्त्वस्यैव प्रमाणत्वात् ।

(९) शङ्का—मनुष्यादियोंका शरीर पृथ्वी है इसमें क्या प्रमाण है ? समा०—मनुष्यादिका शरीर गन्धसे अथवा शुक्लेतररूपसे युक्त होनेके कारण पृथिवी है, जैसे "घटादि" यह अनुमानही प्रमाण है ।

(१०) नच क्लेदोष्मादेरुपलम्भादाप्यत्वादिकमपि स्यादिति वाच्यं, तथा सति जलत्वपृथिवीत्वादिना संकरप्रसङ्गात् । (११) न च तर्हि जलीयत्वादिकमेवास्तु न तु पार्थिवत्वमिति वाच्यं, क्लेदादीनां विनाशेऽपि शरीरत्वेन प्रत्यभिज्ञानाद्गन्धाद्युपलब्धेश्च पृथिवीत्वसिद्धेः । (१२) तेन पार्थिवादि शरीरे जलादीनां निमित्तत्वमात्रं बोध्यम् ।

मु० अर्थ ।

(१०) शङ्का—मनुष्यादि के शरीरमें कभी२ पसीना तथा ज्वरादि होनेके कारण जल और उष्णताकी प्रतीति होती है । इसलिये मनुष्यादिके शरीर जलीय एवं तैजस क्यों नहीं कहते ? समा०—इस प्रकार मानलेनेसे जलत्व एवं तेजस्त्व जातिका पृथ्वीत्वजाति से साङ्कर्य्य हो जायगा । (११) शङ्का—इस स्थितिमें मनुष्यादि शरीरको पार्थिवशरीर नहीं मानकर जलीय अथवा तैजस ही शरीर मानलेना उचित है । समा०-(सो नहीं; क्योंकि) शरीरमें क्लेदके (गीलेपनके) नाश होजानेके बाद तथा उष्णता के नाश होजानेके बाद भी पुरुषादिके शरीरमें "यह वही देवदत्तका शरीर है" इत्याकारक शरीरत्वरूप से प्रत्यभिज्ञात्मक ज्ञान होनेके कारण, एवं उसी शरीरमें गन्धके तथा श्वेत से इतररूपके प्रत्यक्ष होनेके कारण मनुष्यादिके शरीर पार्थिवही सिद्ध होते हैं * (१२) इस प्रकार मनुष्यादि शरीरको पार्थिवशरीर सिद्ध होनेसे उक्तशरीरमें जलादि चारभूतोंको निमित्तकारणमात्र मानना ही उचित है ॥

(१३) शरीरत्वं तु न जातिः पृथिवीत्वादिना साङ्कर्यात् ।

† (१३) पृथ्वीत्वादिजातिके साथ साङ्कर्य होनेके कारण शरीरत्वजाति नहीं है किन्तु उपाधिमात्र है ।

(१४) किंतु चेष्टाश्रयत्वम् ।

(१४) चेष्टाके आश्रयको शरीर कहते हैं । (इष्टानिष्टप्राप्ति परिहारानुकूल व्यापारत्व या क्रियात्वका व्याप्यजातिविशेष चेष्टात्व है) ।

(१५) वृक्षादीनामपि चेष्टासत्त्वान्नाव्याप्तिः । (१६) नच वृक्षादेः शरीरत्वे किं मानमिति वाच्यम्, आध्यात्मिकवायुसंबन्धस्यप्रमाणत्वात् ।

(१५) वृक्षादिमें भी चेष्टा है अतः शरीरलक्षणमें अव्याप्ति दोष नहीं लगा । (१६) शङ्का—वृक्षादिभी शरीर रूप है इसमें क्या प्रमाण है ? समा०—वृक्षादिमें प्राणवायुके सम्बन्ध रहनेके कारण शरीररूपता है ।

* (टि०) मनुष्यादिका शरीर पांचों भूतोंसे बना हुआ है । उसका अभिप्राय यह नहीं है कि पांचो भूत उस शरीरका समवायिकारण हैं किन्तु एही अभिप्राय है कि वह पञ्चभूतसे जन्य मात्र है ।

† (टि०) साङ्कर्य यथा—शरीरत्व पृथ्वीत्वको छोड़कर जलादि शरीरमें रहता है । एवं पृथ्वीत्वशरीरत्वको छोड़कर घटादिमें रहता है और शरीरत्व एवं पृथ्वीत्व ये दोनों मनुष्यादि शरीरमें रहते हैं । इसलिये साङ्कर्य दोष लगा ।

(१७) तत्रैव किं मानमिति चेद्भग्नक्षतसंरोहणादिना तदनुमानात्।

(१७) शङ्का—वृक्षादिमें प्राणवायुका सम्बन्ध है इसीमें क्या प्रमाण है? समा०—वृक्षलतादि स्वयंही कभी टूट जानेपर और कट जाने परबढ़ता है। कभी भग्न, गाँठ और गलगण्डादिरोगों से युक्त हो जाते हैं। कभी अपनेमें हिलना या सम्बन्धकरता है इत्यादि हेतुओं से वृक्षादि में प्राण वायुका अनुमान होता है।

(१८) यदि हस्तादौ शरीरव्यवहारो न भवति तदान्त्यावयवित्वेन विशेषणीयम्। (१९) नच यत्र शरीरे चेष्टा न जाता तत्राव्याप्तिरिति वाच्यं, तादृशे प्रमाणाभावात्॥

(१८) शङ्का—यदि शरीरका लक्षण चेष्टाश्रयत्व करते हैं तो हस्तपादादिमें भी लक्षण चला जायगा। हस्तपादादिमें शरीर व्यवहार नहीं होनेसे लक्ष्यत्व नहीं है। समा०—इसलिये "अन्त्यावयवित्वेसति चेष्टाश्रयत्वम्" शरीरका लक्षण करना उचित है। अब हस्तपादादिमें लक्षण नहीं जायगा क्योंकि हस्तपादादि अन्त्यावयवी नहीं है। (१९) शङ्का—जिस शरीरमें चेष्टा उत्पन्न नहीं हुई उसमें अव्याप्ति होगी। समा०—तादृश शरीरमें कोई प्रमाणही नहीं है॥

(२०) अथवा चेष्टावदन्त्यावयविवृत्तिद्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वमन्त्यावयविमात्रवृत्तिचेष्टावद्वृत्तिजातिमत्त्वं वा तत्। (२१) मानुषत्वचैत्रत्वादिजातिमादाय लक्षणसमन्वयः। (२२) नच नृसिंहशरीरे कथं लक्षणसमन्वयः, तत्र नृसिंहत्वस्यैकव्यक्तिवृत्तितया जातित्वाभावाज्जलीयतैजसशरीरवृत्तितया देवत्वस्यापि जातित्वाभावादिति वाच्यं, कल्पभेदेन नृसिंहशरीरस्य नानात्वेन नृसिंहत्वजात्या लक्षणसमन्वयात्॥

(२०) अथवा चेष्टावाला जो अन्त्यावयवी उसमें रहनेवाली जो द्रव्यत्वकी व्याप्य-जाति, (मनुष्यत्व चैत्रत्वादि) तादृश जातिमत्त्व, अथवा अन्त्यावयवीमात्रमें वृत्ति और चेष्टा वद् वृत्ति जो जाति (मनुष्यत्वादि) तादृश जातिमत्त्व शरीरका निर्दुष्ट लक्षण है। इस प्रकार जातिघटित लक्षण करनेसे चेष्टोत्पत्ति रहित शरीर मानलेने पर भी उसमें दोष नहीं होगा। (२१) मनुष्यत्व एवं चैत्रत्वादि जातिको लेकर लक्षण का समन्वय हो सकता है। * (२२) शङ्का—नृसिंहके शरीरमें लक्षणसमन्वय किस प्रकार होगा? क्योंकि नृसिंहत्व-धर्म एक व्यक्तिमात्रमें रहनेके कारण जातिरूप नहीं है। नृसिंहशरीरमें देवत्वजातिको लेकरके भी लक्षण समन्वय नहीं हो सकता है क्योंकि जलीय और तैजसशरीरमें रहनेके कारण देवत्वधर्म जातिरूपही नहीं है। समा०—अनेक कल्पोंके भेदसे नृसिंहके भी शरीर को अनेक होनेके कारण नृसिंहत्वजाति होनेसे लक्षणसमन्वय हो सकता है।

---

* (टि०) संकर दोष लगनेके कारण देवत्व धर्म जातिरूप नहीं है किन्तु उपाधिमात्र रूप है। यथा—देवत्व धर्मको छोड़कर तेजस्त्व धर्म—सुवर्णादि तैजसपदार्थोंमें है, एवं तेजस्त्वको छोड़कर देवत्व जलीय देवताओंमें है, और तेजस्त्व एवं देवत्व ये दोनों तैजस देवताओंके शरीरमें हैं। इसलिये देवत्व धर्म जाति रूप नहीं है।

(२३) इन्द्रियमिति। (२४) घ्राणेन्द्रियं पार्थिवमित्यर्थः। (२५) पार्थिवत्वं कथमिति चेदित्थम्। (२६) घ्राणेन्द्रियं पार्थिवं रूपादिषु मध्ये गन्धस्यैव व्यञ्जकत्वात्। (२७) कुङ्कुमगन्धाभिव्यञ्जकगोघृतवत्। (२८) नच दृष्टान्ते स्वकीयरूपादिव्यञ्जकत्वादसिद्धिरिति वाच्यं, परकीयरूपाद्यव्यञ्जकत्वस्य तदर्थत्वात्।

(२३) पाठधारण। (२४) घ्राणेन्द्रिय पार्थिवइन्द्रिय है। (२५) शङ्का—घ्राणेन्द्रिय पार्थिव है इसमें क्या प्रमाण है? (२६, २७) समा०—जिस प्रकार गोघृत कुंकुमके गन्धमात्रके (नकि रूपादियोंका) साक्षात्कारमें जनक है और पृथ्वी भी है, इसप्रकार घ्राणेन्द्रिय भी रूपादियोंके मध्यमें केवल गन्धमात्रके साक्षात्कारमें जनक होनेके कारण पार्थिव सिद्ध होता है। (२८) शङ्का—(आप घृतको दृष्टान्त नहीं दे सकते; क्योंकि घृत कुङ्कुमके केवल गन्धका बोधक नहीं है) किन्तु अपने रूपादिका भी बोधक है। इसलिये उसमें हेतु को न रहने से दृष्टान्तासिद्धि दोष लगा। समा०—परकीय-रूपादिका अव्यञ्जक होकर गन्ध का व्यञ्जक हो यही पूर्वोक्त हेतुका (गन्धमात्र व्यञ्जक का) अर्थ करना समुचित है (इस प्रकार अर्थ करने से घृत-रूप दृष्टान्त में हेतु असिद्ध नहीं हुआ)। यथा—घृत अपने से भिन्न (कुङ्कुम) के रूपादि का व्यञ्जक नहीं होकर केवल उसके गन्ध ही का व्यञ्जक है।

(२९) नच नवशरावगन्धव्यञ्जकजलेऽनैकान्तिकत्वमिति वाच्यं, तस्य सक्तुरसाभिव्यञ्जकत्वात्। (३०) यद्वा परकियेति न देयं, वायूपनीत-सुरभिभागस्य दृष्टान्तत्वसंभवात्। (३१) नच घ्राणेन्द्रियसन्निकर्षस्य गन्धमात्रव्यञ्जकत्वात् तत्र व्यभिचार इति वाच्यं, द्रव्यत्वे सतीति विशेषणात्।

(२९) शङ्का—उक्तहेतु जलमें व्यभिचारी है क्योंकि जलभी नवीन शरावके गन्धही का अभिव्यञ्जक है और पृथ्वी नहीं है। समा०—जल नवीन शरावके गन्धहीका अभिव्यञ्जक नहीं है किन्तु सत्तूके रसका भी व्यञ्जक है। इसलिये उक्त हेतु जलमें नहीं रहनेके कारण व्यभिचारी नहीं हुआ। (३०) यदि लाघवके लिये उक्त हेतु में परकीय शब्दका निवेश नहीं करें तब घृत को छोड़कर वायुसेलाये हुये देशान्तर में प्राप्त सुगन्धित द्रव्यके भाग को दृष्टान्त बनाना चाहिये। क्योंकि वह सुगन्धित भाग रूपादियोंके मध्यमें केवल गन्धहीका व्यञ्जक है और पार्थिवभी है। (३१) शङ्का—यदि उक्त गन्धमात्र व्यञ्जकत्व हेतुकरें तो घ्राणेन्द्रियको जो गन्धके साथ स्वसंयुक्त समवाय सम्बन्ध है उस सम्बन्धमें व्यभिचार होजायगा क्योंकि वह सम्बन्धकेवल गन्ध ही का व्यञ्जक है। समा०—उक्त हेतुमें 'द्रव्यत्वेसति' यह विशेषण देते हैं अर्थात् 'द्रव्यत्वेसति गन्धमात्रव्यञ्जकत्वम्' निर्दुष्ट हेतु है। द्रव्य होकर रूपादियों के मध्यमें गन्धहीका व्यञ्जक हो वही पृथ्वी है। इस प्रकार अनुमान करने पर घ्राणेन्द्रियको जो अपने विषयके साथ सन्निकर्ष है उसमें व्यभिचार नहीं होगा, क्योंकि वह द्रव्य नहीं है।

(३२) विषय इति । (३३) उपभोगसाधनं विषयः । (३४) सर्वमेव हि कार्यजातमदृष्टाधीनम्, यत्कार्यं यददृष्टाधीनं तत्तदुपभोगं साक्षात्परंपरया वा जनयत्येव । (३५) नहि बीजप्रयोजनाभ्यां विना कस्यचिदुत्पत्तिरस्ति । (३६) तेन द्व्यणुकादिब्रह्माण्डान्तं सर्वमेव विषयो भवति । (३७) शरीरेन्द्रिययोर्विषयत्वेऽपि प्रकारान्तरोपन्यासः शिष्यबुद्धिवैशद्यार्थः॥३८॥

(३२) पाठधारण। * (३३) सुखादि साक्षात्काररूप उपभोगके प्रयोजक का नाम विषय है। (३४) सकल कार्य स्थावरजङ्गमादि जीवोंके अदृष्टाधीन है। जो कार्य जिस जीव के अदृष्टके अधीन है वह कार्य उस जीवके उपभोग को साक्षात् या परम्परा से उत्पन्न करता ही है। (३५) संसार में कारण और प्रयोजनके बिना किसी वस्तु की उत्पत्ति नहीं है। इसलिये द्व्यणुकसे लेकर ब्रह्माण्डपर्यन्त सभी वस्तु विषय हैं। † (३७) यद्यपि उक्त लक्षण के अनुसार शरीर और इन्द्रियका भी विषय में ही परिगणन होसकता है। किन्तु केवल शिष्य की बुद्धि को विशुद्ध करने के लिये भिन्न रूप से शरीर और इन्द्रियका परिगणन किया गया है।

इति पृथ्वी निरूपणम्।

जलं निरूपयति=जलका निरूपण करते हैं।

का० नं ३९

वर्णः शुक्लो रसस्पर्शौ जले मधुरशीतलौ ।
स्नेहस्तत्र द्रवत्वं तु सांसिद्धिकमुदाहृतम् ॥

का० अर्थ।

जलमें शुक्लरूप, मधुररस, शीतस्पर्श, स्नेह (चिकनापन) और सांसिद्धिक द्रवत्व रहते हैं ऐसा कहा गया है।

मुक्तावली ।

(१) स्नेहसमवायिकारणतावच्छेदकतया जलत्वजातिः सिध्यति । (२) यद्यपि स्नेहत्वं नित्यानित्यवृत्तितया न कार्यतावच्छेदकं तथापि जन्यस्नेहत्वं तथा बोध्यम् ।

‡ (१) स्नेहरूप कार्यकी जो जलमें रहनेवाली समवायिकारणता उस कारणता का अवच्छेदक होने के कारण जलत्वरूपजाति सिद्ध होती है। (२) यद्यपि स्नेहत्वरूप धर्म नित्य तथा अनित्य दोनों तरहके स्नेहोंमें रहनेके कारण कार्यतावच्छेदक नहीं हो सकता। तथापि स्नेहत्वमें जन्यस्नेहत्वरूपधर्मको कार्यतावच्छेदक समझना चाहिये।

* (टि०) साक्षात् अथवा परम्परासे कार्य सम्पादन करनेवालेका नाम प्रयोजक है।
† (टि०) शरीरेन्द्रिय भिन्नत्वेसति, जन्यत्वेसति उपभोग साधनम् विषयः।

‡ (टि०) जलत्वजातिसिद्धिमें अनुमानका स्वरूप-'समवायसम्बन्धावच्छिन्न, स्नेहत्वावच्छिन्नकार्यता-निरूपिता तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नाकारणताकिंचिद्धर्मावच्छिन्नाकारणतात्वात्' इत्यादि।

(३) अथ परमाणौ जलत्वं न स्यात्तत्र जन्यस्नेहाभावात्, नित्यस्य च स्वरूपयोग्यत्वे फलावश्यंभावनियमादिति चेत्, न जन्यस्नेहजनकतावच्छेदकतया जन्यजलत्वजातेःसिद्धौ, तदवच्छिन्नजनकतावच्छेदकतया जलत्वजातिसिद्धेः। (४) शुक्लरूपमेव जलस्येति दर्शयितुमुक्तं वर्णः शुक्ल इति। (५) न तु शुक्लरूपवत्त्वं लक्षणम्॥

मु० अर्थ

* (३) शङ्का—ऐसाकरनेसे परमाणुमें जलत्व जातिकी सिद्धि नहीं होगी। क्योंकि उसमें जन्यस्नेह नहीं है। अतएव जन्यस्नेहकी समवायिकारणता भी उसमें नहीं रह सकती है। यदि जन्यस्नेहरूपकार्यके प्रति जलीयपरमाणुमें स्वरूपयोग्यतारूपकारणता मानें तो उसमें कभी न कभी जन्यस्नेहकी उत्पत्ति अवश्य होनी चाहिये। क्योंकि नियम है कि "स्वरूपयोग्यतारूप कारणताके आश्रय नित्य पदार्थमें फलकी उत्पत्ति अवश्य होती है" किन्तु उक्त स्थलमें फलकी उत्पत्ति नहीं होनेके कारण स्नेहरूप कार्यकी समवायिकारणता परमाणु में न रही। तब उसका अवच्छेदक एक अनुगत जलत्व जाति नहीं हुई।

समा०—जन्यस्नेहमें वृत्ति जो जन्यता, उस जन्यतासे निरूपिता जो जन्यजल निष्ठाजनकता, तादृश जनकताके अवच्छेदक होनेके कारण जन्यजल मात्रमें जन्यजलत्व जातिकी सिद्धि होती है। पुनः जन्यजलत्वसे अवच्छिन्नाजन्यजलमें वृत्ति जो जन्यता उस जन्यतासे निरूपिता जो सकल जलनिष्ठाजनकता, तादृश जनकताका अवच्छेदक होनेके कारण नित्य और अनित्य जल साधारण जलत्वजातिकी सिद्धिहोती है, जलका अन्त्यावयवी नहीं होता है। (४) जलका शुक्लही रूपहै यह दिखलानेके हेतु 'वर्णः शुक्लः' यह ग्रन्थ है। (५) किन्तु शुक्लरूपवत्त्व जलका लक्षण नहीं है। स्फटिकादि में अतिव्याप्ति हो जाती है।

(६) अथवा नैमित्तिकद्रवत्ववदवृत्तिरूपवद्वृत्तिद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमत्त्वम्, अभास्वरशुक्लेतररूपासमानाधिकरणरूपवदवृत्ति द्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमत्त्वं वा तदर्थः।

† (६) (क) नैमित्तिक द्रवत्वाश्रय (पृथ्वी और तेज) में नहीं रहनेवाली तथा रूपाधिकरणमें वृत्ति जो द्रव्यत्वकी साक्षात् व्याप्य जाति (जलत्व) तादृश जातिमत्त्व जलका

* (टि०) (क) जन्यस्नेह में जन्यजलत्वजातिकी सिद्धिके अनुमानका स्वरूपः—'समवायसम्बन्धावच्छिन्न-जन्यस्नेहत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपिता तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्ना जन्यजलनिष्ठाया कारणता (जन्यस्नेहसमवायिकारणता) सा किञ्चिद्धर्मावच्छिन्ना कारणतात्वात्' इत्यादि।

(ख) जलत्व जातिकी सिद्धिके अनुमानका स्वरूप:—'समवायसम्बन्धावच्छिन्नजन्यजलत्वावच्छिन्न-कार्यतानिरूपिता तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नाश्रयनिष्ठा कारणता (जलसमवायिकारणता) सा किञ्चिद्धर्मा-वच्छिन्ना कारणतात्वात्' इत्यादि।

† (टि०) तादृश जातिमत्त्वमात्र कहनेसे घटादि में अतिव्याप्ति वारणार्थ साक्षात् पद-का उपादान किया गया। इसप्रकार आगे भी समझना चाहिये।

लक्षण है। अथवा अभास्वर (प्रकाश नहीं करने वाले) शुक्लरूपसे इतर जो नील, पीतादि तथा प्रकाशक श्वेत रूप उनका असमानाधिकरण होकर रूपवत्में वृत्ति जो द्रव्यत्वकी साचात् व्याप्यजाति, (जलत्व) तादृश जातिमत्त्व ही 'वर्णः शुक्लः' इत्यादि ग्रन्थका अर्थ है।

(७) तेन स्फटिकादौ नातिव्याप्तिः ॥

(७) इसप्रकार लक्षण करनेसे स्फटिकादिमें अतिव्याप्ति नहीं हुई। अन्यथा शुक्लरूपवत्वमात्र लक्षण करनेसे स्फटिकादिमें शुक्लवर्णमात्र रहनेके कारण अतिव्याप्ति होती थी ॥

(८) रसस्पर्शाविति। (९) जलस्य मधुर एव रसः शीत एव स्पर्शः। (१०) तिक्तरसवदवृत्तिमधुरवद्वृत्तिद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमत्त्वं तदर्थः। (११) तेन शर्करादौ नातिव्याप्तिः। (१२) शीतेतरस्पर्शवदवृत्तिस्पर्शवद्वृत्तिद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमत्त्वं तदर्थः। (१३) ननु शुक्लरूपवत्त्वमेवेतिकुतः, कालिन्दीजलादौ नीलिमोपलब्धेरिति चेत् न, नीलजनकतावच्छेदिकायाः पृथिवीत्वजातेरभावाज्जले नीलरूपासंभवात्। (१४) कालिन्दीजले नीलत्वप्रतीतिस्त्वाश्रयौपाधिकी। (१५) अत एव वियति विक्षेपे धवलिमोपलब्धिः ॥

(८) जलके रस और स्पर्श पर विचार। (९) जल का रस मधुरमात्र एवं स्पर्श शीत मात्र है। ऐसा लक्षण करने से शक्कर इत्यादिमें अतिव्याप्ति होती है। (१०) इसलिये तिक्तादि रसवत्में अवृत्ति तथा मधुर रसवत्में वृत्ति जो द्रव्यत्वकी साक्षाद्व्याप्यजाति (जलत्व) तादृश जातिमत्त्व जलका लक्षण है। (११) इस प्रकार लक्षण करने से शक्कर इत्यादिमेंअतिव्याप्ति नहीं होगी। क्योंकि शक्कर इत्यादि पार्थिव है। इनमें रहनेवाली पृथिवीत्व जाति तिक्तादि रसवालेमें रहनेवाली भीहै। इसलिये जातिघटित लक्षणकी यहां प्रसक्ति नहीं है। (१२) शीतसे भिन्न जो स्पर्श उस स्पर्शके अधिकरणमें नहीं रहनेवाली पुनः स्पर्शाधिकरण में रहनेवाली जो द्रव्यत्व की साक्षाद्व्याप्यजाति (जलत्व) तादृश जातिमत्त्व उसका अर्थ है। अर्थात् तादृश जातिमत्त्व जलका लक्षण है। (१३) शङ्का—जलका शुक्लही रूप है इसका निश्चय कैसे होगा। क्योंकि यमुना के जलादिमें नीलरूप देखनेमें आता है। समा०—नीलरूप निष्ठकार्यतानिरूपिता जो कारणता तादृशकारणतावच्छेदक जो पृथ्वीत्व जाति इस जातिके जलमें अभाव होने के कारण जलमें नील रूप नहीं हो सकता है। (१४) यमुनाके जलमें जो नील रूपकी प्रतीति होती है वह केवल औपाधिक है। यमुनाके जलमें नील रूपकी प्रतीति का कारण यही है कि उस जलको अपने आश्रयसे यमुनाधाराके नीचेवाली नील पृथ्वी से सम्बन्ध है। सारांश यह हुआ कि यमुनाजलमें नीलता स्वाश्रय (पृथ्वी) संयुक्तत्व सम्बन्ध से रहती है नकि समवाय सम्बन्धसे। (१५) इसी कारण अगर यमुना के जलको ऊपर फेकें तो उसमें श्वेत ही रूपकी उपलब्धि होती है ॥

(१६) अथ जले माधुर्य्ये किं मानम्, नहि प्रत्यक्षेण कोऽपि रसस्तत्रानुभूयते । (१७) नच नारिकेलजलादौ माधुर्य्यमुपलभ्यत एवेति वाच्यं, तस्याश्रयोपाधिकत्वात् । (१८) अन्यथा जम्बीररसादावम्लाद्युपलब्धेरम्लादिमत्त्वमपि स्यादिति चेत् न, हरीतक्यादिभक्षणस्य जलरसव्यञ्जकत्वात् । (१९) नच हरीतक्यामेव जलोष्मसंयोगाद्रसान्तरोत्पत्तिरिति वाच्यं, कल्पनागौरवात् ।

(१६) शङ्का—जलमें मधुर ही रस है, इसमें क्या प्रमाण है ? क्योंकि जलमें तो किसी रसका प्रत्यक्ष नहीं होता है । (१७) शङ्का की पुष्टि—यदि कोई कहें कि नारिकेलके जलादिमें मधुररसका प्रत्यक्ष होताहै (यह समाधान युक्त नहीं) । क्योंकि वह आश्रयके सम्बन्धसे उपाधिजन्य है । यथा—नारिकेल जलका आश्रय जो नारिकेलरूप पृथ्वी है वह पृथ्वी मधुर है और उस—मधुर पृथ्वीसे नारिकेलके जलका सम्बन्ध होनेके कारण उस नारिकेलजलमें मधुर रसका प्रत्यक्ष होता है । (१८) अन्यथा नीबूके जलमें भी अम्लादि के रासन प्रत्यक्ष होने के कारण जलमें खट्टा रसभी मानना चाहिये । समा०—ऐसा नहीं, जलमें छिपा हुआ रस है । इसलिये सामान्यतौरसे पता नहीं चलता है । हर्रे या धात्री खाने के बाद जल पीनेसे उसमें मधुरही रसके प्रत्यक्ष होनेसे जलमें मधुर रसका होना सिद्ध हुआ । (१९) शङ्का—अगर हर्रेमेंही जल तथा ऊष्मा (मुखकी गरमी=भाफ) के सम्बन्ध से रसान्तर (मधुर) की उत्पत्ति होती है याने हर्रे में कषायरसका नाश और मधुर रसकी उत्पत्ति मानी जाय, नकि जलमें मधुर रसकी उत्पति मानी जाय तो क्या क्षति है ? समा०—कल्पना गौरव होनेके कारण ऐसा मानना उचित नहीं है । कल्पना गौरवका स्वरूप—यह मानी हुई बात है कि फलादिरूप पृथ्वीमें रस तथा रूपकी उत्पत्ति (पाकवश) तेजसंयोग से होती है । किन्तु अगर हर्रेकी उदाहरणता के अनुरोध से तेज संयोगके स्थान में जल संयोग से हर्रेमें रसान्तरकी उत्पत्ति मानें तो यह एक भिन्नही कार्य्य-कारण-भाव मानना हुआ जो गौरवकारक है ।

(२०) पृथिवीत्वस्याम्लादिजनकतावच्छेदकत्वाच्च जले नाम्लादिकम् । (२१) जम्बीररसादौ त्वाश्रयौपाधिकी तथा प्रतीतिः (२२) एवं

(२०) पृथ्वीत्वको "अम्लादिनिष्ठजन्यतानिरूपितजनकतावच्छेदक" होनेके कारण अम्लादि धर्म जलमें नहीं है । (२१) जम्बीर फलान्तर्गत रसाश्रय जो पृथ्वी उसमें अम्लरस रहनेके हेतु जम्बीर रसमें खट्टापनका भान होताहै । (२२) एवं उक्त प्रकारसे

जन्यशीतस्पर्शजनकतावच्छेदकं जन्यजलत्वं तदवच्छिन्नजनकतावच्छेदकं तु जलत्वं बोध्यम्। (२३) घृष्टचन्दनादौ तु शैत्योपलब्धिश्चन्दनान्तर्वर्तिशीततरसलिलस्यैव। (२४) तेजःसंयोगाज्जले उष्णप्रतीतिरौपाधिकी स्फुटैव, तत्र पाकासंभवात्॥

"जन्यशीतस्पर्शनिष्ठ जन्यतानिरूपितजनकतावच्छेदकजन्यजलत्वजाति" अन्य जलमें है और "जन्यजलनिष्ठजन्यतानिरूपितजनकतावच्छेदकजलत्व" जाति है। इसप्रकारसे भी नित्यानित्य-साधारण जलत्व जातिकी सिद्धि समझनी चाहिये। (२३) शङ्का—घिसेहुए चन्दनमें भी शीत-स्पर्शका प्रत्यक्ष होता है (इसलिये चन्दनमें अतिव्याप्ति हुई)। समा०—चन्दनमें शीत-स्पर्शकी प्रतीति चन्दनान्तर्गत शीततरजल प्रयुक्तही है (नके चन्दनप्रयुक्त)। (२४) जलमें पाक नहीं होनेके कारण जलमें जो उष्णताकी प्रतीति होती है वह तो केवल अग्नि आदिके संयोगसे औपाधिकही है यह स्पष्ट है।

(२५) स्नेहस्तत्रेति। (२६) घृतादावपितदन्तर्वर्तिजलस्यैवस्नेहः, जलस्य स्नेहसमवायिकारणत्वात्। (२७) तेन जल एव स्नेह इति मन्तव्यम्।

(२५) जलहीमें स्नेह है। (२६) घृतादिमें भी जो स्नेह प्रतीतहोताहै वह घृतके अन्दर रहनेवाले जलहीका है। क्योंकि स्नेहका समवायिकारण जलमात्र है। (२७) इस हेतु जलहीमें स्नेह मानना उचित है।

(२८) द्रवत्वमिति (२९) सांसिद्धिकद्रवत्वत्वं जातिविशेषः प्रत्यक्षसिद्धः। (३०) तदवच्छिन्नजनकतावच्छेदकमपि तदेवेति भावः। (३१) तैलादावपि जलस्य द्रवत्वं स्नेहप्रकर्षेण च दहनानुकूल्यमिति वक्ष्यति॥

(२८) जलीयद्रवत्वपर विचार। (२९) सांसिद्धिकद्रवत्वधर्म एक जाति विशेष है यह प्रत्यक्षसिद्ध है। * (३०) "सांसिद्धिकद्रवत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपित कारणतावच्छेदक" भी जलत्व है। (३१) तैलादिमें भी जो सांसिद्धिकद्रवत्व मालूम पड़ता है वह द्रवत्व भी तैलान्तर्वर्त्ती जलही का है। शङ्का—अगर जलहीका द्रवत्व है तो तेलमें आग क्यों लगती है? समा०—तेलमें स्नेह बहुत अधिक है जिससे दहनानुकूलता है। इस बातपर ग्रन्थकार आगे विचार करते हैं।

* (टि) विशेष पूर्ववत् समझना चाहिये।

का० नं० ४०।

नित्यतादि प्रथमवत्किन्तु देहमयोनिजम्।
इन्द्रियं रसनं सिन्धुहिमादिर्विषयो मतः॥

का० अर्थ

प्रथमवत् (अर्थात् पृथ्वीके समान) जल भी नित्य अनित्य भेदसे दो प्रकारका होता है। किन्तु पृथ्वीसे जलमें इतने ही विशेष है कि जलीयशरीर अयोनिजमात्र है। जलीय इन्द्रिय रसनेन्द्रिय है और समुद्र बर्फ प्रभृति (नदी, सरोवर, वनौरी इत्यादि) सब विषय रूप जल है।

मुक्तावली।

(१) प्रथमवदिति। (२) पृथिव्या इवेत्यर्थः। (३) तथाहि। (४) जलं द्विविधं नित्यमनित्यं च। (५) परमाणुरूपं नित्यं द्व्यणुकादिकं सर्वमनित्यमवयवसमवेतं च। अनित्यमपि त्रिविधं, शरीरेन्द्रियविषयभेदात्॥

मु० अर्थ।

(१+५) परमाणुरूप जल नित्य है और द्व्यणुकसे लेकर समुद्रादिपर्यन्त सब जल अनित्य है और अपने अपने अवयवमें समवायसम्बन्धसे रहता है। (६) अनित्य जलभी शरीर इन्द्रिय और विषय के भेदसे तीन प्रकारका होता है।

(७) पृथिवीतो यो विशेषस्तमाह। (८) किंत्विति। (९) देहमयोनिजम् अयोनिजमेवेत्यर्थः। (१०) जलीयशरीरं वरुणलोके प्रसिद्धम्॥

(७) पृथ्वीकी अपेक्षा से जलमें जो विशेष है वह कहते हैं। (८+९) जलीय शरीर अयोनिजमात्र होता है। (१०) जलीय शरीर वरुणलोकमें प्रसिद्ध है।

(११) इन्द्रियमिति। (१२) जलीयमित्यर्थः। तथाहि (१३) रसनं जलीयं गन्धाद्यव्यञ्जकत्वेसति रसव्यञ्जकत्वात्, सक्तुरसाभिव्यञ्जकोदकवत्।

(११+१२) जलीय इन्द्रियपर विचार। (१३) यथा—सतुआसे घोला हुआ जल सतुएके गन्धादिका बोधक नहीं है, किन्तु उस के रसमात्रका बोधक है। इसीप्रकार रसनेन्द्रियभी (जिह्वाभी) गन्धादिका अव्यञ्जक और रसका व्यञ्जक होनेके कारण जल है।

(१४) रसनेन्द्रियसंनिकर्षे व्यभिचारवारणाय द्रव्यत्वं देयम् ॥

(१४) "गन्धासमानाधिकरणरसवत्त्व" को जलत्वका साधक कियाहै ऐसा करनेसे रस और रसनेन्द्रियका जो सन्निकर्ष उसमें व्यभिचार लगता है क्योंकि उक्त सन्निकर्ष गन्धादि गुणोंका असंबन्धक है और रसका बोधक भी है। इसलिये "गन्धासमानाधिकरणत्वे सति द्रव्यत्वे सति रसवत्त्व" निर्दुष्ट हेतु है। ऐसा करनेसे उक्त सन्निकर्षमें व्यभिचार नहीं होगा। क्योंकि सन्निकर्ष द्रव्य नहीं है।

(१५) विषयं दर्शयति । (१६) सिन्धुहिमादिरिति (१७) सिन्धुः समुद्रः । हिमं तुषारः । (१८) आदिपदात्सरित्कासारकरकादिः सर्वोऽपि ग्राह्यः ।

(१५) विषयरूप जलको दिखलाते हैं। (१६ + १७) सिन्धुसे समुद्र और हिमसे तुषार (पाला) समझना चाहिए। (१८) आदि पदसे नदी, सरोवर, पोखरा (तालाब) इत्यादि सब समझना चाहिये ॥

(१९) नच हिमकरकयोः कठिनत्वात्पार्थिवत्वमिति वाच्यम्, ऊष्मणा विलीनस्य तस्य जलत्वस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वात् । (२०) यद्द्रव्यं यद्द्रव्यध्वंसजन्यमिति व्याप्तेर्जलोपादानोपादेयत्वसिद्धेः ।

(१९) अगर कहें कि पाला और पनौरी इत्यादि कठिन होनेके कारण पृथ्वी है। ऐसा नहीं कहसकते क्योंकि तेजके संयोगसे गलाहुआ पाला, पनौरी इत्यादि जलरूपही साक्षात् प्रतीत होता है। (२०) जो (जलरूप) द्रव्य जिस (पाला, पनौरी इत्यादिरूप) द्रव्यके ध्वंस से उत्पन्न होता है। वह (जलरूप) द्रव्य उसके (पाला, पनौरी इत्यादिके) उपादानरूप द्रव्य का उपादेय है ऐसी व्याप्ति है। इसलिये जलके उपादानका उपादेय होनेके कारण पाला, पनौरी इत्यादि जलरूपही सिद्ध हुआ नकि पार्थिव रूप।

(२१) अदृष्टविशेषेण वा द्रवत्वप्रतिरोधात् । (२२) करकादीनां काठिन्यप्रत्ययस्य भ्रान्तित्वात् ॥

(२१) शङ्का— अगर पाला, पनौरी इत्यादिमें काठिन्य पार्थिव आधार होनेसे नहीं है तो क्यों हुआ? समा०— पाला, पनौरी इत्यादिमें काठिन्य दो प्रकारसे हो सकता है। (क) स्थावर, जङ्गमरूप प्राणीके सुखदुःखजनक अदृष्ट विशेषसे अथवा (ख) जलके द्रवत्वके प्रतिरोधसे हो सकता है। * (२२) पाला, पनौरी इत्यादि में काठिन्यका प्रत्यक्ष भ्रमरूप है।

* (टि०) भ्रान्तिर्नाम तदभाववति तत्प्रकारकं ज्ञानम् ।

तेजो निरूपयति=तेजका निरूपण करते हैं।

का० नं० ४१

उष्णः स्पर्शस्तेजसस्तु स्याद्रूपं शुक्लभास्वरम्।
नैमित्तिकं द्रवत्वं तु नित्यतादि च पूर्ववत्॥

तेजका स्पर्श ऊष्ण है। रूप भास्वर शुक्ल (परकीय रूपादिका व्यञ्जक) है द्रवत्व नैमित्तिक है। (अग्नि संयोगादिसे द्रवत्व होता है)। एवं नित्यता और अनित्यता जलके समान है॥

मुक्तावली

(१) उष्णत्वं स्पर्शनिष्ठो जातिविशेषः प्रत्यक्षसिद्धः। (२) इत्थंच जन्योष्णस्पर्शसमवायिकारणतावच्छेदकं तेजस्त्वं जातिविशेषः। (३) तस्य परमाणुवृत्तित्वं तु जलत्वस्येवानुसंधेयम्। (४) नचोष्णस्पर्शवत्त्वं चन्द्रकिरणादावव्याप्तमिति वाच्यं, तत्राप्युष्णत्वस्य सत्त्वात्। (५) किंतु तदन्तःपातिजलस्पर्शेनाभिभवादग्रहः। (६) एवं रत्नकिरणादौ पार्थिवस्पर्शेनाभिभवाच्चक्षुरादौ चानुद्भूतत्वादग्रहः॥

मु० अर्थ।

(१) उष्ण स्पर्शमें रहनेवाला ऊष्णत्व धर्म जाति विशेष रूप प्रत्यक्ष सिद्धहै। (२) तदवच्छिन्नकार्यतानिरूपित जो तेजोनिष्ठसमवायिकारणता तादृश कारणतावच्छेदक तेजस्त्वजातिविशेष है। (३) उस तेजस्त्व जातिको तेजः परमाणुमें वृत्तिता नहीं है। क्योंकि परमाणुकी उष्णता जन्य नहीं है। इसलिये जिसप्रकार नित्य और अनित्य दोनोंमें जलत्व जातिकी सिद्धि की गई है। उसी प्रकार तेजस्त्व जातिकी भी सिद्धि जाननी चाहिये। यथा (तेजःपरमाणुमें जन्यउष्णस्पर्श नहीं है इसलिये जन्यस्पर्शनिष्ठजन्यतानिरूपितजनकतावच्छेदक परमाणु साधरण तेजस्त्व जातिकी सिद्धि नहीं हो सकती। इसलिये जन्य उष्णस्पर्शनिष्ठजन्यतानिरूपितजनकतावच्छेदकत्व रूपसे जन्यतेजस्त्व जातिकी सिद्धिकरें और जन्यतेजस्त्वावच्छिन्नजन्यतानिरूपितजनकतावच्छेदकत्व रूपसे तेजस्त्व जाति की सिद्धि करें। इसी प्रकार तेजस्त्व जातिकी सिद्धि होती है) (४) शङ्का—"उष्णस्पर्शवत्व" तेजका लक्षण करनेसे चन्द्रमाके किरणादिमें अव्याप्ति हो जायगी? समा०—ऐसा नहीं; क्योंकि चन्द्रमाके किरणादिमें भी उष्णस्पर्शवत्व है तो अवश्य। (५) किन्तु चन्द्रकिरणादिके मध्य जलका अंश अधिक रहनेके कारण उष्णस्पर्श दवजाता है और इसलिये उस स्पर्शका पता नहीं चलता है। (६) इसी प्रकार रत्नके किरणादिमें भी पार्थिव स्पर्शसे तेजःस्पर्श दवजाता है और इसलिये उक्त रत्नके किरणादिमें तेजःस्पर्शका पता नहीं चलता है। एवं चक्षुरादि इन्द्रियमें अनुद्भूत स्पर्श है। इसलिये उक्त चक्षुरादिमें भी तेजःस्पर्शका पता नहीं चलता है।

(७) रूपमित्यादि। (८) वैश्वानरे मरकतकिरणादौ च पार्थिवरूपेणाभिभवाच्छुक्लरूपाग्रहः (९) ननु तद्रूपाग्रहे धर्मिणोऽपि चाक्षुषत्वं न स्यादिति चेत् न, अन्यदीयरूपेणापि धर्मिणो ग्रहसंभवात्, शङ्खस्येव पित्तपीतिम्ना। (१०) वह्नेस्तु शुक्लरूपं नाभिभूतं किंतु तदीयं शुक्लत्वमभिभूतमित्यन्ये ॥

(७) तेजके रूपादि पर विचार। (८) प्रज्वलित अग्निमें और पन्ना इत्यादिके (श्वेत रंगसे भिन्न रंगवाले मणिके) किरणादिमें पार्थिवरूपसे तेजका वास्तविक शुक्लरूप दब जानेके कारण उक्त तेजके श्वेतरूपका प्रत्यक्ष नहीं होता है। (९) शङ्का—तेजके वास्तव रूपका ग्रहण नहीं होता ऐसे तेज रूपके धर्मी अग्नि आदिका भी चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं होगा अगर ऐसा कहे तो नहीं; क्योंकि समा०— धर्मीका चाक्षुषप्रत्यक्ष किसी दूसरे धर्मीके रूपसेभी हो सकता है। जैसाकि पित्त दोषसे उत्पन्न कामलादिरोग वालेको नेत्रोंके द्वारा सफेद शंख पीला दीखता है। उसी प्रकार अग्निका पार्थिव रूपसे प्रत्यक्ष हो सकता है। (१०) कोई ऐसाभी कहतेहैं कि उक्त तेजरूप मण्यादिमें तेजके शुक्लरूपका अभिभव नहीं हुआ है किन्तु उस शुक्लके शुक्लत्व जातिका अभिभव हुआ है ॥

(११) नैमित्तिकमिति। (१२) सुवर्णादिरूपे तेजसि तत्सत्त्वात्। (१३) न च नैमित्तिकद्रवत्वं न लक्षणं दहनादावव्याप्तं घृतादावतिव्याप्तं चेति वाच्यं, पृथिव्यवृत्तिनैमित्तिकद्रवत्ववद्वृत्तिद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमत्त्वस्यविवक्षितत्वात् ॥

(११) नैमित्तिक द्रवत्वपर विचार। (१२) सोना, चान्दी इत्यादि तेज पदार्थों में नैमित्तिकद्रवत्व रहता है। * (१३) शङ्का— तेज पदार्थका 'नैमित्तिकद्रवत्व' लक्षण होना उचित नहीं है। क्योंकि अग्नि आदिमें अव्याप्ति और घृतादिमें अतिव्याप्ति होती है। समा०- पृथ्वीमें नहीं रहने वाली और नैमित्तिक द्रवत्ववत्में रहनेवाली जो द्रव्यत्व साक्षात् व्याप्य-जाति (तेजस्त्व) तादृश जातिमत्त्व 'नैमित्तिकद्रवत्व' का अर्थ है ऐसा वक्ताका अभिप्राय है। इसप्रकार अर्थ करनेसे उक्त अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोष नहीं लगेगा।

(१४) पूर्ववदिति। जलस्येवेत्यर्थः। तथाहि। (१५) तत् द्विविधं नित्यमनित्यं च।

(१४) तेज पदार्थके नित्यत्वादि विचार जलके समान है (१५) यथा—तेज पदार्थ दो प्रकारका होता है। नित्य और अनित्य।

* (टि) साक्षात् क्यों दियागया?
तेजस्त्व लक्षणके अभिप्रायसे साक्षात्पद दियागयाहै। तेजके लक्षणमें एक त्व प्रत्यय लगादेनेसे तेजस्त्वका लक्षण होताहै। उसमें यदि साक्षात्पद नहीं दियाजाय तो सुवर्णत्व में अतिव्याप्ति होजायगी।

(१६) नित्यं परमाणुरूपं तदन्यदनित्यम्, अवयवि च। (१७) तच्च त्रिधा, शरीरेन्द्रियविषयभेदात्। (१८) शरीरमयोनिजमेव। (१९) तच्च सूर्यलोकादौ प्रसिद्धम्॥

(१६) नित्य तेज परमाणुरूप है। उससे भिन्न सब तेज अनित्य है तथा अवयवि-रूप है। (१७) वह अनित्यतेज शरीर, इन्द्रिय और विषय के भेदसे तीन प्रकारका होता है। (१८) तेजःशरीर अयोनिजही होता है। (१९) वह अयोनिजशरीर सूर्य लोकादिमें प्रसिद्ध है।

अत्र यो विशेषस्तमाह=जलकी अपेक्षा तेजः पदार्थ में जो विशेष है सो कहते हैं।

का० नं० ४२।

इन्द्रियं नयनं वह्निस्वर्णादिर्विषयो मतः।

का० अर्थ।

तैजसइन्द्रिय नेत्र है और अग्नि तथा सोना, चान्दी, लोहा, इत्यादि धातु, तैजस विषय है। यह शास्त्रोंका अभिमत है।

मुक्तावली।

(१) ननु चक्षुषस्तैजसत्वे किं मानमिति चेत्, चक्षुस्तैजसं परकीय-स्पर्शाद्यव्यञ्जकत्वे सति परकीयरूपव्यञ्जकत्वात् प्रदीपवत्। (२) प्रदीपस्य स्वीयस्पर्शव्यञ्जकत्वादत्र दृष्टान्तेऽव्याप्तिवारणाय प्रथमं परकीयेति। (३) घटादेः स्वीयरूपव्यञ्जकत्वाद्व्यभिचारवारणाय द्वितीयं परकीयेति। (४) अथ-वा प्रभाया दृष्टान्तत्वसंभवादाद्यं परकीयेति न देयम्।

मु० अर्थ।

(१) शङ्का— नेत्र तैजस पदार्थ है इसमें क्या प्रमाण है? समा०—परकीय (घट-पटादिके) स्पर्शादिका ग्राहक न होकर केवल परकीय (घटादिके) रूपका ग्राहक होनेके कारण प्रदीप के समान नेत्रभी तैजस पदार्थ है। (२) प्रदीपके अपने स्पर्शका ग्राहक होनेके कारण दृष्टान्त (प्रदीप) में हेतुके न रहने से दृष्टान्तासिद्धि हो जायगी। इसलिये प्रथम "परकीय" विशेषण उक्त हेतुमें दियागया है। (३) परकीय स्पर्शादिका ग्राहक न होकर अपने रूपका (विषयतासम्बन्ध से) ग्राहक होनेके कारण घटादि में व्यभिचार दोष लगता है। उस व्यभिचारके वारण करनेके हेतु उक्त हेतुमें द्वितीय "परकीय" शब्दका निवेश है। (४) अथवा "प्रदीप" दृष्टान्त नहीं देकर "प्रभा" ही को दृष्टान्त बनावें तो उक्त अनुमानमें पहला "परकीय" शब्द नहीं देनेपरभी दोष नहीं है। (क्योंकि प्रभामें अपने स्पर्शादिका भी ग्राहकत्व नहीं है)।

(५) चक्षुः सन्निकर्षे व्यभिचारवारणाय द्रव्यत्वं देयम् ।

(५) (तेजस्त्वका साधक "स्पर्शाद्य व्यञ्जकत्वेसति परकीयरूपव्यञ्जकत्व" करनेसे भी) नेत्र घटादिमें जो संयोग होता है उस संयोगमें व्यभिचार हो जायगा। क्योंकि वह संयोग प्रभाके समान स्पर्शादिका अव्यञ्जक होते हुए परकीय रूपका व्यञ्जक है। इसहेतु हेतुमें द्रव्यत्वका निवेश करना चाहिये। अब संयोगमें व्यभिचार नहीं होगा, क्योंकि संयोग द्रव्य नहीं है किन्तु गुण है। निकृष्ट हेतु स्वरूप—'स्पर्शाद्यव्यञ्जकत्वेसति द्रव्यत्वेसति परकीयरूप व्यञ्जकत्व' है॥

(६) विषयं दर्शयति। वह्निरिति। ननु सुवर्णस्य तैजसत्वे किं मानमिति चेत् न। (८) सुवर्णं तैजसम्, असति प्रतिबन्धके अत्यन्तानलसंयोगेऽप्यनुच्छिद्यमानजन्यद्रवत्वात् यन्नैवं तन्नैवम्, यथा पृथिवीति (९) न चाप्रयोजकं, पृथिवीद्रवत्वस्य जन्यजलद्रवत्वस्य चात्यन्ताग्निसंयोगनाश्यत्वात्। (१०) ननु पीतिमगुरुत्वाश्रयस्य पार्थिवभागस्यापि तदानीं द्रुतत्वात्तेन व्यभिचार इति चेत् न, जलमध्यस्थमषीद्रावद्वत्तस्याद्रुतत्वात्!

(६) तैजस पदार्थका विषय दिखलाते हैं। यथा वह्नि इत्यादि। (७) सुवर्णादि तैजस पदार्थ हैं इसमें क्या प्रमाण है? * (८) सुवर्ण तैजस पदार्थ है यथा—घृत तैलादिको अगर जलकेसाथ मिलादें और अत्यन्तअग्नि संयोग करदें तो घृत तैलादि जलनेका प्रतिबन्धक जो जल है वह जल पहले जल जायगा पीछे घृततैलादि। उसके बाद द्रवत्वका नाश होताहै। ऐसी सिलसिला पार्थिव द्रव्यके द्रवत्वमें पायी जातीहै; किन्तु सोना, चान्दी इत्यादि धातुओंमें जलनेके प्रतिबन्धकके अभावमेंभी अत्यन्त अग्निका संयोग करनेपरभी अनुच्छिद्यमान (अनश्वर) जन्यद्रवत्व रहनेके कारण तैजसत्व है। जो तेज नहीं है। वह जलनेके प्रतिबन्धकके अभावमें भी अत्यन्तअग्नि संयोग होनेपर अनुच्छिद्यमान द्रवत्ववाला नहीं है। अर्थात् वह तेज नहीं है जिसका द्रवीभाव नाश होजाता है। यथा पृथ्वी। (९) शङ्का—अगर कहें कि पूर्वोक्त हेतु अप्रयोजक है (अर्थात् अनुकूलतर्क रहित है) इसलिए सुवर्णके पार्थिव पदार्थ होनेसेभी पूर्वोक्त हेतु सुवर्ण में रहेभी तो दोषही क्या? समा०—अग्निसंयोगसे घृत लाक्षादि रूप पृथ्वीके तथा जन्य जलके द्रवीभावके नाश होजानेके कारण पूर्वोक्त अनुमान में अनुकूल तर्क है। (१०) शङ्का—(अत्यन्ताग्नि संयोगसे) जब सोनेका द्रवीभाव होता रहताहै तब उसीके साथ पीतरूप और गुरुत्व इन दोनोंके आश्रय पृथ्वीभागका भी द्रवण होता है। अतः पार्थिव भागमें हेतु रहगया। साध्य नहीं है। व्यभिचार हुआ। समा०—ऐसी बात नहीं है। जिसप्रकार जलमें स्याहीरूप पार्थिव भागोंको घोल देनेसे प्रतीत होताहै कि जलके समान स्याहीरूप पार्थिवभागोंका भी द्रवीभाव हुआहै किन्तु वास्तविकमें द्रवीभाव नहीं होताहै। इसीप्रकार अत्यन्ताग्नि संयोगसे सुवर्णके द्रवीभाव होनेके समय पीत रूपादिका आश्रय पार्थिवभागका भी द्रवीभाव होताहै यह भ्रम मात्रहै। किन्तु वास्तविकमें उस पार्थिव भागका द्रवीभाव नहीं होता। अतएव व्यभिचार नहीं लगा।

* (टि०) व्यभिचार शङ्काका स्वरूप—
असति प्रतिबन्धके अत्यन्तानल संयोगेऽप्यनुच्छिद्यमान जन्यद्रवत्वं तैजसत्व व्यभिचारि न वा?
तर्कका स्वरूप—
यादृश द्रवत्वं यदि तैजसत्वव्यभिचारिस्यात्। तर्हि क्वचित् पृथिव्यां जले वा उपलभ्येत॥

(११) अपरे तु पीतिमाश्रयस्य अत्यन्ताग्निसंयोगेपि पूर्वरूपापराधृत्ति-दर्शनात्तत्प्रतिबन्धकं विजातीयद्रवद्रव्यं कल्प्यते। (१२+१३) तथाहि। अत्यन्ताग्निसंयोगे पीतिमगुरुत्वाश्रयः विजातीयरूपप्रतिबन्धकद्रवद्रव्यसंयुक्तः, अत्यन्ताग्निसंयोगे सत्यपि पूर्वरूपविजातीयरूपानधिकरणत्वात्, जलमध्यस्थ-पीतपटवत्। (१४)तस्य च पृथिवीजलभिन्नत्वंस्यतेजस्त्वनियमात्॥

(११) कईएक आचार्योंका ऐसाभी मत है। यथा अत्यन्ततीव्र अग्निके संयोग करने परभी सुवर्णसंयुक्त और पीत रूपके आश्रयजो पार्थिवभाग है उसमें पूर्व रूपका नाश और रूपान्तर की उत्पत्ति नहीं देखी जाती अतः कल्पना करतेहैं कि कोई विलक्षण द्रव द्रव्य (तेज) हैं। जो उक्त पार्थिव भागके रूप नाश और रूपान्तरकी उत्पत्तिकेप्रति प्रतिबन्धक है। (१२+१३) * जैसे जलसे भरेहुए पात्रमें पीला कपड़ा डालकर उस पात्रको तीव्र अग्निसे संयोग कर दिया जाय तो भी उक्त पीले कपड़ेमें जलरूप द्रव द्रव्यके संयोग रहनेके कारण पूर्वरूपका नाश और विजातीय रूपान्तरकी उत्पत्ति नहीं देखीजाती। उसी प्रकार; अत्यन्ताग्नि संयोग करनेपर भी पीतरूप तथा गुरुत्व के आश्रय सुवर्णस्थ पार्थिव भागके भी पूर्वरूपका नाश और विजातीय रूपान्तरकी उत्पत्ति नहीं होनेके कारण वह (सुवर्णस्थ पृथ्वीभाग) विजातीय रूपका प्रतिबन्धक द्रव द्रव्यसे संयुक्त है। (१४) वह विलक्षण द्रव द्रव्य न तो पृथ्वी है न जल है, इसलिये तैजसपदार्थ सिद्ध होता है॥

वायुं निरूपयति=वायुका निरूपण करते हैं।

का० नं० ४२, ४३।

अपाकजोऽनुष्णाशीतस्पर्शस्तु पवने मतः॥
तिर्यग्गमनवानेष ज्ञेयः स्पर्शादि लिङ्गकः।
पूर्ववन्नित्यतादयुक्तं देहव्यापि त्वगिन्द्रियम्॥

का० अर्थ।

वायु अपाकज अनुष्णाशीत स्पर्शवान् है। तिर्यग्गमनवान् (टेढ़ी चाल चलने वाला) है। और स्पर्शादि हेतुओंसे अनुमान करने योग्य (एतावता उसका प्रत्यक्ष नहीं होता है) । उसकी नित्यता और अनित्यता पूर्ववत् जाननी चाहिये। शरीरमें व्यापी जो त्वचा वही वायवीय इन्द्रिय है।

* (टि०) अगर पीले (एतावता किसी रंगवाले) कपड़े को तीव्रअग्नि के साथ संयोग करदिया जाय तो पूर्व पीतादि रूपका नाश हो जायगा और रूपान्तर भस्मादि रूपकी उत्पत्ति हो जायगी। किन्तु अगर उक्त रंग वाले कपड़ेको किसी पात्रमें जल मध्यस्थ करदिया जाय और उस पात्रको तीव्राग्निसे संयोग करदिया जाय तो पात्रान्तर्गत जल उक्त पात्रान्तर्गत कपड़ेके पूर्व रूपनाशकेप्रति प्रतिबन्धक होता है। इसको स्मरणकरकेही अनुमानका स्वरूप देखना चाहिये।

मुक्तावली।

(१) अनुष्णाशीतस्पर्शस्य पृथिव्यामपि सत्त्वादुक्तमपाकज इति। (२) अपाकजस्पर्शस्य जलादावपि सत्त्वादुक्तमनुष्णाशीत इति। (३) तेन वायवीयो विजातीयः स्पर्शो दर्शितः (४) तज्जनकतावच्छेदकं वायुत्वमिति भावः।

मु० अर्थ।

(१) अगर केवल 'अनुष्णाशीतस्पर्शवत्त्व' वायुका लक्षण करें तो पृथ्वीमें अतिव्याप्ति हो जायगी। इसलिये अपाकज कहागया। अपाकज अनुष्णाशीतस्पर्शवत्त्व लक्षण करनेसे पृथ्वीमें अतिव्याप्ति नहीं होगी। क्योंकि पृथ्वीका अनुष्णाशीत स्पर्श पाकज है। (२) यदि वायुका लक्षण अपाकजस्पर्शवत्त्व मात्र करें तो जलादिमें अतिव्याप्ति हो जायगी। इसलिये अनुष्णाशीत शब्दका निवेश करना पड़ा। अपाकज अनुष्णाशीतस्पर्शवत्त्व है। लक्षण करनेसे जलादिमें अतिव्याप्ति नहीं होगी। क्योंकि जलादिमें अनुष्णाशीतस्पर्श नहीं है (३) इसप्रकार लक्षण करनेसे पृथ्वी, जल और अग्निकी अपेक्षासे वायुमें एक विलक्षण ही स्पर्श दिखाया है। (४) अपाकज अनुष्णाशीतस्पर्शनिष्ठजन्यतानिरूपितजनकता वायुमें है। इस जनकताका अवच्छेदक वायुत्व जाति है।

(५) एष वायुः स्पर्शादिलिङ्गकः। (६) वायुर्हि स्पर्शशब्दधृतिकम्पैरनुमीयते विजातीयस्पर्शेन विलक्षणशब्देन तृणादीनां धृत्या शाखादीनां कम्पेन च वायोरनुमानात् (७) यथाच वायोर्न प्रत्यक्षं तथाग्रे वक्ष्यते।

(५) वायुका प्रत्यक्ष नहीं होता है किन्तु स्पर्शादि हेतुओंसे अनुमान होता है। (६) स्पर्श, शब्द, धारण और कम्पन ये चार हेतु वायुके अनुमापक हैं। (एतावता उक्त चार हेतुओंसे वायुका अनुमान कियाजाता है) — (क) विजातीय स्पर्शसे, (ख) विलक्षण शब्दसे, (ग) (आकाशमें) तृण, तूर, इत्यादि पदार्थोंके धारणसे, (घ) वृक्षादियों के कम्पनसे, वायुका आनुमानिक ज्ञान होता है। (७) * वायुका प्रत्यक्ष नहीं होता है। यह आत्मनिरूपणसे आगे कहाजायगा— (क) जो यह रूपवाले द्रव्यमें समवायसम्बन्धसे रहने वाला स्पर्श है, यह पृथ्वी समवेतस्पर्शकी तरह स्पर्श होनेके कारण किसीका आश्रित है। (ख) रूपवाले द्रव्यका अभिघात नहीं होनेसे भी जो यह पुष्पपत्रादि में शब्द सन्तति होती है। यह शब्द सन्तति द्रव्य सम्बन्धी शब्द सन्तति होनेके कारण दण्डाभिघातसे भेरी शब्दकी तरह अवयवोंके न विभाग होनेसे

* (टि०) (क) योऽयम् रूपवद् द्रव्या समवेतः स्पर्शः सकचिदाश्रितः, स्पर्शत्वात् पृथ्वी समवेत स्पर्शवत्।

(ख) असति रूपवत् द्रव्याभिघाते योऽयम् पर्णादिषु शब्दसन्तानः स स्पर्शवत् वेगवद् द्रव्यसंयोगजन्यः। अविभज्यमानावयव द्रव्यसम्बन्धि शब्द सन्तानत्वात् दण्डाभिहत भेरी शब्द सन्तानवत्।

भी किसी स्पर्शवाले तथा वेग वाले द्रव्यके संयोगसे जन्य है। (ग) आकाश में तृण तूलादि की धृति अनधिष्ठितद्रव्य धृति होनेके कारण नौका धृतिके समान किसी स्पर्शवाले तथा वेगवाले द्रव्यके संयोग-रूप हेतुसे जन्य है। (घ) रूपवाले द्रव्यके अभिघातके विना भी जो तृणशाखादिमें क्रियाहै वह क्रिया विलक्षण क्रिया होनेके कारण नदी प्रवाहमें वहते हुए तृणादिगत क्रियाके समान, किसी स्पर्शवाले तथा वेगवाले द्रव्यके अभिघातसे जन्यहै। इस प्रकार चारो अनुमानोंका स्वरूप जानना चाहिये।

(८) पूर्ववदिति। (९) वायुर्द्विविधो नित्योऽनित्यश्च। (१०) परमाणुरूपो नित्यस्तदन्योऽनित्योऽवयवसमवेतश्च। (११) सोऽपि त्रिविधः, शरीरेन्द्रियविषयभेदात्। (१२) तत्र शरीरमयोनिजं पिशाचादीनाम्। (१३) परंतु जलीय तैजसावयवीयशरीराणां पार्थिवभागोपष्टम्भाडुपभोगक्षमत्वं जलादीनां प्राधान्याज्जलीयत्वादिकमिति। (१४) अत्र यो विशेषस्तमाह।

(८) वायुकी नित्यता अनित्यता पूर्ववत् जाननी चाहिये। (९) वायु नित्य और अनित्य भेदसे दो प्रकार के हैं (१०) परमाणुरूपवायु नित्य है। और उससे भिन्न (कार्यरूपवायु) अनित्य है। और समवायसम्बन्धसे अपने अवयवोंमें रहते हैं। (११) वह अनित्यवायु शरीर, इन्द्रिय, और विषयके भेदसे तीन प्रकारके होते हैं। (१२) उन तीनोंमें वायवीयशरीर अयोनिज होता है जो पिशाचादिओंका है। (उक्त वायवीयशरीर वायुलोकमें प्रसिद्ध है)। (१३) परन्तु पार्थिवशरीरकेप्रति जलीय, तैजस और वायवीय शरीरमें कुछ विशेष है। यथा जबतक जलीय, तैजस और वायवीय शरीरोंमें कुछ पार्थिव अंशका योग नहीं होगा तबतक इनतीनों शरीरोंको विषयोंके भोगकी योग्यता नहीं होती। शङ्का—"यह जलीयशरीर है" ऐसा प्रयोग क्यों होताहै? समा०—इस प्रयोगका यह अभिप्राय नहीं है कि इस शरीरमें पार्थिवअंश नहीं है। किन्तु इसका अभिप्राय यही है कि इस शरीरमें जलका अंश अधिक है। (१४) पूर्वापेक्षया इसमें विशेष बताते हैं।

(१५) देहव्यापीति। (१६) शरीरव्यापकं स्पर्शग्राहकमिन्द्रियं त्वक्। (१७) तच्च वायवीयं रूपादिषु मध्ये स्पर्शस्यैवाभिव्यञ्जकत्वात्। (१८) अङ्गसङ्गिसलिलशैत्याभिव्यञ्जकव्यजनपवनवत्॥

(१५ + १६) शरीरमात्रमें व्यापक तथा स्पर्शका ग्राहक त्वगिन्द्रिय है। (१७) वह त्वगिन्द्रिय रूपादिके मध्यमें केवल स्पर्शके ग्राहक होनेके कारण वायवीय है। (१८) जैसाकि पंखेकी हवा शरीरके साथ रहनेवाले स्वेदरूप जलके केवल शैत्यस्पर्शहीका ग्राहक है। उसीप्रकार वायवीयइन्द्रिय (त्वगिन्द्रिय) स्पर्शमात्रका ग्राहक है।

(ग) नभसि तृणतूल स्तनयित्नु विमानादीनां धृतिः स्पर्शवत् वेगवद् द्रव्यसंयोगहेतुका अस्मदाद्यनधिष्ठितद्रव्य धृतित्वात् नौका धृतिवत्।

(घ) रूपवद्द्रव्याभिघातमन्तरेण तृणे कर्म—स्पर्शवद् वेगवद्द्रव्याभिघातजन्यम् विजातीयकर्मत्वात् नदी पूराहत काशादि कर्म वदित्यनुमानानिबोध्यानि।

विषयं दर्शयति=विषयको दिखलाते हैं।

का० नं० ४४।

प्राणादिस्तु महावायुपर्यन्तो विषयो मतः।

का० अर्थ।

प्राणादिसे लेकर महावायुपर्यन्त वायवीयविषय है।

मुक्तावली

(१) यद्यप्यनित्यो वायुश्चतुर्विधः तस्य चतुर्थो विधा प्राणादिरित्युक्तमाकरे। (२) तथापि संक्षेपादत्र त्रैविध्यमुक्तम्। (३) प्राणस्त्वेक एव हृदादिनानास्थानवशान्मुखनिर्गमादिनानाक्रियावशाच्च नानासंज्ञां लभत इति॥

मु० अर्थ।

(१) यद्यपि अनित्यवायु चार प्रकारके हैं उसका चौथा प्रभेद प्राणादि पञ्चवायु है जिसका विस्तार प्रशस्तपाद भाष्यमें कहा है (२) चारप्रभेद रहने परभी केवल संक्षेपके हेतु इस ग्रन्थमें अनित्य वायुके तीन ही प्रभेद कहे हैं। (३) प्राणवायु तो एकही है किन्तु हृदयादि नानास्थान के भेद से तथा मुख, नासिका द्वारा पूरक, कुम्भक और रेचक इत्यादि नाना क्रियाके भेदसे (प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान) इत्यादि नाना संज्ञाको लाभ करते हैं।

इति वायुनिरूपणम्।

आकाशं निरूपयति=आकाश का निरूपण करते हैं।

का० नं० ४४।

आकाशस्य तु विज्ञेयः शब्दो वैशेषिको गुणः॥

आकाश का विशेषगुण शब्द है।

मुक्तावली।

(१) आकाशकालदिशामेकैकव्यक्तित्वादाकाशत्वादिकं न जातिः। (२) किंतु आकाशत्वं शब्दाश्रयत्वम्। (३) वैशेषिक इति कथनं तु विशेषगुणान्तरव्यवच्छेदाय।

मु० अर्थ

(१) आकाश, काल, दिशा, ये सब एक २ मात्र है। इसहेतु आकाशत्व, कालत्व और दिशात्व जाति नहीं हैं। (२) किन्तु आकाशत्व समवायसम्बन्धसे शब्दाश्रयत्व रूप है। (३) कारिकामें "वैशेषिक" शब्दका उल्लेख तो केवल विशेष गुणान्तरका व्यवच्छेदक है (याने आकाशमें शब्दको छोड़कर कोइभी दूसरा विशेष गुण नहीं है)

(४) एतेन प्रमाणमपि दर्शितम् ।

(४) इस कथनसे आकाशका साधक अनुमानप्रमाण दिखलाया है।

(५) तथाहि। (६) शब्दो विशेषगुणः चक्षुर्ग्रहणायोग्यबहिरिन्द्रियग्राह्यजातिमत्त्वात् स्पर्शवत् । (७) शब्दो द्रव्यसमवेतो गुणत्वात् संयोगवत् । (८) इत्यनुमानेन शब्दस्य द्रव्यसमवेतत्वे सिद्धे, शब्दो न स्पर्शवद्विशेषगुणः अग्निसंयोगासमवायिकारणकत्वाभावे सत्यकारणगुणपूर्वकप्रत्यक्षत्वात् सुखवत् । (९) पाकजरूपादौ व्यभिचारवारणाय सत्यन्तम् । (१०) पटरूपादौ व्यभिचारवारणायाकारणगुणपूर्वकेति । (११) जलपरमाणुरूपादौ व्यभिचारवारणाय प्रत्यक्षेति ॥

(६) शब्द आँखो से नहीं देखने योग्य होकर तथा बाह्यइन्द्रियसे ग्रहणयोग्य शब्दत्व जातिका आश्रय होनेके कारण स्पर्शके समान विशेषगुण है। (७) शब्दगुण होनेके कारण संयोगके समान द्रव्यमें समवायसम्बन्धसे रहता है। (८) * उक्त अनुमानसे शब्दका द्रव्यमें समवायसम्बन्धसे रहना सिद्धहो जानेपर शब्द, अग्नि संयोग रूप, असमवायिकारण से जन्य नहीं है और अकारण गुण पूर्वक है, एवं प्रत्यक्ष विषय है। इसलिये सुखकी तरह स्पर्शवाले द्रव्योंका विशेषगुण नहीं है। (९) अगर केवल "शब्दो न स्पर्शवद्विशेषगुणा अकारणगुणपूर्वक, प्रत्यक्षत्वात् सुखवत्" इतनाही अनुमान करें। "अग्निसंयोगासमवायिकारणकत्वाभावे सति" इस विशेषणको हटादें तो पृथ्वीके पाकजरूपादि में व्यभिचार होगा। क्योंकि अकारणगुणपूर्वक प्रत्यक्षत्व तो पृथ्वीनिष्ठपाकज रूपादि में भी है। इसलिये सत्यन्तविशेषण दिया गया। देनेपर व्यभिचार नहीं होगा क्योंकि उक्त रूपादिमें "अग्निसंयोगासमवायिकारणकत्वाभाव" नहीं है। (१०) यदि उक्त अनुमानमें "अग्निसंयोगासमवायिकारणकत्वाभावे सति प्रत्यक्ष" मात्र हेतुरखें तो पट रूपादिमें व्यभिचार होगा। क्योंकि पटके रूपादिमें अग्निसंयोगासमवायिकारणकत्वाभाव और प्रत्यक्षत्व है। इसलिये "अकारणगुणपूर्वकत्व" भी हेतुमें रखाहै। (११) एवं यदि उक्त अनुमानके हेतुमें "प्रत्यक्ष" पद नहीं दें तो जलीयपरमाणुके रूपादिमें व्यभिचार होगा। क्योंकि जलीयपरमाणुके रूपादि "अग्निसंयोगासमवायिकारणकत्वाभावविशिष्ट अकारणगुणपूर्वकत्व" का आश्रयहै। 'प्रत्यक्ष' पद देनेसे उसका प्रत्यक्ष नहीं होता। इसलिये व्यभिचार नहीं हुआ ॥

* (टि०) इस अनुमानसे यही साधन हुआ कि शब्द पृथ्वी आदि चारके विशेषगुण नहीं है ।

(१२) शब्दो न दिक्काल मनसां गुणः विशेष गुणत्वात्। (१३) नात्म विशेषगुणो बहिरिन्द्रियग्राह्यत्वाद्रूपवत्। (१४) इत्थं च शब्दाधिकरणं नवमंद्रव्यं गगनात्मकं सिध्यति। (१५) नच वाय्ववयवेषु सूक्ष्म शब्दक्रमेण वायौ कारणगुणपूर्वकः शब्द उत्पद्यतामिति वाच्यम् अयावद्द्रव्यभावित्वेन वायुविशेषगुणत्वाभावात्॥

(१२) शब्द विशेषगुण होनेके कारण दिशा काल तथा मनका भी गुण नहीं है। (१३) एवं शब्द बाह्येन्द्रियसे ग्रहणकी योग्यतावाला होनेके कारण रूपके समान आत्माका विशेषगुणभी नहीं है। (१४) इसप्रकार शब्दका अधिकरण नवाँ द्रव्य 'गगन' नामका सिद्धहोता है। (१५) * शङ्का—यदि ऐसा माना जाय कि वायुका गुण शब्द है, पहले वायु के अवयवोंमें सूक्ष्म शब्दकी उत्पत्ति होती है। पश्चात् क्रमशः अवयवीरूपवायुमें कारण गुण पूर्वक शब्द उत्पन्न होता है तो क्या हानि? समा०—शब्दके अयावद्द्रव्य भावी होनेके कारण वायुका विशेषगुण नहीं है। (टिप्पणीसे स्पष्ट होगा)।

तत्र शरीरस्य विषयस्य चाभावादिन्द्रियं दर्शयति—

आकाशरूप शरीर तथा आकाशरूप विषय अप्रसिद्ध होनेके कारण कारिकामें आकाश रूप इन्द्रियकोही ग्रन्थकार दिखारहे हैं।

का० नं० ४५।

इंद्रियं तु भवेच्छ्रोत्रमेकः सन्नप्युपाधितः।

का० अर्थ

आकाशका इन्द्रिय, श्रोत्रेन्द्रिय है। आकाश एक रहने परभी उपाधि भेदसे नाना प्रतीत होता है॥

---

* (टि०) (क) जोगुण आश्रय के ध्वंसपर्य्यन्त रहता है वह यावद्द्रव्यभावी गुण कहाता है। यथा पृथिव्यादि चारके गुण अपने अपने आश्रयके नाश होते हैं स्वयंभी नष्ट होजाते हैं। इसलिये इन चारोंके गुण 'यावद्द्रव्य भावी' कहाते हैं।

(ख) जोगुण अपने आश्रयके नाश विनाही स्वयं नष्ट होजाता है वह गुण 'अयावद्द्रव्यभावी' गुण कहाता है। यथा शब्द अपने आश्रयका (आकाशका) नाश हुये विनाही स्वयं नष्ट होजाता है। इसलिये वह 'अयावद्द्रव्यभावी' गुण कहाताहै।

(ग) वायुका विशेषगुण यावद्द्रव्य भावी है (एतावता अपने आश्रयके नाशसे स्वयंभी नष्ट हो जाता है) किन्तु शब्द 'अयावद्द्रव्य भावी' विशेषगुण है। अर्थात् शब्दके आश्रय द्रव्यके नाशसे जन्य जो नाश उस नाशका प्रतियोगी शब्द नहीं है। इसलिये शब्द वायुका विशेषगुणभी नहीं हैं।

मुक्तावली।

(१) नन्वाकाशं लाघवादेकं सिद्धं श्रोत्रं तु पुरुषभेदेन भिन्नं कथमाकाशं स्यादिति चेत्तत्राह। एकः सन्नपीत्यादि। (२) आकाश एक एव सन्नपि उपाधेः कर्णशष्कुल्यादेर्भेदाद्भिन्नं श्रोत्रात्मकं भवतीत्यर्थः॥

मु० अर्थ

(१) शङ्का—लाघवके हेतु सिद्ध हुआ है कि आकाश एक है। किन्तु व्यक्ति भेदसे श्रोत्रेन्द्रिय अनेक होनेके कारण आकाश कैसे एक सिद्ध होसकता है? 'ग्रन्थकार एकः सन्नपीत्यादि' ग्रन्थसे समाधान कररहे हैं। (२) समा०—आकाश एक रहने पर भी उपाधि भेदसे (नानाव्यक्तिगत नानाकर्ण भेदसे) श्रोत्रात्मक भिन्न २ प्रतीत होताहै।

इति आकाशनिरूपणम्।

कालं निरूपयति=कालका निरूपण करते हैं।

का० नं० ४५।

जन्यानां जनकः कालो जगतामाश्रयोमतः॥

का० अर्थ

जन्यपदार्थ मात्रका काल जनक है (साधारण निमित्तकारण है) और सम्पूर्ण संसारका कालिकसम्बन्धसे आश्रय है।

मुक्तावली।

(१) तत्र प्रमाणं दर्शयितुमाह। जगतामिति। तथाहि। (२) इदानीं घट इत्यादिप्रतीतिः सूर्यपरिस्पन्दादिकं यदा विषयीकरोति तदा सूर्यपरिस्पन्दादिना घटादेः संबन्धो वाच्यः। (३) स च सम्बन्धः संयोगादिर्न संभवतीति काल एव तत्सम्बन्धघटकः कल्प्यते। (४) इत्थंच तस्याश्रयत्वमेवा सम्यक्॥

मु० अर्थ।

(१) ग्रन्थकारने कालमें प्रमाण दिखलानेके लिये 'जगताम्' इत्यादि ग्रन्थ कहा है। (२) 'इदानीं घटः' (इस कालमें घट है) इत्याकारक प्रतीति जब सूर्यकी (भूमण्डलका गोलाकारवत् अतिक्रमणरूप) क्रियाको विषय करती है, तब सूर्यकी क्रियाको घटादिके साथ कोई सम्बन्ध कहना उचित है। (३) * वह सम्बन्ध संयोग अथवा समवाय नहीं हो सकता है। किन्तु कालही तत्सम्बन्धघटककल्पित किया जाता है। (४) इसप्रकार उक्त पदार्थों से भिन्न काल भी एक पदार्थ है यह सम्यक् सिद्धहुआ। और यह भी सम्यक् सिद्ध हुआ कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका आधारभी काल है।

* (टि०) वह सम्बन्ध "स्वाश्रय तपन संयोगिसंयोग" रूप मात्र है। स्वपदसे सूर्यकी क्रिया ग्रहण की जाती है, उस क्रियाका आश्रय सूर्य है। सूर्यका संयोगी काल है। उस कालका संयोग घटादि केसाथ है। इत्याकारक सम्बन्ध घटक कालही की कल्पना हो सकती है। क्योंकि आकाशको पकड़नेमें आत्माको लेकर विनिगमना विरह हो जायगा।

प्रमाणान्तरं दर्शयति=ग्रन्थकार कालमें दूसरा प्रमाण दिखलाते हैं।

का० नं० ४६।

परापरत्वधीहेतुः क्षणादिः स्यादुपाधितः ।

का० अर्थ।

कालकृत परत्व और अपरत्व के ज्ञानका असाधारण कारण काल है। एवं उपाधिके प्रभावसे क्षणादियोंमे व्यवहारका विषय होता है।

मुक्तावली।

(१) परत्वापरत्वबुद्धेरसाधारणं निमित्तं काल एव । परत्वापरत्वयोरसमवायिकारणसंयोगाश्रयो लाघवादितिरिक्तः काल एव कल्प्यत इति भावः ।

मुक्ता० अर्थ।

(१) * परत्व और अपरत्वकी बुद्धिका निमित्तकारण काल है (२) † कालिक परत्व और अपरत्वका असमवायिकारण जो काल और पिण्डका संयोग, उससंयोगका अनुयोगिता सम्बन्धसे आश्रयत्वके लिये लाघवात् एक पृथक् कालकी कल्पना की जाती है।

(३) नन्वेकस्य कालस्य सिद्धौ क्षणदिनमासवर्षादिसमयभेदो न स्यादत आह। (४) क्षणादिरिति। कालस्त्वेकोऽपि उपाधिभेदात्क्षणादि व्यवहार विषयः।

(३) ‡ काल एक है। यह सिद्ध होने पर क्षण, दिन, मास, वर्ष और युगादिका व्यवहार भिन्न २ रूपसे कैसे हो सकता है। (४) काल एक रहने परभी उपाधिके भेदसे क्षणादिके व्यवहारका विषय होसकता है।

(५) उपाधिस्तु स्वजन्यविभागप्रागभावावच्छिन्नं कर्म, पूर्वसंयोगावच्छिन्नविभागो वा, पूर्वसंयोगनाशावच्छिन्नोत्तरसंयोगप्रागभावो वा, उत्तर संयोगावच्छिन्नं कर्म वा।

(५) ** क्षणत्वजमें उपाधि निम्नलिखित प्रकारकी है। पहलाक्षण—स्वजन्य विभागके प्रागभाव से अवच्छिन्न कर्म है। दूसराक्षण—पूर्वसंयोगावच्छिन्नस्वजन्यविभागसे अवच्छिन्न कर्म है। तीसराक्षण—पूर्वसंयोगनाशावच्छिन्नस्वजन्य उत्तरसंयोगके प्रागभाव से अवच्छिन्न कर्म है। चौथाक्षण—स्वजन्य उत्तरसंयोगावच्छिन्न कर्म है।

---

* (टि०) ज्येष्ठमें कालिक परत्व और कनिष्ठमें कालिक अपरत्व रहता है।

† (टि०) विनिगमना विरहेण परत्वापरत्वासमवायिकारणसंयोगाश्रयोनाकाशादिः, कालरूप धर्मिग्राहक प्रमाणविरोध भयेन काले न विनिगमना विरहः।

‡ (टि०) इसका उत्तर देनेके लिये क्षणादि ग्रन्थका उल्लेख है।

** (टि०) स्ववृत्तिध्वंसप्रतियोग्यनधिकरणत्वम् क्षणत्वम्।

(६) नचोत्तरसंयोगानन्तरं क्षणादिव्यवहारो न स्यादिति वाच्यं कर्मान्तरस्यापि सत्त्वादिति। (७) महाप्रलये क्षणादिव्यवहारो यद्यस्ति तदा गत्या ध्वंसेनोपपादनीय इति। (८) दिनादिव्यवहारस्तु तत्तत्क्षणकूटैरेवेति।

(६) शङ्का—यहां यह शङ्का होती है कि उक्तरीतिसे चारक्षणकी प्रक्रिया समाप्त हो जाने के बाद क्रियाके अभावसे पुनः क्षणादिका व्यवहार नहीं होगा। समा०—इसका उत्तर यह है कि एक क्रियाका नाश हो जानेपरभी द्रव्यान्तरमें उत्पन्न क्रियान्तरसे क्षणादिका व्यवहार होगा। (७) महाप्रलयमें तो प्रायः क्षणादिका व्यवहार होताही नहीं, यदि माना भी जाय तो अगत्या तत्तत् पदार्थके ध्वंसको उपाधि मानकर उसकी उपपत्ति की जासकती है। (८) दिन, सप्ताह, पक्ष, मास, इत्यादि का व्यवहार तो उक्त क्षणोंके समुदाय से होता है।

दिशं निरूपयति=दिशाका निरूपण करतेहैं।

का० नं० ४६।

दूरान्तिकादिधीहेतुरेका नित्या दिगुच्यते ॥

का० अर्थ।

दूरत्व और समीपत्व के ज्ञानका असाधारण कारण दिशा है वह एक और नित्य है।

मुक्तावली

(१) दूरत्वमन्तिकत्वं च दैशिकं परत्वमपरत्वं बोध्यम्। (२) तद्बुद्धेरसाधारणं बीजं दिगेव। (३) दैशिक परत्वापरत्वयोरसमवायिकारणसंयोगाश्रयतया लाघवादेका दिक् सिध्यतीति भावः।

मु० अर्थ।

(१) दूरत्व तथा समीपत्वसे दैशिकपरत्व तथा अपरत्व जानना चाहिये। (२) उस बुद्धिका (दैशिकपरत्व और अपरत्वबुद्धिका) असाधारणकारण दिशाही है। (३) दैशिकपरत्व और अपरत्वका असमवायिकारण दिशा और वस्तुका संयोग है। उस संयोगके आश्रयत्व के अनुरोधसे लाघवात् एक अतिरिक्तद्रव्यरूप दिशाकी कल्पना की जाती है।

(४) नन्वेकैव दिक् तदा प्राचीप्रतीच्यादिव्यवहारः कथमुपपद्यतामित्यत आह—

(४) एक दिशा मानने पर यह शङ्का होती है कि दिशा पदार्थ यदि एक ही है तो प्राची तथा प्रतीची आदि विभिन्न व्यवहार कैसे होगा। इसका समाधान ग्रन्थकार "उपाधिभेदात् इत्यादि" ग्रन्थसे करते हैं।

का० नं० ४७ ।

उपाधिभेदादेकापि प्राच्यादिव्यपदेशभाक् ।

का० अर्थ ।

दिशा एक रहने परभी उपाधि भेदसे प्राचीप्रतीची आदि विभिन्नव्यवहारका विषय होता है ।

मुक्तावली ।

(१) यत्पुरुषस्य उदयगिरिसंनिहिता या दिक् सा तस्य प्राची । (२) एवमुदयगिरिव्यवहिता या दिक् सा प्रतीची । (३) एवं यत्पुरुषस्य सुमेरुसन्निहिता या दिक् सोदीची । (४) तद्व्यवहिता त्ववाची । (५) "सर्वेषामेव वर्षाणां मेरुरुत्तरतः स्थितः" इति नियमात् ।

मु० अर्थ ।

(१) जिस व्यक्तिकेलिये जो दिशा उदयाचलपर्वतसे समीप रहती है उस व्यक्तिके लिये वह पूर्व दिशा है । (२) एवं जिस पुरुषको जो दिशा उदयाचल पर्वतके व्यवधानमें पड़ती है उस व्यक्ति के लिये वह पश्चिम दिशा है । (३) जिस पुरुषकेलिये जो दिशा सुमेरुपर्वतसे समीप पड़ती है वह उसव्यक्तिके हेतु उत्तर दिशा है । (४) इसीप्रकार जिस पुरुषको जो दिशा सुमेरुपर्वत के व्यवधानमें पड़ती है वह उसकेलिये दक्षिण दिशा है । (५) सब देशकी अपेक्षा मेरुपर्वतकी स्थिति उत्तर दिशामें है, ऐसा नियम है । इसलिये पूर्वोक्तप्राच्यादि विचार पर मत साधक है ।

आत्मानं निरूपयति=आत्माका निरूपण करते हैं ।

का० नं० ४७ ।

आत्मेन्द्रियाद्यधिष्ठाता करणं हि सकर्तृकम् ॥

का० अर्थ ।

आत्मा सबइन्द्रियोंका अधिष्ठाता है (अर्थात् प्रत्येकइन्द्रियसे उत्पन्न हुए ज्ञानका अधिकरण है) इसका कारण यह है कि करण सकर्तृक होता है (करण कार्य्य सम्पादनमें कर्ताकी अपेक्षा करता है)।

मुक्तावली ।

(१) आत्मत्वजातिस्तु सुखदुःखादिसमवायिकारणतावच्छेदकतया सिध्यति । (२) ईश्वरेऽपि सा जातिरस्त्येव । (३) अदृष्टादिरूपकारणाभावान्न सुखदुःखाद्युत्पत्तिः ।

मु० अर्थ ।

(१) सुखदुःखादि कार्योंकी समवायिकारणताके अवच्छेदकके अवच्छेदकरूपसे आत्मत्वजातिकी सिद्धि होती है । (२) ईश्वरमें भी आत्मत्वजाति रहती है । (३) ईश्वरमें सुखदुःखादिके समवायिकारणतावच्छेदकआत्मत्वके रहनेपर भी सुखदुःखादिको अन्यकारण-अदृष्ट और शरीरके न रहनेसे उसकी उत्पत्ति नहीं होती है ।

(४) नित्यस्य स्वरूपयोग्यत्वेफलावश्यंभाव इति नियमस्याप्रयोजकत्वात् । (५) परे तु ईश्वरे सा जातिर्नास्त्येव प्रमाणाभावात् । (६) नच दशमद्रव्यत्वापत्तिः, ज्ञानवत्त्वेन विभजनादित्याहुः । (७) इन्द्रियादीति । (८) इन्द्रियाणां शरीरस्य च परम्परया चैतन्यसंपादकः ।

(४) * शङ्का—यहाँ यह शङ्का होती है कि यदि ईश्वरमें सुखादिका समवायिकारणतावच्छेदक रहेगा तो उसमें सुखादिकी उत्पत्ति अवश्य होगी । क्योंकि यह नियम है कि नित्यमें जिसकार्यकी स्वरूपयोग्यता रहती है उसमें उस कार्यकी उत्पत्ति कभी न कभी अवश्य होती है । समा०—इसका यह उत्तर है कि उक्त नियम अप्रयोजक अर्थात् अप्रामाणिक है । अतएव उसके बलसे परमेश्वर में सुखदुःखकी उत्पत्ति की आपत्ति नहीं दी जा सकती । (५) जो लोग उक्तनियमको प्रामाणिक मानते हैं उनके मतसे ईश्वरमें आत्मत्वजाति नहीं रहती है । क्योंकि ईश्वरमेंआत्मत्व जातिकेरहनेमें कोई प्रमाण नहींहै । (६) शङ्का—अगर ईश्वरमें आत्मत्वजाति नहीं रहेगी तो उसका उक्तनवद्रव्योंमें समावेश न हो सकनेसे दशमद्रव्य ईश्वर के रहते हुए द्रव्यपदार्थ का नवधाविभाग करना असङ्गत हो जायगा । समा०—उक्तनियम माननेवाले अष्टमद्रव्यका आत्मत्वरूपसे विभाग न करके ज्ञानवत्त्वरूपसे विभाग करते हैं । ऐसी कल्पना करने से ईश्वरमें दशमद्रव्यत्वकी आपत्ति नहीं होती । (७) इन्द्रियों पर विचार—(८) आत्माही परम्परासम्बन्धसे इन्द्रिय तथा शरीर में चैतन्यका सम्पादन करनेवाला है ।

(९) यद्यप्यात्मनि "अहं जाने अहं सुखी" इत्यादिप्रत्यक्षविषयत्वमास्त्येव तथापि विप्रतिपन्नंप्रति प्रथमत एव शरीरादिभिन्नस्तत्प्रतीतिगोचर इति प्रतिपादयितुं न शक्यत इत्यतः प्रमाणान्तरं दर्शयति ।

(९) यद्यपि आत्मामें, "मैं जानता हूं मैं सुखी हूं" इत्यादि प्रतीति होने के कारण आत्मामें प्रत्यक्ष विषयत्व अवश्य है (आत्माका प्रत्यक्ष भी होता है) तथापि सुखादिप्रतीति का विषय शरीर, इन्द्रिय या तदन्य आत्मा है । इसप्रकार विप्रतिपन्नवादी को प्रमाणान्तरप्रदर्शनके पूर्व उक्त प्रतीति के बलसे शरीराद्यतिरिक्त आत्माके पक्षमें नहीं ला सकते अतएव प्रत्यक्षप्रमाण न दिखाकर शरीरादि से भिन्न आत्माकी सिद्धिके लिये प्रत्यक्षातिरिक्त प्रमाण दिखलाते हैं ।

---

* (टि०) जलीय परमाणु नित्य है । उसमें स्नेहकी स्वरूप योग्यतारूप कारणता रहने पर भी उसकी उत्पत्ति नहीं होती है । इसलिये "नित्यस्य स्वरूप योग्यत्वे फलावश्यं भावः" यह नियम अप्रयोजक (अप्रामाणिक) है ।

(१०) करणमिति (११) कुठारादीनां छिदादिकरणानां कर्त्तारमन्तरेण फलानुपधानं दृष्टम्। (१२) एवं चक्षुरादीनां ज्ञानकरणानां फलोपधानमपि कर्तारमन्तरेण नोपपद्यत इत्यतिरिक्तः कर्ता कल्प्यते ॥

(१०) करणपर विचार। (११) जिस प्रकार कुठारादि, कर्त्ताके बिना छेदन क्रिया नहीं करसकते। (१२) उसी प्रकार चक्षुरादि इन्द्रिय भी बिना कर्त्ताके ज्ञानरूप क्रियाको उत्पन्न नहीं कर सकते इसलिये शरीर और इन्द्रियसे भिन्न एक अतिरिक्त कर्त्ता (आत्मा) की कल्पना की जाती है।

ननु शरीरस्यैव कर्तृत्वमस्त्वत आह—

चार्वाककी शङ्का—शरीरहीको कर्त्ता मान लेनेसे ज्ञानादिक्रियाकी उत्पत्ति हो सकती है, तबशरीरसे भिन्न आत्माकी कल्पना निरर्थक है। इसका उत्तर—मूलकार अग्रिम कारिकासे देरहे हैं।

का० नं० ४८।

शरीरस्य न चैतन्यं मृतेषु व्यभिचारतः।
तथात्वं चेदिन्द्रियाणामुपघाते कथं स्मृतिः ॥

का० अर्थ।

शरीर ज्ञानादि क्रियाका कर्त्ता नहीं होसकता है क्योंकि ज्ञानादिका कर्तृत्व ज्ञानादिका आश्रयत्वरूप है। और शरीर ज्ञानका आश्रय नहीं माना जासकता कारण है कि मृतशरीर में ज्ञान नहीं रहता है। यदि तत्तदिन्द्रियों को तत्तदिन्द्रियजन्यज्ञानरूप क्रियाका कर्त्ता मानें तो एक इन्द्रियका नाश होजाने पर उस इन्द्रियसे अनुभूत पदार्थका स्मरणद्वितीय इन्द्रियको कैसे होगा। क्योंकि नियम है कि एक व्यक्तिसे अनुभूत पदार्थका व्यक्त्यन्तरकोस्मरण नहीं होता है। इसलिये यही स्थिर हुआ कि इन्द्रिय भी कर्त्ता नहीं हो सकता।

मुक्तावली।

(१) ननु चैतन्यं ज्ञानादिकमेव मुक्तात्मनां त्वन्मत इव मृतशरीराणामपि तदभावे का क्षतिः, प्राणाभावेन ज्ञानाभावस्य सिद्धेरिति चेन्न, शरीरस्य चैतन्ये बाल्ये विलोकितस्य स्थविरेस्मरणानुपपत्तेः, शरीराणामवयवोपचयापचयैरुत्पादविनाशशालित्वात्।

मु० अर्थ।

(१) जिस प्रकार आपके मतानुसार मुक्तआत्मामें चैतन्य इच्छा, कृति आदि

पदार्थ नहीं रहते हैं उसी प्रकार हमारे मतानुसार मृतशरीररूप मुक्तआत्मामें ज्ञान, इच्छा कृति इत्यादि नहीं रहते हैं। (मृतावस्थाको हम मुक्तावस्था कहते हैं) शङ्का— अगर आप आत्माको कर्त्ता मानते हैं तो गौरव होता है। क्योंकि मृतशरीरमें ज्ञानाभावका कारण आपको प्राण और आत्मा दोनोंके अभावको मानना पड़ता है। किन्तु मुझे शरीरकोही चैतन्याश्रय माननेमें लाघवहै क्योंकि मृतशरीरमें ज्ञानाभावके प्रति केवल प्राणाभावहीको कारण मानना होता है। समा०— ऐसा नहीं न हो सकता क्योंकि अगर शरीरही चैतन्य का कर्त्ता (आश्रय) हो तो वाल्यावस्थामें देखेहुए पदार्थोंका वार्धक्यमें स्मरण नहीं होगा। क्योंकि अनुभवकरनेवाला वाल्यावस्थाका शरीर वृद्धावस्थामें नहीं है। इसका कारण यह है कि शरीरके अवयवोंमें ह्रासविकाश हुआ करता है इसलिये शरीरको उत्पत्ति,विनाशशाली मानना पड़ता है। वाल्यकाल से लेकर वार्धक्य तक एक शरीर नहीं मानाजासकता। इसलिये स्थिर हुआ शरीर चैतन्य का कर्त्ता (आश्रय) नहीं होसकता है।

(२) न च पूर्वशरीरोत्पन्नसंस्कारेण द्वितीयशरीरे संस्कार उत्पद्यत इति वाच्यम्, अनन्तसंस्कारकल्पने गौरवात्। (३) एवं शरीरस्य चैतन्ये वालकस्य स्तन्यपाने प्रवृत्तिर्न स्यात्, इष्टसाधनताज्ञानस्य तद्धेतुत्वात्तदानीमिष्टसाधनतास्मारकाभावात्। (४) मन्मते तु जन्मान्तरानुभूतेष्टसाधनत्वस्य तदानीं स्मरणादेव प्रवृत्तिः।

(२) * शङ्का—अगर कहें कि पूर्वशरीर में उत्पन्नहुआ संस्कार द्वितीयशरीरमें संस्कार को उत्पन्न करता है। समा०— ऐसी कल्पना करनेसे अनन्त संस्कार की कल्पना करनी होगी। जिससे गौरव होगा। (३) एवं यदि शरीरहीको कर्त्ता मानते हैं तो उत्पन्न मात्र हुए वालक को स्तन्यपानमें प्रवृत्ति नहीं होगी। क्योंकि प्रवृत्तिके प्रति इष्ट साधनता ज्ञान कारण है। इसलिये आपके मतसे स्तन्यपानमें प्रवृत्ति के पूर्वक्षणमें इष्ट साधनताका अनुभव करानेवाले किसी पदार्थका न रहनेके कारण वालक को स्तन्यपानमें प्रवृत्ति नहीं होगी। (४) किन्तु हमारे मतसेस्तन्यपान प्रवृत्ति के पूर्वजन्ममें अनुभूत इष्ट साधनता के स्मरणसे तत्क्षणमें उत्पन्न हुए वालक का स्तन्यपानमें प्रवृत्ति होती है।

* (टि०) अवयव के ह्रास वृद्धिसे शरीर मात्र अनवरत बदलता रहताहै, यदि उन पूर्व पूर्व शरीरोंमें उत्पन्न हुए संस्कारों से उत्तर उत्तर शरीरोंमें संस्कारोंकी उत्पत्ति मानी जायतो अनन्त संस्कार की कल्पना करनी होगी इसलिये गौरव होगा।

(५) न च जन्मान्तरानुभूतमन्यदपिस्मर्यतामिति वाच्यम्, उद्बोधकाभावात्। (६) अत्र त्वनायत्या जीवनादृष्टमेवोद्बोधकं कल्प्यते। (७) इत्थं च संसारस्यानादितया आत्मनोऽनादित्वसिद्धावनादिभावस्य नाशासंभवान्नित्यत्वं सिद्ध्यतीति बोध्यम्।

(५) शङ्का—यदि पूर्वजन्मानुभूत इष्टसाधनताका संस्कारद्वारा स्मरण आप इस जन्ममें मानते हैं तब पूर्वजन्मानुभूत घटपटादिका भी स्मरण संस्कारद्वारा क्यों नहीं होता है? समा०—उक्त घटपटादिके संस्कारका उद्बोधक नहीं रहनेकेकारण स्मरण नहीं होता है। (६) शङ्का—अगर उक्त घटपटादिके संस्कारका उद्बोधक कोई नहीं है तो स्तन्यपानमें अनुभूत इष्टसाधनताके संस्कारका उद्बोधक कौन है समा०—जन्मान्तरानुभूत इष्टसाधनताके स्मरणके प्रति किसी दूसरे उद्बोधक का नहीं मिलनेके कारण अगत्या उस बालकके जीवनादृष्टहीको उद्बोधक मानते हैं। (७) इसप्रकार संसारके अनादि होनेके कारण जीवात्मा भी अनादिसिद्ध होता है। और जो अनादिभाव पदार्थ है उसका नाश नहीं होता इसलिये आत्मा नित्य है ऐसा जानना चाहिये।

(८) ननु चक्षुरादीनामेव ज्ञानादिकं प्रति करणत्वं कर्तृत्वं चास्तु विरोधे साधकाभावादत आह। तथात्वमिति।

(८) यदि चक्षुरादि इन्द्रियोंकोही (तत्तत् ज्ञानरूप कार्योंके प्रति कर्त्ता और करण दोनों मानें तो क्या हानि? इस शङ्काका उत्तरमूलकार कारिका में "तथात्व" इत्यादि ग्रन्थ से करते हैं।

(९) चैतन्यमित्यर्थः। (१०) उपघाते नाशेसति अर्थाच्चक्षुरादीनामेव, कथमिति। (११) पूर्वं चक्षुषा साक्षात्कृतानां चक्षुषोऽभावे स्मरणं न स्यात्। (१२) अनुभवितुरभावात्। (१३) अन्यदृष्टस्यान्येन स्मरणासंभवात्। (१४) अनुभवस्मरणयोः सामानाधिकरण्येन कार्यकारणभावादिति भावः।

(९) "तथात्व" शब्दसे चैतन्य (ज्ञान कर्तृत्व) जानना चाहिये। (१०) नेत्रादि इन्द्रियोंके नाश होनेपर भी नाशके पहले अनुभव कियेहुए पदार्थका स्मरणकैसे होगा। (११ + १२ + १३) यह नियम है कि एक व्यक्तिसे देखेहुए पदार्थका स्मरण दूसरे व्यक्तिको नहीं होता है। इसलिये जिस आंखसे पहले अनुभव हुआ है उस आंखका नाश होनेके कारण पूर्व देखेहुए पदार्थका स्मरण दूसरी इन्द्रिय या दूसरे शरीरको नहीं होगा। क्योंकि उस समय अनुभव करनेवाली इन्द्रिय नहीं है और एक इन्द्रियको अनुभूत पदार्थका स्मरण दूसरी इन्द्रिय नहीं करसकती। इसलिये इन्द्रियोंसे भिन्न एक चेतन कर्त्ता मानना चाहिये। (१४) तात्पर्य यह है कि स्मरण और अनुभवमें सामानाधिकरण्य अर्थात् समवायसम्बन्धसे कार्यकारणभाव है।

(१५) ननु चक्षुरादीनां चैतन्यं मास्तु मनसस्तु नित्यस्य चैतन्यं स्यादत आह—

(१५) शङ्का—चक्षुरादि इन्द्रियको अनित्य होनेके कारण उन्हें ज्ञानादिका कर्त्ता न मान सकने पर भी नित्यमनको चैतन्यका कर्त्ता माननेमें कोई हानि नहीं है। इस प्रश्नका उत्तर मूलकार कारिका में देते हैं।

का० नं० ४९।

मनोऽपि न तथा ज्ञानाद्यनध्यक्षं तदा भवेत्।
धर्माधर्माश्रयोऽध्यक्षो विशेषगुणयोगतः॥

का० अर्थ।

समा०—मनकोभी चेतनरूप कर्त्ता नहीं मान सकते हैं। क्योंकि मनको ज्ञानादि का आश्रय मानने पर ज्ञानादिका प्रत्यक्ष नहीं हो सकेगा। इसलिये यही पर्यवसित होता है कि जीवात्मा धर्म अधर्म का आश्रय है। और सुखदुःखादि विशेषगुण के सम्बन्धसे प्रत्यक्षका विषय होता है।

मुक्तावली।

(१) मनोपीति। न तथा, न चेतनम्। (२) ज्ञानादीति मनसोऽणुत्वा-त्प्रत्यक्षे च महत्त्वस्य हेतुत्वान्मनसिज्ञानसुखादिसत्त्वे तत्प्रत्यक्षानुपपत्तिरित्यर्थः। (३) यथा मनसोऽणुत्वं तथा वक्ष्यते।

मु० अर्थ।

(१) मन भी वैसा (चेतनरूप कर्त्ता) नहीं है। (२) * अभिप्राय यह है कि प्रत्यक्षके प्रति महत्त्वपरिमाण कारण है मन अणु है इसलिये अगर ज्ञान सुखदुःखादि गुण मनमें माने जायँगे तो ज्ञान सुखदुःखादिका प्रत्यक्ष नहीं होगा। (३) मूलकार मन अणुपरिमाण वाला है इसबातमें युक्ति ८५वीकारिकामें बतायेंगे।

* (टि०) ऋषि। मुनि और आचार्य्योंने भी मनमें अणुपरिमाण माना है।

(४) नन्वस्तु विज्ञानमेवात्मा, तस्य स्वतःप्रकाशरूपत्वाच्चेतनत्वम्, ज्ञान सुखादिकं तु तस्यैवाकारविशेषः तस्यापि भावत्वादेव क्षणिकत्वं पूर्वपूर्वविज्ञानस्योत्तरोत्तरविज्ञाने हेतुत्वात् सुषुप्तावप्यालयविज्ञानधारा निराबाधैव, मृगमद वासनावासितवसन इव पूर्वपूर्वविज्ञानजनितसंस्काराणामुत्तरोत्तरविज्ञाने संक्रान्तत्वान्नानुपपत्तिः स्मरणादेरिति चेन्न, तस्यजगद्विषयकत्वे सर्वज्ञत्वापत्तिः।

(४) * बौद्धकी शङ्का—यदि आत्माको भिन्नद्रव्य न मानकर विज्ञानकोही (क) आत्मा मानें तो क्या हानि ? (ख) यह स्वतः प्रकाशस्वरूप होनेके कारण चेतन है (ग) उसीका स्वरूप विशेषज्ञान सुखदुःखादि भी है। (घ) यह भाव पदार्थ है इसलिये क्षणिक है। (ङ) पूर्वपूर्वक्षणमें उत्पन्न हुआ विज्ञान उत्तरउत्तरक्षणमें अन्य विज्ञान का उत्पादक होता है। इसलिये सुषुप्तिअवस्था में भी आलय विज्ञानकी धारा प्रवाहित होती रहती है। अनेक तहवाले कपड़ेके भीतर कस्तुरी सौरभके संक्रमण की भांति पूर्वपूर्वविज्ञानमें उत्पन्न हुए संस्कारका उत्तरोत्तर विज्ञानमें संक्रमण होता है। इसप्रकार पूर्व विज्ञानसे अनुभव उत्तरविज्ञानमें स्मरण सिद्ध होसकताहै। तार्किकका उत्तर—ऐसा नहीं होसकताहै क्योंकि यह आलयविज्ञान (जिसे आप आत्मा मानतेहैं) यदि समूचे ब्रह्माण्डकी प्रत्येकवस्तुको विषयकरताहै, ऐसा मानें तो मनुष्य को सर्वज्ञ होना चाहिये। किन्तु मनुष्य सर्वज्ञ नहीं होतेहैं इसलिये ब्रह्माण्डकी प्रत्येक वस्तुको विषय करनेवाले आलयविज्ञान को नहीं मान सकते।

(५) यत्किंचिद्विषयकत्वे विनिगमनाविरहः।

(५) † अगर उक्तआलयविज्ञान यत्किञ्चित्पदार्थको विषयकरताहै ऐसा कहें तो विनिगमनाविरह दोष लगेगा। जैसे—यदि आप कहेंगे कि आलयविज्ञान घटको विषय करताहै तो मैं कहूंगा कि पटहीको क्यों नहीं विषय करताहै। इस स्थितिमें आपको कोईभी युक्ति अपने पक्षकी स्थिर करनेकेलिये नहीं मिलेगी इसलिये यत्किञ्चितवस्तुको विषय करनेवाले आलयविज्ञान को भी आत्मा नहीं कहसकते।

* (टि०) (क) (स्वतः प्रकाश रूपवान् स्वभिन्न ज्ञानाविषयत्वात् तस्यचेतनत्वम्)

(ख) अत्र क्षणिकत्वम् द्वितीय क्षणवृत्तिध्वंस प्रतियोगित्वम्। विज्ञान, प्रवृत्ति विज्ञान और आलय विज्ञानके भेदसे दो प्रकारका होती है जैसे (१) "घटः" इत्याकारक ज्ञान प्रवृति विज्ञान कहलाता है। (२) "अहम् अहम्" इत्याकारक ज्ञान आलय विज्ञान कहा जाता है। इस आलय विज्ञानकी धारा गाढ़ निद्रावस्थामें भी विद्यमान रहती है। पूर्व पूर्व विज्ञानमें उत्पन्न हुए संस्कारके उत्तरोत्तर विज्ञानमें संक्रमण होनेका दृष्टान्त कस्तूरी सौरभ से भरपूर अनेक तहवाले कपड़े के साथ दिया गया है। जिसका स्पष्टार्थ यह है जैसे अनेक तह वाला कपड़ेके बीच कस्तूरी रखदें और पोटरी बांधकर सूंघें तो वहीं से अनेक तहके व्यवधान होनेपर भी आपको कस्तूरीका सुगन्ध मालूम होगा इसका कारण यह है कि जिस पहले तहमें कस्तूरीका सम्बन्ध है उस तहका अव्यवहित दूसरे तहमें सम्बन्ध है। एवं दूसरेका तीसरेमें तीसरेका चौथेमें, उसी तरह चरम तह पर्य्यन्त सम्बन्ध है। उसी प्रकार पूर्व २ विज्ञानके अनुभवसे जन्य संस्कार उत्तर विज्ञानमें संस्कारका जनक होता है।

† (टि०) एकतरपक्षपातिनी युक्तिर्विनिगमना तस्याविरहः विनिगमनाविरहः।

(६) सुषुप्तावपि विषयावभासप्रसङ्गाच्च। ज्ञानस्य सविषयत्वात्। (७) तदानीं निराकारा चित्सन्ततिरनुवर्तत इति चेन्न, तस्याः स्वप्रकाशत्वे प्रमाणाभावात्। (८) अन्यथा घटादीनामपि ज्ञानत्वापत्तिः।

(६) आलयविज्ञानधारा सुषुप्तिसमयमेंभी रहती है और विज्ञान सविषयकही होता इसलिये आपके मतसे निद्राकालमेंभी विषयोंकी प्रतीति होने लगेगी। (७) बौद्धका प्रत्युत्तर—हमलोग सुषुप्तावस्थामें निर्विषयकही चित्संतति (विज्ञानधारा) मानतेहैं। तार्किकका उत्तर—ऐसा नहीं होसकता क्योंकि अगर आप आलयविज्ञानको सुषुप्तावस्थामें निर्विषयक मानें तो आलयविज्ञानकी ज्ञानरूपतामें आपकोई प्रमाण नहीं देसकते। (८) अगर प्रमाणके विनाभी सुषुप्तिकालमें आलयविज्ञानधाराको निर्विषयक मानेंगे तो घटपटादि कोभी विज्ञान रूपतो बलात् माननाही होगी। किन्तु यह असम्भव है इसलिये सुषुप्तिकालमें निर्विषयक आलयविज्ञान की सत्ता नहीं सिद्ध होसकती।

(९) न चेष्टापत्तिर्विज्ञानव्यतिरिक्तवस्तुनोऽभावादिति वाच्यं घटादेरनुभूयमानस्यापलपितुमशक्यत्वात्। (१०) आकारविशेष एवायं विज्ञानस्येति चेत्, किमयमाकारोऽतिरिच्यते विज्ञानात्तर्हि समायातं विज्ञानव्यतिरिक्तेन। (११) नातिरिच्यते चेत्तर्हि समूहालम्बने नीलाकारोऽपि पीताकारः स्यात्। (१२) स्वरूपतो विज्ञानस्याविशेषात्।

(९) बौद्धका प्रत्युत्तर—ब्रह्माण्ड में जितने पदार्थ हैं वे सब विज्ञानस्वरूपही हैं। उससे अतिरिक्त एकभी नहीं है। इसलिये आपका उत्तर तो इष्टही है। नैयायिक का उत्तर—यह आप नहीं कहसकते क्योंकि घटादि का अनुभव बाह्येन्द्रियसे सबको होता है ज्ञानका नहीं होता, इसलिये घटादिको ज्ञानस्वरूपकहकर सर्व जनीन। अनुभव का अपलाप करना किसी प्रकार सम्भव नहीं है। (१०) बौद्धकाप्रत्युत्तर—हमारे कहनेका अभिप्राय यह है कि घटपटादि विज्ञानकाही एक आकार विशेष है इसलिये उसका बाह्येन्द्रिय से प्रत्यक्ष होने में कोई बाधा नहीं है। नैयायिक का कथन—यह विज्ञानका आकार विशेष विज्ञानसे भिन्न है या विज्ञान ही है? यदि भिन्न है तो घटपटादि पदार्थ को विज्ञानसे भिन्न सिद्धहोनेके कारण आपके पक्षकाही व्याघात हो जायगा (११,+१२) * यदि विज्ञानरूपही मानते हैं तब "नीलपीते" इत्याकारक समूहालम्बन ज्ञानको एक होनेके कारण नीलपीतादिरूप विषयोंमें भी ऐक्य होजायगा। तदभिन्नाभिन्नको तदभिन्नत्व नियम है। नील और पीत एतदुभयको करनेवाला "नीलपीते" यह विज्ञानस्वरूप एक है।

* (टि०) अविशेषात्=भेदाभावात्।

(१३) अपोहरूपो नीलत्वादिर्विज्ञानधर्म इति चेन्न, नीलत्वादीनां विरुद्धानामेकस्मिन्नसमावेशात्। (१४) इतरथा विरोधावधारणस्यैव दुरुपपादत्वात्। (१५) न च वासनासंक्रमः संभवति, मातृपुत्रयोरपि वासनासंक्रमप्रसङ्गात्। (१६) न चोपादानोपादेयभावो नियामक इति वाच्यं, वासनायाः संक्रमासंभवात्। (१७) उत्तरस्मिन्नुत्पत्तिरेव संक्रम इति चेन्न, तदुत्पादकाभावात्।

(१३) * बौद्ध—नील और पीतमें भेदहै किन्तु (नीलपीतमें भेदव्यवहार के लिये कल्पित) नीलत्व और पीतत्व धर्म वास्तविक विज्ञानसे भिन्न हैं और अपोहरूप हैं। उसीके भेदसे नील पीतमें भेदव्यवहार होताहै। (१४) * नैयायिक—ऐसा नहीं होसकता है क्योंकि नीलत्व और पीतत्व ये दो विरुद्ध धर्म हैं इसलिये दोनों एकधर्मी में नहीं रहसकते (इतरथा) अगर रहें तो दोनोंमें जो विरोध प्रतीत होता है उसकी उपपत्ति नहीं होगी। (१५) † जैसाकि आपने पहले कहा है कि वासनासंक्रमण होता है यह भी नहीं हो सकता क्योंकि कारण में रहनेवाली वासनाका अगर कार्यमें संक्रम हो तो मातृगत वासना कार्भी पुत्रमें संक्रम हो जायगा। तब मातासे देखे हुए पदार्थका स्मरण उसके बालक कोभी होने लगेगा। (१६) ‡ बौद्ध—हम यह नहीं कहते हैं कि कारणगतवासनाकासंक्रम कार्यमें होताहै, किन्तु उपादानगतवासनाका संक्रम उपादेयमें होताहै माता तो पुत्रका निमित्तकारण है इसलिये पुत्रमें मातृगत वासनाका संक्रम नहीं होसकता। नैयायिक—उपादानगत वासनाका उपादेय में संक्रम माननेपरभी संस्कारका संक्रम नहीं होसकता क्योंकि संक्रम क्रियारूप है। क्रिया द्रव्यहीमें होती है। संस्कार तो गुण है। (१७) बौद्ध—पूर्व विज्ञानगतवासनाकी जो उत्तरविज्ञानमें उत्पत्ति, वही संक्रम (संचार) रूपहै। नैयायिक—उत्तरोत्तरविज्ञानमें वासनाका कोई उत्पादक नहीं है।

(१८) चितमेवोत्पादकत्वे तदानन्त्यप्रसङ्गः।

(१८) बौद्ध—उत्तरोत्तरविज्ञानमें वासनाका उत्पादक पूर्व २ विज्ञानही को मानते हैं। नैयायिक—यह भी युक्त नहीं है क्योंकि ऐसा मानने पर अनन्त वासना माननी होगी।

---

* (टि०) अपोह-अतद्व्यावृत्ति (तद्भिन्नावृत्ति) जैसे—नीलत्व नील भिन्नावृत्ति है। इसलिये नीलत्व अपोहरूप है।

† (टि०) स्मरणजनक वासना भावनाख्य संस्कार।

‡ (टि०) सहकारिनिरपेक्ष जो कारण वही उपादान कारण है। यथा—उत्तर विज्ञानोत्पत्ति में पूर्व विज्ञान किसी दूसरे को सहकारी नहीं बनाता है। अतएव पूर्व विज्ञान उत्तर विज्ञान का उपादान कारण है।

(१९) क्षणिक विज्ञानेऽतिशयविशेषः कल्प्यत इति चेन्न, मानाभावात् कल्पनागौरवाच्च।

(१९) * बौद्ध—पूर्व २ विज्ञानसे उत्तरोत्तरविज्ञानमें वासनाकी उत्पत्ति माननेपर अनन्त वासना माननेमें गौरव दोष है। इसलिये अनुभवोत्तर प्रत्येक विज्ञानमें वासना न मान कर केवल जिस विज्ञानमें स्मरण होता है उस विज्ञानसे अव्यवहितपूर्वविज्ञानमें वासना और उससे अव्यहितपूर्वविज्ञान में वासनाको उत्पत्तिके अनुकूल शक्ति मानतेहैं। इस प्रकार वासनाका आनन्त्य नहीं होगा। नैयायिक— कार्यानुकूलशक्ति मानने में कोई प्रमाण नहीं है। (कार्य्यानुकूलशक्ति माननेसे अनन्तवासनाकी अकल्पनाप्रयुक्त लाघव ही कार्य्यानुकूलशक्ति में प्रमाण है)। यह भी नहीं हो सकता क्योंकि आपके मतसे सबपदार्थ क्षणिक हैं। कोई भी विज्ञान चिरस्थायी नहीं हो सकता तबतो जिस जिस विज्ञानमें जिस २ पदार्थ का स्मरण होगा सर्वत्र पूर्वोक्त क्रमसे उस २ विज्ञानके अव्यवहित पूर्व विज्ञानमें उन पदार्थोंका संस्कार और उसके अव्यहितपूर्वविज्ञानमें उन संस्कारों की उत्पत्ति के अनुकूलशक्ति की कल्पना करनी होगी। तब बौद्ध मतके अनुसार उसशक्ति को भी क्षणिक और अनन्त माननेके कारण लाघवके बदले कल्पना में गौरव होगा।

(२०) एतेन क्षणिक शरीरेष्वेव चैतन्यमपिप्रत्युक्तं, गौरवादतिशये मानाभावाच्च।(२१) बीजादावपि सहकारि समवधानासमवधानाभ्यामेवोपपत्तेः कुर्वद्रूपत्वाकल्पनाच्च।

(२०) कितने बौद्ध क्षणिकशरीरको ही चेतन (आत्मा) मानते हैं। किन्तु उक्त प्रकारसे उनका भी मत मर्दित हो जाता है। जैसे कालान्तरमें स्मरण निर्वाहार्थ क्षणिकशरीरके भेदसे अनन्तसंस्कारकी कल्पना होगी इसलिये गौरव होगा। प्रतिक्षणिक शरीरमें वासनाकी कल्पना न करके स्मरणवाले क्षणिकशरीरसे अव्यहितपूर्वशरीरमें वासना और उसके पूर्वशरीरमें वासनानुकूलशक्ति भी नहीं मान सकते क्योंकि उसमें भी कोई प्रमाण नहीं है। अनन्तवासनाकी अकल्पनाकृतलाघवको प्रमाण नहीं माना जासकता। क्योंकि क्षणिकअनन्तकार्यानुकूलशक्ति माननेसे भी तो गौरव ही है। (२१) बौद्ध मतमें सब पदार्थोंको क्षणिक होने के कारण बीज को भी क्षणिकही मानते हैं। अङ्कुरोत्पत्ति बीजको यदि बीजत्वेन कारणता मानें तो कुशूलस्थबीजसे भी अंकुरोत्पत्ति होने लगेगी। इसलिये बीजमें बीजत्वेन कारणता न मानकर अंकुरोत्पादक क्षणिक बीज विशेषमें जाति विशेषरूप कुर्वद्रूपत्व की कल्पना करके कुर्वद्रूपत्वेन कारणता बौद्ध मतमें मानी जाती है। यह कुर्वद्रूपत्व केवल उसी क्षणिक बीजमें माना जाता है जिससे अङ्कुरोत्पत्ति होती है। इसलिये कुशूलस्थबीजसे अंकुरोत्पत्ति की आपत्ति नहीं हो सकती। इसप्रकार कुर्वद्रूपत्व की सिद्धि होनेपर जिस

* (टि०) अतिशय विशेष— कार्यानुकूलशक्तिविशेष।

क्षणिकशरीरमें स्मरण होताहै उससे अव्यवहितपूर्वशरीरमें संस्कार मानते हैं। उस संस्कारके प्रति क्षणिकशरीरको शरीरत्वेन कारणता न मानकर तादृश संस्कारानुकूल कुर्वद्रूपत्वेन कारणता मानते हैं, तब अनन्त संस्कारकी कल्पना प्रयुक्त गौरव नहीं होगा। नैयायिक—अङ्कुरके प्रति बीजत्व रूपसे कारणताहै नकि कुर्वद्रूपत्व रूपसे। यह नियम है कि कारण समुदायसे कार्य होताहै इसलिये कुशूलस्थबीजमें आर्द्रभूमि संयोग तथा काल विशेषरूप सहकारीके अभाव रहनेकेहेतु अङ्कुरोत्पत्ति नहीं होतीहै। इस तरह उपपत्तिहोजाने पर कुर्वद्रूपत्व तथा उस रूपसे कारणताकी कल्पना व्यर्थ है।

(२२) अस्तु तर्हि क्षणिकविज्ञाने गौरवान्नित्यविज्ञानमेवात्मा "अविनाशी वाऽरेऽयमात्मासत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इत्यादि श्रुतेरिति चेन्न, तस्य सविषयत्वासंभवस्य दर्शितत्वान्निर्विषयस्य ज्ञानत्वे माना-भावात्सविषयत्वस्याप्यननुभवात्, अतोज्ञानादिभिन्नोनित्यआत्मेतिसिद्धम्।

(२२) वेदान्तीकी शङ्का—यदि आत्माको क्षणिक विज्ञानरूप माननेमें गौरव होताहैतो नित्यविज्ञानरूपही मानें। ऐसा माननेसे "अविनाशी वा अरे, अय-मात्मा सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इन श्रुतियोंकी भी संगति हो जातीहै। नैयायिक—ऐसा कहना सम्यक् नहीं है। उस आत्मारूप नित्यविज्ञानमें सविषयकत्व नहीं मान सकते। क्योंकि यदि उसमें सविषयकत्व मानें तो यावत् विषयकत्व मानते हैं या यत्किञ्चित् विषयकत्व मानते हैं? प्रथमकल्पमें जीवात्माको सर्वज्ञत्वापत्ति और द्वितीयकल्पमें विनिगमनाविरह होगा जोकि पहलेभी बतलाया जाचुका है। आत्मरूप नित्यविज्ञानको निर्विषयक भी नहीं मान सकते। क्योंकि विज्ञान को निर्विषयक होनेमें कोई प्रमाण नहीं है। उस नित्यविज्ञानमें जगद्विषयकत्व नहीं मानते और यत्किञ्चित् नियत विषयकत्व भी नहीं मानते हैं। किन्तु जिस जीवमें यद्विषयकत्व अनुभव सिद्धहै उस जीवमें तद्विषयकत्वही मानते तबतो विनिग-मनाविरह नहीं होता। यह भी कहना ठीक नहीं है क्योंकि आत्मामें सविषयकत्व का अनुभव नहीं होता इसलिये आत्मा विज्ञानसे भिन्न नित्य स्वतन्त्र द्रव्यरूप सिद्ध होती है।

(२३) सत्यं ज्ञानमिति हि ब्रह्मपरं जीवेषु नोपयुज्यते। (२४) ज्ञाना-ज्ञानसुखित्वादिभिर्जीवानां भेदसिद्धौ सुतरामीश्वरभेदः, अन्यथा बन्धमोक्ष-व्यवस्थानुपपत्तिः।

(२३) उक्त श्रुति जो आत्माको ज्ञान स्वरूप बतलाती है वह ब्रह्म शब्दके समानाधिकरण होनेके कारण परमात्मपरक है नकि जीवात्मपरक। (२४) किसी जीवात्माको ज्ञानी किसीको अज्ञानी, किसीको सुखी और किसीको दुःखी होनेके कारण जब प्रत्येक जीवात्मामें पारस्परिक भेद सिद्ध है, तब जीवात्माका परमात्मासे भेद अनायासही सिद्ध समझना चाहिये। यदि जीवात्मा और परमात्माको एक मानें तो एक जीवात्माका बन्ध और दूसरेका मोक्ष ऐसी बन्धमोक्षकी व्यवस्था नहीं होगी।

(२५) योऽपीश्वराभेदबोधकोवेदः सोऽपि तदभेदेनतदीयत्वं प्रतिपादयंस्तौति। (२६) अभेदभावनयैव च यतितव्यमिति वदति। (२७) अतएव "सर्वएवात्मनि समर्पिताः" इति श्रूयते।

(२५) "अहं ब्रह्मास्मि" "तत्त्वमसि" इत्यादि जितने ईश्वर और जीवात्मामें अभेद-बोधक वैदिकवाक्यहैं वेसब जीवात्माको ईश्वरसे अभिन्न बतलातेहुए जीवात्मामें परमात्माका सम्बन्ध बतलाकर उसकी स्तुति करते हैं। (२६) जीव अभेद बुद्धिसे ईश्वर की उपासना करें यही उन वैदिक वाक्योंका तात्पर्य है। (२७) इसीलिये (ईश्वर से जीवात्माको भिन्न माननेके कारण ही) "सब जीवात्मा परमात्मामें सेवकके रूपसे नियुक्त हैं" यह श्रुतिसंगत होती है।

(२८) मोक्षदशायामज्ञाननिवृत्तावभेदो जायत इत्यपि न, भेदस्य नित्यत्वेन नाशायोगात्। (२९) भेदनाशेऽपि व्यक्तिद्वयं स्थास्यत्येव। (३०) न च द्वित्वमपि नश्यतीति वाच्यं, तव निर्धर्मके ब्रह्मणि सत्यत्वाभावेऽपि सत्यस्वरूपं तदितिवद्द्वित्वाभावेऽपि व्यक्तिद्वयात्मकौ ताविति सुवचत्वात्।

(२८) मोक्ष होने पर जीवात्माका अज्ञाननिवृत्ति होनेके कारण परमात्मासे ऐक्य होजाता है। ऐसा भी कहना ठीक नहीं? क्योंकि भेद नित्य है उसका नाश नहीं हो सकता। (२९) यदि भेदका नाश भी मान लिया जाय तथापि दो व्यक्ति की सत्ता अवश्य रहेगी। (३०) यदि ऐसा कहें कि अज्ञान नष्ट हो जानेपर (जीवब्रह्मगत) द्वित्वका भी नाश हो जाताहै तब फिर दो व्यक्ति की सत्ता कैसे हो सक्ती है? नैयायिक— जिस प्रकार वेदान्ती ब्रह्मको निर्धर्मक मानते हैं इसलिये उनमें सत्यता धर्म न मानकर उनको सत्यस्वरूप कहते हैं, उसी प्रकार ब्रह्म जीवगत द्वित्वका नाश होने पर भी जीव, ब्रह्म ये व्यक्ति द्वयात्मक रहेंगे यह भलीभाँति कह सकते हैं।

(३१) मिथ्यात्वाभावोऽधिकरणात्मकस्तत्र सत्यत्वमिति चेदेकत्वाभावो व्यक्तिद्वयात्मको द्वित्वमित्यप्युच्यताम्।

(३१) वेदान्तीके मतका उपपादन करतेहुए नैयायिक उत्तर करते हैं कि मिथ्यात्वाभावही ब्रह्ममें सत्यत्व है और मिथ्यात्वाभाव अधिकरणात्मक है इसलिये ब्रह्ममें सत्यत्वादि धर्म विना मानेभी ब्रह्म सत्यस्वरूप कहा जा सकता है। ऐसा कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि तब हम भी (नैयायिक) मोक्ष दशामें जीव और ब्रह्ममें विद्यमान द्वित्व को नष्ट होने परभी एकत्वाभावही को द्वित्वरूप कह सकतेहैं।

(३२) प्रत्येकमेकत्वेऽपि पृथिवीजलयोर्नगन्ध इतिवदुभयं नैकमित्यस्य सर्वजनसिद्धत्वात् । (३३) योऽपि तदानीमभेदप्रतिपादको वेदः सोऽपि नैर्दुःखत्यादिना साम्यं प्रतिपादयति । (३४) संपदाधिक्ये पुरोहितोऽयं राजा संवृत्त इतिवत्, अतएव "निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति" इति श्रूयते ।

(३२) * वेदान्ती — जीव और ब्रह्म इन दोनोंमें एकत्वाभाव कैसे होगा? नैयायिक — पृथ्वीमें गन्ध रहने परभी जैसे पृथ्वी और जल इन दोनोंमें "पृथिवीजलयोर्नगन्धः" इस प्रकार गन्धाभावकी प्रतीति सबको होती है उसी प्रकार केवल जीव और केवल ब्रह्ममें एकत्व रहनेपरभी जीव और ब्रह्म इन दोनोंमें "जीवब्रह्मणोर्नैकत्वम्" इस तरह एकत्वाभावकी प्रतीति हो सकती है। (३३) मोक्ष दशामें जीवब्रह्मका अभेद प्रतिपादक "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" इत्यादि श्रुतिभी मोक्ष दशामें निर्दुःखत्वरूपसे जीवमें ब्रह्मका सादृश्य बतलाती है। (३४) जैसे—पुरोहितको धनी होनेपर उसके लिये लोग ऐसा प्रयोग करते हैं कि यह पुरोहित राजा हो गया। अतएव (ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति इस श्रुति को मोक्ष दशामें जीव और ब्रह्ममें सादृश्यका प्रतिपादक माननेहीसे) "निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति" इस श्रुतिका भी समन्वय होताहै।

(३५) ईश्वरो न ज्ञानसुखात्मा किन्तु ज्ञानाद्याश्रयः "नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" इत्यादौ विज्ञानपदेन ज्ञानाश्रय एवोक्तः "यः सर्वज्ञः स सर्ववित्" इत्याद्यनुरोधात् । (३६) आनन्दमित्यस्याप्यानन्दवदित्यर्थः । (३७) अर्शआदित्वान्मत्वर्थीयोऽच्प्रत्ययः अन्यथा पुँल्लिङ्गत्वापत्तिः । (३८) आनन्दोऽपि दुःखाभावे उपचर्यते, भाराद्यपगमे सुखी संवृत्तोऽहमितिवत्, दुःखाभावेन सुखित्वप्रत्ययात् ।

(३५+३६) नैयायिक - ईश्वर भी ज्ञान या सुखस्वरूप नहीं है किन्तु ज्ञानादि गुणों का आश्रय है "नित्यं विज्ञानमानन्दं ब्रह्म" इस श्रुति में विज्ञान पदका विज्ञानका आश्रय अर्थ है क्योंकि "यः सर्वज्ञः स सर्ववित्" इस श्रुतिसे ईश्वरमें सर्वविषयक ज्ञानाधिकरणत्व सिद्ध है। (३७) "अर्श आदिभ्योऽच्" इस पाणिनीय सूत्रसे आश्रय अर्थ मे आनन्दशब्दसे मत्वर्थीय अच् प्रत्यय करनेपर आनन्दपद का भी आनन्दाश्रय अर्थ है। यदि मत्वर्थीय अच् प्रत्यय न करें तो आनन्द शब्द को नित्य पुल्लिङ्ग होनेके कारण "आनन्दम्" यह प्रयोग अशुद्ध हो जायगा। (३८) (आनन्द सुखरूप है इसलिये वह ईश्वरमें नहीं रह सकता है और ऐसा होनेपर "आनन्दम् ब्रह्म" यह श्रुति न्याय मतमे किसी प्रकार सङ्गत नहीं की जा सकती। यह भी कहना उपयुक्त नहीं है) क्योंकि दुःखाभाव रहने परभी सुखकी प्रतीति होती है। जैसे भारवाहक को बोझा उतर जानेके बाद "मैं सुखी हो गया" ऐसी प्रतीति होती है।

* (टि०) पृथ्वीत्वावच्छिन्ने गन्धवत्त्वेऽपि पृथ्वी जलोभयत्वावच्छेदेन गन्धस्याभावात् पृथ्वीजलयोर्न गन्ध इति प्रतीतिवत् तत्तद्व्यक्तित्वावच्छेदेन जीवेब्रह्मणि चैकत्वसत्वेऽपिजीव ब्रह्मगतद्वित्वावच्छेदेन तयोरेकत्वाभावसम्भवात जीव ब्रह्मणोर्नैकत्वमिति प्रतीतेरपि शक्योपपादत्वात् ।

(३९) अस्तु वा तस्मिन्नानन्दो नत्वसावानन्दः "असुखम्" इतिश्रुतेः। (४०) न विद्यते सुखं यस्येति कुतो नार्थ इति चेन्न, क्लिष्टकल्पनापत्तेः, प्रकरणविरोधादानन्दमित्यत्र मत्वर्थीयाच्प्रत्यय विरोधाच्चेति संक्षेपः।

(३९) ईश्वरमें नित्य आनन्द मानभीलें। परन्तु वह आनन्दरूप तो नहीं हो सकते क्योंकि आनन्दरूप मानने से "असुखम् ब्रह्म" यहश्रुति विरूद्ध होजायगी। (४०) "असुखम्" पदका "न सुखं यस्य" इस व्युत्पत्ति से सुखानधिकरण अर्थ मानना भी ठीक नहीं है। क्योंकि बहुव्रीहि समास करनेपर अन्यपदार्थके लाभार्थ लक्षणा की कल्पना प्रयुक्तगौरव होगा। और जिस उपनिषद्के प्रकरणमें "असुखं ब्रह्म" इत्यादि कहागया है उस प्रकरणमें ब्रह्मसुखरूप नहीं हैं यही उपपन्न होता है। "असुखं" इसका सुखानधिकरण अर्थ करने पर प्रकरणविरोध होजायगा। यदि ब्रह्मको आनन्दरूप मानेंतो "आनन्दंब्रह्म" यहां मत्वर्थीय अच् प्रत्यय नहीं होनेके कारण "आनन्दं ब्रह्म" ऐसा प्रयोग नहींहोगा। इसलिये ब्रह्मको सुखस्वरूप नहीं मानकर सुखाधिकरण मानना उचित है।

(४१) एतेन प्रकृतिः कर्त्री पुरुषस्तु पुष्करपलाशवन्निर्लेपः किंतु चेतनः कार्यकारणयोरभेदात्। (४२) कार्यनाशे सति कार्यरूपतया तन्नाशो न स्यादित्यकारणत्वं तस्य।

(४१) * "एतेन" इस पदका सम्बन्धसांख्य मतके उपपादनके अन्तमें लिखे हुए "सतमपास्तम्" इस शब्द से है। अभिप्राय यह है कि अभीतक आत्मामें ज्ञानवत्त्वसाधक जो युक्तियां दी गईहैं उनसे और सांख्यमत खण्डनार्थ जो दोष दिये जायेंगे उनसे सांख्यकामत भी खण्डित हुआ। सांख्यमतके अनुसार प्रकृतिही वस्तुमात्रका आद्यकर्त्री है। (कर्तृत्व यहां कर्तृभूतान्तःकरण प्रकृतित्व रूप है, नकि कृतिमत्त्वरूप है कारण यह है कि कृतिमत्त्वरूप कर्तृत्व सांख्यमत से अन्तःकरण का धर्म है) जिस प्रकार जलमें कमलके पत्ते जलसे लिप्त नहीं होतेहैं उसीप्रकार जीवात्मा (पुरुष) भी कर्तृत्वादि धर्मोंसे संवद्ध नहीं होतेहैं किन्तु चेतन (चैतन्याश्रय) हैं। (४२) † (पुरुषमें कर्तृत्वाभाव का अनुमान इस प्रकार होता है। "पुरुषः कर्तृत्वाभाववान् कारणत्वाभावात्") यदि शङ्का करें कि पुरुषमें कारणत्व क्योंनहीं माना जाता तो इसका हेतु यह है कि सांख्यमतसे कार्य और कारण इन दोनोंमें अभेद है तब यदि पुरुष में कारणत्व माना जायतो कार्य के नाश होनेपर कार्यरूपतया कारणात्मक पुरुषका भी नाश मानना होगा जो इष्ट नहीं है इसलिये पुरुषमें अकारणत्व सांख्यमत सिद्ध है।

* (टि०) अविद्या दो प्रकारकी होती है। (१) मूलाविद्या (२) तूलाविद्या ब्रह्मविषयक अविद्या मूलाविद्या कही जातीहै। और घटपटादिरूप प्रत्यक्ष विषयक अविद्या तूलाविद्या कही जाती है। सांख्यमतसे गुणत्रय की जो सामवस्था है वही मूल प्रकृतिहै उसीको वेदान्ती मूलाविद्या कहते हैं।

† (टि०) यथा कुण्डलके नाश होनेपर कुण्डलरूपतया स्वर्णकाभी नाश सांख्यमत सिद्ध है। तब केवल स्वर्णत्वेन स्वर्ण रह जाता है।

(४३) बुद्धिगतचैतन्याभिमानान्यथानुपपत्त्या तत्कल्पनम् । (४४) बुद्धिश्च प्रकृतेः परिणामः । (४५) सैव महत्तत्त्वम्, अन्तःकरणमित्युच्यते । (४६) तत्सत्त्वासत्त्वाभ्यां पुरुषस्यसंसारापवर्गौ ।

(४३) (यदि ऐसी शङ्का करें कि ऐसा पुरुष मानने में क्या प्रमाण है । समा०—बुद्धि में जो चैतन्यका आरोप होता है यह नहीं होगा । क्योंकि जो वस्तु नहीं है उसका आरोप (अभिमान मिथ्याज्ञान) होना असम्भव है इसलिये बुद्धिगत आरोप्यमाण चैतन्याश्रयत्वेन पुरुषकी सिद्धि होती है । (४४+४५) * बुद्धितत्त्व प्रकृतिका परिणाम है । जो महत्तत्त्व और अन्तःकरण इन दोनों शब्दोंसे व्यवहृत हैं । (४६) (ज्ञान, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, धर्म, अधर्म, भावनाख्यसंस्कार, ये सब सांख्यमत से अन्तःकरणके धर्म हैं) उक्त अन्तःकरण जब रहताहै तब तद्गत सुखदुःखादिका पुरुषमें आरोप होनेके कारण पुरुष की संसारावस्था होती है और उक्त अन्तःकरण जब नहीं रहता है तब तद्गत सुखदुःखादि का आरोपपुरुषमें नहीं होनेके कारण उक्त पुरुषकी मोक्षावस्था होती है ।

(४७) तस्या एवेन्द्रियप्रणालिकया परिणतिर्ज्ञानरूपा घटादिना संबन्धः । (४८) पुरुषे कर्त्तृत्वाभिमानो बुद्धौचैतन्याभिमानश्च भेदाग्रहात् ।

(४७) इन्द्रियरूप नलीद्वारा निकले हुए अन्तःकरण का घटादिविषयात्मक जो परिणाम वही ज्ञानहै (४८)"मैं करताहूं" इस तरहका जो पुरुषमेंकर्तृत्वाभिमान अर्थात् मिथ्या ज्ञान है एवं "मैं चेतनहूं" इत्याकारक जो अन्तःकरणमें चैतन्याभिमान है वह पुरुष और अन्तःकरण इन दोनोंमें परस्परभेदज्ञान नहीं रहने के कारण होता है ।

---

* (टि) सांख्यमत में २५ तत्त्व (पदार्थ) माने जाते हैं, "मूलप्रकृति रवि कृतिर्महदाद्याः प्रकृति विकृतयः सप्त षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः" मूल प्रकृतिका परिणाम महत्तत्त्व जोकि बुद्धितत्त्व और अन्तःकरण इन दोनों शब्दों से भी प्रसिद्ध हैं । उस महत्तत्त्वका परिणाम अहंकार है । अहंकारका परिणाम पञ्चतन्मात्रा और एकादश इन्द्रिय है । (१) पञ्चतन्मात्रा = तेजकी सूक्ष्मावस्था रूपतन्मात्रा है । जलकी सूक्ष्मावस्था रसतन्मात्राहै । पृथ्वीकी सूक्ष्मावस्था गन्धतन्मात्राहै । वायुकी सूक्ष्मावस्था स्पर्शतन्मात्राहै । आकाश की सूक्ष्मावस्था शब्दतन्मात्राहै जिनके स्थानमें नैयायिक परमाणु मानते हैं । (२) ज्ञानेन्द्रिय ५ कर्मेन्द्रिय ५ अन्तरेन्द्रिय १ उक्त पञ्चतन्मात्राओंका परिणाम पञ्चमहाभूतहै, जोकि स्थूल पृथिव्यादि ५ में हैं । और पुरुष सब मिलाकर २५ हैं (क) इन २५ पदार्थों में मूलप्रकृति केवलप्रकृति है । (ख) एकादश इन्द्रिय और पञ्चमहाभूत ये १६ केवल विकृति है । (ग) महत्तत्त्व, अहंकार पञ्चतन्मात्रा ये ७ प्रकृति, विकृति उभयात्मक है । (घ) पुरुष न प्रकृति न विकृतिरूप है अर्थात् अनुभयात्मक है ।

(४९) ममेदं कर्त्तव्यमिति सदंशः पुरुषोपरागो बुद्धेः स्वच्छतया तत्प्रतिबिम्बादतात्त्विको दर्पणस्येव मुखोपरागः । (५०) इदमिति विषयोपरागः इन्द्रियप्रणालिकया परिणतिभेदस्तात्त्विको निःश्वासाभिहतदर्पणस्येव मलिनिमा । (५१) कर्त्तव्यमिति व्यापारांशः । (५२) तेनांशत्रयवर्ती बुद्धिस्तत्परिणामेन ज्ञानेन पुरुषस्यातात्त्विकः सम्बन्धो दर्पणमलिनिम्नेव मुखस्योपलब्धिरुच्यते (५३) ज्ञानादिवत्सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मा अपि बुद्धेरेव कृतिसामानाधिकरण्येन प्रतीतेः ।

(४९) "ममेदंकर्तव्यम्" इसमें तीन अंश हैं। पहला अस्मच्छब्दार्थ जो पुरुष तत्सम्बन्ध, बुद्धितत्त्वमें अतात्त्विकहै, स्वच्छ होनेके कारण जैसे दर्पणमें वास्तविक मुख सम्बन्ध नहीं रहनेपर भी मुखप्रतिबिम्बमात्र हेतुक दर्पणमें मुखसम्बन्धाभिमान होता है उसी प्रकार स्वच्छ अन्तःकरणमें वास्तविक पुरुष सम्बन्ध नहीं रहने पर भी पुरुष प्रतिबिम्बमात्र हेतुकअन्तःकरणमें पुरुष सम्बन्धाभिमान होता है। (५०) (दूसरा) इन्द्रियरूपनलीद्वारा निकलेहुए अन्तःकरणका परिणामात्मक " इदम् " पदप्रतिपाद्य जो घटादिविषयों का सम्बन्ध है वह निःश्वाससे अभिहतदर्पणमें धुँधलापनके तात्त्विक सम्बन्धके समान अन्तःकरणमें तात्त्विकहै। (५१+५२) क्रियात्मक व्यापार सम्बन्धभी अन्तःकरणमें तात्त्विकहै। इसप्रकार अन्तःकरणमें उक्त तीन अंश माने जातेहैं। अन्तःकरणका परिणामात्मक जो ज्ञान उसको अन्तःकरणका धर्म होनेके कारण उसके साथ जो पुरुषका अतात्त्विक सम्बन्ध अर्थात् उस ज्ञानका जोपुरुषमें स्वगतत्वेन "चेतनोऽहम् जानामि" इत्याकारक अभिमान है। वह सांख्यमतसे उपलब्धि कहा जाताहै । जैसे निःश्वासाभिहत दर्पणमें मुखदेखनेसे दर्पणगत धुँधलापन मुखगतत्वेन मालूम पड़ताहै। (५३) अन्तःकरण कर्त्ता है इसलिये सांख्यमतसे कृति अन्तःकरणका धर्म है। तब जिसप्रकार " जानन् अहम् करोमि " इत्याकारक प्रतीति होनेके कारण कृति समानाधिकरण अन्तःकरणके परिणामरूप ज्ञानको आप अन्तःकरण का धर्म मानतेहैं उसीप्रकार "सुखी अहंकरोमि" और " दुःखी अहंकरोमि " "इच्छन् अहंकरोमि " " द्विषन् अहंकरोमि" " धार्मिकोऽहंकरोमि " "पापी अहंकरोमि " इत्यादि प्रतीतियोंसे उक्त सुखादिधर्म भी अन्तःकरणके धर्म माने जातेहैं। यह सांख्यमतसिद्ध है।

(५४) न च बुद्धिश्चेतना परिणामित्वादिति मतमपास्तम्, कृत्यदृष्टभोगानामिव चैतन्यस्यापि सामानाधिकरण्यप्रतीतेस्तद्भिन्ने मानाभावाच्च ।

(५४) शङ्का—तब चैतन्यकोभी अन्तःकरणहींका धर्म क्यों नहीं मानते "यदि कहें कि अन्तःकरण परिणामी (जन्यधर्माश्रय) होनेके कारण उसमें घटादिके समान चैतन्य नहीं माना जासकता इसलिए जन्यधर्मानाश्रय जो पुरुष उसीमें चैतन्य मानना उचितहै" यह ठीक नहीं है क्योंकि जिस प्रकार ज्ञानादियोंमें कृतिसामानाधिकरण्य की प्रतीति होनेके कारण आप ज्ञानादिको अन्तःकरणका धर्म मानतेहैं उसीप्रकार "चेतनोऽहंकरोमि" इत्याकारक कृतिसामानाधिकरण्यकी प्रतीति चैतन्यमें भी होनेके कारण चैतन्यकोभी अन्तःकरणहीं का धर्म मानना युक्त होगा और इसमें एक यहभी कारणहै कि कर्तृभिन्नगत चैतन्य माननेमें कोई प्रमाण भी नहीं मिलता है ।

(५५) चेतनोऽहं करोमीति प्रतीतिश्चैतन्यांशे भ्रम इति चेत्कृत्यंशे किं नेष्यते । (५६) अन्यथा बुद्धेर्नित्यत्वे मोक्षाभावोऽनित्यत्वे तत्पूर्वमसंसारापत्तिः ।

(५५) शङ्का—"कर्तृत्वाश्रयो न चेतनः जन्यधर्माश्रयत्वात् घटवत्" इस अनुमानसे अन्तःकरणमें चैतन्याभावकी सिद्धि होती है। इसलिये "चेतनोऽहं करोमि" इस प्रतीतिको चैतन्यांशमें भ्रम मानना होगा अर्थात् चैतन्य अन्तःकरणका धर्म नहीं है किन्तु आत्माका धर्म है यह क्यों नहीं स्वीकार करते ? समा०——"बुद्धिः कर्तृत्वाभाववती जन्यधर्माश्रयत्वात्" इस अनुमानसे जब अन्तःकरणमें कर्तृत्वाभावकी सिद्धि होती है तब "चेतनोऽहं करोमि" इस प्रतीतिको कृत्यंशमें भी भ्रम क्यों नहीं मानते (अर्थात् कृतिको अन्तःकरणका धर्म न मानकर पुरुषकाही धर्म क्यों नहीं मानते)? (५६) यदि कर्ता और पुरुषमें भेद मानते हैं तो कहिये कि बुद्धितत्व (अर्थात् अन्तःकरण) नित्य है या अनित्य ? यदि बुद्धिको आप नित्य मानें तो अन्तःकरणगतसुखदुःखादिका प्रतिबिम्ब पुरुषमें पड़ताही रहेगा तब पुरुष को मोक्षावस्था कभी नहीं हो सकती। यदि उक्त अन्तःकरणको आप अनित्य मानें तो अनित्यभाव अनादि नहीं होसकता। इसके अनुरोधसे अन्तःकरणको सादि मानना होगा। तब अन्तःकरणकी उत्पत्तिसे पहले अन्तःकरणको नहीं रहने के कारण तद्गत सुख दुःखादिका प्रतिबिम्ब पुरुषमें नहीं पड़ेगा। तब पुरुषको संसारावस्था नहीं होगी। (संसार कदापि नहीं होगा)।

(५७) नन्वचेतनायाः प्रकृतेः कार्यत्वाद्बुद्धेरचैतन्यं कार्यकारणयोस्तादात्म्यादिति चेन्न, असिद्धेः । (५८) कर्तुर्जन्यत्वे मानाभावात् । (५९) वीतरागजन्मादर्शनादनादित्वम् । (६०) अनादेर्नाशासंभवान्नित्यत्वम् ।

(५७) (सांख्य) शङ्का—हमारे मतसे तो कार्यकारणमें परस्पर भेद नहीं है तब अन्तःकरणको अचेतनात्मकप्रकृतिके कार्य होनेको कारण उक्त अन्तःकरणको भी अचेतन मानना होगा, (नैयायिक) समा०—ऐसा भी नहीं कहसकते। क्योंकि बुद्धि प्रकृतिका कार्य नहीं है। (५८) ("बुद्धिर्जन्या कर्तृत्वात्" इसअनुमान से बुद्धिमें जन्यत्वकी सिद्धि होती है और किसी दूसरे का जन्य होनेकी सम्भावना नहीं है। तब परिशेषात् बुद्धिको प्रकृतिसेही जन्य मानना होगा.) ऐसा नहीं कहसकते, क्योंकि कर्तृत्व जन्यत्वका व्याप्य है, इसमें कोई अनुकूलतर्क नहीं है। प्रत्युत उक्त जन्यत्वके विपरीत अनादित्वग्राहकतर्क है। यथा ("वीतरागजन्मादर्शनात्") । (५९+६०) "वीतरागजन्मादर्शनात्", इस न्यायसूत्रका अभिप्राय यह है कि रागादिसहित ही पुरुष का जन्म होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि उत्तरोत्तरजन्ममें पूर्वपूर्वजन्मके रागादि हेतु हैं। इससे कर्त्ता में अनादित्व सिद्ध होता है और अनादिभावका नाश नहीं होता। इस लिये अन्तःकरणरूप कर्त्तामें नित्यत्व मानना होगा।

(६१) तत्किं प्रकृत्यादिकल्पनेन।

(६१) तब इसप्रकार अन्तःकरण को नित्यसिद्धहोनेपर तदुत्पत्त्यर्थ प्रकृत्यादिकी कल्पना करनाही व्यर्थ है।

(६२) न च "प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः। अहंकार-विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते"। इत्यनेन विरोध इति वाच्यम्, प्रकृतेरदृष्टस्य गुणैरदृष्टजन्यैरिच्छादिभिः कर्ताहमेवेत्यस्य तदर्थत्वात्। (६३) "तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः" इत्यादि वदता भगवता प्रकटीकृतोऽयमुपरिष्टा-दाशय इति संक्षेपः।

(६२) सांख्य—यदि पुरुषही को कर्त्ता मानेतो "प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः। अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते" गीता अ० ३ श्लो० २७ (अर्थात् प्रकृतिके सत्त्व, रजस्, तमस्, इन तीनों गुणोंसे सभी कार्य उत्पन्न होते हैं। किन्तु अहङ्कारसे विमूढ़ अर्थात् "अहम्" इत्याकारकप्रतीतिका विषय है आत्मा (अन्तःकरण) जिसका ऐसा जो पुरुष वह "मैं करताहूं" ऐसा मानते हैं अर्थात् पुरुष को अन्तःकरण के साथ भेदाग्रह रहनेके कारण अन्तःकरणनिष्ठकर्तृत्वका भान अपनेमें होता है। परन्तु वास्तविकमें ऐसा नहीं है यही उक्त श्लोकका अभिप्राय है। यह गीता श्लोक न्यायमत विरुद्ध होगा। कारण यह है कि न्यायमतमें कर्तृत्व पुरुषहीमें माना जाता है। (नैयायिक) समा०—यहां प्रकृति शब्दसे अदृष्ट लिया जाता है। तब अदृष्टजन्य जो ज्ञानेच्छादिगुण उनसे सस्यादित सब कार्य होते हैं। किन्तु अहङ्कारसे विमूढ अर्थात् "अहम्" इत्याकारकप्रतीतिविषय जो आत्मा है वह "मैंही करताहूं" ऐसा मानते हैं। परन्तु वास्तविकमें पुरुषमात्रमें कर्तृत्व नहीं है। यही हमारे मतसे गीताका अभिप्राय है। (६३) जोकि गीताके वचनान्तरसे स्पष्ट होता है जैसे गीताके अध्याय १८, श्लोक १४ "अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणं च पृथग्विधम्, विविधाश्च पृथक् चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्" इससे अधिष्ठानादि पांचोंको कर्तृत्व का प्रतिपादन करतेहुए "तत्रैवं सति कर्त्तारमात्मानं केवलन्तु यः" इत्यादि श्लोकसे स्वतन्त्रकर्तृत्वका आत्मामें निषेध गीतोपदेष्टा भगवानहीने किया है। यही संक्षेपमें सांख्य मत खण्डन प्रदर्शन है।

(६४) धर्माधर्माश्रय इति। (६५) आत्मेत्यनुषज्यते। (६६) शरी-रस्य तदाश्रयत्वे देहान्तरकृतकर्मणां देहान्तरेण भोगानुपपत्तेः।

(६४+६५+६६) आत्मा धर्म अधर्म का आश्रय है। यदि शरीरको धर्माधर्मका आश्रय माने तो पूर्वदेहकृतकर्मका भोग परदेहमें नहीं होगा। "क्योंकि कर्त्ता और भोक्ता एक ही होता है।

(६७) विशेषगुणयोगत इति । (६८) योग्यविशेषगुणस्य ज्ञानसुखादेःसंबन्धेनात्मनः प्रत्यक्षत्वं संभवति, न त्वन्यथा, अहं जाने अहं करोमीत्यादिप्रतीतेः ॥

(६७+६८) योग्यविशेषगुणात्मक ज्ञान सुखादिके सम्बन्धसेही आत्मा प्रत्यक्षका विषय है अन्यथा नहीं, क्योंकि प्रत्यक्ष ज्ञानों में "मैं जानताहूं" "मैं करता हूं" इत्यादि-प्रत्यक्षही का विषय आत्मा है ।

का० नं० ५० ।

प्रवृत्त्याद्यनुमेयोऽयं रथगत्येव सारथिः ।
अहंकारस्याश्रयोऽयं मनोमात्रस्य गोचरः ॥

का० अर्थ ।

जैसे चलते हुए रथमें कोचवान को नहीं देखे जाने परभी उसका अनुमान किया जाताहै कि इस रथमें कोचवान् अवश्य है । उसीप्रकार दूसरे जीवात्माका (प्रत्यक्ष नहीं होने परभी उस व्यक्ति की) प्रवृत्तिसे उस जीवात्माका अनुमान होताहै । आत्मा "अहंकार" का आश्रयहै ("अहम्" इत्याकारकप्रत्यक्षका विषय है) और मनहीसे यह ग्रहण किया जाता है (मनोमात्रजन्य प्रत्यक्षका विषय है) ।

मुक्तावली ।

(१) अयमात्मा परदेहादौ प्रवृत्त्यादिनाऽनुमीयते । (२) प्रवृत्तिरत्र चेष्टा । (३) ज्ञानेच्छायत्नादीनां देहेऽभावस्योक्तप्रायत्वाच्चेष्टायाश्च प्रयत्नसाध्यत्वाच्चेष्टया प्रयत्नवानात्माप्यनुमीयत इति भावः । (४) अत्र दृष्टान्तमाह रथेति । (५) यद्यपि रथकर्म चेष्टा न भवति, तथापि तेन कर्मणा सारथिर्यथाऽनुमीयते तथा चेष्टात्मकेन कर्मणा परात्मापीति भावः ।

मु० अर्थ ।

यह आत्मा दूसरे शरीरमें उसकी प्रवृत्ति और निवृत्तिसे अनुमान करनेके योग्य है । (२) "प्रवृत्ति" शब्दसे यहां चेष्टाका ग्रहण है । (३) ("शरीरस्य न चैतन्यम्" इत्यादि ग्रन्थसे पहलेही कह चुकेहैं कि) शरीरमें ज्ञान, इच्छा, यत्न इत्यादि गुण नहीं रहते और चेष्टा प्रयत्नसाध्य होनेके कारण चेष्टायत्वको हेतु बनाकर प्रयत्नवाले आत्माका अनुमान हो सकता है यही अभिप्राय है । (४) इस स्थलमें रथ और सारथीका दृष्टान्त देते हैं । (५) यद्यपि दृष्टान्त, रथमें जो गमन क्रिया है यह चेष्टा नहीं है (इष्टानिष्टप्राप्ति-परिहारानुकूल व्यापारही चेष्टा है, जो रथमें नहीं हो सकता) क्योंकि यह जड़ पदार्थ है वैसा व्यापार तो देह या देहावयवमेंही हो सकता है । तथापि अभिप्राय यह है कि जैसे रथकी क्रियासे सारथीका अनुमान होताहै उसीप्रकार दूसरे व्यक्तिके शरीरादिकी चेष्टासे जीवात्माका अनुमान होता है ।

(६) अहंकारस्येति। (७) अहंकारोऽहमिति प्रत्ययस्तस्याश्रयो विषयः आत्मा न शरीरादिरिति। (८) मन इति। (९) मनोभिन्नेन्द्रियजन्यप्रत्यक्षाविषयो मानसप्रत्यक्षविषयश्चेत्यर्थः। (१०) रूपाद्यभावेनेन्द्रियान्तरायोग्यत्वात्।

(६) "अहंकारस्य" इत्यादि ग्रन्थ पर विचार। (७) अहंकार ("अहं" इत्याकारक ज्ञान) का आश्रय (विषय) जीवात्माही है शरीरादि नहीं है। (८) "मन" इत्यादि ग्रन्थ पर विचार। (९) मन से भिन्न जितनी इन्द्रियां हैं (बाह्येन्द्रियमात्र) उनसे ग्राह्य आत्मा नहीं है। मानसप्रत्यक्षमात्रका विषय आत्मा है यही अभिप्राय है। (१०) मनसे भिन्न जितनी इन्द्रियां हैं उनमें कोई रूपस्पर्शवान् द्रव्य और कोई गन्धादिगुणको ग्रहण करती हैं। और आत्मामें रूपादिगुण या गन्धाद्यात्मकता नहीं है। इसलिये चक्षुरादिबाह्येन्द्रियसे आत्माका प्रत्यक्ष नहीं किया जासकता है।

का० नं० ५१।

विभुर्बुद्ध्यादिगुणवान्बुद्धिस्तु द्विविधा मता।
अनुभूतिः स्मृतिश्च स्यादनुभूतिश्चतुर्विधा॥

का० अर्थ।

आत्मा विभु (सर्वमूर्तसंयोगी) है। और बुद्ध्यादि १४ गुणवाला है। बुद्धि और अनुभव स्मरणके भेदसे दो प्रकारके हैं जिनमें अनुभवके प्रभेद ४ हैं।

मुक्तावली।

(१) विभुत्वं परममहत्त्वम्। (२) तच्च पूर्वोक्तमपि स्पष्टार्थमुक्तम्। (३) बुद्ध्यादीति। (४) बुद्धिसुखदुःखेच्छादिचतुर्दश गुणाः पूर्वोक्ता वेदितव्याः।

मु० अर्थ।

(१) परममहत्परिमाण जिसमें रहे वह विभु कहलाताहै। (२) यह यद्यपि "कालखात्मदिशां सर्वगतत्वं परमं महत्" इस ग्रन्थसे पहले ही कहा जाचुका है। तथापि स्पष्ट करने के लिये यहां पुनः कहा गया है (३+४) "बुद्ध्यादि" ग्रन्थसे ३२वीं कारिकामें कहेहुए बुद्ध्यादि आत्मामें १४ गुण हैं ऐसा समझना चाहिये।

(५) अत्रैव प्रसङ्गाद्बुद्धेः कतिपयं प्रपञ्चं दर्शयति।

(५) प्रसङ्गवश ग्रन्थकार यहीं बुद्धि का कितने प्रभेद दिखलाते हैं।

(६) बुद्धिस्त्विति । (७) द्वैविध्यं व्युत्पादयति ।

(६+७) " बुद्धिस्तु " इस ग्रन्थमे बुद्धिका दो प्रभेद दिखलाते हैं ।

(८) अनुभूतिरिति । (९) अनुभूतिश्चतुर्विधेति । (१०) एतासां चतसृणां करणानि चत्वारि प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानीति सूत्रोक्तानि वेदितव्यानि ।

(८+९) " अनुभूति "इत्यादि ग्रन्थसे अनुभव ४ प्रकार के हैं ऐसा समझना चाहिये (१०) उक्त अनुभव के प्रभेद ४ हैं । इसमें गौतम " प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि " " यह सूत्र प्रमाण जानना चाहिये (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ये गौतम सूत्रोक्त ४ प्रमाण हैं यह जानना चाहिये)।

का० नं० ५२ ।

प्रत्यक्षमप्यनुमितिस्तथोपमितिशब्दजे ।
घ्राणजादिप्रभेदेन प्रत्यक्षं षड्विधं मतम् ॥

का० अर्थ।

(१) प्रत्यक्ष, (२) अनुमिति (३) उपमिति, (४) शाब्द, ये चार अनुभवरूप ज्ञान के प्रभेद हैं घ्राणज, चाक्षुष, त्वाच, श्रावण, रासन, मानस इनके प्रभेदसे प्रत्यक्ष ६ प्रकार का मानाजाता है ।

मुक्तावली ।

(१) इन्द्रियजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम् । (२) यद्यपि मनोरूपेन्द्रियजन्यं सर्वमेव ज्ञानं, तथापीन्द्रियत्वेन रूपेणेन्द्रियाणां यत्र ज्ञाने करणत्वं तत्प्रत्यक्षमिति विवक्षितम् । (३) ईश्वरप्रत्यक्षं तु न लक्ष्यम् ।

मु० अर्थ ।

(१) * इन्द्रियसे उत्पन्न ज्ञान प्रत्यक्ष कहा जाता है । (२) † यद्यपि ज्ञानमात्र मनोरूप इन्द्रियजन्य है, इसलिये उक्त लक्षणमें अतिव्याप्ति होती है, तथापि इन्द्रियत्वरूपसे इन्द्रियोंको जिन ज्ञानों के प्रति करणता है वे प्रत्यक्ष ज्ञान हैं। यही कहनेका अभिप्राय है। (व्यवहारावस्थामें जीवको जो प्रत्यक्ष होता है उसी प्रत्यक्षपर विचार है) (३) ईश्वरके प्रत्यक्षका लक्षण नहीं कियागया है (वह प्रत्यक्ष तो नित्य है)।

---

* (टि०) प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति इन्द्रियत्वेन कारणत्वम् ।

† (टि०) ज्ञानत्वावच्छिन्नं प्रति मनस्त्वेन कारणत्वम् । तथा च इन्द्रियत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यतावज्ज्ञानं प्रत्यक्षम् इन्द्रियत्वञ्च शब्देतरोद्भूतविशेषगुणानाश्रयत्वे सति ज्ञानकारणमनः संयोगाश्रयत्वम् ।

(४) इन्द्रियार्थसंनिकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारिव्यवसाया-त्मकं प्रत्यक्षमिति सूत्रे तथैवोक्तत्वात्।

(४) * चक्षुरादि इन्द्रिय और घटादिविषयोंमें जो प्रत्यक्षानुकूल सम्बन्ध है उससे उत्पन्न जो प्रमात्मकप्रत्यक्ष वह निर्विकल्पक और सविकल्पक भेदसे दो प्रकारका होताहै। एतदर्थक गौतमसूत्र के अनुसार उक्तजन्यप्रत्यक्षका लक्षणहै।

(५) अथवा ज्ञानाकरणकं ज्ञानं प्रत्यक्षम्। (६) (अनुमितौ व्याप्तिज्ञानस्योपमितौ सादृश्यज्ञानस्य शाब्दबोधे पदज्ञानस्य स्मृतावनुभवस्य करणत्वात्तत्र तत्र नातिव्याप्तिः)। (७) इदं लक्षणमीश्वरप्रत्यक्षसाधारणम्।

(५) जिस ज्ञानमें कोई भी ज्ञान करण नहीं हो वही प्रत्यक्षहै। (६) (क) अनुमितिरूपज्ञानके प्रति व्याप्तिज्ञान करण है। (ख) उपमितिके प्रति सादृश्यज्ञान करण है। (ग) शाब्दबोधके प्रति पदज्ञान करणहै। (घ) एवं स्मृतिरूपज्ञानके प्रति अनुभवरूपज्ञान करणहै (इससे यह सिद्ध हुआ कि उक्त ज्ञानोंके करण ज्ञानान्तरहीहै और प्रत्यक्षज्ञानका करण कोई ज्ञानान्तर नहींहै। इसलिये यही पर्यवसित हुआ कि उक्त लक्षण जन्यप्रत्यक्षमें समन्वित होता है) और अनुमिति इत्यादि (ङ) ज्ञानोंमें अतिव्याप्ति भी नहीं होतीहै। (७) "ज्ञानाकरणकं ज्ञानम् प्रत्यक्षम्" यह प्रत्यक्षज्ञानका लक्षण ईश्वरके ज्ञानमें भी घट सकताहै।

(८) परामर्शजन्यं ज्ञानमनुमितिः। (९) यद्यपि परामर्शप्रत्यक्षादिकं परामर्शजन्यं तथापि परामर्शजन्यं हेत्वविषयकं यज्ज्ञानं तदेवानुमितिः।

(८) परामर्शनिष्ठजनकतानिरूपितजन्यतावत् जो ज्ञान वह "अनुमिति" है। (व्याप्तिज्ञानरूप करण और परामर्श से "अनुमिति" रूप ज्ञान उत्पन्न होता है) (९) यद्यपि परामर्श का प्रत्यक्ष एवं परामर्शका ध्वंस भी परामर्शजन्यही है (क्योंकि परामर्श विषयतासम्बन्ध से स्वप्रत्यक्षका तदात्म्यसम्बन्धसे कारण है तथा परामर्श प्रतियोगितासम्बन्धसे अपने ध्वंसका तदात्म्यसम्बन्धसे कारण है) तथापि हेतुको नहीं विषय करनेवाला जो परामर्शसे उत्पन्न ज्ञान वही अनुमिति है। (हेतुका भान परामर्शात्मकज्ञानमें होताहै। इसलिये सुतरां परामर्शज्ञानको विषय करनेवाला जो ज्ञान उस ज्ञानमेंभी हेतुका भान होगा। इसलिये उस ज्ञानको अनुमिति कहना योग्य नहीं है)।

* (टि०) अव्यभिचारि=प्रमात्मकम् अव्यपदेश्यम् निर्विकल्पकम् व्यवसायात्मकम् सविकल्पकम्।

(१०) नच कादाचित्कहेतुविषयकानुमितावव्याप्तिरिति वाच्यम्, तादृशज्ञानवृत्त्यनुभवत्वव्याप्यजातिमत्त्वस्य विवक्षितत्वात्। (११) अथवा व्याप्तिज्ञानकरणकं ज्ञानमनुमितिः।

(१०) शङ्का—किसी २ स्थलमें अनुमितिमें पक्षतावच्छेदकरूपसे हेतुकाभी भान होताहै। जैसे "धूमवान् पर्वतो वह्निमान्" इस अनुमितिमें पक्षतावच्छेदकरूपसे धूमरूप हेतुकाभी भान होताहै। इसलिये यही पर्यवसित हुआ कि जिस अनुमितिमें भी हेतु विषय है उस अनुमितिमें उक्त लक्षणकी अव्याप्ति होगी। समा०—हेतुविषयक जो परामर्शोत्पन्नज्ञान उसमें रहनेवाली जो अनुभवत्वव्याप्यजाति उसके आश्रयको अनुमिति कहते हैं। इसप्रकार लक्षण करनेसे दोष नहीं होगा। (११) जिसज्ञानका व्याप्तिज्ञान करण होता है वह ज्ञान अनुमिति है।

(१२) एवं सादृश्यज्ञानकरणकं ज्ञानमुपमितिः।

(१२) इसप्रकार जिस ज्ञानका सादृश्यज्ञान करण होताहै वह ज्ञान उपमितिरूप ज्ञान है।

(१३) पदज्ञानकरणकं ज्ञानं शाब्दबोधः।

(१३) जिस ज्ञानका पदज्ञान करण होता है वह ज्ञान शाब्दज्ञान है।

(१४) वस्तुतो यां कांचिदनुमितिव्यक्तिमादाय तद्व्यक्तिवृत्तिप्रत्यक्षावृत्तिजातिमत्त्वमनुमितित्वम्। (१५) एवं यत्किंचित्प्रत्यक्षादिकमादाय तद्व्यक्तिवृत्त्यनुमित्यवृत्तिजातिमत्त्वम् प्रत्यक्षत्वादिकं वाच्यमिति।

(१४) वास्तविकमें अनुमितिका लक्षण ऐसा होना चाहिये जैसे किसी एक अनुमिति व्यक्तिमें रहनेवाली तथा प्रत्यक्षमें न रहनेवाली जो जाति (अनुमितित्व) तादृशजातिमत्त्व। (१५) एवं किसी एक प्रत्यक्ष व्यक्तिमें रहनेवाली तथा अनुमितिमें न रहनेवाली जो जाति (प्रत्यक्षत्व) तादृश जातिमत्त्वही प्रत्यक्ष ज्ञानका लक्षण है (इसीप्रकार उपमितिज्ञानका और शाब्दज्ञानकाभी लक्षण करना उचित है)।

(१६) जन्यप्रत्यक्षं विभजते—घ्राणजादीति। (१७) घ्राणजं रासनं चाक्षुषं स्पार्शनं श्रौत्रं मानसमिति षड्विधं प्रत्यक्षम्। (१८) न चेश्वरप्रत्यक्षस्याविभजनान्न्यूनत्वम्, जन्यप्रत्यक्षस्यैव निरूपणीयत्वादुक्तसूत्रानुसारात्।

(१६) "घ्राण" इत्यादि ग्रन्थसे जन्यप्रत्यक्षका विभाग करते हैं। (१७) घ्राणद्वारा, जिह्वाद्वारा, नेत्रद्वारा, त्वचाद्वारा, कर्णद्वारा, मनोद्वारा, उत्पन्न ये ६ प्रकारके प्रत्यक्ष हैं। (१८) शङ्का—प्रत्यक्षके लक्षण करनेके बाद ईश्वरके प्रत्यक्षका विभाग नहीं रहने के कारण लक्षणकर्त्तामें कुछ न्यूनता पायी जाती है। समा०—पूर्वोक्त गौतमसूत्रके अनुसार यहां केवल जन्यप्रत्यक्षहीका निरूपण है।

का० नं० ५३ ।

घ्राणस्य गोचरो गन्धो गन्धत्वादिरपि स्मृतः ।
तथा रसो रसज्ञायास्तथा शब्दोऽपि च श्रुतेः ॥

का० अर्थ ।

गन्ध गन्धत्वादि (आदि शब्दसे गन्धाभाव और गन्धत्वाभाव) घ्राणेन्द्रियका गोचर हैं। घ्राणेन्द्रियजन्यप्रत्यक्षविषय हैं । एवं रस रसत्वादि रसनेन्द्रिय ग्राह्यहैं और शब्दत्वादि कर्णेन्द्रियके गोचर हैं ।

मुक्तावली ।

(१) गोचर इति ग्राह्य इत्यर्थः । (२) गन्धत्वादिरिति । आदिपदात् सुरभित्वादिपरिग्रहः । (३) गन्धस्य प्रत्यक्षत्वात्तद्वृत्तिजातिरपि प्रत्यक्षा । (४) गन्धाश्रयग्रहणे तु घ्राणस्य न सामर्थ्यमिति बोध्यम् ।

मु० अर्थ ।

(१) गोचर शब्दसे ग्राह्य समझना चाहिये यही अभिप्राय है । (२) गन्धत्वादि ग्रन्थमें आदि पदसे " सुरभित्व " " असुरभित्व " धर्मोंका ग्रहण करना चाहिये। (३) गन्धके प्रत्यक्ष होनेके कारण गन्धमें रहनेवाली " गन्धत्व " जातिकाभी प्रत्यक्ष होता है। (४) गन्धका आश्रय जो पृथ्वीरूप द्रव्य है उसको ग्रहण करनेकी सामर्थ्य घ्राणेन्द्रियमें नहीं है ऐसा समझना चाहिये ।

(५) तथारस इति । रसत्वादिसहित इत्यर्थः ।

(५) इसीप्रकार रसनेन्द्रिय केवल रसहीका ग्रहण नहीं करताहै किन्तु रसत्वादिका भी ग्रहण करताहै, यही अभिप्राय है ।

(६) तथा शब्दोऽपि शब्दत्वादिसहितः ।

(६) तथा श्रोत्रेन्द्रिय केवल शब्दहीका ग्रहण नहीं करता है किन्तु शब्दत्वादिका भी ग्रहण करता है ।

(७) गन्धोरसश्च उद्भूतो बोध्यः

(७) इस प्रकरणमें गन्ध और रससे उद्भूतगन्ध और उद्भूतरस समझना चाहिये ।

का० ५४।

उद्भूतरूपं नयनस्य गोचरो, द्रव्याणि तद्वन्ति पृथक्त्व संख्ये।
विभागसंयोगपरापरत्व स्नेहद्रवत्व परिमाणयुक्तम्॥

का० अर्थ।

उद्भूतरूपका, तथा उद्भूतरूपवाले द्रव्यका, पृथक्त्व तथा संख्याका, विभाग तथा संयोगका, परत्व तथा अपरत्वका, स्नेह तथा द्रवत्वका, और परिमाणका, चक्षुसे ग्रहण होताहै (उक्त पृथक्त्वादिकी योग्यवृत्ति समझना चाहिये)।

(१) ग्रीष्मोष्मादावनुद्भूतरूपमिति न तत्प्रत्यक्षम्। (२) तद्वन्ति उद्भूत रूपवन्ति॥

(१) गर्मी महीनोंके उष्मादिमें रूप अनुद्भूत रहनेके कारण यह प्रत्यक्षका विषय नहीं होताहै। (२) "तद्वन्ति" इस ग्रन्थसे उद्भूतरूपवाले यह अर्थ समझना चाहिये।

का० ५५।

क्रिया जातिर्योग्यवृत्तिः समवायश्च तादृशः।
गृह्णाति चक्षुः संयोगादालोकोद्भूत रूपयोः॥

का० अर्थ।

* योग्य वृत्ति क्रिया जाति समवायका ग्रहण चक्षुरिन्द्रियसे होताहै। आलोक (प्रकाश) तथा उद्भूतरूपके सम्बन्धसे चक्षु उक्त रूपादि विषयोंको ग्रहण करताहै।

(१) योग्येति। (२) पृथक्त्वादिकमपि योग्य वृत्तितया बोध्यम्। (३) तादृशः योग्यव्यक्तिवृत्तिरित्यर्थः। (४) चक्षुर्योग्यत्वमेव कथं तदाह। (५) गृह्णातीति। आलोकसंयोग उद्भूतरूपं च चाक्षुषप्रत्यक्षे कारणम्।

(१।२) पृथक्त्वादि गुणोंकाभी चाक्षुषप्रत्यक्ष उसी द्रव्यमें होताहै जो योग्य रहताहै अतः पृथक्त्वादिभी योग्य वृत्ति समझना चाहिये। (३) समवायकाभी प्रत्यक्ष देखने योग्य पदार्थमेंही होताहै अतःसमवायभी योग्यवृत्ति समझना चाहिये। (४) चक्षुरिन्द्रिय योग्यत्वका प्रकार कहतेहैं।

(६) तत्र द्रव्यचाक्षुषं प्रति तयोः समवायसंबन्धेन कारणत्वम्

(६) घटादि चाक्षुष प्रत्यक्षके प्रति प्रकाशका संयोग और उद्भूतरूप ये दोनों समवाय सम्बन्धसे कारणहैं।

* योग्य वृत्तिका प्रत्येकमें अन्वय समझना चाहिये।

(७) द्रव्यसमवेतरूपादिप्रत्यक्षे स्वाश्रयसमवायसंबन्धेन । (८) द्रव्यसमवेतसमवेतस्यरूपत्वादेः प्रत्यक्षे स्वाश्रयसमवेतसमवायसंबन्धेनेति ।

(७) द्रव्यमें समवाय सम्बन्धसे रहनेवाले पदार्थके चाक्षुष प्रत्यक्षके प्रति स्वाश्रय समवाय सम्बन्धसे प्रकाशका संयोग और उद्भूतरूप ये दोनों कारणहैं । (८) द्रव्यमें समवायसम्बन्धसे रहनेवाले जो रूपादि पदार्थ उनमें समवाय सम्बन्धसे रहनेवाले जो रूपत्वादि उनके चाक्षुषप्रत्यक्षमें स्वाश्रय समवेतसमवायसम्बन्धसे प्रकाशका संयोग और उद्भूतरूप ये दोनों कारण हैं ।

* इति चक्षुर्ग्राह्य निरूपणम् *

का० ५६ ।

उद्भूतस्पर्शवद्द्रव्यं गोचरः सोऽपि च त्वचः ।
रूपान्यच्चक्षुषो योग्यं रूपमत्रापि कारणम् ॥

द्रव्याध्यक्षे—

का० अर्थ ।

जिस द्रव्यका स्पर्श उद्भूतहै वह द्रव्य तथा उद्भूत स्पर्श और रूपको छोड़कर जो पदार्थ चक्षुरिन्द्रियसे ग्रहण किये जातेहैं ये सब त्वगिन्द्रियसे भी ग्रहण किये जातेहैं । द्रव्यके स्वाच प्रत्यक्षके प्रति रूपको भी कारणताहै (इसलिये वायुका अनुमानही होताहै किन्तु प्रत्यक्ष नहीं होताहै) ।

(१) उद्भूतस्पर्शवद्द्रव्यं त्वचो गोचरः । (२) सोऽपि उद्भूतस्पर्शोऽपिस्पर्शत्वादि सहितः ।

(१) उद्भूतस्पर्शवत् जो द्रव्य वह त्वगिन्द्रियसे ग्राह्यहै । (२) "सोऽपि" इस ग्रन्थसे स्पर्शत्वादि सहित उद्भूतस्पर्शका ग्रहणहै ।

(३) रूपान्यदिति । (४) रूपभिन्नं रूपत्वादिभिन्नं यच्चक्षुषो योग्यं तत्त्वगिन्द्रियस्यापि ग्राह्यम् । (५) तथाच पृथक्त्वसंख्यादयो ये चक्षुर्ग्राह्या गुणा उक्ता एवं क्रियाजात्यो योग्यवृत्तयश्च ते त्वचो ग्राह्या इत्यर्थः ।

(३,४) रूप रूपत्वादिसे भिन्न जो चक्षुर्योग्य पदार्थ वे त्वगिन्द्रियसेभी ग्राह्यहैं । (५) इस से यह सिद्ध हुआ कि योग्यवृत्ति जो चक्षुर्ग्राह्य पृथक्त्व संख्यादि उक्त गुण एवं क्रिया और जाति ये त्वगिन्द्रियसे भी ग्राह्यहैं ।

(६) अत्रापि त्वगिन्द्रियजन्येऽपि रूपं द्रव्यप्रत्यक्षे कारणम्। (७) तथाच बहिरिन्द्रियजन्यद्रव्यप्रत्यक्षे रूपं कारणम्। (८) नवीनास्तु बहिरिन्द्रियजन्यद्रव्यप्रत्यक्षे न रूपं कारणं प्रमाणाभावात्। (९) किंतु चाक्षुष प्रत्यक्षे रूपं स्पार्शनप्रत्यक्षे स्पर्शः कारणमन्वयव्यतिरेकात्।

(६) अत्रापिशब्दका त्वगिन्द्रियजन्य अर्थहै तब मिलाकर त्वगिन्द्रियजन्यद्रव्य प्रत्यक्षमें भी रूप कारणहै यह अर्थ होताहै तब बहिरिन्द्रियजन्य द्रव्य प्रत्यक्ष मात्रके प्रति (उद्भूत) रूप कारणहै यह सिद्ध हुआ। (८) नवीन आचार्य्योंका मतहै कि प्रमाण नहीं रहनेके हेतु "बहिरिन्द्रियजन्य द्रव्य प्रत्यक्षके प्रति रूप कारणहै" यह कथन ठीक नहींहै। (९) * किन्तु अन्वयव्यतिरेकद्वारा सिद्ध होताहै कि चाक्षुषप्रत्यक्षके प्रति उद्भूतरूप और त्वाच प्रत्यक्षके प्रति उद्भूतस्पर्श यथा क्रम भिन्न भिन्न कारणहै (इस कार्य्य कारण भावका ग्रहण अन्वयव्यतिरेक द्वारा होताहै) अर्थात् रूप रहनेसे चाक्षुष प्रत्यक्ष होताहै। और रूप नहीं रहनेसे चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं होताहै। एवं स्पर्श रहनेसे त्वाच प्रत्यक्ष होताहै और स्पर्श नहीं रहनेसे त्वाच प्रत्यक्ष नहीं होताहै)।

(१०) बहिरिन्द्रियजन्यद्रव्यप्रत्यक्षमात्रे किं कारणमिति चेन्न किंचित्। (११) आत्मावृत्तिशब्दभिन्नविशेषगुणवत्त्वं वा प्रयोजकमस्तु। (१२) रूपस्य कारणत्वे लाघवमिति चेन्न, वायोस्त्वगिन्द्रियेणाग्रहणप्रसङ्गात् (१३) इष्टापत्तिरिति चेदुद्भूतस्पर्श एव लाघवात्कारणमस्तु।

(१०) प्राचीनकी शङ्का—बहिरिन्द्रियजन्य द्रव्य प्रत्यक्षमात्रके प्रति अनुगत रूपसे क्या कारण है? नवीनका उत्तर—कुछ नहीं। (११) अथवा आत्मामें नहीं रहनेवाले एवं शब्दसे भिन्न जो विशेष गुण (पृथिव्यादि ४ में रहनेवाले जो विशेषगुण) तादृशगुणवत्वही बहिरिन्द्रियजन्य द्रव्यप्रत्यक्षके प्रति कारणहै। (१२) प्राचीनकी शङ्का—यदि बहिरिन्द्रियजन्य द्रव्यप्रत्यक्षमात्रके प्रति रूपहीको कारण मानें तो लाघव है? नवीनका उत्तर—वायुका त्वगिन्द्रियसे साक्षात्कार होताहै सो रूप न रहनेके कारण नही होगा। (१३) प्राचीनकी शङ्का—आप जो कहाहै कि "वायुका त्वगिन्द्रियसे साक्षात्कार नहीं होगा सो" हमारे लिये इष्टही है क्योंकि हमारे मतसे स्पर्शादि से वायुका अनुमानही होताहै प्रत्यक्ष नहीं होता? नवीन—इस स्थितिमें बहिरिन्द्रियजन्य द्रव्यप्रत्यक्षके प्रति उद्भूत स्पर्शहीको लाघवात् कारण मानें तो। क्या हानि?

* तत्सत्त्वे तत्सत्त्वम् अन्वयः, तदभावे तदभावो व्यतिरेकः।

(१४) प्रभाया अप्रत्यक्षत्वे त्विष्टापत्तिरेव किं नेष्यते।

(१४) प्राचीन— तब प्रकाशका प्रत्यक्ष नहीं होगा क्योंकि उसमें उद्भूतस्पर्शरूप कारण नहीं है। नवीन —प्रभाको प्रत्यक्ष नहीं होनेसे आपको हानिही क्याहै? (जिस प्रकार आपने वायुके प्रत्यक्षाभावमें इष्टापत्ति मानीहै वैसेही प्रभाके प्रत्यक्षाभावमें भी इष्टापत्ति मानलें।

(१५) तस्मात् प्रभां पश्यामीतिवत् वायुं स्पृशामीति प्रत्ययस्य संभवा-द्वायोरपि प्रत्यक्षं संभवत्येव। (१६) बहिरिन्द्रियजन्यद्रव्यप्रत्यक्षमात्रे न रूपस्य न वा स्पर्शस्य हेतुत्वम्। (१७)वायुप्रभयोरेकत्वं गृह्यत एव, क्वचिद्द्वि-त्वादिकमपि, क्वचित्संख्यापरिमाणाद्यग्रहो दोषादित्याहुः।

(१५) इसलिये जिसप्रकार "मैं प्रकाशको देखताहूं" यह बुद्धि होतीहै उसी प्रकार "मैं वायुका स्पर्श करताहूं" यह बुद्धिभी होतीहै। इसलिये वायुका भी प्रत्यक्ष होताही है ऐसा मानना होगा। (१६) बहिरिन्द्रियजन्य द्रव्यप्रत्यक्ष मात्रके प्रति रूप कारण नहीं है और न केवल स्पर्श ही कारण है। (१७) शङ्का—द्व्यणुकमें जब महत्त्व और उद्भूत स्पर्शादि-त्मक स्पार्शन प्रत्यक्षका कारण कूट है तब द्व्यणुकका स्पार्शन प्रत्यक्ष क्यों नहीं होताहै। समाधान—द्रव्यनिष्ठ लौकिक विषयता सम्बन्धसे स्पार्शनप्रत्यक्षके प्रति तादात्म्यसम्बन्धसे द्व्यणुकमें प्रतिबन्धकत्व मानते हैं, इसलिये द्व्यणुकका स्पार्शनप्रत्यक्ष नहीं होताहै। एवं द्व्यणुकपरिमाणका स्पार्शनप्रत्यक्ष नहीं होताहै और उसके स्पर्शका स्पार्शनप्रत्यक्ष होताहै इसलिये "स्पर्शान्यद्रव्यसमवेतविषयक" स्पार्शन प्रत्यक्षकेप्रति त्वक् संयुक्त स्पार्शनप्रत्यक्षविषय द्रव्यसमवाय कारणहै। तब द्व्यणुकको स्पार्शन प्रत्यक्ष विषय नहीं होनेके कारण द्व्यणुक गत परिमाणका प्रत्यक्ष नहीं होगा। अब स्थूल वायुका यदि प्रत्यक्ष मानाजाय तो तद्गत संख्या, परिमाणका भी प्रत्यक्ष होजायगा। इसी आशयसे मुक्तावलीमें कहाहै कि "वायुप्रभयोरेकत्वं गृह्यत एव" अर्थात् जैसे प्रभागत एकत्वका प्रत्यक्ष होता है, उसी प्रकार वायुगत एकत्वका भी प्रत्यक्ष होताही है। जिस जगह वायुका सजातीय सम्बलन नहीं है अर्थात् अनेक गतिवाला वायु यहां चलताहै उस जगह वायुगत द्वित्वादि संख्याका भी प्रत्यक्ष होताहै और जिस जगह केवल समानही गतिवाला वायु चलताहै उस जगह समानगतिरूपदोषसे वायुगतसंख्यापरिमाणका प्रत्यक्ष नहींहोताहै।

* इति बहिरिन्द्रियजन्य द्रव्यप्रत्यक्षकारणत्व निरूपणम् *

का० ५७।

त्वचो योगो मनसा ज्ञानकारणम्।

का० अर्थ।

मनके साथ त्वगिन्द्रियका संयोग ज्ञानका कारण है।

(१) त्वङ्मनःसंयोगो ज्ञानसामान्ये कारणमित्यर्थः । (२) किं तत्र प्रमाणं, सुषुप्तिकाले त्वचं त्यक्त्वा पुरीतति वर्तमानेन मनसा ज्ञानाजननमिति ।

(१) अभिप्राय यही है कि जन्यज्ञान सामान्यके प्रति मन और त्वगिन्द्रियका संयोग कारण है । शङ्का—इसमें क्या प्रमाण है ? समाधान—गाढ़ निद्रास्थितिमें मन त्वगिन्द्रियको छोड़कर जब पुरीतत् नाम नाड़ीमें प्रवेश करता है तब ज्ञान नहीं होता है यही प्रमाण है ।

(३) ननु सुषुप्तिकाले किं ज्ञानं भविष्यति अनुभवरूपं स्मरणरूपं वा । (४) नाद्यः । अनुभवसामग्र्यभावात् । (५) तथाहि । प्रत्यक्षे चक्षुरादिना मनःसंयोगस्य हेतुत्वात्तदभावादेव न चाक्षुषादिप्रत्यक्षम् । (६) ज्ञानादेरभावादेव न मानसं प्रत्यक्षम् । (७) ज्ञानाद्यभावे चात्मनोऽपि न प्रत्यक्षमिति । (८) एवं व्याप्तिज्ञानाभावादेव नानुमितिः । (९) सादृश्यज्ञानाभावान्नोपमितिः । (१०) पदज्ञानाभावान्न शाब्दबोधः । (११) इत्यनुभव सामग्र्यभावान्नानुभवः । (१२) उद्बोधकाभावाच्च न स्मरणम् । (१३) मैवम् । सुषुप्तिप्राक्कालोत्पन्नेच्छादिव्यक्तेस्तत्संबन्धेनात्मनश्च प्रत्यक्षत्वप्रसङ्गात् ।

(३) शङ्का—अगर मानलें कि सुषुप्तिकालमें ज्ञानभी होता है तो अनुभवरूप और स्मरणरूप इन दोनोंमें किस प्रकार का ज्ञान हो सकता है ? (४) अनुभव पैदाकरनेवाली सामग्रीके नहीं रहनेके कारण अनुभव नहीं हो सकता । (५) जैसे चाक्षुष, त्वाच, घ्राणज, रासन, श्रावण प्रत्यक्षके प्रति चक्षुर्मनःसंयोग, त्वङ्मनःसंयोग, घ्राणमनःसंयोग, रसनामनःसंयोग, श्रोत्रमनःसंयोग, यथाक्रम कारण है । सुषुप्तिकालमें मन पुरीतत् नाड़ीमें जा बैठताहै इसलिये मनको उक्त पांचो बाह्येन्द्रियोंसे संयोग नहीं होनेके कारण चाक्षुष, त्वाच, घ्राणज, रासन, और श्रावण, ये पांच प्रत्यक्ष सुषुप्तिकालमें नहीं हो सकते । (६) सुषुप्तिकालमें जीवात्माको ज्ञानादि गुणोंके अभावरहनेके कारण उनका मानसप्रत्यक्ष भी नहीं हो सकता । (७) और पुनः सुषुप्तिकालमें ज्ञानादिके अभाव होनेके कारण ही आत्माका भी प्रत्यक्ष नहीं हो सकता । क्योंकि " ज्ञानवान् अहम् " इस प्रकार ज्ञानादि विषयक ही आत्माका प्रत्यक्ष होता है । (८) इसी प्रकार सुषुप्तिकालमें व्याप्तिज्ञान नहीं रहने के कारण अनुमिति रूपज्ञान भी नहीं हो सकता है । (९) एवं निद्राकालमें सादृश्यज्ञानके नहीं रहने के कारण उपमितिरूपज्ञान नहीं हो सकता है । (१०) इसी प्रकार सुषुप्तिकालमें पदज्ञान नहीं रहने के कारण शाब्दबोध नहीं हो सकता है । (११) इस प्रकार पूर्वोक्त रीतिसे अनुभवोत्पादक सामग्री नहीं रहनेके कारण अनुभवरूप ज्ञान नहीं हो सकता है । (१२) एवं सुषुप्तिकालमें संस्कारका उद्बोधक कोई पदार्थ नहीं रहनें के कारण स्मृतिरूपज्ञानभी नहीं हो सकता है । (१३) समाधान—सुषुप्तिसे अव्यवहित पूर्वक्षणमें उत्पन्न जो इच्छा ज्ञानादि उनके, और उनके सम्बन्ध होनेके कारण आत्माका भी प्रत्यक्षकी आपत्ति लग सकती है ।

(१४) तदतीन्द्रियत्वे मानाभावात् ।

(१४) शङ्का—सुषुप्तिसे अव्यवहित पूर्वक्षणमें जो इच्छा ज्ञानादि उत्पन्न होतेहैं वे अतीन्द्रिय हैं। (इसलिये उनका और उनके सम्बन्धसे आत्माकाभी प्रत्यक्ष नहीं होगा)। समाधान—उक्त इच्छाज्ञानादि रूप व्यक्तिको अतीन्द्रिय माननेमें कोई प्रमाण नहीं है।

(१५) सुषुप्तिप्राक्काले निर्विकल्पकमेव नियमेन जायत इत्यत्रापि प्रमाणाभावात् । (१६) अथ ज्ञानमात्रे त्वङ्मनःसंयोगस्य यदि कारणत्वं तदा रासनचाक्षुषादिप्रत्यक्षकाले त्वाचप्रत्यक्षं स्यात् । (१७) विषयत्वक्संयोगस्य त्वङ्मनःसंयोगस्य च सत्वात् । (१८) परस्पर प्रतिबन्धादेकमपि वा न स्यादिति।

(१५) सुषुप्तिसे अव्यवहित पूर्वक्षणमें उत्पन्न ज्ञान निर्विकल्पकही होता है इसलिये सुषुप्तिसे पूर्वक्षणमें उत्पन्न जो ज्ञानादि उनके और उनके सम्बन्धसे आत्माकाभी प्रत्यक्ष नहीं हो सकता इस नियममें भी कोई प्रमाण नहीं है। (१६) शङ्का—ज्ञानमात्रके प्रति यदि त्वगिन्द्रिय और मनके संयोगको कारण मानेंगे तो रासनप्रत्यक्षके समयमें अथवा चाक्षुष प्रत्यक्षके समयमें भी त्वाच प्रत्यक्ष होने लगेगा। (१७) क्योंकि विषयको त्वचाके साथ संयोग है और त्वचाका मनके साथ संयोग है। (१८) समाधान—चाक्षुषादि प्रत्यक्ष जनक सामग्री स्पार्शनप्रत्यक्षके प्रति प्रतिबन्धक है। इसलिये चाक्षुषादि ज्ञान कालमें स्पार्शन प्रत्यक्ष नहीं होता है। शङ्का—अगर इस प्रकार परस्पर एक ज्ञानकी सामग्री दूसरे ज्ञानका प्रतिबन्धक हो तो विषय इन्द्रिय संयोग और इन्द्रियमनःसंयोगके सर्वत्र उपस्थित रहनेके कारण कोई भी ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता।

(१९) अत्र केचित्पूर्वोक्तयुक्त्या त्वङ्मनोयोगस्य ज्ञानहेतुत्वे सिद्धे चाक्षुषादिसामग्र्याः स्पार्शनादिप्रतिबन्धकत्वमनुभवानुरोधात्कल्प्यत इति । (२०) अन्ये तु सुषुप्त्यनुरोधाच्चर्ममनः संयोगस्य ज्ञानहेतुत्वंकल्प्यते ।

(१९) कईएक आचार्य इस स्थलमें पूर्वोक्त युक्तिसे (सुषुप्तिकालमें मन त्वगिन्द्रिय को छोड़कर पुरीतत् नाड़ीमें जा बैठता है और तब मनसे ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होतीहै इस युक्तिसे) सिद्ध होता है कि त्वगिन्द्रियमनःसंयोगही ज्ञानमात्रके प्रति कारण है। और एक कालावच्छेदेन नाना ज्ञानभी उत्पन्न नहीं हो सकता है। इसलिये अनुभवके अनुरोधसे ऐसी कल्पना करते हैं कि चाक्षुषादि ज्ञानकी सामग्री स्पार्शन ज्ञानके प्रति प्रतिबन्धक है (२०) पक्ष-धर मिश्र का कथन—सुषुप्तिकालमें किसी ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होती है। इसी अनुरोधसे ज्ञानके प्रति चर्म मनःसंयोग कारण है ऐसी कल्पना की जाती है।

(२१) चाक्षुषादिप्रत्यक्षकाले त्वङ्मनःसंयोगाभावान्न स्पार्शनप्रत्यक्षमिति वदन्ति ।

(२१) इस प्रकार चाक्षुषप्रत्यक्षके समय मनका त्वगिन्द्रियके साथ संयोग नहीं रहनेके कारण त्वाच प्रत्यक्ष नहीं होता है।

—इति त्वङ्मनःसंयोगकारणता विचारः—

का० ५७

मनोग्राह्यं सुखं दुःखमिच्छा द्वेषो मतिः कृतिः॥

का० अर्थ।

सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, ज्ञान, यत्न, (और अपनी आत्मा) ये मनसे ग्रहण किये जाते हैं।

(१) मनोग्राह्यमिति । मनोजन्यप्रत्यक्षविषयमित्यर्थः । (२) मतिर्ज्ञानम् । कृतिः प्रयत्नः । (३) एवं सुखत्वादिकमपि मनोग्राह्यम् । (४) एवमात्मापि मनोग्राह्यः किंतु मनोमात्रस्य गोचर इत्यनेन पूर्वमुक्तत्वादत्र नोक्तः ।

(१) " मनोग्राह्यम् " इस ग्रन्थका अभिप्राय यही है कि उक्त सुख दुःखादि मानसप्रत्यक्षका विषय है। (२) मति ज्ञानको कहते हैं कृति प्रयत्नको कहते हैं। (३) इसी प्रकार सुखदुःखादिमें रहने वाली सुखत्व दुःखत्वादि जाति (और सुखाभाव दुःखाभाव सुखत्वाभाव दुःखत्वाभाव ये सब) मानसप्रत्यक्ष के विषय होते हैं। (४) इसी प्रकार आत्माकाभी मानसही प्रत्यक्ष होता है। " मनोमात्रस्य गोचरः „ इत्यादि ग्रन्थसे पहलेही उपपादन करचुके हैं इसलिये यहां नहीं कहा गया।

का० ५८।

ज्ञानं यन्निर्विकल्पाख्यं तदतीन्द्रियमिष्यते ।
महत्त्वं षड्विधे हेतुरिन्द्रियं करणं मतम् ॥

का० अर्थ।

निर्विकल्पक ज्ञान अतीन्द्रिय होते हैं अर्थात् किसी इन्द्रियसे ग्राह्य नहीं होते हैं। षड्विधप्रत्यक्षके प्रति महत्परिमाण कारण होता है और इन्द्रियां करण होती हैं।

(१) चक्षुः संयोगाद्यनन्तरं घट इत्याकारकं घटत्वादिविशिष्टं ज्ञानं न संभवति पूर्वं विशेषणस्य घटत्वादेर्ज्ञानाभावात्। (२) विशिष्टबुद्धौ विशेषणज्ञानस्य कारणत्वात्। (३) तथाच प्रथमतो घटघटत्वयोर्वैशिष्ट्यानवगाह्येव ज्ञानं जायते तदेव निर्विकल्पकम्। (४) तच्च न प्रत्यक्षम्।

(१) चक्षुरादि इन्द्रियोंका घटादिके साथ संयोग होनेके पश्चातही "अयं घटः" इत्याकारक घटत्वादि प्रकारक और घटादि विशेष्यक विशिष्टज्ञान नहीं होता है, क्योंकि उसके पहले घटत्वादिरूप विशेषणका ज्ञान नहीं हुआ रहता है। (२) नियम है कि विशिष्ट बुद्धि सामान्यके प्रति विशेषण ज्ञान कारण होता है। (३) इसलिये ऐसा माना जाता है कि "अयं घटः" इत्याकारक ज्ञानके पहले घटघटत्वादिका पारस्परिक सम्बन्धानवगाही "घटघटत्वे" ऐसा ज्ञान होता है और वही ज्ञान निर्विकल्पक ज्ञान कहा जाता है। (४) उस निर्विकल्पक ज्ञानका प्रत्यक्ष नहीं होता है।

(५) तथाहि। (६) वैशिष्ट्यानवगाहिज्ञानस्य प्रत्यक्षं न भवति घटमहं जानामीति प्रत्ययात्। (७) तत्रात्मनि ज्ञानं प्रकारीभूय भासते। (८) ज्ञाने घटस्तत्र घटत्वम्। (९) यः प्रकारः स एव विशेषणमित्युच्यते। (१०) विशेषणे यद्विशेषणं तद्विशेषणतावच्छेदकमित्युच्यते। (११) विशेषणतावच्छेदकप्रकारकं ज्ञानं विशिष्ट वैशिष्ट्यज्ञानेकारणम्।

(५) उसका प्रकार यों है। (६)* सम्बन्धानवगाहि जो निर्विकल्पक ज्ञान उसका प्रत्यक्ष नहीं होता है क्योंकि "घटमहंजानामि" यह अनुव्यवसाय घटत्व प्रकारक घटविशेष्यक ज्ञानही को विषय करता है नकि "घटघटत्वे" इस निर्विकल्पक ज्ञानको इसका कारण यह है। (७,८) "घटमहं जानामि" इस प्रतीतिमें आत्मामें ज्ञान और ज्ञानमें घट और घटमें घटत्वप्रकारतया भासित होते हैं। (९) प्रकारही विशेषण कहलाता है। (१०) विशेषणमें जो विशेषण होता है वह विशेषणतावच्छेदक कहलाता है। (११) विशिष्ट वैशिष्ट्यावगाहिज्ञानमें (अर्थात् विशेषण विशिष्ट जो विशेष्य तादृश विशेष्यका जो तृतीय पदार्थमें ज्ञान उसज्ञानमें) विशेषणतावच्छेदक प्रकारक ज्ञान कारण है "घटमहं जानामि" इस अनुव्यवसायमें घटत्व विशिष्ट घटका ज्ञानमें भानहोनेके कारण उक्त अनुव्यवसाय भी विशिष्ट वैशिष्ट्यावगाही है। इसलिये उक्त अनुव्यवसायमें, घटत्वरूप जो विशेषणतावच्छेदक, तत्प्रकारक ज्ञान कारण होगा। अर्थात् घटत्व प्रकारक ज्ञानके बादही उक्त अनुव्यवसाय हो सकता हैयह सिद्ध हुआ।

* अनुव्यवसाय = ज्ञानका प्रत्यक्ष।

(१२) निर्विकल्पके च घटत्वादिकं न प्रकारस्तेन घटत्वादिविशिष्ट घटादिवैशिष्ट्यभानं ज्ञाने न सम्भवति, (१३) घटत्वाद्यप्रकारकं च घटादि-विशिष्टज्ञानं न संभवति, जात्यखण्डोपाध्यतिरिक्तपदार्थज्ञानस्य किंचिद्धर्म प्रकारकत्वनियमात् ।

(१२) निर्विकल्पक ज्ञान तो घटत्व प्रकारक नहींहै । इसलिये निर्विकल्पक ज्ञानके अव्यवहितोत्तरक्षणमें घटत्व विशिष्ट घटका ज्ञानमें भान नहीं हो सकता है । अर्थात् "घटमहं जानामि" इत्याकारक अनुव्यवसाय नहीं हो सकता है । (१३) शङ्का-*यदि आप ऐसा कहें कि "घटमहं जानामि" इस अनुव्यवसायमें घटत्वविशिष्ट घटका ज्ञानमें भान नहींहै, किन्तु केवल घटका ज्ञानमें भानहै इसलिये "घटमहं जानामि" इस अनुव्यवसायको घटत्वविशिष्ट वैशिष्ट्यावगाही न होनेके कारण घटत्व प्रकारक ज्ञानके विना भी उक्त अनुव्य-वसाय हो सकता है । समाधान—जाति और अखण्डोपाधिसे अतिरिक्त पदार्थका ज्ञानमें किञ्चिद्धर्मप्रकारेणैव भान होता है, ऐसा नियम है इसलिये घटको भी जात्यखण्डोपाध्य-तिरिक्त पदार्थ होनेके कारण घटका भान किञ्चित् धर्म प्रकारसेही हो सकता है । नकि किसी धर्मको विना प्रकार किये हुए, एतावता उक्त अनुव्यवसायमें घटत्वादि रूपसेही घटका भान हो सकता है उस स्थितिमें घटत्वको विशेषणतावच्छेदक हो जानेके कारण घटत्व प्रकारक ज्ञानके विना "घटमहं जानामि" यह अनुव्यवसाय नहीं हो सकता है, यह पर्यवसितहुआ ।

(१४) महत्त्वमिति । (१५) द्रव्यप्रत्यक्षे महत्त्वं समवायसम्बन्धेन कारणम् । (१६) द्रव्यसमवेतानां गुणकर्म सामान्यानां प्रत्यक्षे स्वाश्रयसम-वाय सम्बन्धेन कारणम् । (१७) द्रव्यसमवेतसमवेतानां गुणत्व कर्मत्वादीनां प्रत्यक्षे स्वाश्रयसमवेतसमवायसम्बन्धेन कारणमिति ।

(१४,१५) विषयता सम्बन्धसे द्रव्यप्रत्यक्षमें महत्त्व परिमाण समवाय सम्बन्धसे कारण है । †(१६) द्रव्यसमवेत जो गुण, कर्म और जाति विषयतासम्बन्धसे उनके प्रत्यक्षके प्रति महत्त्व स्वाश्रय समवाय सम्बन्धेन कारण है । +(१७) एवं द्रव्यके समवेत जो गुण, कर्म, तत्समवेत जो गुणत्व, कर्मत्वादि विषयतासम्बन्धसे उनके प्रत्यक्षके प्रति स्वाश्रय समवेत समवायसम्बन्धसे महत्त्व कारण है ।

---

* जातिसे भिन्न जो अखण्ड पदार्थ वह अखण्डोपाधि कहलाता है जैसे जातित्वादि ।

† स्वाश्रय समवाय सम्बन्ध, स्व शब्दसे महत्परिमाण लिया जायगा । और उसका आश्रय जो द्रव्य उसमें गुण, कर्म और जातिका समवाय है ।

\+ स्व शब्दसे महत्परिमाण उसका आश्रय जो द्रव्य उसमें समवेत जो गुण, कर्म, उनमें गुणत्व,कर्मत्व रूपत्वादिका समवाय सम्बन्ध है ।

(१८) इन्द्रियमिति। अत्रापि षड्विध इत्यनुषज्यते। (१९) इन्द्रियत्वं तु न जातिः पृथिवीत्वादिना सांकर्यप्रसङ्गात्। (२०) किन्तु शब्देतरोद्भूतविशेषगुणानाश्रयत्वे सति ज्ञानकारणमनःसंयोगाश्रयत्वमिन्द्रियत्वम्। (२१) आत्मादिवारणाय सत्यन्तम्। (२२) उद्भूत विशेषगुणस्य शब्दस्य श्रोत्रे सत्त्वाच्छब्देतरेति। (२३) विशेषगुणस्य रूपादेश्चक्षुरादावपि सत्त्वादुद्भूतेति। (२४) उद्भूतत्वं न जातिः शुक्लत्वादिना सांकर्यात्।

(१८) "इन्द्रियम्" इत्यादि ग्रन्थका यही अभिप्रायहै कि चाक्षुष आदि षड्विध प्रत्यक्षके प्रति इन्द्रिय करण है। (१९) पृथ्वीत्वादिके साथ साँकर्यके हेतु इन्द्रियत्व जाति नहीं है, किन्तु सखण्डोपाधि रूप है। (२०) अर्थात् शब्दसे इतर जो विशेष गुण उसका अनाश्रयत्वेसति ज्ञानके कारण जो मनःसंयोग उसका आश्रयत्वरूप इन्द्रियत्वहै। (२१) अगर केवल ज्ञानका कारण जो मनः संयोग तादृश संयोगका आश्रयत्वही इन्द्रियत्वका लक्षण करें तो आत्मामें अतिव्याप्ति हो जायगी। क्योंकि तादृश संयोगका आश्रयत्व आत्मामेंभीहै इस लिये "शब्देतरोद्भूत विशेष गुणानाश्रयत्वेसति" इस सत्यन्त का भी निवेश कियाहै। अब आत्मामें अतिव्याप्ति नहीं होगी क्योंकि शब्दसे भिन्न जो उद्भूत विशेषगुण सुखादि उसका आत्मा अनाश्रय नहीं है, किन्तु आश्रय ही है इसलिये अतिव्याप्ति नहीं हुई। (२२) इन्द्रियके उक्त लक्षणमें यदि "शब्देतर" विशेषण नहीं दें तो श्रोत्रेन्द्रियमें अव्याप्ति हो जायगी, क्योंकि शब्दरूप जो उद्भूत विशेषगुण उसका अनाश्रयत्व श्रोत्रेन्द्रियमें नहीं है और "शब्देतर" विशेषण देनेसे अव्याप्ति नहीं होगी क्योंकि शब्देतर जो उद्भूत विशेषगुण तादृश गुणका अनाश्रयत्व श्रोत्रेन्द्रियमें है। इसलिये अव्याप्ति दोष नहीं हुआ। (२३) इन्द्रियत्वके उक्त लक्षणमें यदि उद्भूत पद नहीं दें तो अनुद्भूत रूपको लेकर चक्षुरादिमें अव्याप्ति हो जायगी क्योंकि शब्दसे भिन्न जो विशेषगुण वह चक्षुरादिका अनुद्भूतरूप होगा उसका अनाश्रयत्व चक्षुरादिमें नहीं है किन्तु आश्रयत्वही है। इसलिये उद्भूत पदका निवेश है अब अव्याप्ति नहीं होगी क्योंकि चक्षुरादिमें जो रूप है वह अनुद्भूत है। (२४) शुक्लत्वादिके साथ साँकर्य होनेके कारण उद्भूतत्व जाति नहीं है।

(२५) शङ्का—यदि शुक्लत्वादि जातियोंका व्याप्यही नाना उद्भूतत्व मानें तबतो साङ्कर्य नहीं होगा ?

समाधान।—यदि अनेक उद्भूतत्व मानेंगे तो चाक्षुष प्रत्यक्षके प्रति उद्भूतरूपत्वेन उद्भूत रूपकी जनकता नहीं हो सकेगी। क्योंकि जब अनेक उद्भूतत्वरूप व्यक्ति माना जायगा तब यदि तदन्तर्गत एक उद्भूतत्वरूप व्यक्तिको कारणतावच्छेदक मानेंगे तो एक उद्भूतत्वात्मक व्यक्तिविशिष्टरूप किसी एक विषयरूपाधिकरणमें ही रहेगा, तादृश रूप शून्य अन्य उद्भूत रूपाधिकरणका भी प्रत्यक्ष होताहै सो नहीं होगा इसलिये कार्यकारणभावमें व्यभिचार हो जायगा। यदि शुक्लत्वादिव्याप्य उद्भूतत्व समुदायको कारणतावच्छेदक मानेंगे तो सकल उद्भूत रूपको एक स्थानमें न रहनेके कारण असम्भवही हो जायगा।

(२६) किन्तु ऐसा निवेश करसकतेहैं कि शुक्लत्वादियोंके व्याप्य जो नाना अनुद्भूतत्व वेही जाति हैं तादृश जातियोंके अभावोंका समुदायही उद्भूतत्व है। (२७) उक्त उद्भूतत्वरूप धर्म संयोगादि गुणोंमेंभी है इसलिये शब्दसे इतर जो उद्भूत गुण सो संयोगहै उसका अनाश्रयत्व चक्षुरादिमें नहीं है किन्तु आश्रयत्व ही है इस हेतु चक्षुरादिमें असम्भव होगा अतः विशेष गुणका निवेश है तब चक्षुरादिमें असम्भव नहीं होगा क्योंकि संयोगादि विशेष गुण नहीं है। (२८) यदि "शब्देतरोद्भूत विशेष गुणानाश्रयत्व" इतनाही इन्द्रियका लक्षण करें तो कालमें अतिव्याप्ति होगी क्योंकि शब्दस भिन्न जो उद्भूत विशेष गुण उसका अनाश्रयत्व कालमेंभी है इसलिये ज्ञान कारण "मनःसंयोगाश्रयत्वम्" इस विशेष्यदलका भी निवेश किया गया है।

(२९) इन्द्रियावयवविषयसंयोगस्यापि प्राचां मते प्रत्यक्षजनकत्वादिन्द्रियावयववारणाय, नवीनमते कालादौ रूपाभावप्रत्यक्षे संनिकर्षघटकतया कारणीभूतचक्षुःसंयोगाश्रयस्य कालादेश्च वारणाय मनःपदम्, (३०) ज्ञानकारणमित्यपि तद्वारणाय।

(२९) यदि उक्त लक्षणमें मन पद नहीं दें तो प्राचीनोंके मतसे इन्द्रियावयवमें अतिव्याप्ति और नवीनके मतसे कालादिमें अतिव्याप्ति होगी। यथा—प्राचीन आचार्य घटादि विषयोंके साथ इन्द्रियके अवयवोंका जो संयोग तादृश संयोगको भी ज्ञानके प्रति कारण मानतेहैं। उस संयोगका आश्रय जो इन्द्रियावयव वह शब्दसे इतर जो उद्भूत विशेष गुण उसका अनाश्रय है। और ज्ञानकारण जो इन्द्रियावयव और घटादि पदार्थोंका संयोग तादृश संयोगका आश्रय भी है। इसलिये अतिव्याप्ति हुई, किन्तु मन पद देनेसे अतिव्याप्ति नहीं होगी, क्योंकि मनके साथ जो इन्द्रियावयवका संयोग वह ज्ञानका कारण नहीं है। नवीन आचार्य कालमें रूपाभावका प्रत्यक्ष चक्षुः संयुक्त विशेषणता सन्निकर्षसे मानते हैं। तादृश सन्निकर्षघटक जो कालके साथ चक्षुःसंयोग वह भी कालमें रूपाभाव प्रत्यक्षका कारण होगा, तब कालमेंरूपाभावप्रत्यक्ष का कारणीभूत जो कालके साथ चक्षुः संयोग उस संयोगकी आश्रयता कालमें है। और शब्दसे भिन्न उद्भूत विशेष गुणकी अनाश्रयता भी है। इसलिये कालमें अति व्याप्ति हुई। परन्तु मन पद देनेसे अतिव्याप्ति नहीं होगी। (३०) उक्त लक्षणमें अगर ज्ञान कारण नहीं दें तो पुनः कालमें अतिव्याप्ति होगी क्योंकि शब्दसे भिन्न जो उद्भूत विशेष गुण रूपादि उसका अनाश्रय और मनःसंयोगाश्रय भी कालहै। ज्ञान कारण पद देनेसे कालमें अतिव्याप्ति नहीं होगी क्योंकि ज्ञानका कारण जो मनःसंयोग वह कालमें नहीं है।

(३१) करणमिति । असाधारणं कारणं करणम् । (३२) असाधारणत्वं व्यापारवत्त्वम् ।

(३१,३२) "करणम्" इसग्रन्थसे समझना चाहिये कि असाधारणजो कारण वही करणहै । असाधारण शब्दका व्यापारवान् अर्थ है अतः व्यापारवान् कारण करण है यह अर्थहुआ ।

विषयेन्द्रियसम्बन्धो व्यापारः सोऽपि षड्विधः ।
द्रव्यग्रहस्तु संयोगात्संयुक्तसमवायतः ॥ ५९
द्रव्येषु समवेतानां तथा तत्समवायतः ।
तत्रापि समवतानां शब्दस्य समवायतः ॥ ६०
तद्वृत्तीनां समवेतसमवायेन तु ग्रहः ।
प्रत्यक्ष समवायस्य विशेषणतयाभवेत् ॥ ६१
विशेषणतया तद्वदभावानां ग्रहो भवेत् ।
यदि स्यादुपलभ्येतेत्येवं यत्र प्रसज्यते ॥ ६२

का० अर्थ ।

(५९) घटपटादि विषयोंके साथ नेत्रादि इन्द्रियोंका जो प्रत्यक्षानुकूल सम्बन्ध होताहै वह पूर्वोक्त षड्विध प्रत्यक्षके प्रति व्यापार कहा जाताहै । यह सम्बन्धरूप व्यापार ६ प्रकार के होतेहैं । द्रव्यका ग्रहण संयोग सम्बन्धसे होताहै । (६०) द्रव्यसमवेत रूपादिका ग्रहण संयुक्तसमवाय सम्बन्धसे होताहै । द्रव्यसमवेत समवेत रूपत्वादिका " संयुक्त समवेत समवाय" सम्बन्धसे होताहै । शब्दका समवायसम्बन्धसे होताहै । (६१)शब्दमें समवाय सम्बन्धसे रहनेवाले "शब्दत्वादि का" समवेत समवाय सम्बन्धसे ग्रहण होताहै और समवायका विशेषणता सम्बन्धसे ग्रहण होताहै । (६२) इसी प्रकार अभावोंकाभी ग्रहण विशेषणता सम्बन्धसे होताहै "अत्र यदिघटःस्यात्तर्हिउपलभ्येत " इसप्रकार प्रतियोगिप्रत्यक्षकी आपत्ति जहां दी जा सकतीहै वहीं घटाभावादिका प्रत्यक्ष होताहै । इसी हेतु अन्धकारमें घटादिके अभावोंका प्रत्यक्ष नहीं होताहै ।

(१) व्यापारः सन्निकर्षः ।

(१) यहां व्यापार सन्निकर्षको कहतेहैं ।

(२) षड्विधं संनिकर्षमुदाहरणद्वारा दर्शयति ।

(२) (उक्त) ६ प्रकारके सन्निकर्षोंको उदाहरण द्वारा दिखलातेहैं ।

(३) द्रव्यग्रह इति

(३) द्रव्यग्रह पर विचार ।

(४) द्रव्यप्रत्यक्षमिन्द्रियसंयोगजन्यम्। (५) द्रव्यसमवेतप्रत्यक्षमिन्द्रियसंयुक्तसमवायजन्यम्। (६) एवमग्रेऽपि। (७) वस्तुतस्तु द्रव्यचाक्षुषं प्रति चक्षुःसंयोगः कारणं। (८) द्रव्यसमवेतचाक्षुषं प्रति चक्षुःसंयुक्तसमवायः कारणं। द्रव्यसमवेतसमवेतचाक्षुषं प्रति चक्षुःसंयुक्तसमवेतसमवायः। (९) एवमन्यत्रापि विशिष्यैव कार्यकारणभावः।

(४) घट पटादि द्रव्योंका लौकिक प्रत्यक्ष नेत्रादि इन्द्रियों के संयोगसे होताहै। (५,६) द्रव्यमें समवेत जो रूपादि गुण क्रिया और जाति उनके लौकिक प्रत्यक्ष "इन्द्रिय संयुक्त समवाय" सम्बन्धसे होताहै। इसीप्रकार द्रव्यसमवेत समवेत जो गुणकर्मगत जाति उनके लौकिक प्रत्यक्ष इन्द्रिय संयुक्त समवेत समवाय सम्बन्धसे होता है। (७) वस्तु स्थिति तो ऐसी है कि घट पटादि द्रव्य के चाक्षुष प्रत्यक्ष के प्रति चक्षुः संयोग कारणहै। (८) घट पटादि द्रव्यों में समवेत पदार्थ के चाक्षुष प्रत्यक्षके प्रति चक्षुः संयुक्त समवाय कारणहै। द्रव्यसमवेतमें समवेत जो गुणकर्मगतजाति उनके चाक्षुष प्रत्यक्षकेप्रति चक्षुः संयुक्त समवेत समवाय कारणहै। (९) इसीप्रकार इन्द्रियान्तर जन्य लौकिक प्रत्यक्ष के प्रतिभी विशेष २रूपसे कार्य कारण भाव है।

(१०) परन्तु पृथिवीपरमाणुनीले नीलत्वं पृथिवीपरमाणौ पृथिवीत्वं च चक्षुषा कथं न गृह्यते तत्र परंपरयोद्भूतरूपसंबन्धस्य महत्त्वसंबन्धस्य च सत्त्वात्।

*(१०) क्या कारणहैकि उद्भूतरूप तथा महत्त्वका परम्परासम्बन्ध रहनेपरभी पृथ्वीपरमाणुगत नील रूपमें नीलत्वका तथा पृथ्वी परमाणुमें पृथ्वीत्वका चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं होताहै।

(११) तथाहि—नीलत्वं जातिरेकैव घटनीले परमाणुनीले च वर्तते। (१२) तथा च महत्त्वसंबन्धो घटनीलमादाय वर्तते। (१३) उद्भूतरूपसम्बन्धस्तूभयमादायैव वर्तते। (१४) एवं पृथिवी परमाणौ पृथिवीत्वेऽपि घटादिकमादाय महत्त्वसंबन्धो बोध्यः। (१५) एवंवायौ तदीयस्पर्शादौ च सत्तायाश्चाक्षुषप्रत्यक्षं स्यात्।

(११) जैसे सकल नीलमें रहनेवाली नीलत्व जाति एकहीहै वह नीलत्व जाति घटनीलमें तथा परमाणु नीलमें भी रहता है। (१२,१३) इसलिये महत्त्व घटगत नील रूपके द्वारा परमाणु नीलनिष्ठ नीलत्व में स्वाश्रय समवेत समवाय सम्बन्धसे रहता है। और उद्भूतरूपका सम्बन्धतो घटनील तथा परमाणुनीलकोभी लेकर (दोनोंद्वारा) नीलत्वमें रहता है। (१४) इसप्रकार महत्त्व घटादिद्वारा स्वाश्रय समवायसम्बन्धसे पृथिवी परमाणुके पृथ्वीत्वमें रहता है। (१५) एवम् वायुमें और उसके स्पर्शमें सत्ताका चाक्षुषप्रत्यक्ष होना उचित है क्योंकि सत्ता एकही है इसलिये वायुवृत्ति सत्तापर स्वाश्रय समवायसम्बन्धसे घटके द्वारा उद्भूतरूप और घट तथा वायुके द्वारा महत्त्व रहता है। और वायवीय स्पर्शमें रहने वाली सत्तापर उद्भूतरूप घट द्वारा परम्परा (स्वाश्रय समवेत समवाय) सम्बन्धसे, तथा घट एवं वायुके द्वारा महत्त्वभी उक्तसम्बन्धसे रहता है इसलिये वायुमें और उसके स्पर्शमें सत्ताका चाक्षुष प्रत्यक्ष होना उचित है (जो नहीं होता है)।

* इस स्थलमें उद्भूतरूप और महत्त्व "स्वाश्रयसमवेत समवाय सम्बन्धसे परमाणुगत नीलगत-नीलत्वमें एवं स्वाश्रय समवाय सम्बन्धसे पृथ्वी परमाणु गत पृथ्वीत्वमें रहताहै।

(१६) तस्मादुद्भूत रूपावच्छिन्नमहत्त्वावच्छिन्नचक्षुः-संयुक्त समवायस्य द्रव्यसमवेतचाक्षुषे तादृशचक्षुः संयुक्त समवेतसमवायस्य द्रव्यसमवेतसमवेत चाक्षुषे कारणत्वं वाच्यम्। (१७) इत्थं च परमाणुनीलादौ न नीलत्वादि ग्रहः, परमाणौ चक्षुः संयोगस्य महत्त्वावच्छिन्नत्वाभावात्। (१८) एवं वाय्वादौ न सत्तादि चाक्षुषं तत्र चक्षुः संयोगस्य रूपावच्छिन्नत्वाभावात्।

(१६) इस हेतु द्रव्य समवेत "गुण, क्रिया और जातिके चाक्षुष प्रत्यक्षके प्रति उद्भूतरूपविशिष्ट और महत्त्वविशिष्टजो चक्षुःसंयोग तदाश्रय-समवाय सम्बन्धकोही कारणता माननीचाहिये एवम् द्रव्यसमवेतसमवेत "गुणत्व, क्रियात्व, प्रभृ तके चाक्षुषप्रत्यक्षके प्रति उद्भूतरूपावच्छिन्न महत्त्वावच्छिन्न जो चक्षुः- संयोग तदाश्रय समवेत समवाय सम्बन्धको कारणता माननी चाहिये। (१७) इस प्रकार परमाणु नीलादिमें नीलत्वादिके प्रत्यक्षकी आपत्ति नहीं हो सकती क्योंकि परमाणुमें महत्त्वाभाव है। इसलिये परमाणुमें चक्षुः— संयोगको महत्त्वावच्छिन्नत्व नहीं हो सकता। (१८) इस प्रकार वायुमें रूपावच्छिन्न चक्षुः-संयोग नहीं रहनेके कारण वायुमें और उसके स्पर्शमें सत्ताका प्रत्यक्ष नहीं होसकता।

(१६) एवं यत्र घटस्य मध्यावच्छेदेनालोकसंयोगः चक्षुःसंयोगस्तु बाह्यावच्छेदेन तत्र घटप्रत्यक्षाभावादालोकसंयोगावच्छिन्नत्वं चक्षुःसंयोगे विशेषणं देयम्। (२०) एवं द्रव्यस्पार्शनप्रत्यक्षे त्वक्संयोगः कारणं द्रव्यसमवेतस्पार्शनप्रत्यक्षे त्वक्संयुक्तसमवायः द्रव्यसमवेतसमवेतस्पार्शनप्रत्यक्षे त्वक्संयुक्तसमवेतसमवायः कारणम्। (२१) अत्रापि महत्त्वावच्छिन्नत्वमुद्भूतस्पर्शावच्छिन्नत्वं च पूर्ववदेव बोध्यम्। (२२) एवं गन्धप्रत्यक्षे घ्राणसंयुक्तसमवायः। (२३) गन्धसमवेतस्य घ्राणजन्यप्रत्यक्षे घ्राणसंयुक्तसमवेतसमवायः कारणम्।

(१६) इस तरह जहां अन्धेरेमें घटके भीतर एक जलता हुआ चिराग है उसकी रोशनी भीतरही रुक रहती है, बाहर नहीं आती है, उस स्थलमें घटमें बाह्य देशसे उद्भूत रूप वच्छिन्न महत्त्वावच्छिन्नचक्षुः संयोग रहने पर भी उक्त घटका चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं होता, इसलिये चक्षुः संयोगमें "प्रकाश संयोगावच्छिन्नत्व विशेषण" भी देना चाहिये। (तात्पर्य यह है कि द्रव्यका चाक्षुष प्रत्यक्ष "उद्भूतरूपावच्छिन्न महत्त्वावच्छिन्न प्रकाश संयोगावच्छिन्न चक्षुः सयोगसे होगा, अन्यथा नहीं)। (२०) (क) इसीप्रकार द्रव्यकेस्पार्शनप्रत्यक्षके प्रति त्वक्संयोग कारण है। (ख) द्रव्यसमवेत (गुणादि) स्पार्शनप्रत्यक्षके प्रति "त्वक्संयुक्तसमवाय" कारण है। (ग) द्रव्यसमवेतसमवेत (गुणत्वादि) स्पार्शनप्रत्यक्षके प्रति "त्वक्संयुक्त समवेतसमवाय" कारण है।

* (२१) यहां भी पूर्ववत् (चाक्षुषप्रत्यक्ष की तरह) सन्निकर्ष घटक इन्द्रियसंयोगमें उद्भूतस्पर्शावच्छिन्नत्व तथा महत्त्वावच्छिन्नत्व विशेषण समझना चाहिये। (२२) "गन्ध प्रत्यक्षके प्रति घ्राण संयुक्त समवाय सन्निकर्ष कारण है। (२३) गन्धसमवेत "गन्धत्वादि" प्रत्यक्षके प्रति "घ्राणसंयुक्त समवेत समवाय" सन्निकर्ष कारण है।

(२४) एवं रसप्रत्यक्षे रसनासंयुक्तसमवायः। (२५) रससमवेतरासनप्रत्यक्षे रसनासंयुक्तसमवेतसमवायः कारणम्। (२६) शब्दप्रत्यक्षे श्रोत्रावच्छिन्नसमवायः कारणम्। (२७) शब्दसमवेतश्रावणप्रत्यक्षे श्रोत्रावच्छिन्नसमवेतसमवायः कारणम्। (२८) अत्र सर्वं प्रत्यक्षं लौकिकं बोध्यम्। (२९) वक्ष्यमाणमलौकिकं प्रत्यक्षमिन्द्रियसंयोगादिकं विनापि भवति। (३०) एवमात्मनः प्रत्यक्षे मनःसंयोगः, आत्मसमवेतमानसप्रत्यक्षे मनःसंयुक्तसमवायः, आत्मसमवेतसमवेतमानसप्रत्यक्षे मनः संयुक्तसमवेतसमवायः कारणम्।

(२४) एवं (द्रव्यसमवेत) रस प्रत्यक्षके प्रति रसना संयुक्त समवाय कारण है (२५) रससमवेत (रसत्वादि) के रासनप्रत्यक्षके प्रति रसना संयुक्त समवेतसमवाय कारण है। (२६) शब्दप्रत्यक्षके प्रति श्रोत्रावच्छिन्न समवायसम्बन्धको कारणता है। (२७) शब्दसमवेत (शब्दत्वादि के श्रावण प्रत्यक्षके प्रति श्रोत्रावच्छिन्न समवेत समवाय सम्बन्ध कारणहै। (२८) इस प्रकरणमें प्रत्यक्ष शब्दसे लौकिक प्रत्यक्षही समझना उचित है। (२९) (वक्ष्यमाण) आगे कहाजानेवाला अलौकिक प्रत्यक्ष इन्द्रिय सम्बन्धके बिनाभी होताहै। (३०) (क) आत्माके प्रत्यक्षके प्रति संयोग कारणहै। (ख) आत्म-समवेत मानसप्रत्यक्षके प्रति मनःसंयुक्त समवाय कारणहै। (ग) आत्मसमवेतसमवेत "सुखत्वादि" के मानसप्रत्यक्षके प्रति मनःसंयुक्त समवेत समवाय सन्निकर्ष कारणहै।

(३१) अभावप्रत्यक्षे समवायप्रत्यक्षे चेन्द्रियसम्बद्धविशेषणता हेतुः। (३२) वैशेषिकमते तु समवायो न प्रत्यक्षः। (३३) अत्र यद्यपि विशेषणता नानाविधा।

× (३१) अभाव तथा समवायके प्रत्यक्षके प्रति "इन्द्रियसम्बद्ध विशेषणता" कारणहै। (३२) वैशेषिकसिद्धान्तके अनुसार समवाय सम्बन्धका प्रत्यक्षही नहीं होताहै। (३३) इस प्रकरणमें विशेषणता अनेक प्रकारकी है।

---

* परमाणु घटित त्वक् सन्निकर्षसे स्पर्शत्वके स्पार्शन प्रत्यक्षके वारणार्थ महत्त्वावच्छिन्नत्वका निवेश तथा प्रभा घटित सन्निकर्ष से स्पर्शत्वका स्पार्शनप्रत्यक्षके वारणार्थ उद्भूत स्पर्शावच्छिन्नत्वका निवेश पूर्ववत् करना उचित है।

× अभाव तथा समवायके प्रत्यक्षका दृष्टान्त जैसे किसी भूतलपर घट नहीं है। उस समय उस घटका प्रत्यक्ष नहीं होता घटाभावका प्रत्यक्ष होता है। और घटमें रूपके समवायका "घटः रूपवान" ऐसी प्रत्यक्ष होताहै।

(३४) तथाहि भूतलादौ घटाद्यभावः संयुक्तविशेषणतया गृह्यते। (३५) संख्यादौ रूपाद्यभावः संयुक्तसमवेतविशेषणतया। (३६) संख्यात्वादौ रूपाद्यभावः संयुक्तसमवेतसमवेतविशेषणतया। (३७) शब्दाभावः केवल श्रोत्रावच्छिन्नविशेषणतया। (३८) कादौ खत्वाद्यभावः श्रोत्रावच्छिन्नसमवेतविशेषणतया। (३९) एवं कत्वाद्यवच्छिन्नाभावे गत्वाभावादिकं श्रोत्रावच्छिन्नविशेषणविशेषणतया। (४०) एवं घटाभावादौ पटाभावः चक्षुःसंयुक्तविशेषणविशेषणतया। (४१) एवमन्यदप्यूह्यम्।

(३४) जैसे भूतलादिमें घटादि पदार्थोंके अभावका प्रत्यक्ष "संयुक्तविशेषणता" सन्निकर्षसे होताहै। (३५) संख्यादिमें रहनेवाले रूपादि गुणोंके अभावका प्रत्यक्ष "संयुक्त समवेत विशेषणता" सन्निकर्षसे होताहै। (३६) संख्यात्वादिमें रूपादिके अभावका प्रत्यक्ष "संयुक्तसमवेतसमवेत विशेषणता" सन्निकर्षसे होताहै। (३७) शब्दाभावका प्रत्यक्ष "श्रोत्रावच्छिन्न विशेषणता" सन्निकर्षसे होताहै। (३८) ककारादि वर्णोंमें खत्वादि धर्मोंके अभावका प्रत्यक्ष "श्रोत्रावच्छिन्न समवेत विशेषणता" सन्निकर्षसे होताहै। (३९) इसीप्रकार कत्वाद्यवच्छिन्नाभावमें गत्वाभावका प्रत्यक्ष श्रोत्रावच्छिन्न विशेषण विशेषणता" सन्निकर्षसे होगा। (४०) घटादि पदार्थोंके अभावमें पटाभावका प्रत्यक्ष "चक्षुः संयुक्त विशेषण विशेषणता" सन्निकर्षसे होताहै। (४१) इसीप्रकार दूसरे सब स्थलोंमें अभाव प्रत्यक्षानुकूल सन्निकर्षका अन्वेषण कर लेना चाहिये।

(४२) तथापि विशेषणतात्वरूपेणैकैव सा गण्यते। अन्यथा षोढ़ा सन्निकर्ष इति प्राचां प्रवादो व्याहन्येतेति।

(४२) यद्यपि उक्त रीतिसे विशेषणता अनेकहै तथापि विशेषणतात्व धर्म एकही है और वह सब विशेषणताओंमें रहताहै, इसलिये विशेषणता भी एकही कही जातीहै यदि विशेषणतात्व के ऐक्य मूलक विशेषणतामें ऐक्य न मानाजाय तो सन्निकर्ष ६ प्रकारके होते हैं। यह प्राचीनोंकी उक्ति व्याहत हो जायगी।

(४३+४४) यदिस्यादुपलभ्येतेति। अत्राभावप्रत्यक्षे योग्यानुपलब्धिः कारणम्। (४५+४६) तथाहि। भूतलादौ घटादिज्ञाने जाते घटाभावादिकं न ज्ञायते। (४७) तेनाभावोपलम्भे प्रतियोग्युपलम्भाभावः कारणम्।

(४३,४४) "यदिस्यादुपलभ्येत" इत्यादि ग्रन्थ पर विचार। अभावके प्रत्यक्षमें योग्य प्रतियोगीकी अनुपलब्धि कारणहै। (४५+४६) यथा-भूतलादि अधिकरणमें घटादिका भ्रमात्मक भी ज्ञान होने पर घटाभावका ज्ञान नहीं होताहै। (४७) इसलिये अभाव मात्रके प्रत्यक्षके प्रति अभावप्रतियोगीके उपलब्धिका अभाव कारणहै।

(४८) तत्रयोग्यताप्यपेक्षिता सा च प्रतियोगिसत्त्वप्रसञ्जनप्रसञ्जितप्रतियोगिकत्वरूपा। (४९) तदर्थश्च प्रतियोगिनो घटादेः सत्त्वप्रसक्त्या प्रसञ्जितः उपलम्भरूपः प्रतियोगी यस्य सोऽभावप्रत्यक्षे हेतुः।

* (४८) उक्त प्रतियोग्युपलम्भाभावमें योग्यताभी अपेक्षित है। वह योग्यता तत्तत् अभावके प्रतियोगीके सत्त्वप्रसक्तिसे आपादित जो प्रतियोगिप्रत्यक्ष तत् प्रतियोगिकत्व रूप है। (४९) जिस अभावके प्रतियोगियोंकी प्रसक्तिसे जिस अभावके प्रतियोगीकी प्रसक्ति हो सकतीहै वह अभाव (प्रतियोग्युपलम्भाभाव) उस अभाव (घटाभाव) के प्रत्यक्षका कारण होताहै।

(५०) तथाहि। (५१) यत्रालोकसंयोगादिकं वर्तते तत्र यद्यत्र घटः स्यात्तर्हि उपलभ्येतेत्यापादयितुं शक्यते। (५२) तत्र घटाभावादि प्रत्यक्षं भवति। (५३) अन्धकारेतु नापादयितुं शक्यते। (५४) तेन घटाभावादेरन्धकारे न चाक्षुषप्रत्यक्षम्, स्पार्शनप्रत्यक्षं तु भवत्येव, आलोकसंयोगं विनापि स्पार्शनप्रत्यक्षस्यापादयितुं शक्यत्वात्।

(५०,५१) जैसे जहांपर प्रकाश संयोगादि चाक्षुष ज्ञान प्रयोजक सामग्रीके रहनेसे "अत्र यदि घटः स्यात्तर्हि उपलभ्येत" ऐसा आपादन कर सकतेहैं। (५२) उन स्थलों में घटादिके अभावोंका प्रत्यक्षभी होताहै। (५३) अन्धेरेमें "अत्र यदि घटः स्यात्तर्हि उपलभ्येत" ऐसा आपादन नहीं करसकतेहैं। (५४) इसलिये अन्धेरेमें घटादिके अभावों का चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं हो सकता किन्तु "अत्र यदि घटः स्यात्तर्हि स्पर्शेन उपलभ्येत" ऐसा आपादन कर सकनेके कारण अन्धकारमेंभी घटादि पदार्थोंके अभावोंका त्वाचप्रत्यक्ष होताहै।

(५५) गुरुत्वादिकं यदयोग्यं तदभावस्तु न प्रत्यक्षस्तत्र गुरुत्वादि प्रत्यक्षस्यापादयितुमशक्यत्वात्।

†(५५) गुरुत्वादि जो अयोग्यहैं (जो सर्वथा प्रत्यक्षके अयोग्य पदार्थहैं) उनके अभावोंकाभी प्रत्यक्ष नहीं हो सकता क्योंकि "घटे यदि गुरुत्वं स्यात्तर्हि उपलभ्येत" ऐसा आपादन नहीं हो सकता।

* उपलम्भकास्वरूप—"अत्र यदि घटः स्यात्तर्हि उपलभ्येत" इत्यादि। एवम् अतीन्द्रिय पदार्थ में भी अभावप्रत्यक्ष उपलम्भाभावहोते समझना चाहिये। सारांश—जिनअधिकरणों में जिन २ अभावप्रतियोगियोंके आरोपसे तत्तत् उपलम्भ का आरोप हो उन उक्त अधिकरणोंमें तत्तत् अभावोंका प्रत्यक्ष होता है।

† गुरुत्वादि—गुरुत्व, धर्म अधर्म, इत्यादि गुरुत्वादि धर्मोंका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता किन्तु अनुमान मात्र होसकताहै। जैसे किसी गुरु वस्तुको तराजू पर रखदें तो उसके पलड़ेके नीचे जानेके कारण अनुमान कियाजायगा कि यह वस्तु गुरु है। इसी प्रकार गुरुत्वका अनुमान होता है एवं धर्म अधर्म इत्यादि प्रत्यक्षके योग्य नहीं है इसलिये "मयि धर्मो यदिस्यात् अधर्मोवा तर्हि उपलभ्येत" इस प्रकार धर्माधर्मका आपादन नहीं होनेके कारण धर्म अधर्म इत्यादिके अभावों का भी प्रत्यक्ष नहीं होसकता केवल सुख दुःखादि के भोगसे अनुमान होता है। किन्तु जिन २ अधिकरणोंमें जिन २ अभावोंके प्रतियोगियोंका आपादन होसकताहै उन अधिकरणोंमें तत्तत् पदार्थोंके तत्तत् अभावों का प्रत्यक्ष होसकता है॥

(५६) (क) वायौ रूपाभावः । (५७) (ख) पाषाणे सौरभाभावः । (५८) (ग) गुडे तिक्ताभावः वह्नावनुष्णत्वाभावः । (५९) (घ) श्रोत्रे शब्दाभावः । (६०) (ङ) आत्मनि सुखाभावः । (६१) एवमादयस्तत्तदिन्द्रियैर्गृह्यन्ते तत्तत्प्रत्यक्षस्यापादयितुं शक्यत्वात् ।

(५६) * (क) वायुमें रूपका अभाव । (५७)† (ख) प्रस्तरमें गन्धका अभाव । (५८)‡(ग) गुड़में तिक्त रस अभाव । अग्निमें अनुष्णस्पर्शका अभाव । (५९)††(घ) श्रोत्रेन्द्रियमें शब्दका अभाव । (६०)‡‡(ङ) आत्मामें सुखेका अभाव । (६१) इन ६ वस्तुओंके अभावोंका प्रत्यक्ष तत्तत्ही इन्द्रियसे हो सकताहै क्योंकि तत्तत् पदार्थके उपलम्भकाभी आपादन तत्तत्ही इन्द्रियसे होताहै ।

(६२) संसर्गाभावप्रत्यक्षे प्रतियोगिनो योग्यता । (६३) अन्योन्याभावप्रत्यक्षे त्वदधिकरणयोग्यताऽपेक्षिता । (६४) अतस्तम्भादौ पिशाचादिभेदोऽपि चक्षुषा गृह्यत एव ।

(६२) संसर्गाभाव एतावता (प्रागभाव प्रध्वंसाभाव, अत्यन्ताभाव) के प्रत्यक्ष के प्रति उनके प्रतियोगीकी योग्यता अपेक्षित है । अर्थात् उनके प्रतियोगी यदि प्रत्यक्ष योग्य रहेंगे तभी उन अभावोंका प्रत्यक्ष होगा । (६३) किन्तु अन्योन्याभावके प्रत्यक्षके प्रति उनके अधिकरणकी योग्यता अपेक्षित है । (६४) इसीलिये खम्भे इत्यादिमें पिशाचादिका भेदभी आंखों द्वारा प्रत्यक्ष होताहै । जैसे " स्तम्भः पिशाचो न " ।

---

* (क) नियम है कि महत्त्व परिमाण विशिष्ट उद्भूतरूप जिस पदार्थमें रहताहै उसका प्रत्यक्ष हो सकताहै जैसा कि घटादि पदार्थके प्रति पूर्व दिखलाया गया है तब " वायौ यदि रूपं स्यात्तर्हि चक्षुषा उपलभ्येत" ऐसा आपादन होसकताहै । क्योंकि वायुमें स्पार्शन प्रत्यक्ष होनेके कारण महत्त्व परिमाण है किन्तु रूप नहीं है इसलिये रूपाभावका चाक्षुषही प्रत्यक्ष हो सकता है ।

† (ख) गन्धका घ्राणेन्द्रिय द्वारा ग्रहण होनेके कारण " पाषाणे यदि सौरभः स्यात्तर्हि उपलभ्येत ऐसा आपादन हो सकता है । पाषाणमें यदि उद्भूत गन्धहोता तो घ्राणेन्द्रिय द्वारा गृहीत होता इसलिये पाषाणमें उद्भूत गन्धाभावका प्रत्यक्ष घ्राणज ही होगा ।

‡ (ग) रसका रसनेन्द्रिय द्वारा ग्रहण होनेके कारण " गुडे यदि तिक्त रसः स्यात्तर्हि रसनया उपलभ्येत " ऐसा आपादन होसकता है । गुड़में यदि तिक्त रस होता तो रसनेन्द्रियसे उसका ग्रहण होता इसलिये गुड़में तिक्तरसाभावका प्रत्यक्ष रसनेन्द्रियसेही होगा । (घ) उष्णस्पर्शका ग्रहण त्वगिन्द्रियजन्य होताहै "अतःअग्नौ यदि अनुष्णस्पर्शस्यात्तर्हि त्वगिन्द्रियेणोपलभ्येत " । ऐसा आपादन होसकता है । अग्निमें यदि अनुष्णस्पर्श रहता तो त्वगिन्द्रियसे गृहीत होता । इसलिये अग्निमें अनुष्णस्पर्शाभावका प्रत्यक्ष त्वगिन्द्रियजन्यही होगा ।

†† एवं श्रोत्रेन्द्रियमें शब्दाभावका प्रत्यक्ष होता है क्योंकि " श्रोत्रे यदि शब्दः स्यात्तर्हि श्रोत्रेणोपलभ्येत" इसप्रकार श्रोत्रेन्द्रियमें शब्दके आरोपसे श्रोत्रेन्द्रिय ही जन्य उपलम्भका आरोप हो सकता है इसलिये शब्दाभाव का प्रत्यक्ष केवल श्रोत्रेन्द्रियजन्य होगा ।

‡‡ " स्वात्मनि यदि सुखं स्यात्तर्हि मनसोपलभ्येत " इसप्रकार आत्मामें सुखादि के आरोपसे सुखादिके मानस उपलम्भ का आरोपहोनेके कारण सुखाभावादिका केवल मानसही प्रत्यक्ष हो सकता है । इसीप्रकार तत्तत् अभाव तत्तत्ही इन्द्रिय से ग्रहण किये जाते हैं ।

(६५) एवं प्रत्यक्षं लौकिकालौकिकभेदेन द्विविधम् । (६६) तत्र लौकिक प्रत्यक्षे षोढ़ा संनिकर्षोवर्णितः अलौकिकसन्निकर्षस्त्विदानीमुच्यते ।

(६५) पूर्वोक्त रीतिसे प्रत्यक्ष ज्ञान लौकिक और अलौकिक भेदसे दो प्रकारके हैं । (६६) उनमें लौकिक प्रत्यक्षमें ६ प्रकारके सन्निकर्ष कारण होतेहैं । जिनका निरूपण किया जा चुका है । अलौकिकसन्निकर्ष अब कहा जाताहै ।

का० ६३ ।

अलौकिकस्तु व्यापारस्त्रिविधः परिकीर्त्तितः ।
सामान्यलक्षणो ज्ञानलक्षणो योगजस्तथा ॥

का० अर्थ ।

अलौकिकसन्निकर्ष तीन प्रकारके होते हैं—सामान्यलक्षण,ज्ञानलक्षण और योगज।

(१) व्यापारः सन्निकर्षः (२) सामान्य लक्षण इति सामान्यं लक्षणं यस्येत्यर्थः (३) तत्र लक्षणपदेन यदि स्वरूपमुच्यते तदा सामान्यस्वरूपा प्रत्यासत्तिरित्यर्थो लभ्यते । (४) तच्चेन्द्रियसंबद्धविशेष्यकज्ञाने प्रकारीभूतं योध्यम् ।

(१) कारिकामें व्यापार शब्दका सन्निकर्ष अर्थ है । (२) सामान्यलक्षण शब्दमें " सामान्यं लक्षणं यस्य " इस प्रकारका बहुव्रीहिसमास है । (३) सामान्यलक्षण शब्दघटक लक्षण शब्दका यदि स्वरूप अर्थ किया जाय तो सामान्यस्वरूप प्रत्यासत्ति ऐसा अर्थ लब्ध होता है । (४) इन्द्रियसम्बद्धविशेष्यक जो ज्ञान तादृश ज्ञान प्रकारीभूत जो सामान्य वह प्रत्यासत्ति है ।

(५) तथाहि । (६) यत्रेन्द्रियसंयुक्तो धूमादिस्तद्विशेष्यकं धूम इति ज्ञानं यत्र जातं तत्र ज्ञाने धूमत्वं प्रकारः ।(७) तत्रधूमत्वेन च सन्निकर्षेण धूमा इत्येवंरूपं सकलधूमविषयकं ज्ञानं जायते । (८) अत्र यदीन्द्रियसंबद्धप्रकारीभूतमित्येवोच्यते तदा धूलीपटले धूमत्वभ्रमानन्तरं सकल धूमविषयकं ज्ञानं न स्यात । तत्र धूमत्वेन सहेन्द्रियसम्बन्धाभावात् ।

(५+६+७) जैसे जहां पर पहले धूमको इन्द्रियसंयुक्त होनेपर धूमः इत्याकारक ज्ञान हुआ है. उस ज्ञानमें धूमत्व प्रकार है तब इन्द्रिय संयुक्त जो धूम तद्विशेष्यक जो ज्ञान वह " धूमत्व प्रकारक धूमविशेष्यक ज्ञान " तादृश ज्ञानप्रकारीभूत जो धूमत्वरूप सामान्य उसको समवाय सम्बन्धसे सकल धूममें रहनेके कारण धूमत्वप्रकारक सकल धूमविशेष्यक " धूमाः " इत्याकारक अलौकिक प्रत्यक्ष होता है । (८) इन्द्रियसम्बद्धविशेष्यक ज्ञानप्रकारीभूत सामान्यके जगह पर लाघव लोभसे यदि इन्द्रियसम्बद्ध जो प्रकारी भूत सामान्य उसको प्रत्यासत्ति मानें तो धूली पटलमें धूमत्व भ्रमानन्तर धूमत्वप्रकारक सकल धूमविशेष्यक जो सामान्य लक्षणजन्य अलौकिक प्रत्यक्ष होता है वह नहीं होगा क्योंकि प्रकारीभूत जो धूमत्वरूप सामान्य वह इन्द्रियसम्बद्ध नहीं है । इन्द्रियसम्बद्ध तो धूलीपटलत्व है ।

(९) सन्मते तु इन्द्रियसंबद्धं धूलीपटलं तद्विशेष्यकं धूम इति ज्ञानम् तत्र प्रकारीभूतं धूमत्वं प्रत्यासत्तिः । (१०) इन्द्रियसम्बन्धश्च लौकिको ग्राह्यः । (११) इदं च बहिरिन्द्रियस्थले । (१२) मानसस्थले तु ज्ञानप्रकारीभूतं सामान्यमात्रं प्रत्यासत्तिः । (१३) परन्तु समानानां भावः सामान्यम् । (१४) तच्च कचिन्नित्यं धूमत्वादि, कचिच्चानित्यं घटादि । (१५) यत्रैको घटः संयोगेन भूतले समवायेन कपाले वा ज्ञातस्तदनन्तरं सर्वेषामेव तद्घटवतां भूतलादीनां कपालादीनां वा ज्ञानं भवति तत्रेदं बोध्यम् ।

(९) यदि इन्द्रियसम्बद्ध विशेष्यक ज्ञान प्रकारीभूत सामान्यको प्रत्यासत्ति मानते हैं तो धूली पटलको इन्द्रिय सम्बद्धहोनेके कारण इन्द्रियसम्बद्धविशेष्यक जो ज्ञान वह धूली पटल विशेष्यक धूमत्व प्रकारक ज्ञान तादृश ज्ञान प्रकारी भूत जो धूमत्वरूप सामान्य उसको समवायसम्बन्धसे सकल धूममें रहनेके कारण वहां धूमत्वप्रकारक सकल धुम विशेष्यक अलौकिक प्रत्यक्षके होनेमें कोई वाधा नहीं है । (१०) इन्द्रियसम्बन्धसे यहां लौकिक षड्विध सन्निकर्ष समझना चाहिये । (११) जिस जगह बहिरिन्द्रियजन्य प्रथम ज्ञान होनेके वाद सामान्य लक्षणाजन्य अलौकिक प्रत्यक्ष होता है उस स्थलमें इसप्रत्यासत्तिको समझना चाहिये । (१२) किन्तु जिस जगह प्रथम ज्ञान मानस हुआ है वहां ज्ञान प्रकारीभूत सामान्यमात्र प्रत्यासत्ति है । (१३,१४) समानोंका अर्थात् सबोंका जो भाव (असाधारण धर्म) वह सामान्य है किन्तु सामान्यशब्द का अर्थ यहां जाति नहीं है वह सामान्य किसी जगह धूमत्वादिरूप होनेके कारण नित्य है और किसी जगह घटादिरूप होनेके कारण अनित्य है । (१५) जिस जगह एक घटका संयोग सम्बन्धसे भूतलमें अथवा समवाय सम्बन्धसे कपालमें ज्ञान हुआ है । उसके पश्चात् संयोग सम्बन्धसे तद् घटवत् जो भूतलादि अथवा समवाय सम्बन्धसे तद् घटवत् जो कपालादि उनसबोंका जो अलौकिक प्रत्यक्ष होता है उस जगह अनित्य घटादि रूप सामान्य प्रत्यासत्ति होगी ।

(१६) परंतु सामान्यं येन सम्बन्धेन ज्ञायते तेन सम्बन्धेनाधिकरणानां प्रत्यासत्तिः । (१७) किन्तु यत्र तद्घटनाशानन्तरं तद्घटवतः स्मरणं जातं तत्र सामान्यलक्षणया सर्वेषां तद्घटवतां भानं न स्यात् । (१८) सामान्यस्य तदानीमभावात् । (१९) किंचेन्द्रियसम्बन्धविशेष्यकं घट इति ज्ञानं यत्र जातं तत्र परदिने इन्द्रियसंबन्धं बिनापि तादृशज्ञानप्रकारीभूतसामान्यस्य सत्त्वात्तादृशज्ञानं कुतो न जायते, तस्मात्सामान्यविषयकं ज्ञानं प्रत्यासत्तिर्नतु सामान्यमित्याह ।

(१६) प्रथम ज्ञानमें सामान्य जिस सम्बन्धसे प्रकार होता है उसी सम्बन्धसे उक्त सामान्य अपने सकल अधिकरणोंका ज्ञान कराता है । (१७) परन्तु तद्घटके नाश होजाने

पर जिस जगह तद्घटयत् का स्मरण हुआ है , वहां सामान्य लक्षणसे तद्घटयत सकलका ज्ञान न होगा । (१८) कारण यह है कि तद्घट रूप सामान्यके पूर्वही नाश हो जानेके कारण सामान्य लक्षण जन्य अलौकिक प्रत्यक्षके पूर्व क्षणमें तद्घटरूप सामान्य नहीं है। (१९) और एक यह भी दोष लगेगा कि जिस जगह घटको इन्द्रियसम्बद्ध होनेके बाद घटत्व प्रकारक घट विशेष्यक ज्ञान हुआ है वहां घटके साथ इन्द्रियसम्बन्ध नहीं होने पर भी पर दिनमें इन्द्रिय सम्बद्ध विशेष्यक ज्ञान प्रकारी भूत घटत्व रूप सामान्यको घटमें रहनेके कारण घटत्व प्रकारक सकल घटविशेष्यक अलौकिक प्रत्यक्ष क्यों नहीं होगा ? इसलिये सामान्यस्वरूप प्रत्यासत्ति नहीं मानकर सामान्य विषयक ज्ञानको प्रत्यासत्ति मानते हैं । तब घटत्व ज्ञान रूप सामान्य ज्ञानके पर दिनमें नहीं रहनेके कारण सामान्य लक्षण जन्य घटत्व प्रकारक सकल घट विशेष्यक अलौकिक प्रत्यक्षकी पर दिनमें आपत्ति नहीं होगी

का० ६४ पू०

आसत्तिराश्रयाणां तु सामान्यज्ञानमिष्यते ।

का० अर्थ ।

सामान्याश्रय विषयक जो अलौकिक प्रत्यक्ष उसमें सामान्य ज्ञान प्रत्यासत्ति अर्थात् सन्निकर्ष है।

(१) आसत्तिः प्रत्यासत्तिरित्यर्थः (२) तथा च सामान्यलक्षण इत्यत्र लक्षणशब्दस्य विषयोऽर्थः । (३) तेन सामान्य विषयकं ज्ञानं प्रत्यासत्तिरित्यर्थो लभ्यते ।

(१) आसत्ति शब्दका प्रत्यासत्ति अर्थ है । (२) " सामान्य लक्षण " शब्दान्तर्गत लक्षण शब्दका विषय अर्थ है । (३) इसलिये " सामान्यं लक्षणं यस्य असौ सामान्यलक्षणः " इत्याकारक बहुव्रीहि द्वारा सामान्य लक्षण शब्दका सामान्य विषयक ज्ञान रूप अर्थका लाभहोता है ।

(४) ननु चक्षुः संयोगादिकं विनापि सामान्यज्ञानं यत्र वर्त्तते तत्र सकल घटादीनां चाक्षुषादिप्रत्यक्षं स्यादत आह ।

(४) शङ्का – जहां घटके साथ त्वक् संयोग होनेके बाद घटत्व प्रकारक घटविशेष्यक (अन्धकारमें) त्वाच प्रत्यक्ष हुआ है वहां घटत्व ज्ञान रहनेके कारण घटत्वप्रकारक सकल घटविशेष्यक अलौकिक चाक्षुष प्रत्यक्ष क्यों नहीं होगा । इसपर मूलकार " तदिन्द्रियेत्यादि " कारिकासे उत्तर देते हैं।

का० ६४ उत्त०

तदिन्द्रियजतद्धर्मबोधसामग्र्यपेक्ष्यते।

का० अर्थ।

तदिन्द्रियजन्य तद्धर्म प्रकारक अलौकिक प्रत्यक्षके प्रति तदिन्द्रियजन्य तद्धर्मप्रकारक लौकिक प्रत्यक्षकी सामग्री प्रयोजक है।

(१) अस्यार्थः। (२) यदा बहिरिन्द्रियेण सामान्यलक्षणया ज्ञानं जननीयं तदा यत्किंचिद्धर्मिणि तत्सामान्यस्य तदिन्द्रियजन्यज्ञानस्य सामग्री अपेक्षिता। (३) सा च सामग्री चक्षुः संयोगालोक संयोगादिकम्। तेनान्धकारादौ चक्षुरादिना तादृशं ज्ञानं न जायते। ननु ज्ञान लक्षणा प्रत्यासत्तिर्यदि ज्ञानरूपा सामान्यलक्षणापि ज्ञानरूपा तदा तयोर्भेदो न स्यादत आह।

(१+२) जिस समय जिस बहिरिन्द्रियसे सामान्य लक्षण द्वारा ज्ञान उत्पादनीय हो उस समय किसी एक धर्मीमें तदिन्द्रियजन्य तद्धर्म प्रकारक ज्ञानकी सामग्री रहनी चाहिये। (३) वह सामग्री चक्षुःसंयोग आलोक संयोगादि घटित है इसलिये अन्धकारमें घटत्वप्रकारक यत्किञ्चित्घटविशेष्यक चाक्षुषप्रत्यक्षकी सामग्रीको नहीं रहनेके कारण त्वगिन्द्रिय जन्य घटत्वप्रकारक सामान्य ज्ञान रहने पर भी अन्धकारमें घटत्वप्रकारक सकल घटविशेष्यक सामान्य लक्षण जन्य अलौकिक चाक्षुष प्रत्यक्षकी आपत्ति नहीं हो सकती। शङ्का—ज्ञान लक्षण प्रत्यासत्ति यदि ज्ञानरूपा है और समान्यलक्षण प्रत्यासत्ति भी ज्ञानरूपाही है तब दोनोंमें कुछ अन्तर नहीं होगा। इस प्रश्नका "विषयी" इत्यादि कारिकासे उत्तर कहते हैं।

का० ६५ पूर्वा०

विषयी यस्य तस्यैव व्यापारो ज्ञानलक्षणः।

का० अर्थ।

ज्ञान लक्षण प्रत्यासत्ति यद्विषयकहै वह तद्विषयक ज्ञानोत्पादक होती है।

(१) सामान्यलक्षणा प्रत्यासत्तिर्हि तदाश्रयस्य ज्ञानं जनयति। (२) ज्ञानलक्षणा प्रत्यासत्तिस्तु यद्विषयकं ज्ञानं तस्यैव प्रत्यासत्तिरिति। (३) अत्रायमर्थः। (४) प्रत्यक्षे सन्निकर्षं विनाभानं न संभवति। (५) तथा च सामान्यलक्षणां विना धूमत्वेन सकलधूमानां वह्नित्वेन सकल वह्नीनां च भानं कथं भवेत्तदर्थं सामान्य लक्षणा स्वीक्रियते।

(१) सामान्य लक्षणा प्रत्यासत्ति सामान्याश्रयविषयक ज्ञानोत्पादक है। (२)-ज्ञानलक्षणा प्रत्यासत्ति यद्विषयक ज्ञानरूप होतीहै तद्विषयक ज्ञानोत्पादक है। (३+४) अभिप्राय यह है कि सन्निकर्षके विना प्रत्यक्षमें विषयका भान नहीं होता। (५) तब यदि सामान्यलक्षण सन्निकर्ष नहीं मानाजायतो धूमत्वेन रूपेण सकल धूमोंका वह्नित्वेन रूपेण सकल वह्नियोंका भान नहीं हो सकता। इसलिये सामान्य लक्षण सन्निकर्ष माना जाता है।

(६) न च सकल वह्नि धूमभानाभावे का क्षतिरिति वाच्यं, प्रत्यक्ष धूमे वह्निसंबन्धस्य गृहीतत्वादन्यधूमस्य चानुपस्थितत्वाद्धूमो वह्निव्याप्यो न वेतिसंशयानुपपत्तेः। (७) मन्मते तु सामान्य लक्षणया सकलधूमोपस्थितौकालान्तरीय देशान्तरीयधूमे वह्निव्याप्यत्व संदेहः संभवति।

(६) शङ्का— सकल वह्नि और सकल धूमोंका भान नहीं होनेसे क्या हानि? समा०—संशयमें धर्मिज्ञान कारण है और निश्चय प्रतिबन्धकहै, इसलिये यत्किञ्चित् प्रत्यक्ष धूममें यत्किञ्चित् जो प्रत्यक्ष वह्नि तादृश वह्निव्याप्यत्व के निश्चय रहनेपर भी " धूमो वह्निव्याप्यो न वा " इत्याकारक जो सन्देह होताहै वह नहीं हो सकता। क्योंकि यत्किञ्चिद्धूममें वह्निव्याप्यत्वका निश्चय रूप प्रतिबन्धक रहनेके कारण उक्त संशय प्रत्यक्ष यत्किञ्चित् धूम धर्मिक नहीं हो सकता। कालान्तरीय देशान्तरीय धूमोंके ज्ञान नहीं रहनेके कारण धर्मिज्ञान रूप कारण को नहीं रहनेके हेतु उक्त संशय अज्ञात (उक्त कालान्तरीय देशान्तरीय) धूम धर्मिकभी नहीं होसकता। (७) मेरे मतसे तो सामान्य लक्षणा मानने के कारण सामान्य लक्षणाजन्य देशान्तरीय कालान्तरीय सकल धूमका ज्ञान होगा। तब कालान्तरीय देशान्तरीय धूम धर्मिक " धूमोवह्नि व्याप्यो नवा " इत्याकारक संशय हो सकता है।

(८) न च सामान्यलक्षणास्वीकारे प्रमेयत्वेन सकल प्रमेयज्ञाने जाने सार्वज्ञापत्तिरिति वाच्यं, प्रमेयत्वेन सकल प्रमेयज्ञाने जातेऽपि विशिष्य सकलपदार्थानामज्ञातत्वेन सार्वज्ञाभावात्। (९) एवं ज्ञानलक्षणाया अस्वीकारे सुरभि चन्दनमिति ज्ञाने सौरभस्य भानं कथं स्यात्।

(८) शङ्का — यदि सामान्य लक्षण स्वीकार करतेहैं तो प्रमेयत्वेन रूपेण एक प्रमेयका ज्ञान होनेपर (अर्थात् एक वस्तुमें प्रमेयत्व ज्ञान होनेपर) प्रमेयत्वेन रूपेण सकल प्रमेयका ज्ञान होनेके कारण सभी मनुष्योंको सर्वज्ञत्वापत्ति होजायगी। समा०-प्रमेयत्वेन रूपेण सकल पदार्थका ज्ञान रहनेपरभी विशेषतत्तद्रूपसे सकलपदार्थका अज्ञान रहने कारण (अर्थात् संसारीय पदार्थोंमें प्रत्येक प्रत्येक पदार्थका तत्तद्रूपेणपूर्णतया विज्ञान नहीं रहनेकेकारण) सब मनुष्य सर्वज्ञ नहीं हो सकते। (९) एक दिन जिसने चन्दन को सूंघा है और पुनः दूसरे दिन चन्दन को दूरसे देखने पर उसको जो " सुरभिचन्दनम् " इत्याकारक ज्ञान होताहै उस ज्ञानमें चन्दन, चन्दनत्व, सौरभ और सौरभत्व इन चार विषयोंका भान होताहै

उनमें चन्दन और चन्दनत्वका क्रमशः चक्षुः संयोग और चक्षुःसंयुक्त समवाय सन्निकर्षसे लौकिक चाक्षुष प्रत्यक्ष होताहै। सौरभ और सौरभत्व इन दोनोंमें चक्षुर्ग्राह्यत्व नहीं रहने के कारण चाक्षुष भान नहीं हो सकता। उक्त दोनोंमें घ्राण ग्राह्यत्व रहनेपरभी उस समयमें घ्राणेन्द्रिय सन्निकर्ष नहीं रहने के कारण घ्राणेन्द्रियज य भी ज्ञान नहीं हो सकता इसलिये उस समय में सौरभ भान निर्वाहार्थ ज्ञान लक्षण सन्निकर्ष मानना आवश्यक है। शङ्का— ऐसा कहसकते हैं कि "सुरभि चन्दनम्" इस ज्ञानमें चन्दन का चाक्षुष और पूर्वानुभूत सौरभ का स्मरणाहीं मानलें तो ज्ञान लक्षण सन्निकर्ष की कल्पना करना व्यर्थ है समाधान— इस प्रकार मानने से उक्त ज्ञानमें चंदन विषयकत्वावच्छेदेन प्रत्यक्षत्व और सौरभ बिषयकत्वावच्छेदेन स्मृतित्व आपको मानना होगा जो नियम विरुद्ध है। क्योंकि जाति अव्याप्यवृत्ती नहीं हो सकती। जैसे किसी पशु पर एक देशावच्छेदेन अश्वत्व और अपर देशावच्छेदेन गजत्व नहीं रहता इसलिये ज्ञान लक्षणा मानना आवश्यक है। जिस जगह चन्दन के साथ चक्षुः संयोगादिरूप चाक्षुष प्रत्यक्षकी सामग्री है और पूर्वानुभूत सौरभका स्मरण है एवं चन्दनमें सौरभका वाध निश्चयाभाव अर्थात् चन्दनमें सौरभ नहीं रहताहै, इत्यारक निश्चयका अभाव है। उस स्थलमें सौरभ स्मरणात्मकज्ञानलक्षण सन्निकर्षसे पुरो वर्त्ती चन्दनमें सौरभका अलौकिक प्रत्यक्ष होताहै। इसीको उपनीतभान भी कहते हैं।

(१०) यद्यपि सामान्यलक्षणयापि सौरभ भानं संभवति तथापि सौरभत्वस्य भानं ज्ञानलक्षणया (११) एवं यत्र धूमत्वेन धूलीपटलं ज्ञातं तत्र धूलीपटलस्यानुव्यवसाये भानं ज्ञानलक्षणया।

(१०) यद्यपि सौरभत्व प्रकारक सौरभविशेष्यक स्मरणको रहनेके कारण सौर-भत्व ज्ञानरूप सामान्यलक्षण प्रत्यासत्तिसे सौरभका भान हो सकताहै। फिर सौरभ भानार्थ ज्ञान लक्षणकी कल्पना करना व्यर्थ है। तथापि सामान्य लक्षण प्रत्यासत्तिसे सौरभके भान होने परभी "सौरभत्वत्वप्रकारक सौरभत्वविशेष्यक" ज्ञान नहीं रहनेके कारण सामान्य लक्षण प्रत्यासत्तिसे सौरभत्वका भान होना असम्भवहै। इसलिये सौरभत्व भानार्थ ज्ञान लक्षण प्रत्यासत्ति मानना आवश्यकहै। (११) एवं धूलीपटलमें धूमत्वभ्रम होनेपर "धूम महं जानामि' इत्याकारक अनुव्यवसायका विषय जो धूमत्वेन रूपेण धूली पटलका ज्ञान उस ज्ञानमें विषयिता सम्बन्धेन धूलीपटल भानार्थ भी ज्ञानलक्षण प्रत्यासत्ति मानना आवश्यक है क्योंकि सामन्य लक्षणासे धूलीपटलका भान नहीं हो सकता जिसहेतु धूमत्व ज्ञानरूप सामान्यलक्षण स्वविषय धूमत्ववत्ता सम्बन्धेन धूमहीमें रहेगा तब उससे धूलीपटलका भान कैसे होगा धूलीपटलत्व ज्ञानरूप सामान्यलक्षण स्वविषय धूलीपटल-त्ववत्तासम्बन्धेन धूलीपटलमें रहेगा भी तो वह नहींहै अतः उपायान्तरसे धूलीपटलका भान उक्तज्ञानमें नहीं हो सकता इसहेतु अगत्या ज्ञान लक्षणा माननी होगी।

का० ६५ उत्तरार्द्ध ।

योगजोद्विविधः प्रोक्तो युक्तयुञ्जानभेदतः ॥

का० अर्थ ।

युक्तयुञ्जानभेदसे योगजधर्म दो प्रकारके होते हैं ।

(१) योगजो द्विविध इति । (२) योगाभ्यासजनितो धर्मविशेषः श्रुतिपुराणादिप्रतिपाद्य इत्यर्थः । (३) युक्तयुञ्जानभेदत इति । (४) युक्तयुञ्जानरूप योगिद्वैविध्याद्धर्मस्यापि द्वैविध्यमिति भावः ।

(१ से ४) योगियोंको युक्त और युञ्जान भेदसे दो प्रकार होनेके कारण श्रुतिपुराणादिप्रतिपादित योगाभ्यासजनितयोगनिष्ठधर्म भी युक्त युञ्जान भेदसे दो प्रकारके हैं ।

का० ६६ पूर्वार्द्ध ।

युक्तस्य सर्वदाभानं चिन्तासहकृतोऽपरः

का० अर्थ ।

युक्तयोगी को सर्वदा विषयका भान होतारहताहै और युञ्जानको ध्यानकरनेसे भान होताहै ।

(१) युक्तस्य सर्वदा भानमिति । युक्तस्य तावद्योगजधर्मसहायेन मनसा आकाशपरमाण्वादिनिखिलपदार्थगोचरं ज्ञानं सर्वदैव भवितुमर्हति । (२) द्वितीयस्य चिन्ताविशेषोऽपि सहकारीति ।

(१) (उनमें) युक्तयोगी को योगाभ्यासजन्य युक्तनामक अलौकिकसामर्थ्य और मन इन दोनोंसे आकाशपरमाण्वादि निखिल अतीन्द्रिय और अतीतादिविषयोंका ज्ञान अनवरतही होतारहता है । (२) और युञ्जानयोगीको योगाभ्यासजन्य युञ्जाननामक अलौकिकसामर्थ्य, चिन्ताविशेष और मन इन तीनोंसे उक्त आकाशादिविषयोंका ज्ञान होताहै ।

इति श्री चन्द्रधारिसिंहशर्मविरचितायां चन्द्रिकाटीकायां प्रत्यक्षपरिच्छेदः समाप्तः ।

अथानुमानपरिच्छेदः ।

अनुमितिं व्युत्पादयति, व्यापारस्त्विति ।

" व्यापारस्तु " इत्यादि ग्रन्थमें मूलकार अनुमानप्रमाणका निरूपण करते हैं ।

का० ६६, ६७ ।

व्यापारस्तु परामर्शः करणं व्याप्तिधीर्भवेत् ॥
अनुमायां ज्ञायमानं लिङ्गं तु करणं न हि ।
अनागतादिलिङ्गेन न स्यादनुमितिस्तदा ॥

का० अर्थ ।

अनुमितिमें परामर्श व्यापारहै । एवं व्याप्तिज्ञान करणहै और व्याप्यत्वेनज्ञायमानलिङ्ग (अनुमितिका) करण नहींहै, क्योंकि अनागत एवं अतीतलिङ्गसे अनुमिति होतीहै सो नहीं होगी ।

(१) अनुमायामनुमितौ व्याप्तिज्ञानं करणं । (२) परामर्शो व्यापारः । तथाहि । (३) येन पुरुषेण महानसादौ धूमे वह्नेर्व्याप्तिर्गृहीता पश्चात्सएव पुरुषः क्वचित् पर्वतादावविच्छिन्नमूलां धूमलेखां पश्यति । (४) तदनन्तरं धूमो वह्निव्याप्य इत्येवं रूपं व्याप्तिस्मरणं भवति । (५) पश्चाच्च वह्निव्याप्यधूमवानयमिति ज्ञानं भवति, स एव परामर्श इत्युच्यते । (६) तदनन्तरं पर्वतो वह्निमानिति ज्ञानं जायते, तदेवानुमितिः ।

(१, २) कारिकार्थमें स्पष्टहै । (३) जिस पुरुषसे महानसादि स्थलोंमें धूममें वह्निका " यत्रयत्रधूमस्तत्रतत्रवह्निः " इत्याकारक साहचर्य नियमरूप व्याप्तिज्ञात हुई । तदनन्तर वही पुरुष किसी पर्वतमें लम्बमान निरन्तर धूमकी धारा देखाहै । (४) उसके बाद (उसको) " धूमो वह्नि व्याप्यः " इत्याकारक व्याप्तिका स्मरण होताहै । (५) पीछे " वह्निव्याप्य धूमवान् पर्वतः " इत्याकारक ज्ञान उक्त पुरुषको होताहै । उस ज्ञानका नाम " परामर्श " है (६) उसके पश्चात् " पर्वतो वह्निमान् " इत्याकारक ज्ञान होताहै, वही अनुमितिरूप ज्ञान है ।

(७) अत्र प्राचीनास्तु व्याप्यत्वेन ज्ञायमानं लिङ्गमनुमिति करणमिति वदन्ति, तद्दूषयति, ज्ञायमानमिति ।

(७) प्राचीनोंका ऐसा मतहै कि अनुमितिमें व्याप्यत्वेन ज्ञायमानलिङ्ग (एतावता (व्याप्यत्वप्रकारकज्ञानविशेष्य जो लिङ्ग) वह करणहै । उसका खण्डन नवीन (आचार्य) " ज्ञायमान् " इत्यादि ग्रन्थसे करतेहैं ।

(८) लिङ्गस्यानुमित्यकरणत्वे युक्तिमाह, अनागतादीति । (९) यद्यनुमितौ लिङ्गं करणं स्यात्, तदाऽनागतेन विनष्टेन वा लिङ्गेनानुमितिर्न स्यात्, अनुमितिकरणस्य लिङ्गस्य तदानीमभावात् ।

(८) ज्ञायमानलिङ्ग अनुमितिकेप्रति करण नहीं है। इसकी युक्ति " अनागतादि ग्रन्थसे कहतेहैं। (९) यदि अनुमितिकेप्रति ज्ञायमानलिङ्गही करण मानाजाय तो भविष्यत् और भूत लिंगोंसे " इयम् यज्ञशाला वह्निमती भविष्यति भावि धूमात् " एवम् " इयं यज्ञशाला वह्निमती आसीत् भूत धूमात् " इत्यादि अनुमिति नहीं होगी। क्योंकि व्याप्यत्वेन ज्ञायमान भविष्यत् और भूत धूम अनुमितिमें पूर्ववर्ती नहीं है।

का० ६८ पूर्वार्द्ध ।

व्याप्यस्य पक्षवृत्तित्वधीः परामर्श उच्यते ।

का० अर्थ ।

साध्यव्याप्तिविशिष्टहेतुमें पक्षवृत्तित्वावगाही जो ज्ञान वह परामर्श कहलाता है।

(१) व्याप्यस्येति । व्याप्तिविशिष्टस्य पक्षेण सह वैशिष्ट्यावगाहि ज्ञानमनुमिति जनकम् (२) तच्च व्याप्यः पक्ष इति ज्ञानं पक्षो व्याप्यवानिति ज्ञानं वा । (३) अनुमितिस्तु पक्षे व्याप्य इति ज्ञानात् पक्षेसाध्यमित्याकारिका, पक्षो व्याप्यवानिति ज्ञानात् पक्षः साध्यवानित्या कारिका । (४) द्विविधादपि परामर्शात् पक्षः साध्यवानित्येवानुमितिरित्यन्ये ।

(१) साध्यनिरूपितव्याप्तिविशिष्ट हेतुका पक्षके साथ वैशिष्ट्यावगाही (अर्थात् सम्बन्धावगाही) ज्ञान अनुमिति जनकहै वह परामर्शरूप ज्ञानहै। (२) परामर्श व्याप्तिविशिष्टपक्षवैशिष्ट्यावगाहिज्ञान—" साध्यव्याप्यहेतुः पक्षे " और " साध्यव्याप्यहेतुमान्पक्षः " इत्याकारक विशेषणविशेष्यभावके व्यत्याससे दो प्रकारके होते हैं। (३) " पक्षे व्याप्यः " इत्याकारक आधेयतासम्बन्धेन पक्षप्रकारक व्याप्यविशेष्यक परामर्शसे " पक्षे साध्यम् " इत्याकारक पक्षप्रकारक साध्यविशेष्यक अनुमिति होती है। और " व्याप्यवान पक्षः " इत्याकारक साध्यव्याप्य हेतुप्रकारक पक्षविशेष्यक परामर्शसे—" साध्यवान् पक्षः " इत्याकारक साध्यप्रकारक पक्षविशेष्यक अनुमिति होती है। (इस प्रकार परामर्शके द्वैविध्य से अनुमितिका द्वैविध्य होता है) । (४) किसीका मतहै कि दोनों प्रकारके परामर्शोंसे " पक्षस्साध्यवान् " इत्याकारक एकही अनुमति होतीहै ।

(५) ननु वह्निव्याप्यधूमवान्पर्वत इति ज्ञानं विनापि यत्र पर्वतो धूमवानिति प्रत्यक्षं, ततो धूमो वह्निव्याप्य इति स्मरणं, तत्र ज्ञानद्वया-देवानुमितिदर्शनाद्व्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहि ज्ञानं न सर्वत्र कारणं, किन्तु व्याप्यतावच्छेदकप्रकारकपक्षधर्मता ज्ञानत्वेनैव कारणत्वस्यावश्यक-त्वात् , तत्र विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञान कल्पने गौरवाच्चेतिचेन्न ।

(५) मीमांसक—"वह्निव्याप्य धूमवान् पर्वतः" इत्याकारक व्याप्तिविशिष्ट वैशिष्ट्यावगाही (परामर्श) ज्ञानके विनाभी जहां पर "पर्वतो धूमवान्" इत्याकारक प्रत्यक्षके बाद "धूमोवह्निव्याप्यः" इत्याकारक स्मरण हुआहै वहां उक्त ज्ञानद्वयसेभी अनुमिति होतीहै इसलिये "साध्यव्याप्य हेतुमान् पक्षः" इत्याकारक व्याप्तिविशिष्टवैशि-ष्ट्यावगाहिज्ञान अनुमितिसामान्यमें कारण नहीं है। किन्तु व्याप्यतावच्छेदक (धूम-त्वादि) प्रकारक पक्ष धर्मता ज्ञान अर्थात् "हेतुमान् पक्षः" इत्याकारक ज्ञानही (जो कि आपकोभी मानना अभ्यहित है उसी) को अनुमितिकेप्रति कारण स्वीकार करना आवश्यक है एवं उक्त विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहीज्ञानमें कारणता माननेसे सब स्थलोंमें अनुमितिसे पूर्व विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहीज्ञानकी कल्पना आपको (नैयायिकको) करनी होगी । इसलिये आपके (न्याय) मतमें कल्पनाकृत गौरवभी हो जायगा। (नैया०) आप (मीमांसक) का ऐसा कहना युक्त नहीं है ।

(६) व्याप्यतावच्छेदकाज्ञानेऽपि वह्निव्याप्यवानिति ज्ञानादनुमित्यु-त्पत्तेर्लाघवाच्च व्याप्तिप्रकारक पक्षधर्मताज्ञानत्वेनैव हेतुत्वम् (७) किं च "धूमवान् पर्वत" इति ज्ञानादनुमित्यापत्तिः व्याप्यतावच्छेदकीभूत धूमत्व प्रकारक पक्षधर्मता ज्ञानस्य सत्त्वात् ।

(६) * नै० (क) अनुमितिकेप्रति यदि "व्याप्यतावच्छेदकप्रकारकपक्षधर्मता ज्ञान" में कारणता मानें तो वह्निव्याप्यवान् पर्वत इत्याकारक व्याप्यतावच्छेदकीभूत धूम-त्वाद्यनवगाहि ज्ञानसे जो अनुमिति होती है वह नहीं होगी, क्योंकि उक्त ज्ञान व्याप्यता-वच्छेदकप्रकारक नहींहै। (ख) और व्याप्यतावच्छेदकप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानत्वापेक्षया लाघवसेभी "व्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानत्वेन" रूपेण कारणता मानें वही उचित है (७) नहीं माननेसे तीसरा दोष है कि (ग) "धूमवान्पर्वतः" यह ज्ञानभी वस्तुगत्या "व्याप्यतावच्छेदकधूमत्वप्रकारकपक्षधर्मता" ज्ञानरूप है, अतएव उसके बाद अनुमित्यापत्ति हो जायगी ।

---

* "आलोको धूमो वा वह्न्य भाववद वृत्तिः" इत्याकारक सन्देहस्थलमें व्याप्यतावच्छेदक धूम-त्वादि प्रकारक निर्णयाभाव रहनेके कारण "वह्न्यभाववद वृत्तिमान्" इत्याकारक ज्ञानसे भी अनुमिति होतीहै अतः "व्याप्यतावच्छेदकप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानको कारणता नहीं मान सकतेहैं ।

(८) न च तदानीं गृह्यमाणव्याप्यतावच्छेदकप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानस्य हेतुत्वमिति वाच्यम्। (९) चैत्रस्य व्याप्तिग्रहे मैत्रस्य पक्षधर्मताज्ञानादनुमितिः स्यादिति।

(८) अगर आप (मीमांसक) ऐसा कहें कि व्याप्यतावच्छेदकत्वेन ज्ञायमान जो धर्म तद्धर्मप्रकारक पक्षधर्मता ज्ञानको कारणता मानतेहैं, तब धूमत्वको व्याप्यतावच्छेदकत्वेन गृहीत नहीं रहनेके कारण "धूमवान् पर्वतः" यह ज्ञान अनुमितिका कारण नहीं होगा। अतः "धूमवान् पर्वतः" इत्याकारक ज्ञानान्तर अनुमित्यापत्ति नहीं होगी। (९) अगर ऐसाहो तो जहां "धूमो वह्निव्याप्यः" इत्याकारक व्याप्तिज्ञान चैत्रको है और "धूमवान् पर्वतः" इत्याकारक पक्षधर्मताज्ञान मैत्रको है तब वहां मैत्रको अनुमिति होनी चाहिये क्योंकि चैत्रमें व्याप्यतावच्छेदकत्वेन गृहीत जो "धूमत्व" तत्प्रकारकपक्षधर्मता ज्ञान मैत्रमें रह गया।

(१०) यदि तु तत्पुरुषीयगृह्यमाणव्याप्यतावच्छेदकप्रकारकं तत्पुरुषीयपक्षधर्मताज्ञानं तत्पुरुषीयानुमितौ हेतुरित्युच्यते, तदाऽनन्तकार्यकारणभावः।

(१०) यदि ऐसा कहें कि तत्पुरुषीय अनुमितिकेप्रति तत्पुरुषीयव्याप्यतावच्छेदकत्वेन गृहीत जो धर्म तद्धर्मप्रकारक तत्पुरुषीयपक्षधर्मताज्ञान कारण है। तब उक्त स्थलमें मैत्र को अनुमित्यापत्ति नहीं होगी क्योंकि मैत्रसे व्याप्यतावच्छेदकत्वेन गृहीत धूमत्व नहीं है किन्तु ऐसा कहने से पुरुषोंको अनन्तहोनेके कारण पुरुषभेदसे (मिमांसकमतमें) अनन्तकार्यकारणभाव होजायगा।

(११) मन्मतेतु समवायसम्बन्धेन व्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानं समवायसम्बन्धेनानुमितिं जनयतीति नानन्तकार्यकारणभावः।

(११) हमारे (नैयायिकके) मतसे तो समवायसम्बन्धेन अनुमितिकेप्रति समवायसम्बन्धेन व्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञान कारण है। अतः एकही कार्यकारणभाव होगा, अनन्त नहीं।

(१२) यदि तु व्याप्तिप्रकारकं ज्ञानं पक्षधर्मताज्ञानं च स्वतन्त्रं कारणमित्युच्यते, तदा कार्यकारणभावद्वयम्, वह्निव्याप्यो धूम आलोकवान् पर्वतः, इति ज्ञानादप्यनुमित्यापत्तिःस्यात्।

(१२) यदि अनुमितिकेप्रति व्याप्तिप्रकारकज्ञान और पक्षधर्मताज्ञान इन दोनों को पृथक् २ रूपसे कारणता मानें तो मीमांसक को दो कार्य कारण भावहोंगे और "वह्निव्याप्योधूमः" "आलोकवान् पर्वतः" इत्याकारक ज्ञानसेभी अनुमित्यापत्ति होजायगी क्योंकि "वह्निव्याप्योधूमः" इत्याकारक व्याप्तिप्रकारक ज्ञान और "आलोकवान् पर्वतः" इत्याकारक पक्षधर्मताज्ञान ये दोनोंउपस्थित हैं।

(१३) इत्थं च यत्र ज्ञानद्वयं तत्रापि विशिष्टज्ञानं कल्पनीयं फलमुखगौरवस्यादोषत्वादिति ।

(१३) यदि ऐसा कहें कि जहां पर " वह्नि व्याप्यो धूमः " और " धूमवान् पर्वतः" इत्याकारक ज्ञानद्वय है वहां परभी आपके (नैयायिक) मतसे विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहि अर्थात् " वह्निव्याप्य धूमवान् पर्वतः " इत्याकारक ज्ञानकी कल्पनाकृतगौरव होता है । नैयायिकका उत्तर है कि एतादृश गौरव फलमुखगौरवरूप होनेके कारण मुझे इष्ट है क्योंकि फलमुखगौरव दोषाधायक नहीं है ।

का० ६८ उत्तरार्द्ध ।

व्याप्तिः साध्यवदन्यस्मिन्नसम्बन्ध उदाहृतः ॥

का० अर्थ

साध्यवद्भिन्ननिरूपितवृत्तित्वाभाव व्याप्ति है अर्थात् साध्याधिकरणसे भिन्नमें हेतुका सम्बन्ध नहीं रहनाही व्याप्ति है ।

(१) व्याप्यो नाम व्याप्त्याश्रयः तत्र का व्याप्तिरित्यत आह व्याप्तिरिति ।

(१) व्याप्तिके आश्रयका नाम व्याप्य है , व्याप्यघटक (अन्तर्गत) जो व्याप्तिहै उसका स्वरूप मूलकार " व्याप्तिरित्यादि " शब्दसे कहताहै ।

(२) साध्य वदन्येति । वह्निमान् धूमादित्यादौ साध्यो वह्निः साध्यवान्महानसादि स्तदन्यो जलहृदादिस्तदवृत्तित्वं धूमस्येति लक्षणसमन्वयः ।

(२) " वह्निमान् धूमात् " इस स्थलमें वह्नि साध्य है । साध्यवान् महानसादि (अर्थात् महानस, पर्वत, चत्वर, गोष्ठ और अयोगोलक) हैं उन पांचोसे भिन्न जो जलादि तन्निरूपित वृत्तित्व मीनादिमें है किन्तु धूम में नहीं है अतः तादृश जलादिनिरूपित वृत्तित्वाभाव धूममें रहनेके कारण लक्षण समन्वय हुआ ।

(३) धूमवान् वह्नेरित्यादौ साध्यवदन्यस्मिंस्तप्तायः पिण्डादौ वह्नेः सत्वान्नातिव्याप्तिः ।

(३) " धूमवान् वह्नेः " इस व्यभिचारी स्थलमे धूमरूप साध्यका अधिकरण जो महानसादि चार तदन्य जो अयोगोलक तन्निरूपित वृत्तित्वही वह्निरूप हेतुमें रहनेके कारण तादृश वृत्तित्वाभाव उक्त हेतुमें नहीं रहा अतः अतिव्याप्ति नहीं हुई ।

(४) अत्र येन सम्बन्धेन साध्यं तेनैव सम्बन्धेन साध्यवान् बोध्यः ।

(४) इस लक्षणमें जिस सम्बन्धसे साध्यकी अनुमिति पक्षमेंहो वही सम्बन्ध साध्यतावच्छेदक सम्बन्ध कहाता है और उसी साध्यतावच्छेक सम्बन्धसे लक्षणघटकसाध्यवान् समझना चाहिये ।

(५) अन्यथा समवायसम्बन्धेन वह्निमान्वह्न्यवयवस्तदन्यो महानसादिस्तत्र धूमस्य विद्यमानत्वादव्याप्ति प्रसङ्गात् ।

(५) अन्यथा यदि साध्यतावच्छेदकसम्बन्धसे साध्यवान् की विवक्षा नहीं करके किसी दूसरे एक सम्बन्धसे विवक्षा करें तो " वह्निमान् धूमात् " इस स्थलमें अव्याप्ति होगी क्योंकि समवायसम्बन्धसे वह्निमत् जो वह्निका अवयव तदन्य जो महानसादि तन्निरूपित-वृत्तित्व धूममें रहगया तादृश वृत्तित्वाभाव नहीं रहेगा ।

(६) साध्यवदन्यश्च साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवान् बोध्यः। (७) तेन यत्किञ्चिद्वह्निमतो महानसादेर्भिन्ने पर्वतादौ धूमस्य सत्त्वेऽपि न क्षतिः ।

(६+७) " साध्यवदन्य " शब्दका अर्थ सकल साध्याधिकरणोंमें रहनेवाला जो " साध्यवत्त्व " रूपधर्मविशेष तद्धर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदाश्रय अर्थात् " साध्यवान्न " इत्याकारक प्रतीतिसिद्ध भेदाश्रय समझना चाहिये । अगर ऐसा अर्थ नहीं करें तो " वह्नि-मान् धूमात् " इत्यादि स्थलमें वह्निमत् जो महानसादिरूप एक व्यक्ति तदन्य जो वह्निमत् पर्वतादि तन्निरूपित वृत्तित्व धूमरूप हेतुमें रहनेके कारण अव्याप्ति हो जायगी किन्तु उक्त अर्थ करनेपर वह्निमत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवत् उक्त पर्वतादि नहीं होगा किन्तु जलादि ही होगा, तन्निरूपित वृत्तित्वाभाव धूममें रहनेसे लक्षण समन्वय हुआ ।

(८) येनसम्बन्धेन हेतुता तेनैवसम्बन्धेन साध्यवदन्यावृत्तित्वं बोध्यम् । (९) तेन साध्यवदन्यस्मिन्धूमावयवे धूमस्य समवायसम्बन्धेन सत्त्वेऽपि न क्षतिः ।

(८+९) जिस सम्बन्धसे साध्यव्याप्य हेतुका पक्षमें ज्ञान अनुमितिका कारण हो (वही सम्बन्ध हेतुतावच्छेदक सम्बन्ध कहाता है । उसी सम्बन्धसे (हेतुतावच्छेदकसम्ब-न्धावच्छिन्न) साध्यवदन्यनिरूपित वृत्तित्व समझना चाहिये । अन्यथा पुनः " वह्निमान् धूमात् " में अव्याप्ति होगी क्योंकि साध्यवत् जो महानसादि तदन्य जो धूमावयव उसमें धूमको समवायसम्बन्धसे वृत्तित्व ही रहा नके वृत्तित्वाभाव रहेगा । अब " साध्यवदन्यनि-रूपित वृत्तिता " में हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वका निवेश करने पर साध्यवदन्य जो धूमावयवतन्निरूपित हेतुतावच्छेदक संयोगसम्बन्धावच्छिन्न वृत्तिता धूममें नहीं है अतः लक्षणसमन्वयहुआ ।

(१०) साध्यवदन्यावृत्तित्वं च साध्यवदन्यवृत्तित्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावः तेन धूमवान् वह्नेरित्यत्र साध्यवदन्य जलह्रदादिवृत्तित्वाभावेऽपि नातिव्याप्तिः ।

(१०) (क) साध्यवदन्यावृत्तित्व शब्दका यदि साध्यवदन्यनिरूपितवृत्तित्वप्रतियोगिक अभाव अर्थ करें तो "धूमवान् वह्नेः" इस स्थलमें धूमवदन्यनिरूपित वृत्तित्व घटोभयाभाव भी साध्यवदन्यनिरूपित वृत्तित्वप्रतियोगिक अभाव हुआ वह अभाव वह्निरूप हेतुमेंहै तव अतिव्याप्ति होगई अतः साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदाधिकरणनिष्ठ निरूपितत्व सम्बन्धावच्छिन्नअवच्छेदकताभिन्न वृत्तितात्वनिष्ठअवच्छेदकताभिन्न जो अवच्छेदकता तादृश अवच्छेदकत्वानिरूपित जो वृत्तितानिष्ठ प्रतियोगिता तादृश प्रतियोगिता निरूपक अभाव (साध्यवदन्यावृत्तित्व शब्दका) अर्थ है । तव उक्त उभयाभावीय प्रतियोगिताको साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदाधिकरण वृत्तितात्व, घटत्व, उभयत्व इन चार निष्ठ अवच्छेदकता निरूपित होनेके कारण तादृश अधिकरणनिष्ठ अवच्छेदकताभिन्न वृत्तितात्वनिष्ठ अवच्छेदकताभिन्न जो घटत्व एवं उभयत्वनिष्ठ अवच्छेदकता तादृश अवच्छेदकत्वानिरूपित उक्तोभयाभावीयप्रतियोगिता नहीं होगी, इसलिये तादृश प्रतियोगितानिरूपकअभावसे उक्तोभयाभाव नहीं लिया जायगा । किन्तु साध्यवत्त्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक भेदाधिकरण निरूपित वृत्तित्वाभावही लिया जायगा जोकि वह्निरूप हेतुमें नहीं है अतः अतिव्याप्ति नहीं होगी ।

(ख) ऐसा लक्षण करनेपरभी पुनः "धूमवान् वह्नेः" इसी स्थलमें धूमवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदाधिकरणजलनिरूपितवृत्तित्वाभाव भी उक्त तादृश अभाव हुआ । वह अभाव वह्निरूप हेतुमें रह जायगा । अतः पुनः अतिव्याप्ति होगी इसलिये "साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदनिष्ठअवच्छेदकताभिन्न अधिकरणत्वनिष्ठअवच्छेदकताभिन्न जो अवच्छेदकता तादृश अवच्छेदकत्वानिरूपित जो अधिकरणनिष्ठअवच्छेदकता" ऐसा निवेश करना चाहिये । तव धूमवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदाधिकरणजलनिष्ठअवच्छेदकता को तादृश भेद, अधिकरणत्व, जलत्व, इन तीनोंनिष्ठ अवच्छेदकताओं से निरूपित होनेके कारण तादृश भेदनिष्ठअवच्छेदकताभिन्न अधिकरणत्वनिष्ठ अवच्छेदकताभिन्न जो जलत्वनिष्ठ अवच्छेदकता तादृश अवच्छेदकतासे अनिरूपित धूमवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदाधिकरण जलनिष्ठअवच्छेदकता नहीं होगी । किन्तु केवल धूमवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदाधिकरणहीनिष्ठ अवच्छेदकता होगी इसलिये उक्त 'धूमवत्त्वावच्छिन्न" प्रतियोगिताक भेदाधिकरण जल निरूपित वृत्तित्वाभाव लेकर अतिव्याप्ति नहीं लगी ।

(ग) ऐसा कहनेपर भी "धूमवान् वह्नेः" इसी स्थल में पुनः जलवृत्तित्व विशिष्ट जो धूमवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेद वह जलमात्रमें रहता है तव जलवृत्तित्वविशिष्ट जो धूमवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेद तादृशभेदाधिकरण निरूपित वृत्तित्वाभाव कोभी (तादृश भेदनिष्ठ अवच्छेदकताभिन्न अधिकरणत्वनिष्ठ अवच्छेदकताभिन्न जोअवच्छेदकता तादृश

अवच्छेदकत्वानिरूपित जो अधिकरणनिष्ठ अवच्छेदकता तादृश अवच्छेदकताभिन्न वृत्तिता-त्वनिष्ठअवच्छेदकताभिन्न जो अवच्छेदकता तादृश अवच्छेदकत्वानिरूपित जो वृत्तितानिष्ठप्रति-योगिता तादृशप्रतियोगितानिरूपकअभाव) रूपहोनेके कारण अति व्याप्ति होगी इसलिये "साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगितानिष्ठ अवच्छेदकताभिन्न भेदत्वनिष्ठअवच्छेदकताभिन्न जो अवच्छेदकता तादृशअवच्छेदकत्वानिरूपित जो भेदनिष्ठअवच्छेदकता" ऐसा निवेश करना होगा । तब जलवृत्तित्वविशिष्टधूमवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदनिष्ठ अवच्छेदकताको साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगितानिष्ठअवच्छेदकताभिन्न भेदत्वनिष्ठअवच्छेदकताभिन्न जो जलवृत्तित्व वैशिष्ट्यनिष्ठअवच्छेदकता तादृश अवच्छेदकत्वानिरूपित जलवृत्तित्वविशिष्ट-धूमवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदनिष्ठअवच्छेदकता नहीं होगी। किन्तु केवल धूमवत्त्वा-वच्छिन्न प्रतियोगिताक भेदनिष्ठही अवच्छेदकता होगी इसलिये जलवृत्तित्वविशिष्ट जो धूमवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेद तादृश भेदाधिकरणनिरूपित वृत्तित्वाभाव लेकर अति-व्याप्ति नहीं होगी। साध्यवदन्यावृत्तित्वशब्दका पर्यवसितअर्थ यह हुआ कि (निरूपकत्व-सम्बन्धावच्छिन्न) साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगितानिष्ठअवच्छेदकताभिन्न (स्वरूप सम्बन्धा-वच्छिन्न) भेदत्वनिष्ठअवच्छेदकताभिन्न जो अवच्छेदकता तादृश अवच्छेदकत्वानिरूपित जो (स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्न) भेदनिष्ठ अवच्छेदकता तादृश अवच्छेदकताभिन्न (स्वरूप सम्ब-न्धावच्छिन्न) अधिकरणत्वनिष्ठअवच्छेदकताभिन्न जो अवच्छेदकता तादृश अवच्छेदकत्वा-निरूपित जो (निरूपितत्व सम्बन्धावच्छिन्न) अधिकरणनिष्ठअवच्छेदकता तादृश अवच्छे-दकताभिन्न (स्वरूप सम्बन्धावच्छिन्न) वृत्तितात्वनिष्ठअवच्छेदकताभिन्न जो अवच्छेदकता-तादृश अवच्छेदकत्वा निरूपित जो वृत्तितानिष्ठ (स्वरूप सम्बन्धावच्छिन्न) प्रतियोगिता तादृश प्रतियोगितानिरूपक अभाव (व्याप्ति) है।

(११) अत्र यद्यपि द्रव्यम् गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वादित्यादौ विशिष्टसत्तायाः शुद्धसत्तायाश्चैक्यात्साध्यवदन्यस्मिन्गुणादाववृत्तित्वं नास्ति । (१२) तथापि हेतुतावच्छेदकरूपेण वृत्तित्वं वाच्यम् । (१३) हेतुतावच्छेदकं तादृशवृत्तितानवच्छेदकमिति फलितोऽर्थः ।

(११, १२, १३) इस साध्यवदन्यावृत्तित्वरूपव्याप्तिलक्षणमें गुणकर्मान्यत्व विशिष्टसत्ता और शुद्धसत्ताको एक होनेके कारण साध्यवदन्य जो गुणादितन्निरूपित वृत्तित्व शुद्ध सत्तामें है। तब विशिष्टसत्तामें तादृश वृत्तित्वका अभाव नहीं रहसकताहै विशेष्यवृत्तिप्रतियोगिकअभावमें विशिष्टानुयोगिकत्व नहीं रहताहै इसलिये "द्रव्यम् गुण कर्मान्यत्व विशिष्ट सत्त्वात्" इस स्थलमें अव्याप्ति हो जायगी अतः साध्यवदन्यनिरूपित-वृत्तितानवच्छेदक जो हेतुतावच्छेदक तद्वत्त्व व्याप्ति कहना होगा, तब गुणमें सत्तात्वरूपसे सत्ता है किन्तु गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्तात्वरूपसे नहीं है इसलिये गुणकर्मान्यत्व

विशिष्टसत्तात्वरूप हेतुतावच्छेदकको साध्यवदन्यनिरूपितवृत्तितानवच्छेदक होनेके कारण साध्यवदन्यनिरूपितवृत्तितानवच्छेदक जो विशिष्टसत्तात्वरूपहेतुतावच्छेदक तद्वत्त्वहेतुमें रहनेसे लक्षण समन्वय हुआ।

(१४) ननु केवलान्वयिनि ज्ञेयत्वादौ साध्ये साध्यवदन्यस्याप्रसिद्धत्वादव्याप्तिः। (१५) किंच सत्तावान्जातेरित्यादौ साध्यवदन्यस्मिन्सामान्यादौ हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेनसमवायेन वृत्तेरप्रसिद्धत्वादव्याप्तिश्चात आह।

(१४,१५) "ज्ञेयत्ववान् वाच्यत्वात्" इस केवलान्वयिसाध्यकसद्धेतुमें साध्यवदन्य अप्रसिद्ध होनेके कारण अव्याप्ति होगी। एवं "सत्तावान् जातेः" इस स्थलमें साध्यवदन्य जो सामान्यादि उनमें समवायसम्बन्धसे कोई पदार्थ नहीं रहता है। अतः तादृशसाध्यवदन्यसामान्यादिनिरूपितहेतुतावच्छेदक समवायसम्बन्धावच्छिन्न वृत्तित्व अप्रसिद्ध है इसलिये अव्याप्ति होगी। एतदर्थ इस लक्षणको छोड़कर ग्रन्थकार "अथवेत्यादि" मूलसे व्याप्तिका सिद्धान्त लक्षण कहते हैं।

का० ६९।

अथवा हेतुमन्निष्ठविरहाप्रतियोगिना।
साध्येन हेतोरैकाधिकरण्यं व्याप्तिरुच्यते॥

का० अर्थ।

हेतुके अधिकरणमें रहनेवाला जो विरह अभाव उस अभावका अप्रतियोगी जो साध्य तादृशसाध्यके साथ हेतुका सामानाधिकरण्य साध्यनिरूपितव्याप्ति है।

(१) हेतुमति निष्ठा वृत्तिर्यस्य स तथा विरहोऽभावः, तथा च हेत्वधिकरणवृत्तिर्योऽभावः तदप्रतियोगिना साध्येन सह हेतोः सामानाधिकरण्यं व्याप्तिरुच्यते।

(१) कारिकाका अर्थ ही इसका भी अर्थ है तब हेतु समानाधिकरण जो घटाभाव उस अभावका अप्रतियोगी जो ज्ञेयत्व और सत्तारूपसाध्य तादृशसाध्य सामानाधिकरण्य, वाच्यत्व और जातिरूप हेतुओंमें रहनेसे लक्षण समन्वय हुआ। इसी प्रकार "वह्निमान्धूमात्" इत्यादि स्थलोंमें लक्षण समन्वय जानना चाहिये।

(२) अत्र यद्यपि वह्निमान्धूमादित्यादौ हेत्वधिकरणपर्वतादि-वृत्त्यभावप्रतियोगित्वं तत्तद्वह्न्यादेरस्तीत्यव्याप्तिः ।

(२) इस लक्षणमें "वह्निमान्धूमात्" इत्यादि स्थलमें अव्याप्ति होगी यथा धूमरूप हेतुका अधिकरण जो पर्वत, चत्वर, गोष्ठ महानस चालनीन्यायसे अर्थात् पर्वतीयधूमाधिकरण पर्वतमें महानसीय वह्निका एवं महानसीय धूमाधिकरण महानसमें पर्वतीयवह्निका अभाव इत्यादि रीतिसे सकल तत्तत् वह्निका अभाव हेत्वधिकरणवृत्ति होगा अतः हेतु समानाधिकरण अभावका अप्रतियोगी कोईभी वह्नि नहीं हुआ अतः "वह्निमान् धूमात्" यहां अव्याप्तिरूपदोष लगा ।

(३) न च समानाधिकरण वह्निधूमयोरेव व्याप्तिरिति वाच्यं, तत्त-द्वह्न्यादेरप्युभयाभाव सत्त्वादेकसत्त्वेऽपि द्वयं नास्तीति प्रतीतेः ।

(३) यदि ऐसा कहें कि उक्त लक्षण सामान्यव्याप्तिका नहीं है किन्तु विशेषव्याप्तिका है । अर्थात् जो हेतु जिस साध्य के अधिकरणमें वर्तमान है तद्धेतुनिष्ठ जो तत्साध्यनिरूपितव्याप्ति वही विशेषव्याप्ति कहाती है । यथा "तद्वह्निमान् तद्धूमात्" इसविशेषव्याप्ति स्थलमें पर्वतीयधूमका अधिकरण जो पर्वत उसमें वृत्ती जो अभाव वह पर्वतीयवह्निका अभाव नहीं होगा किन्तु चत्वरीय वह्न्यादिके अभाव होंगे उन अभावोंके अप्रतियोगी जो पर्वतीय वह्नि॰साध्य उस साध्यका पर्वतीय धूमरूप हेतुमें सामानाधिकरण्य होनेके कारण अव्याप्ति नहीं हुई । तथापि "तद्वह्निमानतद्धूमात्" इसीस्थलमें अव्याप्ति होनेके कारण उक्त लक्षण विशेषव्याप्तिकाभी नहीं हो सकता यथा तद्धूमरूप हेतुका अधिकरण जो तत्पर्वत तन्निष्ठ तद्वह्निका अभाव नहीं होनेपरभी कहना होगा कि तद्वह्निघटोभयाभाव अपदस्थ है क्योंकि "एक सत्त्वेपि द्वयं नास्ति" ऐसीप्रतीति होती है इसलिये उभयाभावका अप्रतियोगी तद्वह्निरूप साध्य नहीं हुआ ।

(४) गुणवान्द्रव्यत्वादित्यादावव्याप्तिश्च, तथापि प्रतियोगिता-नवच्छेदकं यत् साध्यतावच्छेदकं तदवच्छिन्नसामानाधिकरण्यं व्याप्तिरिति वाच्यम् ।

(४) "तद्वह्निमान् तद्धूमात्" केवल इसी स्थलमें अव्याप्ति लगती है ऐसा नहीं किन्तु "गुणवान् द्रव्यत्वात् में" भी अव्याप्ति लगती है यथा कोईभी गुणव्यक्ति सकलद्रव्यमें नहीं रहती है क्योंकि इस घटका गुण दूसरेघटमें नहीं है । तब द्रव्यत्वाधिकरणमें सकल तत्तत् गुणरूप व्यक्तियोंके चालनीन्यायसे अभाव रहनेके कारण हेतुसमानाधिकरणअभावका अप्रतियोगी एकभी गुणरूपसाध्य नहीं होगा अतः अव्याप्ति हुई । अतः हेतुसमानाधिकरण अभाव प्रतियोगितानवच्छेदक जो साध्यतावच्छेदक तदवच्छिन्न सामानाधिकरण्यव्याप्ति कहते हैं । ऐसा लक्षण करनेसे "वह्निमान् धूमात्" एवं गुणवान् द्रव्यत्वात् इन स्थलोंमें

अव्याप्ति नहीं होगी। क्योंकि धूमाधिकरणमें तत्तत् वह्निभावको रहने परभी वह्नि सामान्याभाव अर्थात् वह्निर्नास्ति इत्याकारक प्रतीतिसिद्ध अभाव नहीं रहेगा एवं द्रव्यत्वाधिकरणमें तत्तत् गुणोंके अभाव रहने परभी गुणसामान्याभाव नहीं रहेगा तव हेतुसमानाधिकरण अभावके प्रतियोगितानवच्छेदक क्रमशः वह्नित्व, गुणत्वरूप साध्यतावच्छेदक हो जायगे अतः वह्नित्व, गुणत्वरूप तादृशसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्न सामानाधिकरण्य क्रमशः धूम और द्रव्यत्वरूप हेतुमें रहनेके कारण लक्षण समन्वय हो जायगा।

(५) ननु रूपत्वव्याप्यजातिमत्वान् पृथिवीत्वादित्यादौ साध्यतावच्छेदिका रूपत्वव्याप्यजातयस्तासां च शुक्लत्वादिजातीनां नीलघटादिवृत्त्यभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वमस्तीत्यव्याप्तिरिति चेन्न। (६) तत्र परंपरया रूपत्वव्याप्यजातित्वस्यैव साध्यतावच्छेदकत्वात्। (७) नहि तादृशधर्मावच्छिन्नाभावः क्वापि पृथिव्यामस्ति। (८) रूपत्वव्याप्यजातिमान्नास्तीति बुद्ध्यापत्तेः।

(५) चालनीन्यायसे हेत्वधिकरणमें वृत्ती जो नीलपीतादि सकल तत्तत् रूपोंके अभाव तत्प्रतियोगितानवच्छेदकनीलत्व पीतत्वादि सातों रूपत्वव्याप्यजात रूपसाध्यतावच्छेदक नहीं होंगे अतः अव्याप्ति होगी (६,७,८,) सो नहीं क्योंकि रूपत्वव्याप्य जातिमें साध्यतावच्छेदक नहीं मानकर रूपत्वव्याप्य जातित्वमें ही स्वाश्रयाश्रयत्व सम्बन्धसे साध्यमें रहनेकेकारण साध्यतावच्छेदकत्व मानते हैं। तब शुक्लत्वादि रूपत्वव्याप्यजातिका प्रयियोगितावच्छेदक होने पर भी रूपत्वव्याप्यजातित्वरूप साध्यतावच्छेदक तो हेतुसमानाधिकरणाभावप्रतियोगितावच्छेदक नहीं होगा क्योंकि स्वाश्रयाश्रयत्वरूप परम्परासम्बन्धसे सामान्यतः "रूपत्वव्याप्यजातित्ववान् नास्ति" यह अभाव तो हेत्वधिकरण किसीभी पृथिवीमें नहीं रहेगा क्योंकि अगर रहता तो हेत्वधिकरण पृथ्वीमें रूपत्वव्याप्यजातिमान्नास्ति "इत्याकारक प्रतीति हो जाती। इसलिये हेतुसमानाधिकरणाभावप्रतियोगितानवच्छेदक जो रूपत्व व्याप्यजातित्व परम्परासम्बन्धसे तदवच्छिन्न जो रूपत्वव्याप्यजातिमत् रूपसाध्य तत् सामानाधिकरण्यपृथिवीत्वमें रहनेके कारण लक्षणसमन्वय हुआ।

(९) एवं दण्ड्यादौसाध्ये परम्परासंबन्धेन दण्डत्वादिकमेव साध्यतावच्छेदकं तच्च प्रतियोगितानवच्छेदकमिति। (१०) साध्यादिभेदेन व्याप्तेर्भेदात्तादृशस्थले साध्यतावच्छेदकतावच्छेदकं प्रतियोगितावच्छेदकतानवच्छेदकमित्येव लक्षणघटकमित्यपि वदन्ति।

(९) एवं "दण्डिमान् दण्डिसंयोगात्" इत्यादि स्थलोंमें जहांदण्डी प्रभृति साध्य हैं वहां दण्डादिको साध्यतावच्छेदक नहीं मानकर दण्डत्वादिहीको स्वाश्रयाश्रयत्वसम्बन्धसे साध्यतावच्छेदक मानते हैं। अतः तत्तत् सकल दण्डको "चालनीन्यायसे" तत्तत् दण्डवान् नास्ति इत्याकारक अभावप्रतियोगितावच्छेदक होनेपर भा पूर्वोक्तरीतिसे अव्याप्ति नहीं होगी क्योंकि स्वाश्रयाश्रयत्वसम्बन्धेन दण्डत्ववत् जो दण्डी उसके अभाव को हेत्वधिकरणमें

नहीं रहनेके कारण परम्परासम्बन्धसे दण्डत्वरूपसाध्यतावच्छेदक भी हेतुसमानाधिकरणाभावप्रतियोगितानवच्छेदक हो जायगा अतः लक्षण समन्वय हुआ । (१०) साध्य और हेतुके भेदसे अर्थात् स्थल भेदमें व्याप्तिका लक्षण भिन्न भिन्न होता है। इसलिये 'रूपत्वव्याप्य' जातिमत्वान् पृथ्वीत्वात् "एवं" दण्डिमान् दण्डिसंयोगात्, इत्यादि स्थलोंमें हेतुसमानाधिकरणाभाव प्रतियोगितावच्छेदकतानवच्छेदक जो साध्यतावच्छेदकतावच्छेदकधर्म तद्धर्मविशिष्ट जो साध्यतावच्छेदक तदवच्छिन्न सामानाधिकरण्यही व्याप्ति है। उक्त दोनों स्थलोंके हेत्वधिकरणोंमें यथाक्रम रूपत्वव्याप्यजातिमत्का और दण्डीका अभाव नहीं है। यदि ये अभाव यथाक्रम पृथ्वीमें और दण्डिसंयोगाधिकरणमठमें रहता तो इन अभावोंका प्रतियोगितावच्छेदक रूपत्वव्याप्यजाति तत्तत् स्वरूपदण्ड और प्रतियोगितावच्छेदकतावच्छेदक रूपत्वव्याप्यजातित्व एवं दण्डत्व होता। किन्तु ये अभाव पृथ्वी और दण्डिसंयोगाधिकरणमठमें यथाक्रम नहीं है। इसहेतु पृथ्वी और दण्डिसंयोगाधिकरणमठवृत्तिअभावका प्रतियोगितावच्छेदकतानवच्छेदक जो साध्यतावच्छेदकतावच्छेदक रूपत्वव्याप्यजातित्व और दण्डत्व तद्धर्मविशिष्ट जो रूपत्वव्याप्यजाति और दण्डरूपसाध्यतावच्छेदक तदवच्छिन्न साध्य सामानाधिकरण्यपृथ्वीत्वात्मक और दण्डिसंयोगात्मक हेतुओंमें रहनेके कारण लक्षण समन्वय हुआ।

(११) हेत्वधिकरणं च हेतुतावच्छेदकविशिष्टाधिकरणं वाच्यं. तेन द्रव्यं गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वादित्यादौ शुद्धसत्ताधिकरणगुणादि निष्ठाभाव प्रतियोगित्वेऽपि द्रव्यत्वस्य नाव्याप्तिः।

(११) हेत्वधिकरणशब्दका हेतुतावच्छेदकावच्छिन्न जो निरूपकता तादृशनिरूपकतानिरूपित जो अधिकरणता तद्वत् अर्थ है। यदि ऐसा अर्थ नहीं करें तो द्रव्यगुणकर्मान्यत्व विशिष्टसत्त्वात् इस स्थलमें अव्याप्ति हो जायगी, क्योंकि न्यायमतसे विशिष्टशुद्धको एक माननेके कारण गुणकर्मान्यत्व विशिष्टसत्ता और शुद्धसत्ता एक है। तब शुद्धसत्ताका अधिकरणगुण कर्मभी है इसलिये गुणकर्मान्यत्व विशिष्ट सत्ताकाभी अधिकरणगुणकर्मको मानना होगा। तब गुणकर्मान्यत्व विशिष्टसत्तारूप हेतुका अधिकरण जो गुण कर्म तद्वृत्ती जो द्रव्यत्वाभाव तादृशाभावका प्रतियोगितावच्छेदकही द्रव्यत्वत्वरूप साध्यतावच्छेदक हो जायगा प्रतियोगितानवच्छेदक नहीं होगा अतः अव्याप्ति हो जायगी। किन्तु हेत्वधिकरणशब्दका यदि हेतुतावच्छेदकावच्छिन्न निरूपकतानिरूपितअधिकरणतावत् अर्थ करें तो अव्याप्ति नहीं होगी यथा — शुद्धसत्ता और गुणकर्मान्यत्वविशिष्ट सत्ता इन दोनों को एक रहनेपर भी सत्तात्वावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपितअधिकरणता द्रव्यगुण और कर्म इन तीनों पदार्थोंमें मानी जाती है और गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्तात्वावच्छिन्न-निरूपकतानिरूपितअधिकरणता केवलद्रव्यमें मानीजाती है। तब गुणकर्मान्यत्व-विशिष्टसत्तात्वरूप जो हेतुतावच्छेदक तदवच्छिन्न निरूपकतानिरूपितअधिकरणतावत्-

गुणकर्म नहीं होगा। किन्तु द्रव्यही होगा। तद्वृत्ति अभावमें द्रव्यत्वाभाव नहीं लिया जायगा किन्तु घटाभावादि लिए जायेंगे। तत्प्रतियोगितानवच्छेदक जो द्रव्यत्वरूप साध्यतावच्छेदक तदवच्छिन्न सामानाधिकरण्य गुणकर्मान्यत्व विशिष्टसत्तारूपहेतुमें रहनेके कारण लक्षण समन्वय हुआ।

(१२) एवं हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन हेत्वधिकरणं बोध्यम्। (१३) तेन समवायेन धूमाधिकरणतदवयवनिष्ठाभावप्रतियोगित्वेऽपि वह्नेर्नाव्याप्तिः।

(१२) इसीप्रकार हेतुतावच्छेदक संबन्धही से हेत्वधिकरण लेना चाहिये। (१३) अन्यथा वह्निमान् धूमात् यहां समवायसंबन्धसे धूमाधिकरण जो धूमावयव तद्वृत्ति वह्न्यभावका प्रतियोगितावच्छेदकही वह्नित्वरूप साध्यतावच्छेदकको होनेके कारण अव्याप्ति होती। किन्तु हेतुतावच्छेदकसंयोगसंबन्धसे धूमाधिकरणपर्वतादिमें वृत्ती अभाव वह्न्यभाव नहीं होगा किन्तु घटाभावादि ही होगा। तत्प्रतियोगितानवच्छेदक जो वह्नित्व रूपसाध्यतावच्छेदक तदवच्छिन्न सामानाधिकरण्यहेतुमें रहनेके कारण लक्षण समन्वय हुआ।

(१४) अभावश्च प्रतियोगिव्यधिकरणो बोध्यः। (१५) तेन कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वादित्यत्र मूलावच्छेदेनैतद्वृक्षवृत्तिकपिसंयोगाभावप्रतियोगित्वेऽपि कपिसंयोगस्य नाव्याप्तिः।

(१४) हेत्वधिकरणवृत्ति जो अभाव वह प्रतियोगिव्यधिकरणभी होना चाहिये। (१५) हेत्वधिकरणवृत्तीअभावमें प्रतियोगिव्यधिकरणत्वका निवेश नहीं करें तो "कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्" इसस्थल में एतद्वृक्षरूप हेत्वधिकरणमें कपिसंयोगानधिकरणमूलादि देशावच्छेदेन कपिसंयोगाभाव भी रहेगा अतः तादृश अभावका प्रतियोगितावच्छेदकही कपिसंयोगत्वरूप साध्यतावच्छेदक होनेके कारण अव्याप्ति होगी। उक्त अभावमें प्रतियोगिव्यधिकरणत्वविशेषण देनेपर "कपिसंयोगाभाव" कपिसंयोगरूप प्रतियोगीके समानाधिकरणही होकर एतद्वृक्षरूप हेत्वधिकरणमें है। अतः प्रतियोगिव्यधिकरण हेतुसमानाधिकरण अभाव कपिसंयोगाभाव नहीं होगा किन्तु घटाभावादि ही होगा तव तत्प्रतियोगितानवच्छेदककपिसंयोगत्वरूप साध्यतावच्छेदक होनेके कारण लक्षण समन्वय हुआ।

(१६) न च प्रतियोगिव्यधिकरणत्वं यदि प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वं तदा तथैवाव्याप्तिः। (१७) प्रतियोगिनः कपिसंयोगस्यानधिकरणे गुणादौ वर्तमानो योऽभावस्तस्यैव वृक्षेऽपि मूलावच्छेदेन सत्त्वात्। (१८) यदि तु प्रतियोग्यधिकरणावृत्तित्वं तदा संयोगी सत्त्वादित्यादावतिव्याप्तिः। (१९) सत्ताधिकरणे गुणादौ यः संयोगाभावस्तस्य प्रतियोग्यधिकरणद्रव्यवृत्तित्वादिति वाच्यम्, हेत्वधिकरणे प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वविशिष्टस्य विवक्षितत्वात्, स्वप्रतियोग्यनधिकरणीभूतहेत्वधिकरणवृत्त्यभाव इति निष्कर्षः।

(१६) यदि प्रतियोगिव्यधिकरणशब्दका प्रतियोग्यनधिकरणमें वृत्ती अर्थ करें तो पुनः कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्में अव्याप्ति होगी(१७) यथा कपिसंयोगाभावका प्रतियोगी जो कपिसंयोग उसका अनधिकरणजो गुणादि तद्वृत्तीजो कपिसंयोगाभाव वहीहेत्वधिकरण एतद्-वृक्षमें मूलावच्छेदेन भी है तब कपिसंयोगाभावको लक्षणघटक होनेके कारण तत्प्रतियोगिता-वच्छेदकही साध्यतावच्छेदक होगा। (१८) यदि प्रतियोगिव्यधिकरणशब्दका प्रतियोग्यधिकरणमें वृत्तीसे भिन्न अर्थ करें तो "कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्" में दोष वारण होता है यथा कपिसंयो-गाभावका प्रतियोगी जो कपिसंयोग उसके अधिकरणमें अपर देशावच्छेदेन कपिसंयोगाभावको वृत्ती होनेके कारण कपिसंयोगाभावप्रतियोग्यधिकरणमें वृत्तीसे भिन्न नहीं होगा किन्तु घटत्वाभावादि ही होगा तत्प्रतियोगितानवच्छेदक कपिसंयोगत्वरूप साध्यतावच्छेदक होनेके कारण लक्षण समन्वय हुआ परन्तु " संयोगीसत्त्वात् " इसव्यभिचारीहेतुमें अतिव्याप्ति हो जायगी (१९) यथा- संयोगाभावको अव्याप्यवृत्ती (एतावता प्रतियोग्यधिकरणमें वृत्ती) होनेके कारण लक्षणघटकत्व नहीं होगा। अतः लक्षणघटक अभावान्तरही लिया जायगा। अतः प्रति योगिव्यधिकरण शब्दका प्रतियोग्यनधिकरण वृत्तित्वविशिष्ट होकर हेत्वधिकरणमें वर्तमान जो अभाव अर्थात् प्रतियोगीका अनधिकरण जो हेत्वधिकरण तद्वृत्ती जो अभाव वही निःष्कर्षार्थहै ऐसा अर्थ करने पर कपिसंयोगी "एतद्वृक्षत्वात्" इस स्थलमें कपिसंयोगाभावप्रतियोगी जो कपिसंयोग उसका अनधिकरण एतद्वृक्षरूप हेत्वधिकरण नहीं है। अतः साध्याभाव लक्षण-घटक नहीं होनेके कारण अव्याप्ति नहीं होगी एवं संयोगीसत्त्वात् इस स्थलमें संयोगाभाव-प्रतियोगी जो संयोग उसका अनधिकरण जो गुणकर्मरूप हेत्वधिकरण तद्वृत्ती संयोगाभाव लक्षणघटक होनेके कारण अतिव्याप्ति भी नहीं होगी।

(२०) प्रतियोग्यनधिकरणत्वं प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिक-रणत्वं। तेन विशिष्टसत्तावान्जातेरित्यादौ जात्यधिकरणगुणादौ विशिष्टस-त्ताभावप्रतियोगिसत्ताधिकरणत्वेऽपि न क्षतिः।

(२०) प्रतियोग्यनधिकरणशब्दका प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरण अर्थ करना होगा। अन्यथा "गुणकर्मान्यत्व विशिष्ट सत्तावान् जातेः" इस स्थलमें अतिव्याप्ति हो जायगी यथा गुणकर्मान्यत्व विशिष्टसत्ताभावका प्रतियोगी जो गुणकर्मान्यत्व विशिष्टसत्ता उसको शुद्धसत्तारूप होनेके कारण शुद्धसत्ताका अनधिकरण हेत्वधिकरण नहीं है। अतः गुणकर्मान्यत्व विशिष्टसत्तारूपप्रतियोगीका अनधिकरण भी हेत्वधिकरण नहीं होगा। तब साध्याभाव लक्षणघटक नहीं होगा अतः अतिव्याप्ति हो जायगी किन्तु प्रतियोगितावच्छेदका-वच्छिन्नानधिकरण जो हेत्वधिकरण ऐसा अर्थ करनेसे गुणकर्मान्यत्व विशिष्टसत्ताभावप्रति-योगितावच्छेदक जो गुणकर्मान्यत्व विशिष्टसत्तात्व तदवच्छिन्न निरूपकता निरूपिताधिकर-णता द्रव्यमात्रमें रहनेके कारण गुणकर्मान्यत्व विशिष्टसत्तात्वरूप प्रतियोगितावच्छेदकाव-च्छिन्नानधिकरण हेत्वधिकरण होनेके कारण साध्यभाव लक्षणघटक हो जायगा अतः अति-व्याप्ति नहीं होगी।

(२१) एवंसाध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोग्यनधिकरणत्वं बोध्यम्। (२२) तेन ज्ञानवान् द्रव्यत्वादित्यादौ द्रव्यत्वाधिकरणघटादेर्विषयतासम्बन्धेन ज्ञानाधिकरणत्वेऽपि न क्षतिः ।

(२१,२२) एवं साध्यतावच्छेदक संबन्धसे प्रतियोगीका अनधिकरण हेत्वधिकरण समझना चाहिए अन्यथा ज्ञानवान् द्रव्यत्वात् इस व्यभिचारी हेतुमें ज्ञानाभाव प्रतियोगी जो ज्ञान उसका विषयतासंबन्धसे अधिकरण ही संसार है तब प्रतियोगी का अनधिकरण हेत्वधिकरण नहीं होगा । अतः साध्याभाव लक्षणघटक नहीं हो सकता इसहेतु अतिव्याप्ति होगी परन्तु साध्यतावच्छेदक सम्बन्धसे प्रतियोगीका अनधिकरण जो हेत्वधिकरण ऐसा अर्थ करनेपर साध्यतावच्छेदकसमवायसम्बन्धसे ज्ञानरूप प्रतियोगीका अनधिकरण जो आत्मेतरद्रव्यरूप हेत्वधिकरण तद्वृत्तिज्ञानाभावको लक्षणघटकहोनेकेकारण अतिव्याप्ति का वारण हुआ ।

(२३) इत्थंच वह्निमान् धूमादित्यादौ धूमाधिकरणे समवायेन वह्निविरहसत्त्वेपि न क्षतिः ।

(२३) ऐसा लक्षणकरनेपर " वह्निमान् धूमात् " इस स्थलमेंभी समवाय सम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक वह्न्यभावका प्रतियोगी जो वह्नि उसका समवायसम्बन्धसे अनधिकरण जो पर्वतादिरूप हेत्वधिकरण उसमें समवायसम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक वह्न्यभावको वृत्तीहोनेपरभी साध्यतावच्छेदकसंयोगसम्बन्धसे वह्निरूप प्रतियोगीका अनधिकरण पर्वतादिरूपहेत्वधिकरण नहीं होनेके कारण समवायसम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक वह्न्यभाव लक्षणघटक नहीं होगा इसलिये उक्त सद्धेतुमें अव्याप्ति नहीं हुई । अतएव प्रतियोगितामें साध्यतावच्छेदक संम्बन्धावच्छिन्नत्व निवेश करनेकी आवश्यकता नहीं है ।

(२४) ननु प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नस्य यस्य कस्यचित्प्रतियोगिनोऽनधिकरणत्वं तत्सामान्यस्य वा यत्किञ्चित्प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरणत्वं वा विवक्षितम् ।

(२४) प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरणशब्दका प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न जो यत्किंचित्व्यक्ति उसका अनधिकरण या प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न सामान्य का अनधिकरण अर्थ है । अथवा प्रतियोगितावच्छेदकी भूत जो यत्किंचित् धर्म तद्धर्मावच्छिन्नानधिकरण अर्थ है । इन तीनों में कैसा अर्थ करते हैं ।

(२५) आद्ये कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वादित्यादौ तथैवाव्याप्तिः । (२६) कपिसंयोगाभावस्य प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नो वृक्षावृत्ति कपिसंयोगोऽपि भवति तदनधिकरणं वृक्ष इति ।

(२५) यदि प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरण शब्दका प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न यत्किंचित् व्यक्तिका अनधिकरण अर्थ करें तो " कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात् " में अव्याप्ति हो जायगी । (२६) यथा–कपिसंयोगाभावका प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न जो एतद्वृक्षावृत्ति कपिसंयोग उसका अनधिकरण जो एतद्वृक्षरूप हेत्वधिकरण तद्वृत्ति कपि संयोगाभाव प्रतियोगितावच्छेदक ही साध्यतावच्छेदक होनेके कारण अव्याप्ति होगी ।

(२७) द्वितीये तु प्रतियोगिव्यधिकरणाभावाप्रसिद्धिः । (२८) सर्वस्यैवाभावस्यपूर्वक्षण वृत्तित्वविशिष्टस्वाभावात्मकप्रतियोगिसमानाधिकरणत्वात् ।

(२७) यदि प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरण शब्दका प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न सामान्यानधिकरण अर्थ करते हैं तो "कपिसंयोगी एतद् वृक्षत्वात्" में अव्याप्ति वारण यद्यपि हो जायगा यथा— कपिसंयोगाभावप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न सामान्यके अन्तर्गत एतद्वृक्ष वृत्ति कपिसंयोगभी हुआ उसका अनधिकरण एतद् वृक्ष रूप हेत्वधिकरण नहीं हुआ । अतः कपिसंयोगाभाव लक्षणघटक नहीं होनेसे अव्याप्ति वारण हो गया किन्तु इस अर्थ करनेसे प्रतियोगिव्यधिकरण अभावही अप्रसिद्ध है । (२८) यथा-पूर्वक्षणवृत्तित्वविशिष्ट घटाभावके अभावका अभाव=पूर्वक्षण वृत्तित्वविशिष्टघटाभाव (स्वरूप) है । पूर्वक्षणवृत्तित्वविशिष्टघटाभाव और शुद्धघटाभाव (एक ही) है । तब घटाभावका प्रतियोगी जैसे घट है वैसे पूर्वक्षणवृत्तित्व विशिष्टघटाभावका अभावभी है । तब घटाभावके प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न सामान्यमें घटके समान पूर्वक्षणवृत्तित्वविशिष्टघटाभावका अभावभी लिया जायगा जो केवलान्वयी है अतः उसका अनधिकरण हेत्वधिकरण कोई नहीं होगा । इसलिये कोई अभावप्रतियोगिव्यधिकरण होही नहीं सकता ।

(२९) न च वह्निमान् धूमादित्यादौ घटाभावादेः पूर्वक्षणवृत्तित्वविशिष्टस्वाभावात्मकप्रतियोग्यधिकरणत्वं यद्यपि पर्वतादेस्तथापि साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन तत्प्रतियोग्यनधिकरणत्वमस्त्येवेति कथं प्रतियोगिव्यधिकरणाभावाप्रसिद्धिरिति वाच्यम् । (३०) घटाभावे यो वह्न्यभावस्तस्य घटाभावात्मकतया घटाभावस्य वह्निरपि प्रतियोगी तदधिकरणं च पर्वतादिरित्येवं क्रमेण प्रतियोगिव्यधिकरणस्याप्रसिद्धत्वात् ।

(२९, ३०) यदिऐसा कहें कि " वह्निमान् धूमात् " इत्यादि स्थलोंमें 'प्रतियोगिव्यधिकरण अभाव अप्रसिद्ध नहीं होगा क्योंकि आपने प्रतियोगीका अनधिकरण साध्यतावच्छेदक सम्बन्धसे कहा है तब घटाभावका पूर्वक्षणवृत्तित्वविशिष्टघटाभावाभावरूप जो प्रतियोगी उसका साध्यतावच्छेदक संयोग सम्बन्धसे अधिकरणही अप्रसिद्ध है (स्वरूप सम्बन्धेन अधिकरण प्रसिद्ध है) अतः उस प्रतियोगीको नहीं लेकर वह्न्यादिरूप प्रतियोगी

को ही लेना पड़ेगा उन घटादियोंका संयोगसम्बन्धसे अनधिकरण पर्वतादिरूप हेत्वधिकरण को होनेके कारण घटाभावादि ही प्रतियोगिव्यधिकरण हो जायगा। ऐसा भी नहीं कहसकते क्योंकि किसीका मत है कि अभावाधिकरणक जो अभाव वह अधिकरण स्वरूप है। अतः घटाभावनिष्ठ जो वह्न्यभाव वह घटाभावस्वरूप है तब घटाभावका प्रतियोगी जैसे घट हुआ वैसेही वह्निभी हुआ। तब साध्यतावच्छेदक संयोगसम्बन्धसे घटाभाव प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न सामान्यान्तर्गत वह्न्यादिरूप प्रतियोगीका अनधिकरणहेत्वधिकरण नहीं होनेके कारण प्रतियोगिव्यधिकरण अभाव पुनः अप्रसिद्ध रह ही गया (अतः वह्निमान् धूमात्‌मेंभी अव्याप्तिका वारण नहीं हुआ)।

(३१) यदि च घटाभावादौ वह्न्यभावादिर्भिन्न इत्युच्यते तथापि धूमाभाववान् वह्न्यभावादित्यादावव्याप्तिः। (३२) तत्र साध्यतावच्छेदक सम्बन्धः स्वरूपसम्बन्धः तेन सम्बन्धेन सर्वस्यैवाभावस्य पूर्वक्षणावृत्तित्वविशिष्टस्वाभावात्मकप्रतियोग्यधिकरणत्वं हेत्वधिकरणस्येति।

(३१) किन्तु जिन आचार्योंका मत ऐसा नहीं है उनके मतसे घटाभावनिष्ठ वह्न्यभाव घटाभावस्वरूप नहीं है। तब घटाभावका प्रतियोगी (पूर्वक्षणवृत्तित्वविशिष्ट घटाभावका अभाव होने पर भी उसका संयोग सम्बन्धसे अधिकरण अप्रसिद्ध हो जानेके कारण) प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न सामान्यमें वह नहीं लिया जायगा किन्तु घटमात्र लिया जायगा। तब घटरूप प्रतियोगीका संयोगसम्बन्धसे अनधिकरण पर्वतादिरूप हेत्वधिकरण होनेके कारण घटाभावही प्रतियोगिव्यधिकरण हो जायगा। (३२) अतः वह्निमान् धूमात्‌में अव्याप्ति नहीं भी हो तथापि धूमाभाववान् वह्न्यभावात् यहां स्वरूप सम्बन्धको साध्यतावच्छेदक सम्बन्धहोनेके कारण उक्त रीतिसे कोई अभावप्रतियोगिव्यधिकरण नहीं होगा। अतः यहां अव्याप्ति हुई।

(३३) तृतीये तु कपिसंयोगाभाववान् आत्मत्वादित्यादावव्याप्तिः। (३४) तत्रात्मवृत्तिकपिसंयोगाभावाभावः कपिसंयोगस्तस्य च गुणत्वात्प्रतियोगितावच्छेदकं गुणसामान्याभावत्वमपि तदवच्छिन्नानधिकरणत्वं हेत्वधिकरणस्यात्मन इति।

(३३) यदि प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरण शब्दका प्रतियोगितावच्छेदकीभूत जो यत्किञ्चिद्धर्म तद्धर्मावच्छिन्नानधिकरण अर्थ करें तो "धूमाभाववान् वह्न्यभावात" यहां लक्षण समन्वय हो जायगा। घटाधिकरणत्वाभावप्रतियोगितावच्छेदक जो "घटाधिकरणतात्वरूप यत्किञ्चित् धर्म तद्धर्मावच्छिन्न"का अनधिकरण जलादिरूप हेत्वधिकरण होनेके कारण घटाधिकरणत्वाभाव ही प्रतियोगिव्यधिकरण होगा। तब (प्रतियोगितानवच्छेदक धूमाभावत्व रूप साध्यतावच्छेदक होनेके कारण लक्षण समन्वय हुआ)। किन्तु ऐसा परिष्कार

करनेपर भी " कपि संयोगाभाववान् आत्मत्वात् " इस स्थलमें अव्याप्ति होती है (३४) यथा कपिसंयोगा भावाभाव कपिसंयोगरूप है और गुणसामान्याभावाभाव गुण सामान्य रूप है तब कपि संयोग भी गुण सामान्यान्तर्गत होनेके कारण गुणसामान्याभावाभावसे भिन्न कपि संयोगाभावाभाव नहीं है । अतः कपिसंयोगाभावाभावका प्रतियोगितावच्छेदक जो गुण सामान्या भावत्व तद्धर्मावच्छिन्नानधिकरण जो आत्मरूप हेत्वधिकरण तद्वृत्ति कपि-संयोगाभावाभाव लिया जायगा तत्प्रतियोगितावच्छेदक ही कपिसंयोगाभावत्व रूप साध्यतावच्छेदक होनेके कारण उक्त स्थलमें अव्याप्ति हुई ।

(३५) मैवम् । यादृशप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरणत्वं हेतुमतस्तादृशप्रतियोगितानवच्छेदकत्वस्य विवक्षितत्वात् ।

(३५) पूर्वोक्त दोषोंसे अभावघटित लक्षणको छोड़कर प्रतियोगिताघटित लक्षण कहते हैं । यथा — यादृश प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरण हेत्वधिकरण हो तादृश प्रतियोगितानवच्छेदक जो साध्यतावच्छेदक तदवच्छिन्न सामानाधिकरण्य व्याप्ति है । तब "कपिसंयोगाभाववान् आत्मत्वात्" इसस्थलमें कपिसंयोगाभावत्वावच्छिन्न यादृश प्रतियोगिता वच्छेदक कपिसंयोगाभावत्वावच्छिन्नानधिकरण हेत्वधिकरण नहीं होने के कारण कपिसंयो-गाभावत्वावच्छिन्न प्रतियोगिता लक्षण घटक यादृश प्रतियोगितापदसे नहीं ली जायगी किन्तु गुणसामान्याभावत्वावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदक गुण सामान्याभावत्वावच्छिन्नानधिकरण, आत्मरूप हेत्वधिकरण होने के कारण गुण सामान्याभावत्वावच्छिन्न ही प्रतियोगिता लक्षण घटक होगी तब तादृश प्रतियोगितानवच्छेदक कपिसंयोगाभावत्व रूप साध्यतावच्छेदक होनेके कारण उक्त स्थलमें अव्याप्तिनहीं होगी । "कपिसंयोगी एतद् वृक्षत्वात् " इस स्थलमेंभी कपिसंयोगत्वावच्छिन्न प्रतियोगिता लक्षण घटक नहीं होनेके कारण यादृश प्रतियोगिता पदसे घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिता लेकर लक्षण समन्वय हो जायगा । इसी प्रकार "धूमाभाव-वान् घटत्वभावात्में भी धूमाभावत्वावच्छिन्नप्रतियोगिता लक्षणघटक नहीं होगी किन्तु घटा-धिकरणतात्वावच्छिन्नप्रतियोगिताही लक्षणघटक होगी तब तादृश प्रतियोगितानवच्छेदक धूमा-भावत्वरूप साध्यतावच्छेदक होनेके कारण यहां भी अव्याप्ति वारण हो जायगा ।

(३६) ननु कालो घटवान् कालपरिमाणादित्यत्र प्रतियोगिव्यधिकरणा-भावाप्रसिद्धिः , हेत्वधिकरणस्य महाकालस्य जगदाधारतया सर्वेषामभावानां साध्यतावच्छेदकसंबन्धेन कालिकविशेषणतया प्रतियोग्यधिकरणत्वात् । (३७) अत्र केचित् । महाकालभेदविशिष्टघटाभावस्तत्र प्रतियोगिव्यधि-करणो महाकालस्य घटाधारत्वेऽपि महाकालभेदविशिष्टघटानाधारत्वात् । (३८) महाकाले महाकालभेदाभावात् ।

(३६)* ऐसा लक्षण करनेपरभी "कालोघटवान् कालपरिमाणात्" इस स्थलमें साध्यतावच्छेदक संबन्ध कालिक है और साध्यतावच्छेदक कालिक संबन्धसे संसारके सभी पदार्थको हेत्वधिकरण महाकालमें रहनेके कारण यादृश प्रतियोगिता पदसे किसीभी प्रतियोगिता का ग्रहण नहीं हो सकता है। क्योंकि जिस प्रतियोगिताको आप लेना चाहेंगे उस प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नका साध्यतावच्छेदक कालिकसंबन्धसे अधिकरणही हेत्वधिकरण महाकाल हो जायगा। अतः यादृश प्रतियोगिता अप्रसिद्ध होनेके कारण उक्त स्थलमें अव्याप्ति होगी। (३७,३८)† उक्त दोषका वारणार्थ किसी आचार्यका ऐसा मत है कि महाकाल को सर्वाधार होने परभी महाकालभेदको महाकालमें नहीं रहनेके कारण महाकालभेदविशिष्टघटभी महाकालमें नहीं रहेगा तब यादृश प्रतियोगितापदसे महाकाल भेदविशिष्ट घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताही प्रसिद्ध होजायगी क्योंकि तादृशप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न जो महाकाल भेदविशिष्टघट उसका कालिकसंबन्धेन अनधिकरण महाकालरूप हेत्वधिकरण हो जायगा। तब तादृशप्रतियोगितानवच्छेदक घटत्वरूप साध्यतावच्छेदक होनेके कारण अव्याप्ति वारण हो जायगा।

(३९) वस्तुतस्तु प्रतियोगितावच्छेदकसंबन्धेन प्रतियोग्यनधिकरणीभूतहेत्वधिकरणवृत्त्यभावप्रतियोगितासामान्ये यत्संबन्धावच्छिन्नत्वयद्धर्मावच्छिन्नत्वोभयाभावस्तेन संबन्धेन तद्धर्मावच्छिन्नस्य तद्धेतु व्यापकत्वं बोध्यम्। (४०) व्यापकसामानाधिकरण्यं च व्याप्तिः।

(३९,४०)+ वास्तवमें लक्षणका परिष्कार इसप्रकार किया जाता है कि प्रतियोगितावच्छेदकसंबन्धसे यादृश प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नका अनधिकरण हेत्वधिकरण हो तादृश प्रतियोगिता सामान्यमें यत्संबन्धावच्छिन्नत्व यद्धर्मावच्छिन्नत्वोभयाभाव हो तद्धर्मावच्छिन्न तेनसंबन्धेन हेतुका व्यापकहै, और तादृश व्यापकका तेन संबन्धेन सामानाधिकरण्य हेतुनिष्ठ व्याप्ति है।

---

* कालसे यहां महाकालका ग्रहण है। अन्यथा खण्डकालको भी हेत्वधिकरण होनेके कारण तत् खण्डकालके असमानकालीन पदार्थ कालिकसम्बन्धसे हेत्वधिकरण तत्खण्डकालमें नहीं रहेगा। अतः लक्षणघटक यादृशप्रतियोगिता पदसे तत् खण्डकालके असमान कालीन पदार्थनिष्ठही प्रतियोगिता प्रसिद्ध हो जायगी तब अव्याप्ति नहीं होगी।

† "महाकाल भेद विशिष्ट घटाभाव स्तत्र प्रतियोगिव्यधिकरण" इस जगहमें घटपदका पट अर्थ है। अन्यथा महाकाल भेद विशिष्ट घटाभावको प्रतियोगिव्यधिकरण होनेपर भी (अर्थात् महाकालभेद विशिष्ट घटत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताको लक्षणघटक होनेपरभी तादृश प्रतियोगितावच्छेदक महाकालभेदवैशिष्ट्य और घटत्व है तब घटत्व तादृश प्रतियोगिताका अनवच्छेदक नहीं होगा तब अव्याप्ति वारण नहीं होसकता।

+ पूर्वोक्त युक्तियोंसे अभाव घटित लक्षणका खण्डन होचुका है। अतः अब सिद्धान्तमें प्रतियोगिताघटित लक्षणही चल रहा है। तब प्रतियोगिता घटित लक्षण करनेके बाद जहां २ ग्रन्थमें जिस पदार्थका अभाव लक्षण घटक बतलाया है उसका तात्पर्य यह है कि तत्तत् पदार्थनिष्ठ प्रतियोगिता लक्षण घटक हैं। अत एव "वस्तुतस्तु" कल्पमेंभी मुक्तावलीमें अभाव घटित लक्षण बतलाने परभी प्रतियोगिता घटित लक्षणानुसारही टीकामें व्याप्तिका स्वरूप बतलाया गया है। वस्तुतस्तु कल्पोक्त लक्षणमें यत्सम्बन्धसे साध्यतावच्छेदक सम्बन्ध और यद्धर्म से साध्यतावच्छेदक धर्म्म लेना चाहिये।

(४१) इत्थं च कालो घटवान् कालपरिमाणादित्यादौ संयोगसंबन्धेन यो घटाभावस्तत्प्रतियोगिनो घटस्यानधिकरणे हेत्वधिकरणे महाकाले वर्तमानः स एव संयोगेन घटाभावस्तस्य प्रतियोगितायां कालिकसंबन्धावच्छिन्नत्व-घटत्वावच्छिन्नत्वोभयाभावसत्त्वान्नाव्याप्तिः ।

(४१) ऐसा लक्षण करनेपर "कालोघटवान् कालपरिमाणात्" इस स्थलमें संयोगसंबन्धावच्छिन्न घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताभी लक्षण घटक यादृश प्रतियोगितापदसे ली जायगी। क्योंकि तादृश प्रतियोगितावच्छेदक संयोग संबन्धसे तादृशप्रतियोगितावच्छेदक घटत्वावच्छिन्नका अनधिकरण महाकालरूप हेत्वधिकरण होनेके कारण तादृश संयोग संबन्धावच्छिन्न घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिता सामान्यमें (यत् संबन्ध) कालिक संबन्धावच्छिन्नत्व (यद्धर्म) घटत्वावच्छिन्नत्वोभयाभाव रहनेके कारण (तेन) कालिक संबन्धेन (तद्धर्म) घटत्वावच्छिन्न सामानाधिकरण्य कालपरिमाणरूप हेतुमें रहनेके कारण लक्षण समन्वय हुआ।

(४२) धूमवान् वह्नेः इत्यादावतिव्याप्तिवारणाय सामान्यपद-मुपात्तम् ।

(४२) उक्त लक्षणमें प्रतियोगिता सामान्यान्तर्गत सामान्यपद नहीं देनेसे "धूमवान् वह्नेः" इस स्थलमें अतिव्याप्ति होगी क्योंकि संयोग संबन्धावच्छिन्न धूमत्वावच्छिन्न प्रतियोगिता जिस प्रकार लक्षणघटक होती है, उसी प्रकार संयोग संबन्धावच्छिन्न घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताभी स्वावच्छेदक संयोग सम्बन्धसे स्वावच्छेदक घटत्वावच्छिन्नका अनधिकरण अयो गोलक रूप हेत्वधिकरण होनेके कारण लक्षणघटक संयोग संबन्धावच्छिन्न घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगितामें संयोगरूप यत्संबन्धावच्छिन्नत्व धूमत्वरूप यद्धर्मावच्छिन्नत्वोभयाभाव रह जायगा तब तादृश संयोग संबन्धसे तादृश धूमत्वावच्छिन्न सामानाधिकरण्य वह्निरूप हेतुमें रहनेके कारण अतिव्याप्ति होगी अतः सामान्यपद देना आवश्यक है। तब लक्षणघटक यादृश प्रतियोगिता सामान्यान्तर्गत संयोग संबन्धावच्छिन्न धूमत्वावच्छिन्न-प्रतियोगितामें संयोगरूप यत्सम्बन्धावच्छिन्नत्व धूमत्वरूप यद्धर्मावच्छिन्नत्व दोनों रहनेके कारण उभयाभाव नहीं रहेगा। अतः अतिव्याप्ति नहीं होगी।

(४३) ननु प्रमेयवह्निमान् धूमादित्यादौ प्रमेयवह्नित्वावच्छिन्नत्वमप्रसिद्धं गुरुधर्मस्यानवच्छेदकत्वादिति चेन्न, कम्बुग्रीवादिमान्नास्तीति प्रतीत्या कम्बुग्रीवादिमत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताविषयीकरणेन गुरुधर्मस्याप्यवच्छेदकत्वस्वीकारादिति संक्षेपः ।

(४३) * नियम है कि " अतिप्रसंगाद्यनापादक लघु धर्म " जहां मिले वहां गुरु धर्मप्रतियोगितावच्छेदक नहीं होता है तव प्रमेय वह्न्यभाव और वह्न्यभाव दोनों बराबर ही जगहमें रहनेवाले हैं इसलिये अतिप्रसङ्गाद्यनापादक और प्रमेय वह्नित्वापेक्षया लघु धर्मरूप जो वह्नित्व वही प्रमेयवह्न्यभावीयप्रतियोगिताका अवच्छेदक होगा। किन्तु प्रमेयवह्नित्व नहीं अतः प्रमेय वह्नित्वावच्छिन्ना प्रतियोगिता प्रसिद्ध नहीं होगी इसलिये प्रतियोगितानिष्ठ प्रमेय वह्नित्वावच्छिन्नत्व भी अप्रसिद्धही मानना होगा। तब प्रतियोगितावच्छेदक संबन्धसे यादृशप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नका अनधिकरण हेत्वधिकरण हो तादृश प्रतियोगिता सामान्यमें यत्संबन्धावच्छिन्नत्व यद्धर्मावच्छिन्नत्वोभयाभाव हो तेन संबन्धेन तद्धर्मावच्छिन्न सामानाधिकरण्यरूप उक्त व्याप्तिलक्षण करनेसे प्रतियोगितानिष्ठ प्रमेयवह्नित्वावच्छिन्नत्व अप्रसिद्ध होनेके कारण प्रमेय वह्निमान् धूमात् इस स्थलमें लक्षण घटक (साध्यतावच्छेदकात्मक) यद्धर्म पदसे प्रमेय वह्नित्वरूपसाध्यतावच्छेदक नहीं लिया जायगा अतः तद्धर्मावच्छिन्न सामानाधिकरण्य हेतुमें नहीं रहनेके कारण अव्याप्ति होजायगी। समाधान—उत्तर यह है कि नवीन आचार्य्योंके मतसे गुरुधर्मभी प्रतियोगितावच्छेदक होता है क्योंकि कम्बुग्रीवादिमत्त्वावच्छिन्नप्रकारक बुद्धिकेप्रति कम्बुग्रीवादिमत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताका भावप्रकारक निश्चय प्रतिबन्धक होता है। घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाऽभावप्रकारक निश्चय प्रतिबन्धक नहीं होता है तब यदि कम्बुग्रीवादिमान्नास्ति इत्याकारक निश्चय घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताका भावप्रकारक हो तो कम्बुग्रीवादिमान्नास्ति इत्याकारक निश्चयके उत्तरक्षणमें कम्बुग्रीवादिमान् अस्ति इत्याकारक बुद्धि होनी चाहिये जो नहीं होती है। अतः आपको मानना होगा कि कम्बुग्रीवादिमान्नास्ति इत्याकारक निश्चय कम्बुग्रीवादिमत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाऽभावप्रकारक है तब घटत्वापेक्षया गुरुधर्मरूप कम्बुग्रीवादिमत्त्वभी प्रतियोगितावच्छेदक हुआ अतः तुल्यन्यायात् प्रमेयवह्नित्वभी प्रतियोगिताका अवच्छेदक होगा तब प्रतियोगितानिष्ठप्रमेयवह्नित्वावच्छिन्नत्व अप्रसिद्ध नहीं होनेके कारण उक्त अव्याप्ति नहीं होगी।

पक्षवृत्तित्वमित्यत्र पक्षत्वं किं तदाह ।—

" व्याप्यस्य पक्ष वृत्तित्व धीः परामर्श उच्यते " यह ६८वीं कारिका जो परामर्शका बोधकहै तदन्तर्गत "पक्षवृत्तित्व" घटक पक्षत्व क्या पदार्थहै एतदर्थ ग्रन्थकार "शिषाधयिषया" इत्यादिसे सिद्धान्त दिखाते हैं।

---

* जिसको प्रतियोगितावच्छेदक माननेसे आपत्ति वा अनुपपत्ति नहीं हो वह अतिप्रसङ्गाद्यनापादक कहाता है। यथा — कम्बुग्रीवादिमान्नास्ति इत्याकारक अभाव प्रतियोगिताका अवच्छेदक यदि घटत्व मानाजाय तो कोई आपत्ति वा अनुपपत्ति नहीं होगी क्योंकि कम्बुग्रीवादिमान् घटही कहाताहै तब जहां२ कम्बुग्रीवादिमत्का अभाव होगा उन्हींस्थलोंमें घटकाभी अभाव रहताहै अतः कम्बुग्रीवादिमन्निष्ठ प्रतियोगिताका यदि घटत्व अवच्छेदकमाना जायतो कोई आपत्ति वा अनुपपत्ति नहीं होतीहै और कम्बुग्रीवादिमत्त्वापेक्षया "घटत्व" लघुधर्मभीहै अतःतादृश प्रतियोगिताका अवच्छेदक घटत्व ही माना जाता है नकि द्रव्यत्व माना जाता है क्योंकि यद्यपि घटत्वके समान द्रव्यत्वभी लघुधर्महै परन्तु कम्बुग्रीवादि मन्निष्ठ प्रतियोगिताका अवच्छेदक यदि द्रव्यत्व मानाजाय तो द्रव्यत्वावच्छिन्न प्रतियोगिता निरूपक अभाव कम्बुग्रीवादिमत्का भी अभाव हुआ और तादृश अभावको घटानधिकरण पटरूप द्रव्याधिकरण भूतलमें रहनेके कारण "द्रव्यंनास्ति" इत्याकारक प्रतीत्यापत्ति हो जायगी। अतः द्रव्यत्व घटत्वके समान लघुधर्म होनेपरभी अतिप्रसङ्गाद्यनापादक नहीं होनेके कारण कम्बुग्रीवादि मन्निष्ठप्रतियोगिताका अवच्छेदक नहींहोता है।

का० ७०।

सिपाधयिषया शून्या सिद्धिर्यत्र न विद्यते।
स पक्षस्तत्र वृत्तित्वज्ञानादनुमितिर्भवेत् ॥

का० अर्थ।

साध्यके निश्चय करनेकी इच्छाको "सिषाधयिषा" कहते हैं, तादृश सिषाधयिषाके अभाव सहित जो सिद्धि (पक्षमें साध्यका निश्चय) उसका अभाव पक्षता है यह जहां रहे वह पक्ष है। और उक्त पक्षके साथ जो व्याप्तिविशिष्ट हेतुपक्षधर्मतादि ज्ञानात्मक परामर्श उसको रहनेसे अनुमिति होती है।

(१) सिषाधयिषाविरहविशिष्टसिद्ध्यभावः पक्षता तद्वान्पक्ष इत्यर्थः। (२) सिषाधयिषामात्रं न पक्षता विनापि सिषाधयिषां घनगर्जितेन मेघानुमानात्। (३) अतएव साध्यसन्देहोऽपि न पक्षता विनापि सन्देहं तदनुमानात्।

(१) कारिकार्थमें पक्षताका स्वरूप स्पष्ट है यह पक्षता परामर्शका सहकारी है अर्थात् पक्षताको नहीं रहने पर केवल परामर्शसे अनुमिति नहीं होती है। (२) सिषाधयिषाको नहीं रहने परभी मेघके शब्दमात्रको सुननेसे "गगनम् मेघवत्" ऐसा अनुमान होता है इसलिये सिषाधयिषा मात्र पक्षता नहीं है। (३) प्राचीनोंका मत है कि "साध्यका सन्देह पक्षता है" किन्तु ऐसाभी नहीं क्योंकि मेघरूप साध्यके सन्देहके विनाभी गर्जनसे आकाशमें मेघानुमान होताहै।

(४) सिद्धौ सत्यामपि सिषाधयिषासत्त्वेऽनुमितिर्भवत्येव। (५) अतः सिषाधयिषाविरहविशिष्टत्वं सिद्धौ विशेषणम्।

(४, ५) जहांपर सिद्धि एवं सिषाधयिषा दोनों हैं वहां अनुमिति होती है अतः सिद्ध्यभावमात्र पक्षता नहीं कहसकते हैं क्योंकि सिद्ध्यभावात्मक पक्षताको नहीं रहनेके कारण अनुमिति नहीं होगी अतः सिद्धिमें सिषाधयिषाविरहविशिष्टत्व विशेषण आवश्यक है तब वहां सिषाधयिषा विशिष्टही होकर सिद्धि है अतः सिषाधयिषा विरहविशिष्ट होकरसिद्धि नहीं रहनेके कारण सिषाधयिषा विरहविशिष्ट सिद्ध्यभावरूप पक्षता रह जायगी, इसलिये अनुमितिकी अनुपपत्ति नहीं होगी।

(६) तथा च यत्र सिद्धिर्नास्ति तत्र सिषाधयिषायां सत्यामसत्यामपि पक्षता। (७) यत्र च सिषाधयिषाऽस्ति तत्र सिद्धौ सत्यामसत्यामपि पक्षता। (८) यत्र सिद्धिरस्ति सिषाधयिषा च नास्ति तत्र न पक्षता, सिषाधयिषाविरहविशिष्टसिद्धेः सत्त्वात्।

(६) जिस स्थलमें सिद्धि नहीं है उस स्थलमें सिषाधयिषा रहे वा नहीं रहे उभयथा पक्षता रह जायगी। क्योंकि प्रथमपक्षमें सिषाधयिषा विरहरूप विशेषणका अभाव रहगया एवं सिद्धिरूप विशेष्यका अभावभी रहगया और द्वितीयपक्षमें सिषाधयिषा विरहरूप विशेषण रहनेपर भी सिद्धिरूप विशेष्यका अभाव रहगया अतः उभयथा पक्षता रह जाती है यतः विशेषणाभाव एवं विशेष्याभाव इन दोनोंमें अन्यतरके रहनेपर विशिष्टाभाव रहता है। (७) जिस स्थलमें सिषाधयिषा है उस स्थलमें सिद्धि रहे वा न रहे उभयथा पक्षता रह जायगी। क्योंकि प्रथम पक्षमें सिषाधयिषा विरहात्मक विशेषणके अभावप्रयुक्त और द्वितीयपक्षमें उक्त विशेषणके अभाव और सिद्धरूप विशेष्यके अभाव उभय प्रयुक्त विशिष्टाभाव रहेगा। (८) जिस स्थलमें सिद्धिहै किन्तु सिषाधयिषा नहीं है उस स्थलमें सिषाधयिषा विरह विशिष्टसिद्धिरूपप्रतियोगी रहनेके कारण तदभावरूप पक्षता न रहेगी अतः अनुमिति न होगी।

(६) ननु यत्र परामर्शानन्तरं सिद्धिस्ततः सिषाधयिषा, तत्र सिषाधयिषाकाले परामर्शनाशान्नानुमितिः। (१०) यत्र सिद्धिपरामर्शसिषाधयिषाः क्रमेण भवन्ति तत्र सिषाधयिषाकाले सिद्धेर्नाशात्प्रतिबन्धकाभावादेवानुमितिः। (११) यत्र सिषाधयिषासिद्धिपरामर्शाः सन्ति तत्र परामर्शकाले सिषाधयिषैव नास्ति। (१२) एवमन्यत्रापि। (१३) सिद्धिकाले परामर्शकाले च न सिषाधयिषा, योग्यविभुविशेषगुणानां यौगपद्यनिषेधात्, तत्कथं सिषाधयिषाविरहविशिष्टत्वं सिद्धेर्विशेषणमिति चेन्न।

(६) शङ्का—जिस स्थलमें परामर्शके अग्रिमक्षणमें सिद्धि तब सिषाधयिषा हुई है उसस्थलमें सिषाधयिषाकालमें परामर्श नष्ट होनेके कारण अनुमिति नहीं होती है सो सिद्ध्यभाव मात्र रूप पक्षता मानने परभी सिषाधयिषाकालमें सिद्ध्य भावरूप पक्षता और परामर्श नहीं रहनेके कारण अनुमिति नहीं होगी इसलिये दोष नहीं लगेगा। (१०)एवं जिस स्थलमें सिद्धिके अग्रिमक्षणमें परामर्श तव सिषाधयिषा हुई है उस स्थलमें सिषाधयिषाक्षणमें सिषाधयिषा विरहविशिष्ट सिद्ध्यभावरूप पक्षता रहनेके कारण अनुमिति होती है सो सिद्ध्यभावमात्र रूप पक्षता मानने पर भी सिषाधयिषाक्षणमें सिद्ध्यभाव रूप पक्षता रहनेके कारण अनुमिति होती रहेगी अतः दोष नहीं होगा। (११) एवं जिस स्थलमें सिषाधयिषाके अग्रिमक्षणमें सिद्धि तव परामर्श उत्पन्न हुआ है उस स्थलमें परामर्शक्षणमें सिषाधयिषाका नाश होजाता है अतः सिषाधयिषा विरहविशिष्ट सिद्ध्यभाव रूप पक्षता परामर्शक्षणमें नहीं रहती है वह केवल सिद्ध्यभावरूप पक्षता मानने पर भी परामर्शक्षणमें उक्त सिद्ध्यभाव रूप पक्षता नहीं रहनेके कारण अनुमिति नहीं होगी अतः दोष नहीं होगा। (१२) एवं जिस स्थलमें परामर्श सिषाधयिषा सिद्धिकी क्रमशः उत्पत्ति हुई है उस स्थलमें सिद्धिक्षणमें परामर्श नष्ट होनेके कारण अनुमिति नहीं होती है।

यह सिद्ध्यभावरूप पक्षता मानने परभी सिद्धिक्षणमें सिद्ध्यभावरूप पक्षता और परामर्श नहीं रहनेके कारण अनुमिति नहीं होगी अतः दोष नहीं होगा। एवं जिस स्थलमें सिद्धि सिषाधयिषा परामर्श क्रमिक उत्पन्न होते हैं उस स्थलमें परामर्श क्षणमें सिषाधयिषा विरहविशिष्ट सिद्ध्यभावरूप पक्षता रहनेके कारण अनुमिति होती है यह सिद्ध्यभावरूप पक्षता मानने परभी परामर्शक्षणमें सिद्ध्यभाव रहनेके कारण अनुमिति होनेमें कोई बाधा न होगी अतः दोष नहीं होगा । एवं जिस स्थलमें सिषाधयिषा परामर्श सिद्धिकी क्रमसे उत्पत्ति होती है उस स्थलमें सिद्धिक्षणमें सिषाधयिषा नष्ट हो जाती है अतः सिषाधयिषा विरहविशिष्ट सिद्ध्यभावरूप पक्षता सिद्धिक्षणमें नहीं रहनेके कारण अनुमिति नहीं होती है यह केवल सिद्ध्यभावरूप पक्षता मानने परभी सिद्धिक्षणमें उक्त पक्षता नहीं रहेगी अतः अनुमित्यापत्ति न होगी तब दोष नहीं होगा। (१३) सिद्धि या परामर्शक्षणमें यदि सिषाधयिषा उत्पन्न होती तो आप सिद्ध्यभावरूप पक्षता नहीं कहसकते। क्योंकि प्रथमक्षणमें सिद्धि और सिषाधयिषा द्वितीयक्षणमें परामर्श जहां है वहां तृतीय क्षणमें अनुमिति होती है यह द्वितीयक्षणमें सिद्ध्यभावरूप पक्षता नहीं रहनेके कारण नहीं होगी एवं प्रथमक्षणमें परामर्श और सिषाधयिषा द्वितीयक्षणमें सिद्धि जहां है वहां तृतीयक्षणमें अनुमिति होती है यह द्वितीयक्षणमें सिद्ध्यभावरूप पक्षता नहीं रहनेके कारण नहीं होगी। इसलिये सिद्धि या परामर्शक्षणमें सिषाधयिषा उत्पन्न नहीं होती है यह मुक्तावलीमें कहा जाता है कि (योग्यविभुविशेषगुणानां यौगपद्यनिषेधात्) अर्थात् प्रत्यक्षयोग्य जो आकाशादिरूप विभुके विशेषगुण उन अनेक गुणोंकी एक क्षणमें उत्पत्ति नहीं होती है अतः सिद्धि या परामर्शक्षणमें सिषाधयिषोत्पत्तिकी सम्भावना नहीं है तब सिद्धिमें सिषाधयिषा विरहविशिष्टत्व विशेषण व्यर्थ है । क्योंकि केवल सिद्ध्यभावरूप पक्षता माननेसे कोई दोष नहीं लगता है।

(१४) यत्र वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमानिति प्रत्यक्षं स्मरणंवा, ततः सिषाधयिषा तत्र पक्षतासंपत्तये तद्विशेषणस्यावश्यकत्वात् ।

(१४) जिस स्थलमें किसी व्यक्तिको प्रथमक्षणमें "वह्निव्याप्य धूमवान् पर्वतो वह्निमान्" इत्याकारक सिद्ध्यात्मक और परामर्शात्मक प्रत्यक्ष या स्मरणरूप ज्ञान हुआ है, और द्वितीयक्षणमें "पर्वते वह्न्यनुमितिर्मेस्यात्" इत्याकारक सिषाधयिषा उत्पन्न हुई है उस स्थलमें द्वितीयक्षणमें सिद्धि, परामर्श सिषाधयिषा इन तीनोंको विद्यमान रहनेके कारण अनुमिति होती है जो नहीं होगी क्योंकि केवल सिद्ध्यभावरूप पक्षतात्मक कारण नहीं है, इसलिये सिषाधयिषा विरहविशिष्टत्वरूप सिद्धिका विशेषण देना अभ्यर्हित होगया। जिससे सिषाधयिषा विरहविशिष्ट उक्त सिद्धि नहीं हुई किन्तु कालान्तरीय सिद्धि हुई अतः तदभावरूप पक्षता रहगई।

(१५) अत्रेदं बोध्यम् । (१६) यादृशयादृशसिषाधयिषा सत्त्वे सिद्धिसत्त्वे यल्लिंगकानुमितिः तादृश तादृश सिषाधयिषा विरहविशिष्ट सिद्ध्यभाव स्तल्लिङ्गकानुमितौ पक्षता (१७) तेन सिद्धिपरामर्शसत्त्वेपि यत्किञ्चिज्ज्ञानं मे जायतामितीच्छायामपि नानुमितिः ।

(१५, १६) यहां यह समझना चाहिये कि यादृश यादृश सिपाधयिषा रहते हुए सिद्धि कालमें यत्पक्षक यत्साध्यक यद्धेतुक अनुमिति होती हो तादृश तादृश सिपाधयिषा विरह विशिष्ट सिद्ध्यभाव तत्पक्षक तत्साध्यक तद्धेतुक अनुमितिमें पक्षता है अतः सिद्ध्यात्मक परामर्श रहते हुए यत् किंचित् ज्ञानं जायताम् अर्थात् द्रव्यत्वप्रकारक द्रव्यविशेष्यक ज्ञानं जायताम् इत्याकारक सिपाधयिषा रहनेपर अनुमिति नहीं होती है वह नहीं होगी । क्योंकि द्रव्यत्वप्रकारक द्रव्यविशेष्यक "ज्ञानं जायताम्" इत्याकारक सिपाधयिषा रहते हुए सिद्धि कालमें अनुमिति नहीं होती है, तब यादृश सिपाधयिषा रहते हुए सिद्धिकालमें अनुमिति होती है तादृश सिपाधयिषा विरहविशिष्ट सिद्धिही है अर्थात् तादृश सिपाधयिषा विरहविशिष्ट सिद्ध्यभाव रूप पक्षता नहीं है । (१७) यदि एतादृश विवक्षा नहीं करके केवल सिपाधयिषा विरहविशिष्ट सिद्ध्यभाव रूप पक्षता कहते तो सिद्ध्यात्मक परामर्श कालमें द्रव्यत्व प्रकारक द्रव्य विशेष्यक " ज्ञानं जायताम् " इत्याकारक सिपाधयिषा स्थलमें ज्ञानात्मक सिद्धि विषयक इच्छा रूप सिपाधयिषा रहनेके कारण सिपाधयिषा विरहविशिष्ट सिद्ध्यभावरूप पक्षता रहनेसे अनुमित्यापत्ति होजाती ।

(१८) वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमानिति प्रत्यक्षसत्त्वे प्रत्यक्षातिरिक्तं वह्निज्ञानं जायतामितीच्छायां तु भवत्येव । (१९) एवं धूमपरामर्शसत्त्वे आलोकेन वह्निमनुमिनुयामितीच्छायामपि नानुमितिः ।

(१८) यदि आप एसा कहें कि प्रकृतानुमितित्व प्रकारक इच्छाही सिपाधयिषा पदका अर्थ है । तब तो सिपाधयिषा पद से द्रव्यत्व प्रकारक द्रव्य विशेष्यक ज्ञानेच्छा नहीं ली जायगी अतः उक्त स्थल में अनुमित्यापत्ति रूप दोप नहीं होगा अतः मुक्तावलीमें वह्नि व्याप्य धूमवान् इत्यादि ग्रन्थसे दोप देता है अर्थात् प्रकृतानुमितित्वप्रकारक इच्छा ही यदि सिपाधयिषा पद का अर्थ हो तो जहां पर वह्नि व्याप्य धूमवान् पर्वतो वह्निमान् इत्याकारक सिद्ध्यात्मक प्रत्यक्षात्मक परामर्श है और प्रत्यक्षाद्यतिरिक्तं वह्नि ज्ञानं जायताम् इत्याकारक इच्छाहै वहां अनुमिति होती है वह नहीं होगी क्योंकि अनुमितित्वप्रकारक इच्छा रूप सिषाधयिषा नहीं है । अतः तादृश सिपाधयिषा विरह विशिष्ट सिद्ध्यभावरूप पक्षता नहीं रहेगी । और उक्त सिद्धि और उक्त इच्छा रहनेसे अनुमिति होती है अतः उक्त इच्छा यादृश सिषाधयिषा पदसे ली जायगी तादृश सिषाधयिषा विरह विशिष्ट सिद्धि नहीं रहनेके कारण हमारे मतमें वहां अनुमित्यनुपपत्तिरूप दोष नहीं होगा । (१९) एवं यादृश यादृश

सिषाधयिषा रहते हुए सिद्धिकालमें तत्पक्षक तत्साध्यक तद्धेतुक अनुमिति होती हो वहां पर अनुमितिमें तद्धेतुकत्व प्रवेशका फल ग्रन्थमें पर्वमित्यादि शब्दसे बतलाते हैं अर्थात् तद्धेतुकत्वका प्रवेश नहीं करें तो धूम हेतुकसिद्धयात्मक परामर्श कालमें आलोक लिंगकवह्न्यनुमितिकी इच्छा रहनेसे अनुमिति नहीं होती है यह होजायगी क्योंकि आलोक लिंगक वह्न्यनुमितिकी इच्छा रहनेपर आलोक लिंगक सिद्धयात्मक परामर्श कालमें पर्वत पक्षक वह्निसाध्यक अनुमिति होती है। अतः पर्वत पक्षक वह्निसाध्यक अनुमितिमें आलोक लिंगक वह्न्यनुमितीच्छाको उत्तेजकत्व मानना आवश्यकहै तब यादृश इच्छामें आलोक लिंगक वह्न्यनुमितीच्छा ली जायगी अतः उक्त स्थलमें आपत्ति होगी।

(२०) सिषाधयिषा विरहकाले यादृशसिद्धिसत्वे नानुमितिस्तादृशी सिद्धिर्विशिष्यैव तत्तदनुमिति प्रतिबन्धिका वक्तव्या। (२१) तेन पर्वतस्तेजस्वी पाषाणमयो वह्निमानिति ज्ञानसत्वेऽप्यनुमितेर्न विरोधः।

(२०) एवं सिषाधयिषाके अभावकालमें यादृश यादृश सिद्धिको रहते हुए यत्पक्षक यत्साध्यक यद्धेतुक अनुमिति का अनुत्पादहो तत्पक्षक तत्साध्यक तद्धेतुक अनुमितिके प्रति तादृश तादृश सिद्धिही प्रतिबन्धकहै। (२१) अतः सिषाधयिषाके अभावकालमें पर्वतस्तेजस्वी पाषाणमयो वह्निमान् इत्यादि सिद्धिको रहतेहुए भी पर्वतो वह्निमान् इत्याकारक अनुमितिका अनुत्पाद नहीं होता अतः पर्वत स्तेजस्वी पाषाणमयो वह्निमान् इत्यादि सिद्धि पर्वतो वह्निमान् इस अनुमितिकेप्रति प्रतिबन्धक नहीं होताहै।

(२२) परंतु पक्षतावच्छेदक सामानाधिकरण्येन साध्यसिद्धावपि तदवच्छेदेन अनुमितिदर्शनात् पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन अनुमितिं प्रति पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन साध्यसिद्धिरेव प्रतिबन्धिका, पक्षतावच्छेदक सामानाधिकरण्येन अनुमितिं प्रति तु सिद्धिमात्रं विरोधि।

(२२) उक्त प्रतिबध्य प्रतिबन्धकभाव में यह भी समझना चाहिये कि पक्षतावच्छेदक सामानाधिकरण्येन अर्थात् किञ्चित् पक्षमें साध्यनिश्चय रहते हुए भी पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन अर्थात् सकल पक्षमें साध्यानुमिति होती है अतः पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन अनुमितिके प्रति पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन सिद्धिही प्रतिबन्धक है। और पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन अथवा पक्षतावच्छेदक सामानाधिकरण्येन किसी भी सिद्धिको रहने पर पक्षतावच्छेदक सामानाधिकरण्येन अनुमिति नहीं होती है अतः पक्षतावच्छेदक सामानाधिकरण्येन अनुमितिके प्रति सिद्धिमात्र अर्थात् पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन और पक्षतावच्छेदक सामानाधिकरण्येन दोनों प्रतिबन्धक है।

(२३) इदंतु बोध्यं। (२४) यत्रायं पुरुषो न वेति संशयानन्तरं पुरुषत्वव्याप्यकरादिमान् अयमितिज्ञानं तत्र असत्यामनुमित्सायां पुरुषत्वस्य प्रत्यक्षं भवति नत्वनुमिति रतोऽनुमित्सा विरहविशिष्ट समानविषयक प्रत्यक्षसामग्री कामिनीजिज्ञासादिवत् स्वातन्त्र्येण प्रतिबन्धिका।

(२३, २४) इस जगहमें यह भी समझना चाहिये कि दूरस्थ पुरुषमें दूरत्व दोषप्रयुक्त अयं पुरुषोनवा इत्याकारक संशयानन्तर पुरुषत्वव्याप्यकरादिमानयम् इत्याकारक विशेषदर्शन रहने पर पक्षतापरामर्शादिरूप पुरुषत्वकी अनुमिति सामग्री है और संशयानन्तर निश्चयात्मक प्रत्यक्षके प्रति विशेषदर्शन कारण होता है अतः पुरुषत्वके प्रत्यक्ष सामग्री भी है तब उक्त स्थलमें पुरुषत्वके प्रत्यक्षके समान पुरुषत्वकी अनुमिति क्यों नहीं होती अतः समान विषयक अनुमितिके प्रति यदि समान विषयक प्रत्यक्ष सामग्रीको प्रतिबन्धकत्व माना जाय तो जिस स्थलमें पुरुषत्व संशयानन्तर पुरुषत्वव्याप्यकरादिमानयम् इत्याकारक विशेष दर्शन और अनुमित्सा है वहां इच्छाघटित सामग्रीको बलवत्तर होनेके कारण अनुमिति होती है सो नहीं होगी इस हेतु समानविषयक अनुमितिके प्रति अनुमित्साविरहविशिष्ट समान विषयक प्रत्यक्ष सामग्री को प्रतिबन्धकत्व माना जाता है अतः पूर्वोक्त स्थलमें अनुमिति नहीं होगी।

(२५) एवं परामर्शानन्तरं विना प्रत्यक्षेच्छां पक्षादेः प्रत्यक्षानुत्पत्तेः प्रत्यक्षेच्छा विरहविशिष्टा नुमितिसामग्री विभिन्नविषयकप्रत्यक्षे प्रतिबन्धिकेति संक्षेपः।

(२५) एवं वह्निव्याप्य धूमवान् पर्वतः इत्यादि परामर्शके बाद यदि पर्वतादिरूप पक्ष प्रत्यक्षकी इच्छा रहती है तो सन्निकर्षादिरूप पक्ष प्रत्यक्ष सामग्री रहनेके कारण पर्वतादि पक्षका प्रत्यक्षही होता है, उक्तइच्छा नहीं रहती तो पक्षता परामर्शादिरूप अनुमिति सामग्री रहनेके हेतु वह्निकी अनुमितिही होती है। इसहेतु विभिन्न विषयक प्रत्यक्षके प्रति प्रत्यक्षेच्छा विरहविशिष्ट विभिन्नविषयक अनुमिति सामग्री को प्रतिबन्धकत्व माना जाता है अतः उक्त स्थलमें पर्वतादिरूप पक्ष प्रत्यक्ष नहीं होगा। इतिपक्षता निरूपणम्।

प्रसंग संगत्या हेत्वाभासान्विभजते अनैकान्त इत्यादि।

अनुमानखराडमें व्याप्ति और पक्ष धर्मताविशिष्टहेतु में सद्धेतु शब्द का प्रयोग हुआ है इससे जिज्ञासा होती है कि असद्धेतु क्या है! उसी जिज्ञासाके शान्त्यर्थ ग्रन्थकार हेत्वाभासका निरूपण करते हैं "अनन्तराभिधानप्रयोजक जिज्ञासाजनक ज्ञानविषयत्वं संगतिः" अनन्तर याने व्याप्तिपक्ष धर्मता निरूपणोत्तर जो अभिधान अर्थात् कथन (हेत्वाभासका कथन) तत् प्रयोजक जो "दुष्ट हेतवः" के इत्याकारिका जिज्ञासा तज्जनक जो दुष्ट हेतुज्ञान तद्विषयत्वरूप संगति हेत्वाभासमें रहगई। अतः संगति रहनेसे पूर्वोत्तर ग्रन्थमें एक वाक्यताका लाभ हुआ। उक्त संगति (१) प्रसंग (२) उपोद्घात (३) अवसर (४) हेतुता (५) निर्वाहकैक्य (एक प्रयोजक प्रयोज्यत्व) (६) कार्यैक्य (एक कार्यकारिता) के भेदसे ६ प्रकार के हैं। यथाकहाहै "सप्रसंग उपोद्घातोऽवसरो हेतुता तथा निर्वाहकैक्य कार्यैक्ये षोढा संगति रुच्यते" जिसमें केवल प्रसंग और एक कार्यकारितारूप दो संगतियां यहां लागू हैं।

का० ७१,७२।

अनैकान्तो विरुद्धश्चाप्यसिद्धः प्रतिपक्षितः।
कालात्ययापदिष्टश्च हेत्वाभासास्तु पञ्चधा॥
आद्यः साधारणस्तु स्यादसाधारणकोऽपरः।
तथैवानुपसंहारी त्रिधानैकान्तिको भवेत्॥

का० अर्थ।

(यद्विषयक निश्चय, अनुमिति या परामर्शअन्यतरका प्रतिबन्धक हो, वही हेत्वाभास कहाता है)। *हेत्वाभास ५ प्रकार के हैं यथा (१) अनैकान्तिक (सव्यभिचार) (२) विरुद्ध (३) असिद्ध (४) प्रतिपक्षित (सत्प्रतिपक्ष) (५) और कालात्ययापदिष्ट (बाधित)। अनैकान्तिक (सव्यभिचार) के तीन प्रभेद हैं यथा (१) साधारण (२) असाधारण (३) अनुपसंहारी।

(१) तल्लक्षणंतु यद्विषयकत्वेन ज्ञानस्यानुमितिविरोधित्वं तत्त्वम्।

(१) " यद्विषयकत्वेन, ज्ञानस्यानुमिति विरोधित्वं तत्त्वम् " हेत्वाभास सामान्यका लक्षण है। " यद्विषयकत्वेन " यहां यत् पदसे हेत्वाभासका ग्रहण करना चाहिये तृतीयाका अर्थ " अवच्छिन्नत्व" है उसका अन्वय प्रतिबन्धकत्वरूप " विरोधित्वके साथ है अतः (यद्विषयकत्वावच्छिन्नम् अनुमिति प्रतिबन्धकत्वम्) ऐसा अर्थ लब्ध हुआ। "ज्ञानस्य" यहां ज्ञानपद अनाहार्य्य और अप्रामाण्य ज्ञानानास्कन्दित निश्चयार्थक है। क्योंकि आहार्य्य अप्रामाण्य ज्ञानास्कन्दित और संशय अनुमितिका प्रतिबन्धक नहीं होता है। षष्ठीका अर्थ वृत्तित्व है। उसका अन्वय स्वरूप सम्बन्धसे यद्विषयकत्वमें है। तब पर्य्यवसित ऐसा अर्थ हुआ यथा—" अनाहार्य्य अप्रामाण्य ज्ञानानास्कन्दित निश्चय वृत्ती यद्विषयकत्व धर्म्मावच्छिन्न अनुमिति प्रतिबन्धकत्व हो " वही हेत्वाभासरूप दोष है।

(२) तथाहि। (३) व्यभिचारादिविषयकत्वेन ज्ञानस्यानुमितिविरोधि-त्वेदोषाः। (४) यद्विषयकत्वं च यादृश विशिष्ट विषयकत्वं बोध्यम्। (५) तेन बाधभ्रमस्यानुमितिविरोधित्वेऽपि न क्षतिः। (६) तत्र पर्वतो वह्न्यभाववानिति विशिष्टस्याप्रसिद्धत्वान्न हेतुदोषः।

*उदाहरण—" वायुर्गन्धवान् स्नेहात् " इस स्थलमें पांचों हेत्वाभासोंका समन्वयहै। (१) (व्यभिचार) यथा–गन्धाभाववद् वृत्ती स्नेह रूपहेतुको होनेके कारण व्यभिचार दोष है। (२) (विरोध) गन्धा सामानाधिकरण्य हेतुमें रहनेके कारण विरोध दोष है। (३) (स्वरूपासिद्धि) स्नेहरूप हेत्वभाववत् वाय्वात्मक पक्ष होने के कारण स्वरूपासिद्धि दोष है। (४) (सत्प्रतिपक्ष) साध्याभाव व्याप्यवत् पक्षहोने के कारण सत्प्रतिपक्ष दोष है। (५) (बाध) गन्धरूप साध्याभाववत् पक्ष होनेके कारण बाधदोष है।

(२, ३) व्यभिचारादि विषयकत्वेन व्यभिचारादि ज्ञानको अनुमिति प्रतिबन्धकत्व होनेके कारण व्यभिचार आदि हेत्वाभास दोष होता है। (४) उक्त लक्षण घटक "यद्विषयकत्व" से यादृशविशिष्ट विषयकत्व याने यद्रूपावच्छिन्न विषयकत्व समझना चाहिये। (५) ऐसा निवेश करनेसे—"पर्वतो वह्निमान् धूमात्" इत्यादि निर्दुष्ट हेतुक स्थलमें अतिव्याप्ति नहीं होगी। (६) भ्रमात्मक और प्रमात्मक दोनोंही ज्ञान प्रतिबन्धक होते हैं (ऐसी वस्तुस्थितिहै,) और भ्रमात्मकज्ञानमें "विशिष्ट" (विशेषणविशिष्ट विशेष्य) विषय नहीं होता हैं। इसलिये भ्रमज्ञानको प्रतिबन्धकत्वानुरोधसे विशिष्ट विषयक निश्चयत्वेन प्रतिबन्धकता नहीं होती हैं। किन्तु निरूप्यनिरूपक भावापन्न विषयता शालि निश्चयत्वेन प्रतिबन्धकता होती है। यथा—"पर्वतो वह्निमान्" इस ज्ञानके प्रति (क) वह्नित्वावच्छिन्न विषयता निरूपित अभावत्वावच्छिन्न विषयता निरूपित पर्वतत्वावच्छिन्न विषयता शालि निश्चयत्वेन एवम् (ख) (विनिगमना विरहात्) पर्वतत्वावच्छिन्न विषयता निरूपित अभावत्वावच्छिन्न विषयता निरूपित वह्नित्वावच्छिन्न विषयता शालि निश्चयत्वेन। (ग) एवम् वह्नित्वावच्छिन्नविषयतानिरूपित जो पर्वतत्वावच्छिन्नविषयतानिरूपित अभावत्वावच्छिन्नविषयता तादृश विषयता शालि निश्चयत्वेन प्रतिबन्धकता माननी होगी। अतः वह्नित्वावच्छिन्न विषयता पर्वतत्वावच्छिन्न विषयता और अभावत्वावच्छिन्न विषयता ये तीनों विषयतायें प्रतिबन्धकतावच्छेदक होती है। यहां यदि प्रतिबन्धकतावच्छेदकत्व स्वरूप सम्बन्ध रूप माना जाय तो पर्वतत्वावच्छिन्न विषयताको भी वह्नित्वावच्छिन्न विषयतानिरूपित अभावत्वावच्छिन्न विषयतानिरूपित। पर्वतत्वावच्छिन्न विषयतात्वेन रूपेण प्रतिबन्धकतावच्छेदकत्व होनेके कारण पर्वतादिरूप एक देशमें अतिव्याप्ति हो जायगी। अतः प्रतिबन्धकतावच्छेदकत्व यहां अनतिरिक्त वृत्तित्वरूप मानना होगा। तब लक्षण ऐसा हुआ कि "यन्निष्ठ विषयता अनुमिति प्रतिबन्धकताकाअनतिरिक्त वृत्ती हो" अर्थात् अनुमिति प्रतिबन्धकत्वाभाव वदवृत्ती हो। ऐसा कहने परभी वह्न्यभाव विशिष्ट ह्रद को "शुद्ध ह्रद" से अभिन्न होनेके कारण वह्न्यभाव विशिष्ट ह्रद विषयता अनुमिति प्रतिबन्धकत्वाभाववर्त्ति "ह्रदः" इत्याकारक ज्ञानमें रह जायगी। जिससे असम्भव हो जायगा। इसलिये यद्विषयकत्व शब्दका यादृश विशिष्टविषयकत्व अर्थात् यद्रूपावच्छिन्न विषयकत्व अर्थ है। "यद्रूप" पदसे लक्ष्यतावच्छेदक लिया जाता हैं। तब वह्न्यभाव वद्ध्रदत्व रूप लक्ष्यतावच्छेदकधर्मावच्छिन्न विषयता "ह्रदः" इत्याकारक अनुमित्यप्रतिबन्धक ज्ञानमें नहीं रहनेके कारण असम्भव नहीं होगा। "वह्न्यभाववान् पर्वतः" इत्याकारक ज्ञान विषय वह्न्यभावविशिष्ट पर्वत तो प्रसिद्ध ही नहीं है। अतः उसमें अतिव्याप्ति नहीं होगी। केवल पर्वत्वावच्छिन्न विषयता अनुमित्यप्रतिबन्धक "पर्वतः" इत्याकारक ज्ञानमें भी रहनेके कारण प्रतिबन्धकतानतिरिक्त वृत्ती नहीं होगी अतः पर्वतादिरूप एकदेशमें भी अतिव्याप्ति नहीं होगी।

(७) न च वह्न्यभावव्याप्यपाषाणमयत्ववान् पर्वत इति परामर्शकाले वह्निव्याप्यधूमस्याभासत्वं न स्यात् तत्र वह्न्यभावव्याप्यवान्पक्ष इति विशिष्टस्या प्रसिद्धत्वादिति वाच्यम्, इष्टापत्तेः।

(७) यदि विशिष्टहीको दोष मानें तो "वह्न्यभाव व्याप्य पाषाणमयत्ववान् पर्वतः" इत्याकारक परामर्श कालमें "वह्निव्याप्य धूमवान् पर्वतः इत्याकारक परामर्श विषय धूमको दुष्टत्व नहीं होगा क्योंकि "वह्न्यभावव्याप्य पाषाणमयत्ववत् पर्वत" अप्रसिद्ध है और भ्रम विषय पक्ष देशमें तो आप दोषत्व मानते ही नहीं हैं। अतः कोई दोष नहीं रहने के कारण धूमभी दुष्ट नहीं होगा। इसका उत्तर यह है कि धूममें दुष्टत्व नहीं मानना ही मुझे इष्ट है। किन्तु "वह्न्यभाव व्याप्य पाषाणमयत्ववान् पर्वतः" इत्याकारक भ्रमात्मक निश्चयसे अनुमितिका प्रतिबन्धमात्र होता है।

(८) अन्यथा बाधस्याप्यनित्यदोषत्वापत्तेः (९) तस्मात्तत्र वह्न्यभावव्याप्यपाषाणमयत्ववानिति परामर्शकाले वह्निव्याप्य धूमस्य नाभासत्वम्। (१०) भ्रमादनुमितिप्रतिबन्धमात्रं हेतुस्तु न दुष्टः।

(८) यदि भ्रमविषय "पर्वतादि" रूप पक्षदेशभी दोष मानाजाय तो "वह्न्यभाववान् पर्वतः" इत्याकारक ज्ञान विषय पर्वतादिमें भी आप बाधत्व मानेंगे तब बाध भी अनित्यदोष हो जायगा जो नित्य दोष है। (९,१०) तब पर्य्यवसित यह हुआ कि वह्न्यभाव व्याप्य पाषाणमयत्ववान् पर्वतः" इत्याकारक परामर्शकालमें "वह्निव्याप्य धूमवान् पर्वतः" इत्याकारक परामर्श विषय धूम दुष्ट नहीं है किन्तु भ्रमात्मक उक्त विपरीत परामर्शसे अनुमितिका प्रतिबन्धमात्र होता है (धूमरूप हेतु दुष्ट नहीं है)।

(११) इत्थं च साध्याभाववद्वृत्तिहेत्वादिकं दोषः। (१२) तद्वत्त्वं च हेतौ येन केनापि संबन्धेनेति नव्याः।

अनतिरिक्त वृत्तित्वरूप प्रतिबन्धकतावच्छेदकत्व की विवक्षा करनेपर अनुमिति परामर्शान्यतर प्रतिबन्धकत्वा भाववत् साध्याभाववद्वृत्तित्वज्ञान मे साध्याभाववद्वृत्तित्व विषयता को रहनेके कारण केवल साध्याभाववद्वृत्तित्व दोष नहीहै किन्तु साध्याभाववद्वृत्तिहेत्वादि पदार्थ ही दोषहै। (१२) "स्वज्ञान विषय प्रकृत हेतुतावच्छेदकवत्त्व सम्बन्धेन दोषवत्त्वही दुष्टका लक्षण है। ऐसा नवीनोंका मत है।

(१३) परे तु यद्विषयकत्वेन ज्ञानस्यानुमिति विरोधित्वं तद्वत्त्वं हेत्वाभासत्वम्। (१४) सत्प्रतिपक्षे विरोधिव्याप्त्यादिकमेव तथा। तद्वत्त्वं च हेतोर्ज्ञानरूपसंबन्धेन।

(१३) किसीके मतसे "हेतुवत् आभासन्ते हेत्वाभासाः" इस व्युत्पत्तिसे हेत्वाभास शब्दका दुष्टहेतु अर्थ है। तदनुसार "यद्विषयकत्वा वच्छिन्न अनुमिति प्रतिबन्धकता हो तद्वत्त्वही हेत्वाभासका लक्षण है। (१४) सत्प्रतिपक्ष स्थलमें विरोधिव्याप्ति विषयकत्वा वच्छिन्ना अनुमिति प्रतिबन्धकता होनेके कारण "यत्" पदसे विरोधिव्याप्तिका ग्रहण होगा। तब "स्वज्ञान विषय प्रकृत हेतुतावच्छेदकवत्त्व सम्बन्धेन तद्वत्त्व हेतुमें रह जायगा। अतः हेतुमें दुष्टत्वकी उपपत्ति होजायगी।

(१५) न चैवं वह्निमान् धूमादित्यादौ पक्षे बाधभ्रमस्य साध्याभाव विषयकत्वेनानुमिति विरोधित्वाज्ज्ञानरूप संबन्धेन तद्वत्त्वस्यापि सत्त्वात्सद्धे-तोरपि बाधितत्वापत्तिरिति वाच्यं तत्र ज्ञानस्य संबन्धत्वाकल्पनात्। (१६) अत्र सत्प्रतिपक्षित इति व्यवहारेण तत्कल्पनात्। तत्र बाधित इति व्यवहाराभावादित्याहुः।

(१५) यहां शङ्का करते हैं कि—"पर्वतो वह्निमान् धूमात्" इस स्थलमें "वह्न्यभाववान् पर्वतः" इत्याकारक बाध भ्रमनिष्ठ साध्याभाव विषयकत्वा वच्छिन्ना अनुमिति प्रतिबन्धकता है अतः "स्वज्ञान विषय प्रकृत हेतुतावच्छेदकवत्त्व सम्बन्धेन" तादृश साध्याभावको धूम हेतुमें रहने के कारण धूमबाधित क्यों नहीं होगा ? समा०—उस स्थलमें "धूमोबाधितः" ऐसी प्रतीति नहीं होती है इसलिये वह्न्यभाव प्रतियोगिक धूमानुयोगिक स्वज्ञान विषय प्रकृत हेतुतावच्छेदकवत्त्वरूप सम्बन्धकी कल्पना नहीं करते हैं अतः सम्बन्धाभाव प्रयुक्त धूममें बाधितत्वापत्ति नहीं होगी। (१६) और सत्प्रतिपक्ष स्थलमें "धूमः सत्प्रतिपक्षितः" इत्याकारक व्यवहार होता है इसलिये स्वज्ञान विषय प्रकृत हेतुता-वच्छेदकवत्त्व सम्बन्धकी कल्पना करते हैं अतः धूममें दुष्टत्व उपपन्न होगा।

(१७) अनुमिति विरोधित्वं च अनुमिति तत्कारणान्यतरविरोधित्वम्।

(१७) लक्षण घटक "अनुमिति विरोधित्व" पदसे "अनुमिति तत्कारणान्यतर विरोधित्व" समझना चाहिये। यदि ऐसा अर्थ नहीं करें तो व्यभिचारमें अव्याप्ति हो जायगी।

(१८) तेनैकहेतौ व्यभिचारग्रहे हेत्वन्तरेणानुमित्युत्पत्तेस्तद भावा द्यनवगाहित्वाच्च व्यभिचारज्ञानस्यानुमिति विरोधित्वा भावेऽपि न क्षतिरिति संक्षेपः।

(१८) यथा—"वह्निर्धूम व्यभिचारी" इत्याकारक व्यभिचार ज्ञान रहने परभी "धूमव्याप्य वह्निमान् पर्वतः" इत्याकारक परामर्शसे "पर्वतो धूमवान्" ऐसी अनुमिति होती है। अतः व्यभिचारज्ञान अनुमिति प्रतिबन्धक नहीं है। एवं पर्वतमें धूमवत्त्वावगाही अनुमितिकेप्रति पर्वतांशे धूमाभावानवगाहि व्यभिचारज्ञानको अनुमिति प्रतिबन्धकता होना असम्भव है। अतः व्यभिचार विषयकत्वा वच्छिन्ना अनुमिति प्रतिबन्धकता नहीं होने के कारण व्यभिचारमें अव्याप्ति होजायगी। उक्त अर्थ करनेपर व्यभिचार विषयकत्वावच्छिन्ना अनुमिति प्रतिबन्धकता न होनेपर भी व्यभिचार विषयकत्वा वच्छिन्ना अनुमिति कारण परामर्श प्रतिबन्धकता है अतः व्यभिचारमें अव्याप्ति नहीं होगी।

(१९) यादृश साध्यपक्षहेतौ यावन्तो दोषास्तावदन्यान्यत्वं तत्र हेत्वाभासत्वम् । (२०) पञ्चत्वकथनन्तु तत्संभव स्थलाभिप्रायेण । (२१) एवं च साधारणाद्यन्यतमत्व मनैकान्तिकत्वम् ।

(१९) " निर्वह्निः पर्वतो वह्निमान् धूमात् " इत्यादि स्थलमें " पक्षः साध्यवान् " इत्याकारक ज्ञानको " स्वविरोधि धर्म धर्मितावच्छेदकक स्वप्रकारक ज्ञानरूप होने के कारण नियताहार्य्य रूपत्व हो जायगा और प्रत्यक्षातिरिक्त ज्ञान आहार्य नहीं होता है इसलिये उक्त-स्थलमें " अनुमिति ही अप्रसिद्ध है अतः अनुमिति घटित पूर्वलक्षणको छोड़कर ग्रन्थकार लक्षणान्तर करते हैं " यथा—यत्पक्षक, यत्साध्यक, यद्धेतुक स्थलमें जितने दोषों की सम्भावना हो तावदन्यतमत्वही तत्तत् स्थलोंमें हेत्वाभासत्व है । (२०) चिन्तामणिमें पांच हेत्वाभास जो कहे गये हैं सो " वायुर्गन्धवान् स्नेहात् " इत्यादि स्थलोंहीं को लक्ष्यकर है । अतः सबस्थलोंमें पांचों हेत्वाभासोंको नहीं मिलने पर भी क्षति नहीं है । (२१) इसीतरह अनैकान्तिक अर्थात् सव्यभिचारका भी " साधारण, असाधारण, अनुपसंहारी एतदन्यतमत्व " लक्षण है ।

(२२) साधारणः साध्यवदन्यवृत्तिर्हेतुः । तेन च व्याप्तिग्रह प्रतिबन्धः क्रियते । (२३) असाधारणः साध्यासमानाधिकरणो हेतुः । (२४) तेन साध्य सामानाधिकरण्यग्रहः प्रतिबध्यते । (२५) तथा शब्दो नित्यः शब्दत्वादित्यादावसाधारण्यं शब्दोऽनित्यः शब्दत्वादित्यादौ त्वसाधारण्यभ्रमः । (२६) अन्ये तु सपक्षावृत्तिरसाधारणः । (२७) सपक्षश्च निश्चितसाध्यवान् । इत्थं च शब्दोऽनित्यः शब्दत्वादित्यादौ यदा पक्षे साध्य निश्चयस्तदा नासाधारण्यं तत्र हेतोर्निश्चयादिति वदन्ति ।

(२२) " साध्यवदन्य वृत्ती जो हेतु " वह साधारण कहाता है साधारणत्व ज्ञान व्याप्तिज्ञानका प्रतिबन्धक है । (२३) " साध्यका असमानाधिकरण जो हेतु " सो असाधारण कहाता है । (२४) असाधारणत्व ज्ञान " हेतुनिष्ठ साध्य सामानाधिकरण्य ग्रहका प्रतिबन्धक है । (२५) " शब्दः नित्यः शब्दत्वात् " यहां शब्दत्वरूप हेतुको साध्यके असमानाधिकरण होनेके कारण " शब्दत्व " असाधारण है । " शब्दः अनित्यः शब्दत्वात् " यहां शब्दत्व रूप हेतु साध्यके समानाधिकरण होनेके कारण असाधारण नहीं है अतः " शब्दत्व " में जिसको असाधारणत्वका ज्ञान होता है उसज्ञानको भ्रमरूप समझना चाहिये । (२६) किसीका मत है कि सपक्षमें अवृत्ती जो हेतु वह असाधारण है । (२७) जिसधर्मीमें साध्यका निश्चय हो वह सपक्ष कहता है । " शब्दः अनित्यः शब्दत्वात् " इस स्थलमें जब पक्षमें साध्यका निश्चय है तब शब्दत्वरूप हेतुको शब्दात्मक सपक्षमें अवृत्ति नहीं होनेके कारण " शब्दत्व " असाधारण नहीं है । शब्दमें जब अनित्यत्वका निश्चय नहीं है तब " शब्दत्व " को घटादि रूप सपक्षावृत्ति होनेके कारण " शब्दत्व " भी असाधारण हो सकता है ।

(२८) अनुपसंहारी च अत्यन्ताभावाप्रतियोगिसाध्यकादिः। (२९) अनेन च व्यतिरेक व्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धः क्रियते।

(२८) अत्यन्ताभावाप्रतियोगी है साध्यजिसहेतुका, वह हेतु अनुपसंहारी है। (२९) अनुपसंहारीका ज्ञान व्यतिरेक व्याप्तिज्ञानका प्रतिबन्धक है।

(३०) विरुद्धस्तु साध्यव्यापकीभूताभाव प्रतियोगी। (३१) अयं साध्याभावग्रह सामग्रीत्वेन प्रतिबन्धकः। (३२) सत्प्रतिपक्षे तु प्रतिहेतुः साध्याभावसाधकः। अत्रतु हेतुरेवेति विशेषः।

(३०) साध्यव्यापकी भूताभाव प्रतियोगी जो हेतु वह विरुद्ध है। (३१) विरोधज्ञान साध्याभाव ग्राहक होनेके कारण "साध्यवत्ता ज्ञानका प्रतिबन्धक है। (३२) यद्यपि सत्प्रतिपक्षस्थलके समान "शब्दोनित्यः कृतकत्वात्" इत्यादि विरुद्धस्थलमें भी साध्याभाव साधक हेतुको रहनेके कारण सत्प्रतिपक्ष और विरुद्ध इन दोनोमें साम्य हो जाना चाहिये। तथापि "सत्प्रतिपक्षस्थलमें" प्रतिहेतु साध्याभाव साधक होता है और विरुद्धस्थलमें प्रकृत हेतुही साध्याभाव साधक है यही दोनोंमें अन्तर है।

(३३) साध्याभाव साधक एव हेतुः साध्यसाधकत्वेनोपन्यस्त इति अशक्ति विशेषोपस्थापकत्वाच्च विशेषः।

(३३) उक्त विरुद्ध और सत्प्रतिपक्षमें यह भी भेद है कि हेतु प्रयोगमें जिसने विरुद्ध हेतुका प्रयोग किया है, वही प्रयुक्तहेतु उस व्यक्तिकी अशक्तिका सूचक होता है क्योंकि साध्याभाव साधक जो हेतु है, वह हेतु उक्त व्यक्तिसे साध्य साधकत्वेन प्रतिपादित है। और सत्प्रतिपक्षस्थलमें ऐसा नहीं होता है। यहभी दोनों में अन्तर होता है।

(३४) सत्प्रतिपक्षः साध्याभाव व्याप्यवान्पक्षः। (३५) अगृहीताप्रामाण्यक साध्यव्याप्यवत्त्वोपस्थिति कालीनागृहीता प्रामाण्यक साध्याभावव्याप्यवत्त्वोपस्थितिविषयत्तस्थेत्यन्ये। (३६) अत्र च परस्पराभावव्याप्यवत्ताज्ञानात्परस्परानुमितिप्रतिबन्धः फलम्।

(३४) "साध्याभाव व्याप्यवत्" जो पक्ष वह सत्प्रतिपक्ष दोष कहाता है। जहां वादीपक्षमें वह्न्यादिरूप साध्यसाधनार्थ पञ्चावयव वाक्य प्रयोग किया है। तदनन्तर वादि प्रतिपादित जो वह्निरूपसाध्य तदभाव साधनार्थ प्रतिवादीभी पञ्चावयववाक्य प्रयोग किया है। उसी समयमें सत्प्रतिपक्षका व्यवहार होता है दोनों हेतु सत्प्रतिपक्षित कहाते हैं। (३५) अतः कई एक आचार्य्य व्यवहारौपयिक सत्प्रतिपक्षका लक्षण ऐसाभी कहते हैं कि "अप्रामाण्यज्ञानशून्य साध्यव्याप्यवत्ता परामर्शकालीन जो अप्रामाण्यज्ञानशून्य साध्याभाव व्याप्यवत्ता परामर्श तद्विषयत्व"। (३६) "अप्रामाण्य ज्ञानशून्य साध्य साधक और परामर्श अप्रामाण्यज्ञानशून्यसाध्याभाव साधक परामर्श" इन दोनों परामर्शोंसे परस्पर अनुमिति का प्रतिबन्ध होता है। अर्थात् यदि किसी भी परामर्शमें अप्रामाण्यज्ञान नहीं रहे तो वह्निव्याप्यवत्ता परामर्शसे वह्न्यभावानुमितिका और वह्न्यभाव व्याप्यवत्ता परामर्शसे वह्निमत्तानुमितिका प्रतिबन्ध होता है।

(३७) अत्र केचित् । (३८) यथा घटाभावव्याप्यवत्ताज्ञाने विद्यमानेऽपि घटचक्षुः संयोगे सति घटवत्ताज्ञानं जायते । (३९) यथाच शंखेसत्यपि पीतत्वाभावव्याप्य शङ्खत्ववत्ताज्ञानेसति पित्तादि दोषे पीतः शङ्ख इति धीर्जायते । (४०) एवं कोटि द्वय व्याप्यदर्शनेऽपि कोटिद्वयस्य प्रत्यक्षरूपः संशयो भवति । (४१) तथा सत्प्रतिपक्षस्थले संशयरूपा नुमितिर्भवत्येव ।

(३७) रत्नकोशकार सत्प्रतिपक्षस्थलमें अनुमितिका प्रतिबन्ध नहीं मानते हैं। किन्तु संशयोत्पादन द्वारा सत्प्रतिपक्षको दूषकता मानते हैं। परन्तु इस मतको सिद्धान्ती स्वीकार न कर अपने अस्वरस प्रकाश करनेके हेतु " अत्र केचित् " इत्यादि ग्रन्थसे उक्त रत्नकोशकारका मत उपन्यस्त करते हैं। (३८,३९,४०.४१) ज्ञान प्रतिबध्य प्रतिबन्धकभाव अनुभवानुरोधसे माना जाता है यथा—पूर्वमें घटाभाव व्याप्यवत्ता निश्चय रहनेपर भी घटके साथ चक्षुःसंयोग होनेपर घटवत्ता ज्ञान होता है। एवं शङ्खमें पीतत्वाभाव व्याप्य शङ्खत्ववत्ता निश्चय रहनेपरभी नेत्रगत पैत्तिक दोषवाले मनुष्यको " पीतःशङ्खः " ऐसा ज्ञान होता है। अतः लौकिक सन्निकर्षजन्य घटवत्ता ज्ञानके प्रति घटाभाव व्याप्यवत्ता ज्ञानको एवं दोष विशेषजन्य " पीतत्ववत्ता " ज्ञानकेप्रति पीतत्वाभाव व्याप्यवत्ता ज्ञानको प्रतिबन्धकत्व नहीं माना जाता है, एवं दूर अथवा अन्धकारस्थित स्थानमें " पुरुषत्व व्याप्य पुरुषत्वाभाव " उभयव्याप्यवत्ता ज्ञान रहनेपर भी " अयम् पुरुषो न वा " इत्याकारक प्रत्यक्षात्मक संशय होता है, अतः " तद्व्याप्यवत्ता ज्ञान विशिष्ट " तद्वत्ता बुद्धिकेप्रति " तदभाव व्याप्यवत्ता निश्चय को प्रतिबन्धकता नहीं है यह मानना होगा। तब जहाँ " वह्निव्याप्य धूमवान पर्वतः " वह्न्यभाव व्याप्य पाषाणमयत्ववान् पर्वतः " यह दोनों परामर्श है वहाँ " वह्निव्याप्यवत्ता ज्ञानविशिष्ट वह्निमत्ता बुद्धिकेप्रति " वह्न्यभाव व्याप्यवत्ता परामर्श प्रतिबन्धक नहीं होगा । एवं "वह्न्यभाव व्याप्यवत्ता ज्ञानविशिष्ट " " वह्न्यभाववत्ता बुद्धिकेप्रति वह्निव्याप्यवत्ता परामर्शप्रतिबन्धक नहीं होगा। तब पर्यवसित यह हुआ कि सत्प्रतिपक्षस्थलमें साध्यज्ञान प्रतिबन्धक एवं साध्याभावज्ञान प्रतिबन्धक कोई नहीं है । और साध्यभासक साध्याभावभासक दोनों परामर्श है तब " पक्षः साध्यवान् न वा " इत्याकारक संशय रूपानुमिति अवश्य होगी।

(४२) यत्र चैक कोटिव्याप्य दर्शनं तत्राधिक बलतया द्वितीय कोटिभान प्रतिबन्धान्न संशयः । (४३) फलबलेन चाधिकसमबलभावः कल्प्यत इति वदन्ति । (४४) तन्न । (४५) तदभावव्याप्यवत्ता-ज्ञाने सति तदुपनीत भान विशेषशाब्दबोधादेरनुदयाल्लौकिक संनि-कर्षाजन्यदोषविशेषाजन्यज्ञान मात्रे तस्य प्रतिबन्धकता लाघवात् ।

(४६) नतूपनीतभान विशेषे शाब्दबोधे च पृथक्प्रतिबन्धकता गौरवात् । (४७) तथाच प्रतिबन्धकसत्त्वात्कथमनुमितिः । (४८) नहि लौकिक संनिकर्ष-स्थले प्रत्यक्षमिव सत्प्रतिपक्षस्थले संशयाकारानुमितिः प्रामाणिकी, येनानुमितिभिन्नत्वेनापि विशेषणीयम् ।

(४२) जिस जगह दोनों विरुद्ध कोटियोंकी उपस्थिति धर्मिज्ञान दोनों कोटियोंका बाध निश्चयाभाव ये तीनो कारण रहतेहुए भी पुरुषत्वाद रूप एककोटिमात्रका व्याप्यवत्ता ज्ञानहै वहां "अयं पुरुषो न वा" यह संशय नहीं होताहै । कारण यह है कि दोनों कोटिका भान प्रयोजक सामग्री रहनेपर संशय होताहै। वह यहां नहीं है। क्योंकि पुरुषत्वाभाव भान का प्रतिवन्धक जो पुरुषत्वाभाव व्याप्यवत्ता ज्ञान विरहविशिष्ट पुरुषत्वाभावाभाव व्याप्य-वत्ताज्ञान अर्थात् पुरुषत्वव्याप्यवत्ताज्ञान वह प्रतिबन्धक हो जायगा । (४३) दोनों विरुद्ध कोटियोंके भान प्रयोजक कारण कूट रहतेहुएभी जहां कार्योत्पत्ति नहीं होतीहै वहां दोनोंकोटियों की सामग्री को परस्पर कार्य्योत्पत्तिमें प्रतिवन्धक मानते हैं । और जहां एक सामग्री प्रयोज्य कार्य्य होताहै, और द्वितीयसामग्री प्रयोज्य कार्य्य नहींहोताहै वहां जिस सामग्रीका कार्य्य होता है उस सामग्रीको अधिक वलवती, और जिस सामग्रीका कार्य्य नहीं होताहै उस सामग्रीको न्यून वलवती समझना चाहिये । (यहांतक रत्न कोशकारका मत है) । (४४, ४५, ४६, ४७) उसका खराडन सिद्धान्ती इसप्रकार करते हैं कि तदभाव व्याप्यवत्ता निश्चय रहनेपर तत्प्रकारक उपनीत भान विशेष और तत्प्रकारक शाब्दबोधादि नहीं होताहै। इसलिये तत्प्रकारक उपनीत भान विशेषके प्रतितदभाव व्याप्यवत्ता निश्चयको प्रतिवन्धकत्व मानेंगे। एवं तत्प्रकारक शाब्द बोधादिके प्रति तदभाव व्याप्यवत्तानिश्चयको प्रतिबन्धकत्व मानेंगेतो इसप्रकार अनेक प्रतिवध्य प्रतिबन्धक भावकी कल्पना प्रयुक्त गौरव होगा। अतः अनुगतरूपसे लाघवात् "लौकिक सन्निकर्षाजन्य दोष" विशेषाजन्य तद्वत्ता बुद्धिके प्रति तदभाव व्याप्यवत्ता निश्चयको प्रतिवन्धकत्व मानना उचित है। तब सत्प्रतिपक्ष स्थलमें "वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतः" वह्न्य-भाव व्याप्यपाषाणमयत्ववान् पर्वतः" इत्याकारक दोनों विरुद्धपरामर्शोको रहनेपर "पर्वतो "पर्वतो वह्निमान् न वा" यह संशयानुमिति नहीं होसकती । क्योंकि लौकिक शन्निर्षाजन्य दोषविशेषाजन्य वह्निमत्ताबुद्ध्यन्तर्गत वह्निमत्तानुमिति के प्रति वह्न्यभावव्याप्यवत्ता निश्चय प्रतिवन्धक हो जायगा। एवं लौकिक सन्निकर्षाजन्य, दोष विशेषाजन्य, तद्वत्ता बुद्ध्यन्तर्गत, वह्न्यभाववत्तानुमिति के प्रति, वह्न्यभावाभाव व्याप्यवत्ता निश्चय अर्थात् वह्निव्याप्यवत्ता निश्चय प्रतिवन्धक हो जायगा, तव वह्निभान प्रयोजक और वह्न्यभाव भान प्रयोजक सामग्री नहीं रहने के कारण संशयाकारक अनुमिति होना असम्भव है। (४८) जिस जगह घटाभाव व्याप्यवत्ता निश्चय रहने पर घटके साथ लौकिक सन्निकर्ष है उस जगह प्रत्यक्ष को प्रामाणिक होने के कारण प्रतिवध्यतावच्छेदक कोटिमें जिस प्रकार लौकिक सन्निकर्षाजन्य-त्वका निवेशकिया जाता है। उस प्रकार सत्प्रतिपक्षस्थलमें भी संशयाकारक अनुमिति प्रामाणिक होगी तो तदर्थ पूर्ववत् यहां भी तदभाव व्याप्यवत्ता निश्चयके प्रतिवध्यतावच्छेदक कोटिमें अनुमिति भिन्नत्वका निवेशकरके तत्प्रकरकानुमिति के प्रति तदभाव व्याप्यवत्ता निश्चयको प्रतिवन्धकत्व नहीं होने के कारण संशयाकारक अनुमितिका उपपादन कर सकते। परन्तु सत्प्रतिपक्षस्थलमें संशय रूपानुमितिको (विवादग्रस्त) अर्थात् प्रामाणिक नहीं होनेके कारण संशयाकारक अनुमितिका उपपादन करना असंभव है ।

(४९) यत्र च कोटिद्वय व्याप्यवत्ताज्ञानं तत्रोभयत्रा प्रामाण्यज्ञानात्संशयो नान्यथाऽगृहीताप्रामाण्य कस्यैव विरोधिज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वादिति।

(४९) यदि ऐसा कहें कि जिस जगह "पुरुषत्व व्याप्यकरादिमानयम्" "पुरुषत्वाभावव्याप्य कोटिकरादिमानयम्" इत्याकारक उभय व्याप्यवत्ता ज्ञान है और पुरुषत्व पुरुषत्वाभाव प्रकारक संशय सामग्री है उस जगह "अयं पुरुषो न वा" इत्याकारक संशयात्मक प्रत्यक्ष भी कैसे होगा क्योंकि लौकिक सान्निकर्षजन्य, दोष विशेषाजन्य पुरुषत्ववत्ता बुद्धिके प्रति पुरुषत्वाभाव व्याप्यवत्ता निश्चय और तादृश पुरुषत्वाभाववत्ता बुद्धिके प्रति पुरुषत्व व्याप्यवत्ता निश्चय प्रतिबन्धक होगा। इस प्रश्नका उत्तर सिद्धान्ती कहते हैं कि उभयकोटिव्याप्यवत्ता निश्चयमें यदि अप्रामाण्यज्ञान रहे तभी संशयात्मकप्रत्यक्ष होगा। क्योंकि गृहीता प्रामाण्यक तदभावव्याप्यवत्ता निश्चय प्रतिबन्धक नहीं होता है। उभयकोटि व्याप्यता ज्ञानमें अप्रामाण्यज्ञान नहीं रहनेपर संशयात्मक प्रत्यक्ष भी इष्ट नहीं है।

(५०) असिद्धिस्त्वाश्रया सिद्ध्याद्यन्यतमः। (५१) आश्रयासिद्धिः पक्षे पक्षतावच्छेदकस्याभावः। (५२) यत्र च काञ्चनमयः पर्वतो वह्निमानिति साध्यते तत्र पर्वतो न काञ्चनमय इति ज्ञाने विद्यमाने काञ्चनमये पर्वते परामर्श प्रतिबन्धः फलम्।

(५०) आश्रयासिद्धि, स्वरूपासिद्धि, व्याप्यत्वासिद्धि एतदन्यतमत्वरूप असिद्धिका लक्षण है। (५१) पक्षनिष्ठ पक्षतावच्छेदका भाव एवं पक्षतावच्छेदका भाववत् पक्ष आश्रयासिद्धि है। (५२) यथा -"काञ्चनमयः पर्वतो वह्निमान्" इसस्थलमें पर्वतनिष्ठ काञ्चनमयत्वाभाव, एवं काञ्चनमयत्वाभाववत् पर्वत आश्रयासिद्धि है "काञ्चनमयत्वाभाववान् पर्वतः" इत्याकारक आश्रयासिद्धि निश्चय "वह्निव्याप्य धूमवान् काञ्चनमयः पर्वतः" इत्याकारक परामर्शमें "काञ्चनमयः पर्वतो वह्निमान्" इत्याकारक अनुमितिमें भी प्रतिबन्धक है।

(५३) स्वरूपासिद्धिस्तु पक्षे व्याप्यत्वाभिमतस्य हेतोरभावः। (५४) अत्र च ह्रदो द्रव्यं धूमादित्यादौ पक्षे व्याप्यत्वाभिमतस्य हेतोरभावे ज्ञाते पक्षे साध्यव्याप्य हेतुमत्ताज्ञानरूपस्य परामर्शस्य प्रतिबन्धः फलम्।

(५३) पक्षनिष्ठ हेत्वभाव एवं हेत्वभाववत् पक्षस्वरूपासिद्धि है। (५४) "ह्रदो द्रव्यं धूमात्" इसस्थलमें धूमाभाववद्ध्रदादि रूप, स्वरूपासिद्धिका निश्चय "द्रव्यत्व व्याप्य धूमवान् ह्रदः" इत्याकारक परामर्शमें पक्ष धर्मता ज्ञानांशका प्रतिबन्धक है।

(५५) साध्याप्रसिद्ध्यादयस्तु व्याप्यत्वासिद्धिमध्येऽन्तर्भूताः। (५६) साध्ये साध्यतावच्छेदकस्याभावःसाध्याप्रसिद्धः। (५७) तथा च काञ्चनमय वह्निमानित्यादौ साध्ये साध्यतावच्छेदकाभावे ज्ञाते साध्यतावच्छेदकविशिष्टसाध्य व्याप्यवत्ताज्ञानरूपपरामर्शे प्रतिबन्धः फलम्।

(५५) साध्याप्रसिद्धि और साधनाप्रसिद्धि व्याप्यत्वा सिद्धिमें ही अन्तर्भूत है। (५६) साध्यनिष्ठ साध्यतावच्छेदकका अभाव एवं साध्यतावच्छेदका भाववत् साध्य-साध्या प्रसिद्धि है। (५७) "काञ्चनमय वह्निमान् धूमात्" इस स्थलमें काञ्चनमयत्वा भाववत् वह्न्यादिरूपसाध्या प्रसिद्धिका निश्चय "काञ्चनमय वह्निव्याप्य धूमवान् पर्वतः" इत्याकारक परामर्शमें एवं "पर्वतः काञ्चनमय वह्निमान्" इत्याकारक अनुमितिमें भी प्रतिबन्धक है।

(५८) एवं हेतौ हेतुतावच्छेदकाभावः साधनाप्रसिद्धिः। (५९) यथा च काञ्चनमयधूमादित्यादौ। अत्र हेतुतावच्छेदकविशिष्ट हेतोर्ज्ञानाभावात्तद्धे-तुक व्याप्तिज्ञानादेर भावः फलम्। (६०) एवं वह्निमान् नील धूमादित्यादौ गुरुतया नील धूमत्वं हेतुतानवच्छेदकमपि व्याप्यत्वासिद्धिरित्यपि वदन्ति।

(५८) हेतुनिष्ठ हेतुतावच्छेदकका अभाव एवं हेतुतावच्छेदका भाववद्धेतु साधना प्रसिद्धि है। (५९) "वह्निमान् काञ्चनमय धूमात्" इस स्थलमें काञ्चनमयत्वाभाववद्धू-मादि रूपसाधना प्रसिद्धिका निश्चय रहनेपर हेतुतावच्छेदक विशिष्ट हेतुका ज्ञान नहीं होता। अतः "वह्निव्याप्य काञ्चनमय धूमवान् पर्वतः" इत्याकारक परामर्शमें विशिष्टहेतुका भान नहीं होगा। (६०) साध्यसम्बन्धितावच्छेदक धर्मवत्व व्याप्ति है। वह्निमान् धूमात्में धूमत्व-रूप हेतुतावच्छेदक सामानाधिकरण्यात्मक साध्य सम्बन्धितावच्छेदक होनेके कारण साध्य सम्बन्धितावच्छेदकहेतुतावच्छेदक धर्मवत्व रूप व्याप्तिधूम हेतुमें रहनेके कारण लक्षण समन्वय हुआ। "धूमवान्वह्नेः" इस व्यभिचारीमें वह्नित्वरूप हेतुतावच्छेदक साध्य सम्बन्धिताके अतिप्रसक्त होनेके कारण साध्यसम्बन्धितावच्छेदक नहीं होगा। अतः अतिव्याप्तिका वारणहुआ। "वह्निमान् नील धूमात्" इस स्थलमें धूमत्वापेक्षया गुरुभूत नील धूमत्वरूप हेतुतावच्छेदकं साध्यं सम्बन्धितावच्छेदक नहीं है। इसलिये नील धूममें वह्निनिरूपित व्याप्ति नहीं रहने के कारण नील धूमत्व व्याप्यतानवच्छेदक होगा अतः साध्य व्याप्यतानवच्छेदक हेतुतावच्छेदक धर्मवत्त्वात्मक व्याप्यत्वासिद्धिदोष नील धूममें रहा। व्याप्यत्वा सिद्धिज्ञान व्याप्तिज्ञान प्रतिबन्धक है (नील धूमत्वं हेतुतानवच्छेदकम्) यहां पर हेतु-ता पद व्याप्यतार्थक है।

(६१) बाधस्तु पक्षे साध्याभावादिः। (६२) एतस्यानुमितिप्रति-बन्धः फलम्। (६३) तद्धर्मिकतदभावनिश्चयो लौकिक संनिकर्षाजन्य दोषविशेषाजन्य तद्धर्मिकतज्ज्ञानमात्रे विरोधीति।

(६१) पक्षनिष्ठ साध्याभाव एवं साध्याभाववत् पक्ष बाध है (स्वज्ञान विषय प्रकृत तु तावच्छेदकवत्त्व सम्बन्धेन बाधको हेतुमें रहनेके कारण हेतु बाधित कहाता है। "वह्निः अनुष्णः द्रव्यत्वात्" इसस्थलमें अनुष्णत्वा भाववत् वह्नि बाध और एतत् स्थलीय द्रव्यत्व बाधित है। (६२) बाध निश्चय अनुमितिका प्रतिबन्धक होता है। (६३) क्योंकि अनाहार्य्य अप्रामा-ण्यज्ञानानास्कन्दित तद्धर्मिक तदभाव प्रकारक निश्चय लौकिक सन्निकर्षाजन्य दोष विशे-षाजन्य तद्धर्मिक तत्प्रकारक ज्ञानमात्रका विरोधी होता है।

(६४) न तु संशयसाधारणं पक्षे साध्यसंसृष्टत्वज्ञानमनुमिति कारणं तद्विरोधितया च बाधसत्प्रतिपक्षयोर्हेत्वाभासत्वमिति युक्तम् । (६५) अप्रसिद्धसाध्यकानुमित्यनापत्तेः। (६६) साध्यसंशयादिकं विनाऽप्यनुमित्युत्पत्तेश्च ।

(६४) किसी एक देशी आचार्यका मत है कि पक्षमें संशय साधारण साध्य संसृष्ट ज्ञान (अर्थात् साध्य सम्बन्धज्ञान) अनुमितिका कारण है। आशय यह है कि अनुमितिसे पूर्व साध्यका संशय अथवा निश्चय अन्यतर रहना आवश्यक है। बाध निश्चय एवं सत्प्रतिपक्ष निश्चय तादृशसाध्य सम्बन्धज्ञानका प्रतिबन्धक है। अतः उन दोनोंमें हेत्वाभासत्व माना जाता है यह मत युक्त नहीं है। (६५+६६) "पृथिवी इतरभेदवती गन्धवत्वात्" इत्यादि स्थलोंमें अनुमितिसे पूर्व पक्षमें साध्यज्ञान नहीं रहनेके कारण अनुमिति नहीं होगी। अनुमितिसे पूर्व इस स्थलमें साध्यसन्देह रह सकता है। अतः अनुमितिकी अनुपपत्ति नहीं होगी। अतएव मान्यमें दृष्टान्तान्तर बतलाया गया है कि "घन गर्जन स्थलमें" अनुमितिसे पूर्व मेघरूप साध्यका सन्देहलेशभी नहीं रहने पर घन गर्जनसे मेघानुमिति होती है यह नहीं होगी।

(६७) एवं साध्याभावज्ञाने प्रमात्वज्ञानमपि न प्रतिबन्धकं प्रमाणाभावाद्गौरवाच्च ।

(६७) एवं किसी एक देशी आचार्यका मत है कि पक्षधर्मिक साध्याभाव प्रकारक जो ज्ञान तादृश ज्ञान विशेष्यक प्रमात्वप्रकारक निश्चय पक्षमें साध्यवत्ताज्ञानका प्रतिबन्धक है, यह ठीक नहीं है। क्योंकि साध्याभावज्ञान ग्राह्याभावावगाही होनेके कारण साध्यवत्ता ज्ञानका प्रतिबंधक होता है। किन्तु साध्याभावज्ञान धर्मिकप्रमात्व निश्चयको ग्राह्याभावानवगाही होनेके कारण प्रतिबन्धकता माननेमें कोई प्रमाण नहीं है। एवं पक्षविशेष्यक साध्याभाव प्रकारकज्ञान धर्मिक प्रमात्व प्रकारक संशयान्यज्ञानत्वरूप तादृश प्रमात्व निश्चयत्वापेक्षया अप्रामाण्य ज्ञानाभावविशिष्ट पक्ष विशेष्यक साध्याभाव प्रकारक निश्चयत्व लघुधर्म है। अतः वही पक्षमें साध्यवत्ता ज्ञान प्रतिबन्धकतावच्छेदक होगा। उक्त साध्याभाव ज्ञान धर्मिक प्रमात्व निश्चयत्वरूप गुरुधर्म प्रतिबन्धकतावच्छेदक नहीं होगा।

(६८) अन्यथा सत्प्रतिपक्षादावपि तदभाव व्याप्यवत्ता ज्ञाने प्रमात्वविषयकत्वेन प्रतिबन्धकतापत्तेः। (६९) किंतु अप्रमात्वज्ञानानास्कन्दितबाधादिबुद्धेः प्रतिबन्धकता, तत्र अप्रमात्वशङ्काविघटनेन प्रमात्वज्ञानं क्वचिदुपयुज्यते।

(६८) एवं बाधनिश्चय धर्मिक प्रमात्व निश्चय, यदि पक्षमें साध्यवत्ता ज्ञानका प्रतिबन्धकहो तो सत्प्रतिपक्षनिश्चय, धर्मिक प्रमात्व निश्चय को भी तुल्ययुक्तिसे पक्षमें साध्यवत्ताज्ञान प्रतिबन्धकत्व होना चाहिये जोकि आपकामत नहींहै। क्योंकि आप सत्प्रतिपक्षत्व निश्चयहीको प्रतिबन्धकत्व मानते हैं। इससेभी आपकामत खण्डित होता है। (६९) अतः "अनाहार्य अप्रामाण्य ज्ञानानास्कन्दित बाध निश्चय" ही अनुमितिका प्रतिबन्धक है। बाधनिश्चयमें अप्रामाण्य शङ्का निवारणार्थ किसी स्थलविशेषमें बाध निश्चय धर्मिक प्रामाण्यज्ञानभी उपयोगी होसकता है।

(७०) न च बाधस्थले पक्षे हेतुसत्त्वे व्यभिचारः पक्षे हेत्वभावेतु स्वरूपासिद्धिरेव दोष इति वाच्यं, बाधज्ञानस्य व्यभिचारज्ञानादेर्भेदात्। (७१) किं च यत्र परामर्शानन्तरं बाधबुधिस्तत्र व्यभिचारज्ञानादेरकिंचित्करत्वाद्बाधस्यानुमिति प्रतिबन्धकत्वं वाच्यम्।

(७०) यहां शङ्का होतीहै कि बाधस्थलमें यदिपक्षमें हेतु रहे तो साध्याभाववद्वृत्ती हेतु होनेके कारण व्यभिचार दोष होगा और यदि नहीं रहे तो हेत्वभाववत् पक्ष होनेके कारण स्वरूपासिद्धि दोष हो जायगा। अभिप्राय यह है कि बाधित हेतु अनैकान्तिक अथवा असिद्ध होही जायगा। तब बाधितहेतुको पञ्चम हेत्वाभास मानना व्यर्थ है। उत्तर व्यभिचार और स्वरूपासिद्धि की प्रतीतिसे बाध प्रतीतिको वैलक्षण्य होनेके कारण व्यभिचार और स्वरूपासिद्धिसे बाधको अतिरिक्त मानना होगा। तब हेतुको एक होने परभी दोषको भिन्न२ होनेके कारण पञ्चमहेत्वाभास मानना युक्त है। (७१) एवं जहां "धूम व्याप्यवह्निमान् ह्रदः" इत्याकारक परामर्शके अग्रिमक्षणमें "धूमाभाववद्ध्रदवृत्तीवह्निः" इत्याकारक व्यभिचारज्ञान अथवा "धूमाभाववान्ह्रदो वह्न्यभाववान्" इत्याकारक स्वरूपासिद्धि ज्ञान हुआ है। वहां तदग्रिमक्षणमें अनुमिति क्यों नहीं होगी। क्योंकि व्यभिचार और स्वरूपासिद्धि ज्ञान तो परामर्श द्वारा अनुमितिका प्रतिबन्धक होता है। साक्षात् तो नहीं होसकता है और परामर्श तो पूर्वक्षणहीमें होचुका है। अतः अनुमितिकी आपत्तिमें कोई बाधा नहीं है इसलिये बाध निश्चयको साक्षात् अनुमिति प्रतिबन्धकता माननी होगी, जिससे बाध निश्चयके अग्रिम क्षणमें अनुमितिकी आपत्ति नहीं हो। अतएव बाधको हेत्वाभासत्व स्वीकार करना अनिवार्य है।

(७२) एवं यत्रोत्पत्तिक्षणावच्छिन्ने घटादौ गन्धव्याप्यपृथिवीत्ववत्ताज्ञानं तत्र बाधस्यैव प्रतिबन्धकत्वं वाच्यम्। (७३) न च पक्षे घटे गन्धसत्त्वात्कथं बाधइति वाच्यं, पक्षतावच्छेदकदेशकालावच्छेदेना नुमितेरनुभवसिद्धित्वादिति।

(७२) एवं "उत्पत्तिकालावच्छिन्नो घटो गन्धवान् पृथिवीत्वात्" इस स्थलमें प्रतियोगिव्यधिकरण साध्याभाववद्वृत्ती हेतुरूप व्यभिचार एवं "हेत्वभाववत् पक्षरूप" स्वरूपासिद्धि दोष नहीं रहनेके कारण केवल गन्धाभाववत् उत्पत्तिकालावच्छिन्न घटरूप बाध दोष है। तब यदि पञ्चम हेत्वाभास बाध नहीं माना जाय तो उक्त स्थलमें अनुमितिका प्रतिबन्ध नहीं होगा। क्योंकि हेत्वाभास तो कोई है ही नहीं। (७३) यहां शङ्काहैकि घटरूप पक्षमें गन्धरूप साध्य ही रहता है। तब यहां बाध कैसे होगा? उत्तर—यह है कि पक्षताका अवच्छेदक तो देश और कालभी होता है, तब पक्षतावच्छेदक जो उत्पत्तिकाल और घटत्व तद्धर्मावच्छिन्नमें अनुमिति अनुभव सिद्ध है अतः उत्पत्ति कालावच्छिन्न घटमें गन्धाभाव रहनेके कारण बाध होनेमें कोई बाधा नहीं है।

(७४) बाध सत्प्रतिपक्ष भिन्ना ये हेत्वाभासास्तद्व्याप्या अपि तन्मध्य एवान्तर्भवन्ति (७५) अन्यथा हेत्वाभासाधिक्यप्रसङ्गात् (७६) बाधव्याप्य सत्प्रतिपक्षस्तु भिन्नएव, स्वतन्त्रेच्छेन मुनिना पृथगुपदेशात्। (७७) सत्प्रतिपक्षव्याप्यस्तु न प्रतिबन्धक इति प्रघट्टकार्थः ॥

(७४) बाध और सत्प्रतिपक्षसे भिन्न जितने हेत्वाभास हैं तत्तद्धेत्वाभास व्यक्तमें व्याप्य घटितको भी तत्तद्धेत्वाभासके अन्तर्गत समझना चाहिये। अर्थात् साध्याभाव वद्वृत्तित्ववत् हेतु व्यभिचार है। अतः साध्याभाववद्वृत्तित्वव्याप्यवद्धेतु भी व्यभिचार है। एवम् हेत्वभाववत् पक्ष स्वरूपासिद्धि है। अतः हेत्वभाव व्याप्यवत् पक्ष भी स्वरूपासिद्धि है। इसी प्रकारसे हेत्वाभासान्तरमें भी समझना चाहिये। (७५) यदि ऐसा न हो तो साध्याभाववद्वृत्तित्व व्याप्यवद्धेतु एवम् हेत्वभाव व्याप्यवत् पक्षादिको पञ्चहेत्वाभासान्तर्गत नहीं होनेके कारण इन सभोंको हेत्वाभासान्तर्गत रखनेकेलिये पांचसे अधिकभी हेत्वाभास मानना पड़ेगा। (७६) यद्यपि उक्त नियमको असंकुचित बनाकर तदनुसार सत्प्रतिपक्षको भी बाध यहां होना चाहिये परन्तु सो नहीं है क्योंकि गौतम मुनिने उसे सत्प्रतिपक्षही माना है इसमें उनकी इच्छाही नियामक है नकि कोई दूसरी युक्ति है। (७७) एवम् "साध्याभाव व्याप्य व्याप्यवान् पक्षः" इत्याकारक निश्चय अनुमिति प्रतिबन्धक नहीं है। अतः साध्याभाव व्याप्य व्याप्यवत् पक्ष हेत्वाभास नहीं है। यह संक्षेपतः सम्पूर्ण प्रकरणार्थ हुआ।

का० नं० ७३ पूर्वा०।

यः सपक्षे विपक्षे च भवेत्साधारणस्तु सः

का० अर्थ।

जो हेतु सपक्ष और विपक्ष दोनोंमें रहे वह "साधारण" नामका हेत्वाभास कहाता है।

(१) यः सपक्ष इति। सपक्षविपक्षवृत्तिः साधारण इत्यर्थः। (२) सपक्षो निश्चित साध्यवान्। (३) विपक्षः साध्याभाववान्। (४) विरुद्धवारणाय सपक्षवृत्तित्वमुक्तम्। (५) वस्तुतो विपक्षवृत्तित्वमेव वाच्यम्, विरुद्धस्य साधारणत्वेऽपि दूषकताबीजस्य भिन्नतया तस्य पार्थक्यात्।

(१) इसका अर्थ कारिकार्थहीमें स्पष्ट है। (२) जिसमें साध्यका निश्चय हो वह सपक्ष है। (३) जिसमें साध्याभावका निश्चय हो वह विपक्ष है (४) साधारणहेत्वाभासके लक्षणमें यदि "सपक्ष वृत्तित्व" नहीं देकर केवल "विपक्ष वृत्तित्व" मात्र लक्षण करें तो विरुद्ध हेत्वाभासमें उक्त साधारण लक्षणकी अतिव्याप्ति हो जायगी। (क्योंकि "विरुद्ध" में भी "विपक्ष वृत्तित्व" है) इसहेतु साधारणके लक्षणमें "सपक्ष वृत्तित्व" विशेषण

सार्थक है) । (५) (किन्तु व्यर्थ गौरव क्यों स्वीकार करें) वास्तवमें " विपक्ष वृत्तित्व " ही साधारणका लक्षण करना चाहिये । आप कहसकते हैं कि विरुद्धमें विपक्ष वृत्तित्व रहने के कारण विरुद्धमें साधारणकी प्रतीति हो जायगी । किन्तु ऐसा नहीं क्योंकि दूषकता वीजके भेदसे अर्थात् " हेतुनिष्ठ साध्याभावाधिकरण वृत्तित्व " और साध्य व्यापकी भूताभाव प्रतियोगित्व रूपदोषके भेदसे भेद रह जायगा यथा—(साधारण) अव्यभिचार अर्थात् व्याप्तिज्ञानके प्रति प्रतिबन्धक है और (विरुद्ध) सामानाधिकरण्य ज्ञानके प्रति प्रतिबन्धक है अतः भेद प्रतीति हो जायगी ।

का० नं० ७३ उत्त० ।

यस्तूभयस्माद्व्यावृत्तः स चासाधारणो मतः ।

का० अर्थ ।

जो हेतु " सपक्षवा विपक्ष " किसीमें नहीं रहे (किन्तु पक्षमात्रमें रहे) वह असाधारण हेत्वाभास है ।

(१) यस्तूभयस्मादिति । सपक्षविपक्षाद्व्यावृत्त इत्यर्थः । (२) सपक्षः साध्यवत्तयानिश्चितः । (३) विपक्षः साध्य शून्यतया निश्चितः । (४) शब्दोऽनित्यः शब्दत्वादित्यादौ यदा शब्देऽनित्यत्व सन्देहस्तदा सपक्षत्वं घटादीनामेव, तद्व्यावृत्तं च शब्दत्वमिति तदा तदसाधारणम् । (५) यदा तु शब्देऽनित्यत्वनिश्चयस्तदा नासाधारणम् इदं च प्राचां मतम् । (६) नवीनमतं तु पूर्वमुक्तम् ।

(१) कारिकार्थमें स्पष्टहै। (२) साध्याधिकरणतया निश्चित देशही सपक्ष शब्दार्थ है। (३) साध्याभावाधिकरणतया निश्चित देशही विपक्ष शब्दार्थ है । (४ " शब्दोऽनित्यः शब्दत्वात् " इत्यादि स्थलोंमें जब शब्दरूप पक्षमें अनित्यत्वका सन्देह है तब सपक्ष घटपटादि होगा क्योंकि वे अनित्यत्व रूप साध्यके निश्चित अधिकरण हैं एवम् अनित्यत्वरूप साध्याभावका निश्चित अधिकरण गगनादि विपक्ष होंगे। इन दोनोंमें अवृत्ती और शब्दात्मक पक्षमात्रमें वृत्ती " शब्दत्व " रूप हेतुही असाधारण हेत्वाभास है । (५) परन्तु जब शब्दमें अनित्यत्वका निश्चय है तब शब्दत्वरूप हेतु असाधारण नहीं कहा जायगा ऐसी प्राचीनों की व्यवस्था है। (६) और नवीनोंका मत है कि साध्यासमनाधिकरण हेतु असाधारण है जो पहले कह चुके हैं।

का० नं० ७४ पूर्वा० ।

तथैवानुपसंहारी केवलान्वयिपक्षकः ।

का० अर्थ ।

जिस स्थलमें वस्तुमात्र पक्ष है अर्थात् पक्षताकेवलान्वयि है। वह हेतु अनुपसंहारी (हेत्वाभास) कहाता है ।

(१) तथैवेति । सर्वमभिधेयं प्रमेयत्वादित्यादौ सर्वस्यैव पक्षत्वात्सामानाधिकरण्यग्रहस्थलान्तराभावान्नानुमितिः । (२) इदं तु न सम्यक् पक्षैकदेशे सहचारग्रहेऽपि क्षतेरभावात् । (३) अस्तु वा सहचाराग्रह स्तावताप्यज्ञानरूपाऽसिद्धिरेव न तु हेत्वाभासत्वं तस्य, तथापि केवलान्वयिसाध्यकत्वं तत्त्वमित्युक्तम् ।

(१) प्राचीनों का मत है कि केवलान्वयि पक्षताकत्व अर्थात् साध्यसंशयाक्रान्त विषयकत्व अनुपसंहारित्व है सर्वमभिधेयं प्रमेयत्वात् इत्यादिस्थलमें वस्तुमात्रको पक्ष होनेके कारण सर्वत्र साध्यका सन्देहही रहेगा, तब साध्य हेतुका सामानाधिकरण्य निश्चय के लिये उपयुक्त कोई दूसरा स्थान नहीं है अतः व्याप्तिज्ञान नहीं होनेसे परामर्श और अनुमिति नहीं होगी।(२) किन्तु यह मत ठीक नहीं है क्योंकि पक्षतावच्छेदक सर्वत्वावच्छेदेनसाध्य संशय रहनेपरभी पक्षैक देश घटादिमें घटत्व रूपसे सहचार निश्चय होनेके हेतु व्याप्ति ज्ञान द्वारा परामर्श और अनुमितिकी उत्पत्तिमें कोई बाधा नहीं है। (३) यदि सर्वत्वावच्छेदेन साध्य संशय रहनेपर किसी पदार्थमें सहचार निश्चय न भी माना जाय तोभी उक्त अनुपसंहारित्व को स्वरूपसत् अर्थात् प्रमाप मानही होकर परामर्श और अनुमितिके अनुत्पाद प्रयोजक होने से अनुमिति परामर्शान्यतरप्रतिबन्धक ज्ञान विषयत्व नहीं रहनेके कारण अनुपसंहारित्वमें हेत्वाभासत्वानुपपत्ति होजायगी अतः केवलान्वयिपक्षताकत्वरूप अनुपसंहारित्व नहीं होसकता, तथापि केवलान्वयिसाध्यकत्व अनुपसंहारित्व है ,तादृश अनुपसंहारित्व ज्ञान व्यतिरेक व्याप्तिज्ञान प्रतिबन्धक होनेके कारण उक्त अनुपसंहारित्वमें हेत्वाभासत्वकी अनुपपत्ति नहीं होगी।

का० नं० ७४ उत्त० ।

यः साध्यवति नैवास्ति स विरुद्ध उदाहृतः ॥

का० अर्थ ।

जो हेतु साध्यवत्में नहीं रहे वह विरुद्ध हेत्वाभास कहाता है ।

(१) यः साध्यवतीति। एवकारेण साध्यवत्त्वावच्छेदेन हेत्वभावो बोधितः । तथा च साध्यव्यापकी भूताभावप्रतियोगित्वं तदर्थः ।

(१) मूलके "एवकार" से साध्यवत्त्वकी व्यापकता हेत्वभावमें विवक्षित है, जिससे "साध्यव्यापकी भूताभाव प्रतियोगित्व" ऐसा लक्षण विरुद्ध हेत्वाभासका पर्य्यवसितहुआ (यथा—शब्दो नित्यः कृतकत्वात्) इस स्थलमें नित्यत्वरूप साध्यव्यापकी भूत कृतकत्वाभाव प्रतियोगित्व कृतकत्वरूप हेतुमें रहनेके कारण विरुद्ध हेत्वाभासमें लक्षण समन्वय हुआ।

का० नं० ७५,७६,७७ पूर्वा० ।

आश्रयासिद्धिराद्या स्यात्स्वरूपासिद्धिरप्यथ ।
व्याप्यत्वासिद्धिरपरा स्यादसिद्धिरतस्त्रिधा ॥

पक्षासिद्धिर्यत्र पक्षो भवेन्मणिमयो गिरिः ।
ह्रदो द्रव्यं धूमवत्त्वादत्रासिद्धिरथापरा ॥
व्याप्यत्वासिद्धिरपरा नील धूमादिक भवेत् ।

का० अर्थ ।

(१) आश्रयासिद्धि (२) स्वरूपासिद्धि (३) व्याप्यत्वासिद्धिके भेदसे असिद्धि तीन प्रकार के हैं। "मणिमयः पर्वतो बह्निमान् धूमात्" इस स्थलमें पर्वतरूप पक्षमें मणिमयत्वका अभाव आश्रयासिद्धि है। अतः धूमरूप हेतु यहां "आश्रयासिद्ध्यात्मक" दोषसे हेत्वाभास है। "ह्रदो द्रव्यं धूमवत्त्वात्" इस स्थलमें ह्रदरूप पक्षमें धूमवत्त्वका अभाव स्वरूपासिद्धि है अतः धूमवत्त्वरूप हेतु स्वरूपासिद्ध्यात्मक दोषसे हेत्वाभास है। (व्यर्थ विशेषणघटित हेतु "व्याप्यत्वासिद्धि" दोष कहाता है)। "पर्वतो बह्निमान् नील धूमात्" यहां नीलधूम व्याप्यत्वासिद्धि दोषसे हेत्वाभास है।

(१) असिद्धिं विभजते । आश्रयासिद्धिरित्यादि । पक्षासिद्धिरिति । आश्रयासिद्धिरित्यर्थः । (२) अपरेति । स्वरूपासिद्धि रित्यर्थः ।

(१) आश्रयासिद्धि और पक्षासिद्धि ये दोनों पर्य्याय शब्द हैं। पक्षतावच्छेदकाभाववत् पक्ष एवं पक्षनिष्ठपक्षतावच्छेदकाभावादि आश्रयासिद्धि है। (२) तथा हेत्वभाववत् पक्ष एवं पक्षनिष्ठहेत्वभावादि स्वरूपासिद्धि है।

(३) नील धूमादिक इति । नीलधूमत्वं गुरुतया न हेतुतावच्छेदकं स्वसमानाधिकरणव्याप्यतावच्छेदकधर्मान्तराघटितस्यैव व्याप्यतावच्छेदकत्वात् ।

*(३) "पर्वतो बह्निमान् नील धूमात्" इस स्थलमें "नील धूमत्व" गुरुभूत होनेके कारण व्याप्यतावच्छेदक नहीं हो सकता है क्योंकि नियम है कि "स्वसमानाधिकरण एवं प्रकृतसाध्य व्याप्यतावच्छेदक जो धर्मान्तरतादृश धर्मान्तरसे अघटितही धर्म" व्याप्यतावच्छेदक होता है। प्रकृतमें नीलधूमत्वके समानाधिकरण और प्रकृतसाध्य व्याप्यतावच्छेदक धूमत्व धर्मसे अघटितधर्म नीलधूमत्व नहीं हुआ। अतः व्याप्यतावच्छेदक नहीं होगा।

---

* हेतुतापदका व्यापता अर्थ है।

(४) धूमप्रागभावत्वसंग्रहाय स्वसमानाधिकरणेति।

(४) उक्त व्याप्यतावच्छेदकत्व लक्षणमें धर्मान्तरमें "स्वसामानाधिकरण्य" विशेषण देनेसे "इयम् यज्ञशाला भावि वह्निमती धूमप्रागभावात्" इत्यादि सद्धेतु स्थलमें उक्त व्याप्यतावच्छेदकत्व लक्षणकी अव्याप्ति नहीं हुई। अन्यथा "व्याप्यतावच्छेदकी भूत धूम प्रागभावत्व धर्मको धूमत्वरूप व्याप्यतावच्छेदक धर्मान्तरसे घटित होनेके कारण उक्त स्थलमें धूमप्रागभावत्वको व्याप्यतावच्छेदकत्व (हेतुतावच्छेदकत्व) नहीं होगा। अतः "सामानाधिकरण्यका निवेश करना आवश्यक है। (प्रकृतमें धूमत्व और धूमप्रागभावत्व दोनोंको व्यधिकरणधर्म होनेके कारण अव्याप्ति न होगी)।

का० नं० ७७ उत्त०।

विरुद्धयोः परामर्शे हेत्वोः सत्प्रतिपक्षता।

का० अर्थ।

परस्पर विरुद्ध साध्यद्वय साधक जो हेतुद्वय उसके परामर्श होनेपर उक्त दोनों हेतु सत्प्रतिपक्षित कहाते हैं।

(१) विरुद्धयोरिति। कपिसंयोग तदभावव्याप्यवत्तापरामर्शेऽपि न सत्प्रतिपक्षत्वमत उक्तं विरुद्धयोरिति। (२) तथा च स्वसाध्य विरुद्धसाध्याभावव्याप्यवत्तापरामर्शकालीनसाध्यव्याप्यवत्तापरामर्शविषय इत्यर्थः॥

(१, २) सत्प्रतिपक्षका स्वसाध्य विरुद्ध साध्याभाव व्याप्यवत्ता परामर्श कालीन साध्य व्याप्यवत्ता परामर्श विषयत्व लक्षण है। यहां स्वसाध्य विरुद्धांशको त्यागकर यदि केवल साध्याभाव व्याप्यवत्ता परामर्श कालीन साध्यव्याप्यवत्ता परामर्श विषयत्वही लक्षण करें तो अव्याप्यवृत्ति साध्यक सद्धेतुमें अतिव्याप्ति हो जायगी। यथा —"कपि संयोगी एतत् वृक्षत्वात्" यहां कपि संयोगाभाव व्याप्यवत्ता परामर्श समान कालीन कपि संयोग व्याप्यवत्ता परामर्श विषय एतत् वृक्षत्वको होनेके कारण सत्प्रतिपक्षितत्व होजायगा स्वसाध्य विरुद्धत्व विशेषण देनेसे कपि संयोग और तदभाव इन दोनोंको परस्पर विरोध नहीं रहनेके कारण उभय व्याप्यवत्ता परामर्श रहनेपर भी अतिव्याप्ति नहीं होती है।

का० नं० ७८।

साध्यशून्यो यत्र पक्षस्त्वसौ बाध उदाहृतः।
उत्पत्तिकालीन घटे गन्धादिर्यत्र साध्यते॥

का० अर्थ।

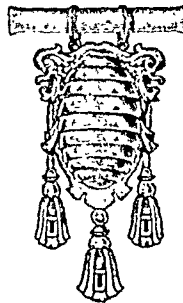
जिस स्थलमें साध्याभाववत् पक्षतावच्छेदकविशिष्ट पक्ष है वहां हेतु कालात्ययापदिष्ट (बाधित) कहाता है—"यथा उत्पत्ति कालीन घटः गन्धवान् पृथ्वीत्वात्" यहां पक्षतावच्छेदक उत्पत्ति काल विशिष्ट घटरूप पक्ष गन्धाभाववत् है। अतः इस स्थलका पृथ्वीत्वरूप हेतु बाधित कहाता है।

(१) साध्यशून्य इति। पक्षः पक्षतावच्छेदकविशिष्ट इत्यर्थः (२) तेन घटे गन्धसत्त्वेऽपि न क्षतिः। (३) एवं मूलावच्छिन्नो वृक्षः कपि संयोगीत्यत्रापि बोध्यम्।

(१) यहां पक्ष पदसे पक्षतावच्छेदक विशिष्टपक्षसमझना चाहिये। (२) ऐसा निवेश करनेसे घटादिमें उत्पत्तिकाल भिन्न कालावच्छेदेन गन्ध रहनेपर भी बाधत्वकी अनुपपत्ति न हुई। (३) इसी प्रकार "मूलावच्छिन्नो वृक्षः कपि संयोगी" इस स्थलमें भी मूलावच्छेदेन वृक्षरूप पक्षमें कपि संयोगाभावरूप साध्याभाव रहनेके कारण कालात्ययापदेश (बाध) जानना चाहिये।

इति श्री चन्द्रधारिसिंहशर्म विरचितायां चन्द्रिकाटीकाया मनुमान परिच्छेदः समाप्तः।

रेन्द्र कुमार शर्मा
अध्यापक (संस्कृत)
विद्यालय
198-



अथ उपमान खण्डम्।

उपमितिं व्युत्पादयति—

"ग्रामीणस्य" इत्यादि ग्रन्थसे ग्रन्थकार उपमितिका निरूपण करते हैं।

का० नं० ७९,८०।

ग्रामीणस्य प्रथमतः पश्यतो गवयादिकम्।
सादृश्यधीर्गवादीनां या स्यात्सा करणं मतम्॥
वाक्यार्थस्यातिदेशस्य स्मृतिर्व्यापार उच्यते।
गवयादिपदानां तु शक्तिधीरुपमाफलम्॥

का० अर्थ।

प्रथमतः गवयादिको देखतेहुए ग्रामीणकी जो अपरिचित गवयादिमें गोसादृश्यकी बुद्धि हुई वही बुद्धि उपमितिरूप ज्ञानमें करण माना जाता है। किसी आरण्यकसे कथित जो "गो सदृशो गवय पद वाच्यः" इत्याकारक अतिदेश वाक्य तदर्थकी जो स्मृति हुई वह उपमितिमें व्यापार कहा जाता है और पीछे उस ग्रामीणको "गवयो गवय पद वाच्यः" इत्याकारक जो गवयादिपद निरूपित शक्तिका ज्ञान हुआ वही उपमित्यात्मक ज्ञानरूप कार्य है।

(१) यत्रारण्यकेन केनचिद्ग्रामीणं प्रत्युक्तं गो सदृशो गवयपद वाच्य इति। पश्चाद्ग्रामीणेन क्वचिदरण्यादौ गवयो दृष्टस्तत्र गोसादृश्य ज्ञानं यज्जातं तदुपमिति करणम्। (२) तदनन्तरं गोसदृशो गवयपदवाच्य इत्यतिदेशवाक्यार्थस्मरणं यज्जायते तदेव व्यापारः।

(१) जहां किसी जंगलीने किसी ग्रामीणके प्रति "गो सदृशो गवयपद वाच्यः" ऐसा कह दियाथा। पीछे वही ग्रामीण ने किसी जंगलादिमें गवयको देखा। वहां उस अपरिचित व्यक्तिमें जो गो सादृश्य ज्ञान हुआ वह ज्ञान उपमितिका करण अर्थात् उपमान प्रमाण है। (२) तदनन्तर "गो सदृशो गवय पद वाच्यः" इत्याकारक जो उक्त जंगली व्यक्तिसे कहा हुआ अतिदेशवाक्य उसके अर्थका जो स्मरण हुआ वही उपमिति ज्ञानमें व्यापार है।

(३) तदनन्तरं तत्र गवयो गवयपदवाच्य इति ज्ञानं यज्जायते तदुपमितिः न त्वयं गवयपदवाच्य इत्युपमितिः, गवयान्तरे शक्तिग्रहाभाव प्रसङ्गात्।

(३) तदनन्तर उस अपरिचित व्यक्तिमें "गवयो गवय पद वाच्यः" इत्याकारक जो ज्ञान उत्पन्न हुआ वही उपमित्यात्मक शक्ति ज्ञान है नकि "अयम् गवय पद वाच्यः" इत्याकारक ज्ञान उपमिति है। क्योंकि इदन्त्वविशिष्टमें गवयपद वाच्यत्व ज्ञान होनेसे गवयान्तरमें उपमित्यात्मक शक्ति ज्ञानका अभावही रह जायगा।

इति श्री चन्द्रधारिसिंहशर्म विरचितायां चन्द्रिकाटीकाया मुपमान परिच्छेदः समाप्तः।

अथ शब्द परिच्छेदः ।

शाब्द बोधप्रकारं दर्शयति—

"पदज्ञानं तु करणं" इत्यादि ग्रन्थसे ग्रन्थकार शाब्द बोधका प्रकार दिखलाते हैं।

का० नं० ८१ ।

पदज्ञान तु करणं, द्वारं तत्र पदार्थधीः ।
शाब्दबोधः फलं तत्र शक्तिधीः सह कारिणी ॥

का० अर्थ ।

शाब्द बोधके प्रति पदज्ञान करण और पदजन्य पदार्थोपस्थिति व्यापार है पद और अर्थ इन दोनोंमें शक्ति रूप जो विशेषसम्बन्ध उस का ज्ञान सहकारी कारण है। अर्थात् पदज्ञानोत्तरशक्ति ज्ञानजन्य पदार्थोपस्थितिद्वारा शाब्दबोध रूप फल होता है।

(१) पदज्ञानं त्विति। नतु ज्ञायमानं पदं करणं पदाभावेऽपि मौनि-श्लोकादौ शाब्दबोधात्।

(१) शाब्दबोधके प्रति ज्ञायमान पद करण नहीं होता है यदि माना जाय तो मौनि श्लोकादिसे अर्थात् जहांपर शब्द नहीं है किन्तु तद्बोधक लेखादिसे शाब्द ज्ञान होता है। वहां भी ज्ञायमान पद नहीं रहनेके कारण शाब्दबोध नहीं होगा अतः शाब्द-बोधके प्रति ज्ञायमान पद करण नहीं है।

(२) पदार्थधीरिति। (३) पदजन्यपदार्थस्मरणं व्यापारः।

(२,३) पदजन्य जो पदार्थका स्मरण (ज्ञान विशेष) वही शाब्दबोधमें व्यापार है।

(४) अन्यथा पदज्ञानवतः प्रत्यक्षादिना पदार्थोपस्थितावपि शाब्द-बोधापत्तेः।

(४) यदि केवल पदार्थज्ञानको व्यापार माना जाय तो पदज्ञानवान् पुरुषको जहांपर पदज्ञानजन्य पदार्थका ज्ञान नहीं हुआ है किन्तु चक्षुरादिहीसे पदार्थका ज्ञान हुआ है वहांपर भी पदज्ञानरूप करण और पदार्थज्ञानरूप व्यापार दोनोंके रहनेके कारण शाब्दबोध होना चाहिये। अतः पदज्ञानजन्य पदार्थोपस्थितिही व्यापार है। जिसके नहीं रहनेके कारण वहां शाब्दबोध नहीं होता है।

(५) तत्रापि वृत्त्या पदजन्यत्वं बोध्यम्।

(५) शाब्दबोधके प्रति जो पदजन्य पदार्थोपस्थितिको व्यापार कहागया है उसमें भी शक्ति, लक्षणान्यतरात्मक जो वृत्तिरूप सम्बन्ध उसके द्वारा जो पदजन्य पदार्थोपस्थिति वही व्यापार है।

(६) अन्यथा घटादिपदात्समवायसंबन्धेनाकाशस्मरणे जाते आकाशस्यापि शाब्दबोधापत्तेः ।

(६) यदि जिस किसी सम्बन्धसे पैदाहुये पदजन्यपदार्थोपस्थितिको शाब्दबोधके प्रति व्यापार माना जाय तो घटादिपदके साथ आकाशका समवायसम्बन्ध रहनेके कारण जहांपर घटादिपदरूप एक सम्बन्धिज्ञानसे आकाशका स्मरण हुआ है। वहांपर भी समवाय सम्बन्धके द्वारा घटादिपदसे उत्पन्न हुये आकाशरूप पदार्थोपस्थितिके रहनेके कारण घटादिपदसे आकाशका भी शाब्दबोध होना चाहिये। अतः शक्ति लक्षणान्यतरात्मक वृत्तिरूप सम्बन्धद्वारा पदज्ञानसे उत्पन्न कियेगये पदार्थ स्मरणको शाब्दबोधका व्यापार मानना युक्त है। अतः समवायरूप सम्बन्धद्वारा घटादिपदसे आकाशका स्मरण होनेपर भी उक्त वृत्ति रूप सम्बन्धद्वारा घटादि पदजन्य आकाशका स्मरण नहीं होनेके कारण घट पदसे आकाशका शाब्दबोध नहीं होगा।

(७) वृत्तिश्च शक्तिलक्षणान्यतरः संबन्धः ।

(७) शब्द और अर्थ इन दोनोंमें जो अर्थस्मृत्यनुकूल परस्पर सम्बन्ध विशेष उसका नाम वृत्ति है, वह शक्ति और लक्षणाके भेदसे दो प्रकार का है।

(८) अत्रैव शक्तिज्ञानस्योपयोगः । (९) पूर्वं शक्तिग्रहाभावे पदज्ञानेऽपि तत्संबन्धेन स्मरणानुपपत्तेः । (१०) पदज्ञानस्य च एक संबन्धिज्ञानविधयार्थस्मारकत्वम् ।

(८) पदजन्य पदार्थोपस्थितिहीमें शक्तिज्ञानकी अपेक्षा है। (९) क्योंकि अर्थमें पदनिरूपितशक्तिके ज्ञानका अभाव रहनेसे पदज्ञान रहने परभी शक्ति रूपसम्बन्ध द्वारा पदजन्य पदार्थका स्मरण नहीं होता। (१०) हस्ती और हस्तिपक इन दोनोंमें परस्पर पाल्यपालक भावरूप सम्बन्ध जिस व्यक्तिको ज्ञात है। उस व्यक्तिको एक सम्बन्धीके ज्ञानसे दूसरेका जैसे स्मरण होता है। उसी प्रकार पद और अर्थ इन दोनोंमें शक्तिरूप सम्बन्धका, जिस व्यक्तिको ज्ञान है। उस व्यक्तिको पदात्मक एक सम्बन्धीके ज्ञानसे अर्थात्मक अपरसम्बन्धीका स्मरण होता है।

(११) शक्तिश्च पदेन सह पदार्थस्य संबन्धः । (१२) स चास्माच्छब्दादयमर्थो बोद्धव्य इतीश्वरेच्छारूपः । (१३) आधुनिके नाम्नि शक्तिरस्त्येव । (१४) एकादशेऽहनि पितानाम कुर्यादितीश्वरेच्छायाः सत्त्वात् । (१५) आधुनिके तु संकेतिते न शक्ति रितिसंप्रदायः । (१६) नव्यास्तु ईश्वरेच्छा न शक्तिःकिंत्विच्छैव । (१७) तेनाधुनिकसंकेतितेऽपि शक्तिरस्त्येवेत्याहुः । (१८) शक्तिग्रहस्तुव्याकरणादितः ।

(११) पदके साथ जो अर्थका सम्बन्ध विशेष उसका नाम शक्ति है। (१२) वह सम्बन्ध " अमुक पदजन्य बोधका विषय अमुक अर्थ हो " इत्याकारक ईश्वरेच्छारूप है। (१३) शङ्का—किसीने शंका करते हैं कि लोकमें पितृकृत चैत्रमैत्रादि नाममें सङ्केतित व्यक्तियोंकी उक्त ईश्वरेच्छारूप शक्ति नहीं है। समा०—ऐसा नहीं उस आधुनिक चैत्र मैत्रादि नाममें उक्त ईश्वरेच्छा अवश्य है। (१४) क्योंकि " ग्यारहवें दिनमें पिता पुत्रका नामकरण करे " इस अभिप्रायकी श्रुति है। और उसमें नामपद सामान्य रूपसे चैत्र मैत्रादि सब नामोंका बोधक है। अतः आधुनिक नामोंमें ईश्वरेच्छा माननी होगी। (१५) केवल हमी लोगोंसे संकेत किये गये नदी वृद्धि आदि पदमें शक्ति नहीं है किन्तु परिभाषा आधुनिकसङ्केत मात्र है, ऐसा साम्प्रदायिकलोग मानते हैं। (१६) नवीन आचार्य तो ईश्वरेच्छारूपशक्ति नहीं मानकर केवल इच्छामात्रको शक्ति मानते हैं। (१७) अतएव वे आधुनिक सङ्केतविषय नदी वृद्धि चैत्र मैत्रादि पदनिष्ठ सङ्केतभी शक्तिही है ऐसा कहते हैं। (अतएव अनीश्वर-वादी मीमांसक और चार्वाक आदिके मतमें भी समन्वय होजाता है)। (१८) उक्त शक्तिका ज्ञान व्याकरणादिसे होता है उसे दिखलाते हैं।

(१९) " तथाहि शक्तिग्रहं व्याकरणोपमान कोशाप्तवाक्या द्व्यवहार-तश्च। वाक्यस्य शेषाद्विवृतेर्वदन्ति सांनिध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः " ॥

(१९) पदनिष्ठ शक्तिका ज्ञान—(१) व्याकरण (२) उपमान (३) कोष (४) आप्त वाक्य (५) व्यवहार (६) वाक्य शेष (७) विवरण (८) और प्रसिद्ध पदके सांनिध्यसे होता है ऐसा वृद्धविद्वान् कहते हैं।

(२०) धातु प्रकृति प्रत्ययादीनां शक्तिग्रहो व्याकरणाद्भवति। (२१) क्वचित्सति बाधके त्यज्यतेऽपि। (२२) यथा वैयाकरणैराख्यातस्य कर्तरि शक्ति रुच्यते। (२३) चैत्रः पचती त्यादौ कर्त्रासह चैत्रस्याभेदान्वयः। (२४) तच्च गौरवात्त्यज्यते किंतुकृतौ शक्तिर्लाघवात्। (२५) कृति श्चैत्रादौ प्रकारीभूय भासते।

(२०) धातु प्रकृति और प्रत्यय आदिका शक्तिज्ञान व्याकरण से होता है। (२१) किन्तु कहीं गौरवादि दोषके कारण त्यागभी किया जाता है। (२२) जैसे- वैयाकरण आ-ख्यात (तिङ्) की शक्ति कृत्याश्रय (कर्त्ता) में मानते हैं। (२३) * " चैत्रः पचति " इत्यादि वाक्यमें आख्यातार्थ कृत्याश्रय (कर्ता) के साथ चैत्रका अभेद सम्बन्धसे अन्वय होता है। (२४) अनन्त कृतिमें शक्यतावच्छेदकत्वकी कल्पना प्रयुक्त गौरव दोषके भयसे कृत्या-श्रयमें शक्तिका त्याग किया जाता है। किन्तु जात्यात्मक कृतित्वरूप शक्यतावच्छेदकमें ला-

* " चैत्रः पचति" इस वाक्य से चैत्राभिन्न एक कर्तृनिष्ठ वर्तमान कालिक पाक क्रिया, ऐसा शाब्द बोध होता है।

घवके अनुरोधसे कृतिहीमें शक्ति मानी जाती है। तात्पर्य यह है कि कर्त्ताका अर्थ कृत्याश्रय हुआ। उसमें शक्ति माननेसे यह आख्यातका शक्य कहा गया है शक्यमें विशेषण जो कृति वह शक्यतावच्छेदक हुई। कृति अनन्त है, इसलिये अनन्त व्यक्तियों में शक्यतावच्छेदकत्वकी कल्पना करनेसे गौरव हुआ। और कृतिमें शक्तिमाननेसे कृति शक्य हुई। शक्यतावच्छेदक कृतित्वजातिको एक होनेके कारण शक्यतावच्छेदकत्वकी कल्पनामें लाघव हुआ। (२५) † न्याय सिद्धान्तकी रीतिसे (आख्यातार्थ) कृति चैत्र आदि कर्त्तामें समवाय सम्बन्धसे विशेषण होकर शाब्दबोधका विषय होती है।

(२६) नच कर्तुरनभिधानाच्चैत्रादि पदानन्तरं तृतीया स्यादिति वाच्यं, कर्तृसंख्यानभिधानस्य तत्र तन्त्रत्वात् ।

(२६) शङ्का— वैयाकरणानुयायी न्यायासद्धान्त पर दोष देते हैं कि लाघवके अनुरोधसे आख्यातका अर्थ यदि कृतिको मानाजायतो " चैत्रः पचति " इस स्थलमें चैत्र रूप कर्तृवाचक पदसे तृतीया की आपत्ति होजायगी। क्योंकि नियम है कि " आख्यात कृत तद्धित, समास इन चारोंमें एकसे भी उक्त कारकमात्रमें प्रथमा होती है और अनुक्तकर्ता आदि कारकों में तृतीयादि विभक्तियां होती हैं " तब उक्त वाक्यमें आख्यातसे चैत्र उक्त नहीं हुआ किन्तु तन्निष्ठ कृतिरूपधर्म उक्त हुआ। अतएव तृतीया होनी चाहिये। जिसहेतु " अनभिहिते" इस अधिकार सूत्रका सम्बन्ध " कर्तृ करणयोस्तृतीया " इस सूत्रमें है। समा०—ऐसी आपत्ति नहीं होसकती क्योंकि आख्यातका कृति काल और संख्या आदि अनेक अर्थ होते हैं। तब " कर्तृकरणयोस्तृतीया " इस सूत्र का आख्यातसे अनुक्तकर्त्तामें तृतीया हो। ऐसा अर्थ नहीं स्वीकारकर आख्यातसेअनुक्त कर्तृगत संख्यामें तृतीया हो ऐसा अर्थ करनेसे कर्तृगत संख्याकी अनुक्तिहीको तृतीयोत्पत्तिमें कारण माननेके हेतु उक्त आपत्ति न होगी।

(२७) संख्याभिधानयोग्यश्च कर्मत्वाद्यनवरुद्धः प्रथमान्तपदोपस्थाप्यः। (२८) कर्मत्वादीतरस्येतर विशेषणत्वेन तात्पर्याविषयत्वमर्थः।

(२७,२८) शङ्का— कर्ता आदि कारकमें रहनेवाली संख्या आख्यातसे किस प्रकार उक्त एवं अनुक्त समझी जायगी। समा० –कर्मत्वाद्यनवरुद्ध अर्थात् कर्मत्वादि विशेषणत्वेन तात्पर्याविषय एवं प्रथमान्तपदोपस्थाप्य जो कारक तद्गत संख्या आख्यातसे उक्त होती है। जैसे-" चैत्रः पचति " इसवाक्यसे पाकानुकूल कृतिमान् चैत्रः इत्याकारक शाब्द बोध हो, ऐसा वक्ताका तात्पर्य रहने के कारण कर्मत्वादि विशेषणत्वेन तात्पर्याविषय और प्रथमान्त पदोपस्थाप्य चैत्र गत संख्याका अभिधान आख्यातसे होताहै। " एवं तण्डुल

† यही सिद्धान्त है कि सर्वत्र वाक्यार्थ बोध में प्रथमान्त पदार्थ ही मुख्य विशेष्य होता है। जैसे—"चैत्रः पचति"इस वाक्य से विक्लित्यनुकूल व्यापारानुकूल वर्तमान कालिक कृतिमान् एकत्व वां श्चैत्रः इत्याकारक बोधहोता है।

पच्यते" इस वाक्यसे पाक निरूपित कर्मतावत्तण्डुलम् इत्याकारक शाब्द बोध हो ऐसा वक्ताका तात्पर्य रहने के कारण कर्मत्वादि विशेषणत्वेन तात्पर्याविषय प्रथमान्त-पदोपस्थाप्य तण्डुलगत संख्याका आख्यातसे अभिधान होता है। अतएव "चैत्रःपचति" चैत्रौ पचतः, चैत्राः पचन्ति, एवं "तण्डुलं पच्यते" तण्डुले पच्येते, तण्डुलानि पच्यन्ते" इसप्रकार प्रयोग किया जाता है।

(२९) तेन चैत्र इव मैत्रो गच्छतीत्यादौ न चैत्रे संख्यान्वयः। (३०) यत्र कर्मादौ न विशेषणत्वे तात्पर्यं तद्वारणाय प्रथमान्तेति।

(२९) कर्मत्वादि विशेषणत्वेन तात्पर्याविषयत्व शब्दका इतर विशेषणत्वेन तात्पर्या-विषयत्व अर्थ है यदि ऐसा अर्थ नहीं किया जायतो "चैत्र इव मैत्रो गच्छति" इस वाक्यस्थल-में भी कर्मत्वादि विशेषणत्वेन तात्पर्याविषय प्रथमान्तपदोपस्थाप्य चैत्रगत संख्याका आख्या-तसे अभिधान होजायगा और उक्तशब्दका इतर विशेषणत्वेन तात्पर्या विषयत्व अर्थ करनेसे इवार्थ सादृश्यमें चैत्रको विशेषण होनेके कारण इतर विशेषणत्वेन तात्पर्याविषय चैत्र नहीं हुआ। अतः चैत्रगत संख्याका अभिधान आख्यातसे नहीं होगा शङ्का— यदि आप कहें कि चैत्रः स्वं पश्यति इसस्थल में चैत्र निष्ठ कर्मतानिरूपक दर्शनाश्रयः चैत्रः" इत्याकारक शाब्द बोध को वक्ताके तात्पर्यका विषय होनेके कारण चैत्रगत संख्याका अख्यातसे अभिधान नहीं होगा क्योंकि स्वपद बोध्य चैत्रको कर्मत्वका विशेषण होनेसे इतर विशेषणत्वेन तात्पर्यविषय चैत्र नहीं है। समा०— इतर विशेषणत्वेन तात्पर्या विषयशब्दका इतर विशेषणत्वमात्रेण तात्प-र्या विषय अर्थ है। उक्तस्थल में चैत्रको कर्मत्व विशेषणत्वेन और मुख्य विशेष्यत्वेन तात्पर्य विषय होनेके कारण इतर विशेषणत्व मात्रेण तात्पर्या विषय चैत्र होगया। अतः आख्यातसे तद्गत संख्याका अभिधान हो सकता है। (३०) प्राचीनोंको मत है कि प्रथमान्त पदोपस्था-प्यत्व विशेषण यदि नहीं दियाजाय तो तण्डुलं पचति इस स्थलमें तण्डुलनिष्ठ कर्मता निरूपक पाकानुकूल व्यापार वांस्तण्डुलः इत्याकारक बोध जहां वक्ताके तात्पर्यका विष अर्थात् पाकक्रियाकेकर्मत्व रूपसे और कर्तृत्व रूपसे भी जहां तण्डुलही विवक्षित है वहां तण्डु-लको इतर विशेषणत्वमात्रेण तात्पर्याविषय होनेके कारण तण्डुलगत संख्याका आख्यातसे अभि-धान हो जायगा। अतः प्रथमान्त पदोपस्थाप्यत्व विशेषण देना युक्त है। "यत्रकर्मादौ न विशेषणत्वे तात्पर्यम्" इस जगह कर्मपदका कर्मत्व एवं विशेषणत्व पदका विशेषणत्वमात्र अर्थ है। यदि आप कहें कि "तण्डुलं पचति" इस स्थलमें जब पाक कर्मत्वेन और पाक कर्तृत्वेन तण्डुलही विवक्षित है तव तण्डुलगत संख्याका आख्यातसे अभिधान स्वीकार करनेमें कोई बाधा नहीं है। इस हेतु संख्याका अभिधान इष्ट है अतः प्रथमान्तपदोपस्थाप्यत्व विशेषण का उक्तफल नहीं हो सकता है। तोभी यदि प्रथमान्त पदोपस्थाप्यत्व विशेषण नहीं दिया जायगा तो "चैत्रेण सुप्यते" यहां चैत्रकर्तृक वर्त्तमानकालिक स्वाप इत्याकारक बोधमें वक्ताका तात्पर्य रहनेके कारण इतर विशेषणत्व मात्रेण तात्पर्याविषय स्वापमेंभी अख्यातसे संख्याका अभिधान होजायगा। अतः प्रथमान्त पदोपस्थाप्यत्व विशेषण देना आवश्यक है।

(३१) यद्वा धात्वर्थातिरिक्ताविशेषणत्वं प्रथमदलार्थः। (३२) तेन चैत्रइव मैत्रो गच्छतीत्यत्र चैत्रादेर्वारणम्। (३३) स्तोकं पचतीत्यादौ स्तोकादेर्वारणाय च द्वितीयदलम्। (३४) तस्य द्वितीयान्तोपस्थाप्यत्वाद्वारणमिति।

(३१,३२) प्रथमान्तपदोपस्थाप्यत्व दलका प्रकारान्तरसे फल दिखलाने के लिये " कर्मत्वाद्यनवच्छेद्य दलका यद्वेत्यादि " ग्रन्थ से अर्थ कहते हैं धात्वर्थातिरिक्त विशेषणत्व कर्मत्वाद्य नवच्छेद्य शब्दका अर्थ है। अतः " चैत्र इव मैत्रो गच्छति " इस स्थलमें धात्वर्थातिरिक्त इवार्थ सादृश्यमें चैत्रको विशेषण होनेके कारण चैत्रगत संख्याका आख्यात से अभिधान नहीं होता है (३३,३४) कर्मत्वाद्यनवच्छेद्य दलका ऐसा अर्थ करने पर यदि प्रथमान्त पदोपस्थाप्यत्वात्मक द्वितीय दल नहीं दिया जायगा तो "स्तोकं पचति" इस स्थलमें स्तोकाभिन्न पाकानुकूल कृतिमान् इत्याकारक शाब्दबोधमें स्तोकको धात्वर्थ पाकमात्रके विशेषण होनेसे स्तोक पदार्थमें आख्यातसे संख्याका अभिधान हो जायगा। अतः प्रथमान्तपदोपस्थाप्यत्वरूप द्वितीयदल देना आवश्यक है जोकि क्रियाविशेषण होनेके कारण द्वितीयान्तपदोपस्थाप्य अल्पात्मक स्तोक पदार्थमें नहीं है। अतः स्तोकगत संख्याका आख्यातसे अभिधान नहीं होगा।

(३५) एवं व्यापारेऽपि न शक्तिर्गौरवात्। (३६) रथोगच्छतीत्यादौ तु व्यापारे आश्रयत्वे वा लक्षणा। (३७) जानातीत्यादौ तु आश्रयत्वे नश्यतीत्यादौ प्रतियोगित्वे निरूढ़ लक्षणा।

(३५) " रथो गच्छति " इत्यादि स्थलोंमें गमनानुकूलव्यापारवान् रथः अथवा नवीनों के मतसे " गमनाश्रयतावान् रथः " इत्याकारक ही शाब्द बोध होता है। अतः कृतिके समान व्यापारमें भी आख्यातकी शक्ति मानना जरूरी है। ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि व्यापारमें शक्ति माननेसे अन्यत्व घटित व्यापारत्वमें शक्यता वच्छेदकत्वकी कल्पना करने से गौरव होगा कृतिमें शक्ति माननेसे कृतित्व जातिमें शक्यतावच्छेदकत्वकी कल्पनामें गौरव नहीं होगा। अतः लाघवात् कृतहीमें आख्यातकी शक्ति मानी जाती है। (३६) और " रथो गच्छति " इत्यादि स्थलों व्यापार अथवा आश्रयत्वमें आख्यातकी लक्षणा मानकर व्यापारत्व या आश्रयत्वकाबोध होता है। (३७) एवं " जानाति " इसस्थल में ज्ञानाश्रयताका और " नश्यति इसस्थल में ध्वंस प्रतियोगिताका बोध होनेके कारण उन २ स्थलोंमें आख्यातकी आश्रत्व एवं प्रतियोगित्वमें निरूढ़ लक्षणा अर्थात् अनादि तात्पर्य विषय लक्षणा मानी जाती है।

(३८) उपमानाद्यथा शक्ति ग्रहस्तथोक्तम्।

(३८) उपमानसे जिस प्रकार शक्तिका ग्रह होता है वह उपमान खण्डहीमें कहा जा चुका है।

(३९) एवं कोशादपि शक्तिग्रहः । सति बाधके क्वचित्यज्यते । (४०) यथानीलादि पदानां नीलरूपादौ नीलादि विशिष्टे च शक्तिः कोशेन व्युत्पादिता तथापि लाघवान्नीलादावेव शक्तिः। नीलादिरूप विशिष्टे तु लक्षणेति।

(३९) इसीप्रकार कोषसेभी शक्तिग्राह होता है। परन्तु जिस अर्थमें जिस पदका शक्ति कोषसे ज्ञापित है उस अर्थमें उस पदकी शक्ति माननेमें यदि गौरवादि दोष होता है तो उसअर्थ में उस पदकी शक्ति नहीं मानी जाती है। (४०) जैसे "गुणे शुक्लादयः पुंसि गुणि लिङ्गास्तु तद्वति" इस कोषसे शुक्लनीलादिपदकी शुक्लनीलादिरूप एवं तादृश रूप विशिष्ट इन दोनोंमें शक्ति ज्ञापित है। परन्तु तादृश रूपाश्रयमें शक्ति माननेसे तादृश रूपमें शक्यता वच्छेदकत्वकी कल्पना प्रयुक्त गौरव होगा। अतः शुक्लादिपदकी केवल शुक्लरूपादिमें लाघवात् शक्ति है। और शुक्लरूपाश्रयमें लक्षणा मानकर शुक्लादिपदसे शुक्लरूपाद्याश्रयका बोध होता है।

(४१) एवमाप्त वाक्यादपि । यथा कोकिलः पिकपद वाच्यः इत्यादि शब्दात्पिकादि पद शक्ति ग्रहः ।

(४१) इसीप्रकार आप्त वाक्यसे भी शक्तिका ज्ञान होता है जैसे "कोकिलः पिक पद वाच्यः" इत्यादि आप्त वाक्योंसे कोकिल रूप अर्थमें पिक पदकी शक्तिका ज्ञान होता है।

(४२) एवं व्यवहारादपि । (४३) यथा प्रयोजक वृद्धेन घटमानयेत्युक्तम् (४४) तच्छ्रुत्वाप्रयोज्य वृद्धेन घट आनीतः । (४५) तदवधार्य पार्श्वस्थो बालो घटानयन रूपं कार्यं घट मानयेति शब्द प्रयोज्यमित्यवधारयति ।

(४२) इसप्रकार व्यवहारसे भी शक्तिका ज्ञान होता है। (४३) जैसे प्रेषक वृद्ध पुरुष से "घट मानय" ऐसा काहागया। (४४) उसे सुनकर प्रेष्य वृद्धसे घट लाया गया। (४५) इस प्रकार घटके आनयनको देखकर समीपवर्ती सावधान लड़काऐसा ज्ञान करता है कि "घट मानय" शब्दका प्रयोज्य घटानयनरूप कार्य है।

(४६) ततश्च घटं नय गामानयेत्यादा वावापोद्वापाभ्यां घटादिपादानां कार्यान्वितघटादौ शक्तिं गृह्णाति। (४७) इत्थं च भूतले नीलो घटः इत्यादिशब्दान्न शाब्दबोधः । (४८) घटादिपदानां कार्यान्वित घटादिबोधे सामर्थ्यावधारणात्कार्यताबोधं प्रति च लिङादीनां सामर्थ्यात्तदभावान्न शाब्दबोध इत्यपि केचित्। (४९) तन्न प्रथमतः कार्यान्वितघटादौ शक्त्यवधारणेऽपि लाघवेन पश्चात्तस्य परित्यागौचित्यात्। (५०) अत एव चैत्र,पुत्रस्ते जातः कन्याते गर्भिणीजाता इत्यादौ मुखप्रसाद मुखमालिन्याभ्यां सुखदुःखे अनुमाय तत्कारणत्वेन परिशेषाच्छाब्दबोधं निर्णीय तद्धेतुतया तं शब्दमवधारयति। (५१) तथा च व्यभिचारात्कार्यान्विते न शक्तिः। (५२) न

च तत्र तं पश्येत्यादि शब्दान्तर मध्याहार्यं, मानाभावात्। (५३) चैत्र पुत्रस्ते जातो मृतश्चेत्यादौ तदभावाच्च। (५४) इत्थं च लाघवादन्वित-घटेऽपि शक्तिं त्यक्त्वा घटपदस्य घटमात्रे शक्तिमवधारयति।

(४६) * तब "घटं नय" घटको लेजाओ "गामानय" गौको लाओ। ऐसा पुनः प्रेषक वृद्धसे कहागया तथा प्रेष्यवृद्धसे वैसाही किया भी गया। इस स्थितिमें उक्त बालक आवापोद्वाप (तर्क वितर्क) से घट पदका परम्परया कार्यत्वान्वित कम्बुग्रीवादि मद् व्यक्तिमें और आनयका आनयन क्रियामें तथा नयका नयन क्रियामें और गो पदका पर-म्परया कार्यत्वान्वित गोव्यक्तिमें शक्तिका निश्चय प्राप्त करता है। (४७,४८) व्यवहारसे कार्यत्वान्वित अर्थहीमें पदकी शक्तिका ज्ञान हुआ है। अतः पदोंसे कार्यत्वान्वित अर्थहीका बोध होनाचाहिये। कार्यताका बोध लिङ्, लोट् तव्यत्, अनीयर् इत्यादि प्रत्ययोंसेही होता है अतएव जिस स्थलमें कार्यताबोधक प्रत्यय नहीं है उस स्थलमें शाब्दबोध नहीं होता अतः "भूतले नीलो घटः" इत्यादि स्थलमें कार्यताबोधक प्रत्यय नहीं रहनेके कारण शाब्दबोध नहीं होगा। यह प्रभाकरका मत है। (४९) लेकिन यह मत ठीक नहीं है। क्योंकि पहले कार्यतामें अन्वित अर्थमें पदनिरूपित शक्तिका ज्ञान व्यवहारसे होने-परभी पीछे कार्यत्वान्वित घटादिमें घटादिपदकी शक्ति माननेमें गौरव है। ऐसा ज्ञान होनेपर लाघवात् घटपदकी शक्ति शुद्ध घटत्वावच्छिन्नहीमें निश्चितकी जाती है, इस लिये "भूतले नीलोघटः" इत्यादि स्थलमेंभी शाब्दबोध होनेमें कोई बाधा नहीं है। (५०,५१) जिसहेतु घटादि पदोंकी केवल घटत्वावच्छिन्नमें शक्तिमानी गई है अतः "चैत्र पुत्रस्ते जातः कन्याते गर्भिणी" इत्यादि वाक्य सुननेपर क्रमसे चैत्रके मुखपर प्रसाद और मालिन्य दोनों होनेके कारण चैत्रमें सुख दुःखका अनुमान कियाजाता है और चैत्रके उक्त सुख दुःखका कारण कोई दूसरा ज्ञात नहीं होता है। अतः परिशेषात् शाब्दबोधही कारण है ऐसा मानाजाता है। और उस शाब्दबोधका कारण "चैत्र पुत्रस्ते जातः कन्याते गर्भिणी" इत्याकारक शब्दही है यह निश्चय होता है। भाव यह है कि उक्त वाक्यसे यदि शाब्दबोध नहीं होता तो चैत्रका मुख प्रसाद और मुख मालिन्य होना असम्भव था अतः उक्त स्थलमें शाब्दबोध मानना आव-श्यक है किन्तु यदि कार्य्यत्वान्वित अर्थहीमें पदकी शक्तिमानी जाय तो कार्य्यतासे

* लिङ् लोट् तव्यत् अनीयर् इत्यादि प्रत्ययोंसे कार्यताका बोध होता है। "घट मानय" इस वाक्य स्थलमें घटका द्वितीयार्थ कर्मतामें निरूपित सम्बन्धसे और घटसे अन्वित कर्मताका आनयन क्रियामें निरूपकत्व सम्बन्धसे एवं लिङादि प्रत्ययार्थ कार्यताका आनयनमें स्वरूप सम्बन्धसे अन्वय होता है इस लिये कार्यतासे परम्परया अन्वित घटभी है और प्रयोजक प्रयोज्य दोनों वृद्धोंका व्यवहार उक्त लिङ्लोट् आदि कार्यता वाचक प्रत्ययान्त पद घटित वाक्योंके स्थलहीमें बालकसे देखागया है। अतएव बालकको साक्षात् अथवा परम्परया कार्यत्वान्वित घटादिरूप अर्थहीमें व्यवहारसे शक्तिका ज्ञान होता है। अतएव कार्यत्वान्वितार्थाभिधानवादीके मतमें साक्षात् परम्परा साधारण कार्यत्वान्वितार्थ विषयक शाब्दबोधके प्रति सामान्यतः पदत्वेन कारणता मानी जाती है। मुक्तावलीमें कार्यपद कार्यता बोधक है।

अनन्वित अर्थकाभी उक्त वाक्यस्थलमें शाब्दबोध होता है, परन्तु अब नहीं होगा। (५२,५३) यहाँ उक्त वाक्यमें व्यभिचार दोष वारणार्थ "तं पश्य" इत्यादि कार्यता बोधक प्रत्यय घटित वाक्यका अध्याहार करेंगे अतः उक्त स्थलमें कार्यतान्वितही अर्थका बोध होनेके कारण व्यभिचार नहीं होगा, यह कथन भी उचित नहीं है। क्योंकि अध्याहारमें कोई प्रमाण नहीं है। और "चैत्र पुत्रस्तेजातो मृतश्च" इत्यादि स्थलमें पुत्रकी अविद्यमानताके कारण "तं पश्य" इत्यादि अध्याहारभी नहीं होसकता। (५४) घटत्वाद्यपेक्षया गुरु कार्यत्वान्वित-घटत्वादिमें घटादिपदशक्यता वच्छेदकत्वकी कल्पनाप्रयुक्त, एवं घटादिविषयक शाब्दबुद्धित्वा-पेक्षयागुरु कार्यत्वान्वित घटादिविषयक शाब्दबुद्धित्वमें घटादिपदज्ञान जन्यता वच्छेदकत्वकी कल्पना प्रयुक्त गौरवके भयसे यथा प्रभाकरमतसिद्ध कार्यत्वान्वित घटादिमें घटादिपदकी शक्तिनहीं मानकर शुद्ध घटत्वावच्छिन्नमें घटादिपदकी शक्तिमानी जाती है तथा कुमारिलभट्ट मतसिद्ध अन्वितघटादिमें घटादिपदकी शक्ति माननेसेभी घटत्वादि एवं घटविषयक शाब्दबुद्धित्वाद्य पेक्षयागुरु अन्वितघटत्वादि एवं अन्वित घटविषयक शाब्दबुद्धित्वादिमें घटादिपदशक्यता तावच्छेदकत्व एवं घटादिपदज्ञान जन्यतावच्छेदकत्वकी कल्पनाप्रयुक्त गौरवहोगा अतः घटादिपदकी शक्ति शुद्धघटत्वाद्यवच्छिन्नमेंही मानी जाती है पदार्थान्तरका अन्वय (सम्बन्ध) का ज्ञान तो आकाङ्क्षा ज्ञानहीसे होजाताहै इस हेतु अन्वयांशमें शक्ति मानना व्यर्थ है।

(५५) एवं वाक्यशेषादपि शक्तिग्रहः। (५६) यथा यवमयश्चरुर्भवतीत्यत्र यवपदस्य दीर्घ शूकविशेषे आर्याणां प्रयोगः कङ्गौ च म्लेच्छानाम्, तत्र हि अथान्या ओषधयोम्लायन्तेऽथैते मोदमनास्तिष्ठन्ति इति वाक्य शेषाद्दीर्घशूके शक्तिर्निर्णीयते कङ्गौतु शक्तिभ्रमात्प्रयोगः नानाशक्ति कल्पने गौरवात्।

(५५,५६) इसी प्रकार वाक्यशेषसेभी शक्तिज्ञान होता है। जैसे यज्ञप्रकरणमें "यवमयश्चरुर्भवति" इस वाक्य में यव पदसे यवान्नका ग्रहण है, अथवा कङ्गुका ग्रहण है। क्योंकि याजक लोग उक्त शब्दका दीर्घ शूक (शूड) वाले अन्नमें तथा म्लेच्छ लोग कौनीमें प्रयोग करते हैं, ऐसा सन्देह होनेपर "अथान्या औषधयो म्लायन्तेऽथैते मोद मानास्तिष्ठन्ति" प्रकरणान्तमें इस वाक्य शेष अर्थात् अवशिष्ट वाक्यको देखकर दीर्घ शूड्वाले अन्नमेंही यव पदकी शक्तिका निश्चय कियाजाता है। और म्लेच्छ लोग भ्रमात्मक शक्ति ज्ञानसे कौनीमें यव पदका प्रयोगकरते हैं ऐसा मानाजाता है। यव पदमें विना प्रमाणके उभय अर्थ निरूपित नाना शक्तिकी कल्पनामें गौरव है।

(५७) हर्यादिपदे तु विनिगमकाभावान्नानाशक्ति कल्पनम्। (५८) एवं विवरणादपि शक्तिग्रहः। (५९) विवरणं तु तत्समानार्थक पदान्तरेण तदर्थकथनम्। (६०) यथा घटोऽस्तीत्यस्य कलशोऽस्तीत्यनेन विवरणाद्घटपदस्य कलशे शक्तिग्रहः। (६१) एवं पचतीत्यस्य पाकं करोतीत्यनेन विवरणादाख्यातस्य यत्नार्थकत्वं कल्प्यते।

(५७) इस प्रकार हर्यादि पदमेंभी तुल्य गुरुता गौरव होनेसे गवसे नानाशक्तिकी कल्पना नहीं होसकती ऐसा नहीं कहसकते। क्योंकि दीर्घ शूक विशिष्टमें यव पदकी शक्ति है इसमें उक्त वाक्यशेषरूप प्रमाण है और कङ्गुनिष्ठ शक्तिमें कोई प्रमाण नहीं है अतः नानाशक्ति गौरवके भयसे नहीं मानी जाती और हर्यादि पदमें यह बात नहीं है। इसलिये इन्द्र, सूर्य, वासुदेवादि प्रत्येक अर्थमें शक्ति साधक प्रमाण रहनेके कारण विनिगमनाविरहात् किसी एकही अर्थमें आप शक्ति नहीं मान सकते किन्तु नाना शक्तिही माननी पड़ेगी। (५८) इसी प्रकार विवरणमेंभी शक्तिका ज्ञान होता है। (५९) समानार्थक भिन्न पदद्वारा जो पदों के अर्थका व्याख्यान, उसे विवरण कहते हैं। (६०) जैसे "घटोऽस्ति" इस वाक्यका "कलशोऽस्ति" ऐसा विवरण करनेसे घटपदनिष्ट शक्तिका कलशरूप अर्थमें ज्ञान होता है। (६१) इसी प्रकार "पचति" इस वाक्यका "पाकं करोति"। इस प्रकार यत्नार्थक कृ धातुसे विवरण करनेसे आख्यातकी शक्तिकी कल्पना यत्नरूप अर्थमें की जाती है।

(६२) एवं प्रसिद्धपदसांनिध्यादपि शक्तिग्रहः। (६३) यथा इह सहकारतरौ मधुरं पिको रौतीत्यादौ पिकपदस्य कोकिले शक्तिग्रह इति।

(६२) इसीप्रकार प्रसिद्ध अर्थात् गृहीत शक्तिक पदके सान्निध्यसे भी शक्तिग्रह होता है। (६३) जैसे "इह सहकारतरौ पिको मधुरं रौति" इस वाक्यमें प्रसिद्ध सहकार, मधुर तथा रौति पदके सान्निध्यसे पिक पदकी कोकिल नामक पक्षिविशेषमें विना कोषादि ज्ञानके भी शक्तिका ज्ञान होता है।

(६४) तत्र जातावेव शक्तिर्न तु व्यक्तौ व्यभिचारादानन्त्याच। (६५) व्यक्तिं विना च जातिभानस्यासंभवाद्व्यक्तेरपि भानमिति केचित्। (६६) तन्न। शक्तिं विना व्यक्तिभानानुपपत्तेः।

(६४) पर मतका निराकरण करते हुए अपने मतको व्यवस्थापित करनेके लिये जाति (धर्म) मात्रमें शक्ति मानने वाले मीमांसकके मतका प्रतिपादन करते हैं कि जाति मात्रमें पदकी शक्ति माननी चाहिये व्यक्तिमें नहीं क्योंकि यदि व्यक्तिमें भी शक्ति मानेंगे तो यह प्रश्न उठेगा कि यत् किञ्चित् व्यक्तिमें शक्ति मानते हैं अथवा सभी व्यक्तिमें। प्रथम पक्षमें व्यभिचार होजायगा अर्थात् जिस व्यक्तिविशेषमें गो आदि पदका शक्तिज्ञान नहीं है उसका भी शाब्दबोध होताहै इसलिये तद्विषयक शाब्दबोधमें तद्धर्मिक शक्तिज्ञान कारण है इसकार्य कारणभावमें व्यभिचार होजायगा। द्वितीय पक्षमें व्यक्तिके अनन्त होनेसे शक्तिमेंभी आनन्त्य होजायगा, और उन अनन्त शक्तियोंका ज्ञान सर्वज्ञेतर पुरुषको नहीं होसकनेके कारण अस्मदादि व्यक्तिको शाब्दबोध नहीं होगा। (६५) जातिमात्रमें शक्ति माननेसे व्यक्तिका शाब्दबोधमें भान कैसेहोगा इस प्रश्नका उत्तर यह है कि व्यक्ति भानके विना जातिका भान नहीं होसकता है।

इसलिये व्यक्तिकाभी भान होजायगा अर्थात् जाति भासक सामग्रीकोही व्यक्तिकाभी भासक मान-लेनेसे जाति भासक सामग्रीसेही व्यक्तिकाभी भान होजायगा। फिर व्यक्तिमें शक्ति मानना व्यर्थ है, यह मीमांसकका मत है। (६६) किन्तु यह ठीक नहीं है क्योंकि तद्विषयक शाब्दबोधके प्रति पदज्ञानजन्य तद्विषयक उपस्थिति कारण है। ऐसी दशामें यदि जातिमात्रमें शक्ति मानी-जायगी तो जाति मात्रको पदसम्बन्धी होनेके कारण एक सम्बन्धिज्ञानविधया व्यक्तिकी उपस्थिति नहीं होनेके कारण व्यक्तिका शाब्दबोधमें भान नहीं हो सकेगा।

(६७) न च व्यक्तौ लक्षणा, अनुपपत्तिप्रतिसन्धानं विनापि व्यक्ति-बोधात्। (६८) न च व्यक्तिशक्तावानन्त्यं सकलव्यक्तावेकस्या एव शक्तेः स्वीकारात्। (६९) न चाननुगमः, गोत्वादेरेवानुगमकत्वात्।

(६७) यदि आपकहें कि "व्यक्तिमें लक्षणा मानते हैं" तब शक्ति न मानने परभी व्यक्तिका लक्षणासेही बोध होजायगा-यहभी युक्त नहीं है। क्योंकि अन्वयानुपपत्तिज्ञान होनेपर लक्षणासे लक्ष्यार्थका बोध होता है। "गौरस्ति" इत्यादि स्थलमें गोत्वमें अस्तित्वका अन्वयानुपपत्तिज्ञान नहीं रहनेके कारण लक्षणासे गोव्यक्तिका शाब्दबोध नहीं होगा। (६८,६९) हमारे मतमें व्यक्तिके आनन्त्यसे शक्तिमें आनन्त्यकी आपत्ति नहीं होसकती क्योंकि सभी व्यक्तियोंमें ईश्वरेच्छारूप एकही शक्ति मानते हैं। इसपर यदि आप ऐसा कहें कि शक्तिज्ञानाविषयपदार्थका प्रकारतया या विशेष्यतया शाब्दबोधमें भान नहीं होता है किन्तु गवादि पदोंसे सकल गवादिकी स्मृति एवं शाब्दबोध होताहै अतः गवादिपदजन्य सकल तत्तत् गवादिविषयक स्मृति एवं शाब्दबोधके प्रति सकल तत्तत् गवादिविषयक शक्ति-ज्ञानको कारण मानना होगा तब सकल तत्तत् गवादि विषयक शक्तिज्ञाननिष्ठ कारणताकी विषयितासंबन्धसे अवच्छेदकता सकल तत्तत् गवादिको नहीं मानसकते क्योंकि उनका कोई अनुगमक धर्म नहीं है। लेकिन यहभी कथन ठीक नहीं है क्योंकि सकल गोका गोत्व रूपसे अनुगम करके कारणतावच्छेदक कोटिमें प्रवेश करते हैं। अर्थात् गोत्व प्रकारक गोविशेष्यक स्मृति और शाब्दबोधके प्रति गोत्वावच्छिन्न विषयक शक्तिज्ञानको कारण मानते हैं। अतः गोव्यक्तिको अनन्त होनेपरभी गोत्वको एक होनेके कारण गोमें रहनेवाला कारणताव-च्छेदकत्व एक होजायगा।

(७०) किंच गौः शक्येति शक्तिग्रहो यदि तदा व्यक्तौ शक्तिः। यदि तु गोत्वं शक्यमिति शक्तिग्रहस्तदा गोत्वप्रकारकपदार्थस्मरणं शाब्दबोधश्च न स्यात्। (७१) समानप्रकारकत्वेन शक्तिज्ञानस्य पदार्थस्मरणं शाब्दबोधं प्रति च हेतुत्वात्।

(७०, ७१) शक्तिज्ञान विषय पदार्थमात्रका शाब्दबोधमें यदि भान मानाजाय तो शक्तिज्ञानाविषय संसर्गका शाब्दबोधमें भान नहीं होगा। अतः शक्तिज्ञान विषय पदार्थमात्रका

शाब्दबोधमें भान होता है यह नियम नहीं मानसकते हैं । तब घटपदनिष्ठ शक्तिज्ञानाविषय गवादिका घटपद जन्य स्मृति और शाब्दबोधमें भानकी आपत्ति लगेगी अतः गोत्वप्रकारक गोविशेष्यक स्मृति और शाब्दबोधके प्रति गोत्वनिरूपित शक्तिज्ञानको कारण मानते हैं। फिर व्यक्तिमें शक्ति मानना व्यर्थ है । इस मीमांसक मतका खण्डन " किञ्चेत्यादि " ग्रन्थमें कियाजाता है, कि जातिमात्र शक्तिवादी मीमांसक गौः गोपदशक्या इस प्रकारका यदि शक्तिज्ञान मानें तो व्यक्तिमेंभी शक्ति मा नी होगी । क्योंकि अन्यथा ख्याति नहीं माननेवाले मीमांसक व्यक्तिमें शक्ति नहीं मानकर गौः गोपदशक्या ऐसा शक्तिज्ञान नहीं मानसकते यदि गोत्वम् गोपद शक्यं ऐसा शक्तिज्ञान मानें तो इस शक्तिज्ञानसे गोत्व प्रकारक गो विशेष्यक स्मृति और शाब्दबोध नहीं होसकता है क्योंकि नियम है कि जो शक्तिज्ञान यत्प्रकारक होता है वह तत्प्रकारकही स्मृति और शाब्दबोधको उत्पन्न करता है। इसलिये गोत्वं गोपदशक्यं, इस शक्तिज्ञानको गोत्वत्व प्रकारक गोत्व विशेष्यक होने के कारण गोत्वत्व प्रकारक गोत्व विशेष्यक स्मृति और शाब्दबोधही उस शक्तिज्ञानसे उत्पन्न होंगे और गोत्वप्रकारक गोविशेष्यक स्मृति और शाब्दबोध नहीं उत्पन्न हो सकेंगे ।

(७२) किञ्च गोत्वे यदि शक्तिस्तदा गोत्वत्वं शक्यतावच्छेदकं वाच्यम् । (७३) गोत्वत्वं तु गवेतरासमवेतत्वे सति सकलगोसमवेतत्वम् । (७४) तथा च गोव्यक्तीनां शक्यतावच्छेदकेऽनुप्रवेशात्तवैव गौरवम् ।

(७२,७३,७४) जातिमात्र शक्तिवादी मीमांसकके मतमें यहभी दोष है कि गोत्वमें गोपदकी शक्ति माननेमें शक्यतावच्छेदक गोत्वत्वको मानना होगा । और गोत्वत्व गवेतरा समवेतत्वेसति (गौको छोड़कर अन्यत्र न रहना) सकल गो समवेतत्व (सभीगौओं में रहना) रूप होनेके कारण गोरूप व्यक्तिसे घटित है । अतः गोत्वत्वको शक्यतावच्छेदक माननेवाले मीमांसकको गोरूप व्यक्तिमेंभी शक्यतावच्छेदकत्व मानना पड़ा इससे गौरव होगा और नैयायिकको जातिरूप गोत्वमें शक्यतावच्छेदकत्व माननेके कारण गौरव नहीं होता है ।

(७५) तस्मात्तत्तज्जात्याकृति विशिष्टतत्तद्व्यक्तिबोधानुपपत्त्या कल्प्यमाना शक्तिर्जात्याकृति विशिष्टव्यक्तौ विश्राम्यतीति ।

(७५) इसलिये गोत्वादि तत्तत् जाति अथवा अवयव संयोगरूप आकृति अथवा व्यक्ति (धर्मी) मात्रमें शक्तिमाननेसे तत्तत् जाति और तत्तत् आकृतिविशिष्ट व्यक्तिका तत्तत् पदसे होनेवाली स्मृति और शाब्दबोधमें भान नहीं होगा अतः तत्तत् जाति एवं तत्तत्आकृतिविशिष्टव्यक्तिमें तत्तत् पदकी शक्ति मानी जाती है।

(७६) शक्तं पदं, तच्चतुर्विधम्, क्वचिद्यौगिकं क्वचिद्रूढं क्वचिद्योगरूढं क्वचिद्यौगिकरूढम् । (७७) तथाहि । यत्रावयवार्थ एव बुध्यते तद्यौगिकम् । (७८) यथा पाचकादि पदम् । (७९) यत्रावयवशक्तिनैरपेक्ष्येण समुदायशक्तिमात्रेण बुध्यते तद्रूढम्, यथा गोमण्डलादिपदम् ।

(७६) न्याय मतमें शक्तिमत्त्व ही पदका लक्षण है। वह चार प्रकारका होता है—यौगिक, रूढ़, योगरूढ़ और यौगिकरूढ़। (७७,७८) जो शब्द स्वघटक द्वारा स्वार्थका बोधक होता है वह यौगिक शब्द है जैसे—पाचक शब्द स्व घटक पच् धात्वर्थ (पाक) और अक (णवुल्) प्रत्ययार्थ (कर्ता) द्वारा पाककर्त्तारूप स्वार्थका बोधक होनेके कारण यौगिक कहलाता है। (७९) जो शब्द अपने अवयवार्थके विना स्वार्थका बोधक हो वह रूढ़ है। जैसे—गो और मण्डल आदि पद अपने अपने अवयवार्थके विना गोत्व विशिष्ट और गोलाकार वस्तुविशेषरूप स्वार्थका बोधक होनेके कारण रूढ़ कहलाते हैं।

(८०) यत्र तु अवयवशक्तिविषये समुदायशक्तिरप्यस्ति तद्योगरूढम्। (८१) यथा पङ्कजादिपदम्। (८२) तथाहि पङ्कजपद मवयवशक्त्या पङ्कजनि कर्तृत्वरूपमर्थं बोधयति। (८३) समुदायशक्त्या च पद्मत्वेन रूपेण पद्मं बोधयति। (८४) नच केवलयाऽवयवशक्त्या कुमुदे प्रयोगः स्यादिति वाच्यं, रूढिज्ञानस्य केवलयौगिकार्थज्ञाने प्रतिबन्धकत्वादिति प्राञ्चः।

(८०,८३) जो शब्द अवयवार्थ और समुदायार्थ उभय द्वाराही स्वार्थका बोधकहो वह योगरूढ़ है। जैसे—पङ्कज शब्द अवयवार्थ (पङ्काधिकरणक उत्पत्त्याश्रय) और समुदायार्थ (पद्मत्वजातिविशिष्ट) इन दोनों अर्थोंके द्वारा ही स्वार्थका बोधक होनेके कारण योगरूढ़ कहा जाता है। (८४) शङ्का—कुमुदमें भी पङ्काधिकरणक उत्पत्त्याश्रयत्व रहनेके कारण पङ्कजपदसे केवल अवयव शक्तिसे कुमुदका बोध क्यों नहीं होता? प्राचीनका समा०—तत्पदजन्य यौगिकार्थ मात्र विषयक बोधके प्रति तत्पदनिरूपित रूढ़ि (समुदाय शक्ति) का ज्ञान प्रतिबन्धक है। अतः पद्मत्वा वच्छिन्नमें पङ्कजपद निरूपितरूढ़िको जाननेवाले व्यक्तिको पङ्कज पदसे कुमुदका बोध नहीं होगा।

(८५) वस्तुतस्तु, समुदायशक्त्युपस्थितपद्मेवयवार्थपङ्कजनिकर्तुरन्वयो भवति सांनिध्यात्। (८६) यत्र तु रूढ्यर्थस्य बाधः प्रतिसंधीयते तत्र लक्षणया कुमुदादेर्बोधः। (८७) यत्र तु कुमुदत्वेन रूपेण बोधे न तात्पर्यज्ञानं पद्मत्वस्य च बाधस्तत्रावयवशक्तिमात्रेण निर्वाह इत्याहुः। (८८) यत्र तु स्थलपद्मादावयवार्थबाधस्तत्र समुदायशक्त्या पद्मत्वेन रूपेण बोधः। (८९) यदि तु स्थलपङ्कजं विजातीयमेव तदा लक्षणयैवेति।

(८५) और वास्तविक तो यह है कि पङ्कज पदकी समुदाय शक्तिसे उपस्थापित पद्मत्वावच्छिन्नमें अवयव शक्तिसे उपस्थापित पङ्काधिकरणक उत्पत्त्याश्रयका अव्यवहितोपस्थित होनेके कारण अन्वय होता है। अतः पङ्कज पदसे पङ्काधिकरणकोत्पत्त्याश्रयाभिन्नम् पद्मम्

(कीचड़में पैदा होनेवाला कमल) ऐसा शाब्दबोध होता है। (८६) जहां पङ्कज पदके समुदायार्थ पद्मत्वका बाध निश्चय है। अथवा पद्मत्व विषयक बोधकी सामग्री नहीं है। और कुमुदत्व रूप से बोधमें तात्पर्यज्ञान है वहां पङ्कजपदसे लक्षणया कुमुदका बोध होता है। (८७) और जहांपर कुमुदत्वेन रूपेण बोधमें तात्पर्यज्ञान नहीं है और पङ्कजपदका समुदायार्थ जो पद्मत्व उसका बाध निश्चय अथवा पद्मत्व विषयक बोधकी सामग्रीका अभाव है वहांपर पङ्कजपदसे अवयव शक्तिमात्रोपस्थापित पङ्काधिकरणक उत्पत्त्याश्रयका, बोध होता है। (८८) जहांपर स्थलकमलमें पङ्कज पदके अवयवार्थ पङ्काधिकरणक उत्पत्त्याश्रयत्वका बाध निश्चय है। वहांपर पङ्कजपदसे केवल समुदाय शक्तिकी महिमासे पद्मत्वेन रूपेण स्थल पद्मका बोध होता है। (८९) यदि स्थल कमलमें पद्मत्व जाति प्रमाण सिद्ध नहीं हो किन्तु उसमें विलक्षण एक जाति मानी जाय तो पङ्कज पदसे लक्षणा द्वारा उस विलक्षण जातिके आश्रय जो स्थल कमल उसका बोध होगा।

(९०) यत्रावयवार्थ रूढ्यर्थयोः स्वातन्त्र्येण बोधस्तद्यौगिकरूढम्। यथोद्भिदादिपदम् । तत्र हि उद्भेदनकर्ता तरुगुल्मादिरपि बुध्यते यागविशेषोऽपीति ।

(९०) जो शब्द कहीं केवल अवयवार्थ (यौगिकार्थ) का और कहीं केवल रूढ्यर्थ (समुदायार्थ) का बोधक होता है वह यौगिक रूढ़ कहजाता है जैसे-उद्भिदादि शब्द कहीं केवल यौगिकार्थ भूम्यादि के उद्भेदन कर्त्ता तरु गुल्मादिका और कहीं केवल रूढ्यर्थ उद्भिद् नामक याग विशेषका बोधक होनेके कारण यौगिक रूढ़ कहाजाता है।

का० नं० ८२ पूर्वा०

लक्षणा शक्यसंबन्धस्तात्पर्यानुपपत्तितः ।

का० अर्थ।

शक्य सम्बन्धका नाम लक्षणा है। तात्पर्यकी अनुपपत्ति जहां ज्ञात होती है उस जगह लक्षणासे पदार्थकी स्मृति और शाब्द बोध होते हैं।

(१) गङ्गायां घोष इत्यादौ गङ्गापदस्य शक्यार्थे प्रवाहरूपे घोषस्यान्वयानुपपत्तिस्तात्पर्यानुपपत्तिर्वा यत्र प्रतिसंधीयते तत्र लक्षणया तीरस्य बोध इति ।

(१) " गङ्गायां घोषः " इत्यादि स्थलमें गङ्गापदके प्रवाह रूप शक्यार्थमें घोष पदार्थकी अन्वयानुपपत्ति अथवा वक्ताकी तात्पर्यानुपपत्तिका ज्ञान जहां होता है उस जगह लक्षणासे लक्ष्यार्थ तटका बोध होता है।

(२) सा च शक्यसंबन्धरूपा। (३.) तथाहि प्रवाहरूपशक्यार्थसंबन्धस्य तीरे गृहीतत्वात्तीरस्य स्मरणम् ततः शाब्दबोधः। (४) परंतु यद्यन्वयानुपपत्तिर्लक्षणाबीजं स्यात्तदा यष्टीः प्रवेशयेत्यत्र लक्षणा न स्यात् यष्टिषु प्रवेशान्वयस्यानुपपत्तेरभावात्, तत्र च यष्टि प्रवेशे भोजनतात्पर्यानुपपत्त्या यष्टिधरेषु लक्षणा।

(२,३) लक्षणा शक्य सम्बन्ध रूप है "गङ्गायां घोषः" यहां गङ्गापदके प्रवाह रूप शक्यार्थका सामीप्यरूप सम्बन्ध जब तीरमें ज्ञात होता है तब एक सम्बन्धिज्ञानविधया गङ्गा पदज्ञानसे गङ्गापदके शक्य सम्बन्धी तीरका स्मरण और तदनन्तर उसका शाब्दबोध होता है। (४) अन्वयानुपपत्तिको यदि लक्षणाका बीज माना जाय तो यष्टिधरको भोजन कराने के तात्पर्यसे जहां "यष्टीः प्रवेशय ऐसा" कहागया है वहाँ यष्टिकी कर्मतामें और उसकी प्रवेश क्रियामें अन्वयानुपपत्ति नहीं रहने के कारण यष्टि पदका यष्टिधरमें लक्षणा नहीं होगी।

(५) एवं काकेभ्यो दधि रक्ष्यतामित्यादौ काकपदस्य दध्युपघातके लक्षणा सर्वतो दधिरक्षायास्तात्पर्यविषयत्वात्। (६) एवं छत्रिणो यान्तीत्यादौ छत्रिपदस्यैकसार्थवाहित्वे लक्षणा। (७) इयमेवाजहत्स्वार्था लक्षणेत्युच्यते, एकसार्थवाहित्वेन रूपेण छत्रितदन्ययोर्बोधात्।

(५,६,७) एवं दधिनाशक काक विलाड़ आदि जन्तुओंसे दधिरक्षाके तात्पर्यसे जहां "काकेभ्यो दधिरक्ष्यताम्" ऐसा कहा जाता है वहां काककी अन्वयानुपपत्ति नहीं रहने के कारण काक पदकी दधिनाशक जन्तुमें लक्षणा नहीं होगी। एवं छत्रधारी व्यक्तियोंके एक साथ जाने वाले जनसमूहके तात्पर्य से जहां "छत्रिणो यान्ति" ऐसा कहा जाता है वहां भी छत्रीकी अन्वयानुपपत्ति नहीं रहने के कारण छत्रिपदकी छत्रि सार्थवाही अर्थात् छत्रियोंके साथ जानेवाले जनसमूहमें लक्षणा नहीं होगी। और तात्पर्यानुपपत्तिको लक्षणाका बीज माननेपर क्रमसे उन उन स्थलोंमें यष्टिधरके भोजन तात्पर्य की अनुपपत्ति एवं सभी दध्युपघातकोंसे दधिरक्षा तात्पर्यकी अनुपपत्ति तथा छत्रि सार्थवाहीके गमन तात्पर्यकी अनुपपत्ति रहने के कारण उन उन स्थलोंमें लक्षणाकी उपपत्ति होती है। "काकेभ्यो दधिरक्ष्यताम्" इस स्थलमें जो काक पदकी दध्युपघातकमें लक्षणा एवं "छत्रिणोयान्ति" इस स्थलमें जो छत्रिपदकी छत्रि सार्थवाहीमें लक्षणा है वह क्रम से काकपद शक्यार्थ काक वृत्ति दध्युपघातकत्वावच्छिन्नमें एवं छत्रिपद शक्यार्थ छत्रि वृत्ति छत्रिसार्थवाहित्वावच्छिन्नमें होनेके कारण अजहत् स्वार्थालक्षणा कहलाती है। शक्यार्थ और लक्ष्यार्थ दोनों में वृत्ती धर्म जह लक्ष्यतावच्छेदक होता है वह लक्षणा अजहत् स्वार्था लक्षणा है यथा—उक्त दोनों स्थलोंमें "दध्युपघातकत्व" एवं "छत्रिसार्थवाहित्व रूप" लक्ष्यतावच्छेदक धर्मको क्रमसे काकपदके शक्यार्थ काकमें और लक्ष्यार्थ विलाड़ आदिमें एवं छत्रिपदके शक्यार्थ छत्रविशिष्टमें और लक्ष्यार्थ छत्रशून्य छत्रिसार्थवाही व्यक्तिमें रहनेके कारण उक्तदोनों स्थलोंमें काकपदकी दध्युपघातकत्वावच्छिन्नमें एवं छत्रिपदकी छत्रिसार्थवाहित्वावच्छिन्नमें लक्षणा अजहत् स्वार्था लक्षणा है।

(८) यदि चान्वयानुपपत्तिर्लक्षणाबीजं स्यात्तदा क्वचिद्गङ्गापदस्य तीरे क्वचिद्घोषपदस्य मत्स्यादौ लक्षणेति नियमो न स्यात्।

(८) तात्पर्यानुपपत्ति ही लक्षणाका बीज है इसमें एक यह भी युक्ति है कि गङ्गामें रहनेवाले मत्स्यके तात्पर्यसे उच्चारण किये गये गङ्गायां घोषः इस वाक्यमें घोष पदकी मत्स्यमें लक्षणा है और गङ्गा पदकी तीरमें लक्षणा नहीं है। एवं तीरनिष्ठ घोषके तात्पर्यसे उच्चारण कियेगये गङ्गायां घोषः इस वाक्यमें गङ्गा पदकी तीरमें लक्षणा है और घोष पदकी मत्स्यमें लक्षणा नहीं है क्योंकि वैसा माननेसे तात्पर्यकी उपपत्ति नहीं होगी। यदि अन्वयानुपपत्ति लक्षणाका बीज माना जाय तो "गङ्गायां घोषः" इस स्थलमें उक्त नियमकी उपपत्ति नहीं होगी। क्योंकि गङ्गा पदकी तीरमें अथवा घोष पदकी मत्स्यमें लक्षणा मानने-ही से अन्वयकी उपपत्ति हो जायगी।

(९) इदं तु बोध्यम्। शक्यार्थसम्बन्धो यदि तीरत्वेन रूपेण गृहीतस्तदा तीरत्वेन तीरबोधः। (१०) यदि तु गङ्गातीरत्वेन रूपेण गृहीतस्तदा तेनैव रूपेण स्मरणम्। (११) अत एव लक्ष्यतावच्छेदके न लक्षणा, तत्प्रकारकबोधस्य तत्र लक्षणां विनाप्युपपत्तेः (१२) परंत्वेवं क्रमेण शक्यतावच्छेदकेऽपि शक्तिर्न स्यात्, तत्प्रकारकशक्यबोधस्मरणं प्रति तत्पदस्य सामर्थ्यमित्यस्य सुवचत्वादिति विभावनीयम्।

(९,१०) यह समझना चाहिये कि "गङ्गायां घोषः" इस स्थलमें यदि गङ्गापदके शक्यार्थ प्रवाहका सामीप्य सम्बन्ध रूप गङ्गा पदकी लक्षणा तीरत्व रूपसे तीरमें गृहीत होती है अर्थात् "तीरं गङ्गा पद शक्य सम्बन्धि" ऐसा ज्ञान होता है तो गङ्गापदसे तीरत्वेन रूपेण तीरकी उपस्थिति और शाब्दबोध होता है और यदि गङ्गा तीरत्वेन रूपेण तीरमें गृहीत होती है अर्थात् "गङ्गा तीरं गङ्गापद शक्य सम्बन्धि" इत्याकारक ज्ञान होता है तो गङ्गा तीरत्वेन रूपेण तीरकी गङ्गापदसे उपस्थिति और शाब्दबोध होता है इससे पर्यवसित यह हुआ कि तत्प्रकारक उपस्थिति और शाब्दबोध के प्रति तत्प्रकारक लक्षणा ज्ञान भी कारण है (११) अतएव लक्ष्यतावच्छेदकमें लक्षणा नहीं मानने परभी लाक्षणिक पदसे लक्ष्यतावच्छेदक रूपसे लक्ष्यकी उपस्थिति और शाब्दबोधकी उपपत्ति होनेके कारण लक्ष्यतावच्छेदकमें लक्षणा नहीं मानी जाती है। (१२) परंतु यह बात यहां विशेष ध्यान देनेके योग्य है कि इस रीति से शक्यतावच्छेदकमें शक्ति माननेकी भी कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। क्योंकि घटत्वादि तत्तत्प्रकारक स्मृति और शाब्दबोधके प्रति घटत्वादि तत्तत्प्रकारक शक्तिज्ञानको कारणत्व माननेहीसे घटादि पदसे घटत्वप्रकारक उपस्थिति और शाब्दबोधकी उपपत्ति होजायगी। तब घटत्वादिरूपसे शक्यतावच्छेदकमें घटादिपदकी शक्ति स्वीकार करना व्यर्थ होजायगा।

(१३) यत्र तु शक्यार्थस्य परम्परासम्बन्धरूपा लक्षणा सा लक्षित-लक्षणेत्युच्यते। (१४) यथा द्विरेफादिपदे रेफद्वय सम्बन्धो भ्रमरपदे ज्ञायते भ्रमरपदस्य च सम्बन्धो भ्रमरे ज्ञायते तत्र लक्षित लक्षणा।

(१३) जहां शक्यार्थका लक्ष्यार्थमें परम्परा सम्बन्ध अर्थात् सम्बन्धघटित सम्बन्ध होता है वहांकी लक्षणा लक्षित लक्षणा कही जाती है। (१४) जैसे—द्विरेफादि पदका स्वशक्य रेफद्वयका घटितत्वसम्बन्ध भ्रमर पदमें ज्ञात होता है एवं भ्रमर पदका वाच्यत्व सम्बन्ध भ्रमररूप अर्थमें ज्ञात होता है अतः द्विरेफ पदका स्वशक्य रेफद्वय घटित पद वाच्यत्वरूप परम्परा सम्बन्ध भ्रमरमें रहनेके कारण द्विरेफ पदकी भ्रमरमें लक्षणा लक्षित लक्षणारूपा है।

(१५) किन्तु लाक्षणिकं पदं नानुभावकं लाक्षणिकार्थस्य शाब्दबोधे तु पदान्तरं कारणम्, (१६) शक्ति लक्षणा न्यतरसम्बन्धेनेतरपदार्थान्वितस्व शक्यार्थे शाब्दबोधं प्रति पदानां सामर्थ्यावधारणात्। (१७) वाक्ये तु शक्तेरभावाच्छक्यसम्बन्ध रूपा लक्षणाऽपि नास्ति।

(१५) मीमांसक लाक्षणिक पदसे शाब्दबोध नहीं मानते हैं अतएव उनके मत में "कुमतिः पशुः" इस वाक्यमें दोनों पदोंको कुत्सितज्ञानविशिष्ट और पशुसदृश रूप अर्थमें लाक्षणिक होने के कारण उक्त वाक्यसे शाब्द बोध नहीं होता है इसलिये तद्विषयक शाब्द बोधके प्रति तद्वाचक पदज्ञानको कारण मानते हैं, परन्तु इसप्रकार कार्य्य कारण भाव माननेसे गङ्गायां घोषः यहांभी तीर वाचकपद ज्ञानको नहीं रहने के कारण तीर विषयक शाब्द बोध नहीं होगा। इसहेतु उक्त कार्य्य कारण भावको नहीं मानकर। (१६) शक्ति लक्षणान्यतर सम्बन्धद्वारा इतरपदसे उपस्थापित जो अर्थ तदन्वित स्वशक्यार्थ विषयक शाब्दबोधके प्रति ज्ञायमान पद अथवा पदज्ञानको कारणता मानते हैं। तब "गङ्गायां घोषः" इस स्थलमें लक्षणा रूप सम्बन्धसे गङ्गा पदोपस्थापित तीर रूप अर्थसे अन्वित जो घोष पद शक्यार्थ घोष तद्विषयक शाब्दबोधके प्रति घोषपदज्ञान कारण है अतः उक्त स्थलमें शाब्द बोधकी अनुपपत्ति नहीं होती। और "कुमतिः पशुः" इस वाक्यमें एक भी वाचक पद नहीं है अतः स्वशक्यार्थ अप्रसिद्ध हो जाने से शाब्दबोध नहीं होता। (१७) मीमांसक मत सिद्ध वाक्य लक्षणाका खण्डन करते हैं कि वाक्य घटक तत्तत्पदमें शक्ति माननेही से वाक्यार्थ विषयक शाब्द बोध उपपन्न होजाता है इसलिये वाक्यमें शक्ति स्वीकार करना व्यर्थ है अतः वाक्यका शक्यार्थ अप्रसिद्ध होने के कारण वाक्यमें शक्य सम्बन्ध रूप लक्षणा नहीं होती है।

(१८) यत्र गंभीरायां नद्यां घोष इत्युक्तं तत्र नदी पदस्य नदीतीरे लक्षणा, गंभीरपदार्थस्य नद्या सहाभेदेनान्वयः (१९) क्वचिदेकदेशान्वयस्यापि स्वीकृतत्वात्।

(१८) गटत्वरूप पदार्थैक देशमें नित्यपदार्थका, अभेद सम्बन्ध से अन्वय मानकर "नित्यो घटः" इस प्रयोग में भी प्रामाण्यापत्ति हो जायगी इसलिये "पदार्थः पदार्थे नान्वेति नतु पदार्थैकदेशेन" अर्थात् पदार्थैक देशके साथ पदार्थका अन्वय नहीं होता है किन्तु मुख्य पदार्थही के साथ होता है। यह नियम मानना आवश्यक है। तब यदि वाक्यमें लक्षणा नहीं मानी जायगी तो "गभीरायां नद्यां घोषः" इस स्थल में नदी पदकी नदी तीर में लक्षणा एवं गभीर पदार्थ का नदीतीर रूप नदी पदार्थ के एक देश नदी रूप अर्थ में अन्वय आपको मानना होगा ऐसी स्थिति में "पदार्थः पदार्थे नान्वेति" इत्यादि नियम का भङ्ग होजायगा। और यह इष्ट नहीं है। (१९) इसका उत्तर देते हैं कि "महा कायः,, परम सुन्दरः" इत्यादि स्थल में कवित्व सौन्दर्यादि रूप पदार्थैक देश में क्रमशः महत्, परम, पदार्थ का अन्वय होने के कारण "पदार्थः पदार्थे नान्वेति" इत्यादि नियम सार्वत्रिक नहीं है अत "गभीरायां नद्यां घोषः" इस स्थल में भी उक्त नियम को नहीं मानकर अर्थात् एक देशान्वय मानकर नदी पदकी नदी तीर में लक्षणा और नदी पदार्थैक देश नदीरूप अर्थमें गभीर पदार्थ का अन्वय मानने में कोई बाधा नहीं है।

(२०) यदि त्वेकदेशान्वयो न स्वीक्रियते तदा नदीपदस्य गभीरनदीतीरे लक्षणा गभीर पदं तात्पर्यग्राहकम्। (२१) बहुव्रीहावप्येवम्। तत्र हि चित्रगुपदादौ यद्येकदेशान्वयः स्वीक्रियते तदा गोपदस्य गो स्वामिनि लक्षणा गवि चित्राभेदान्वयः। (२२) यदि त्वेकदेशान्वयो न स्वीक्रियते तदा गोपदस्य चित्र गोस्वामिनि लक्षणा चित्रपदं तात्पर्यग्राहकम्।

(२०) यदि "गभीरायां नद्यां घोषः" इत्यादि स्थल में एक देशान्वय स्वीकार न करें अर्थात् "पदार्थः पदार्थे नान्वेति" इत्यादि नियमको माने तो एकदेशान्वय के भय से नदी पदकी नदी तीर में लक्षणा आप नहीं मान सकते हैं अतः नदी पदकी गभीर नदी तीर में लक्षणा है और गभीर पद केवल तात्पर्य्यग्राहक है अर्थात् (गभीर नदीतीर विषयक घोषेच्छा से नदी पद वक्ता पुरुष से उच्चरित है) इस तात्पर्य्य को समझाता है। (२१)- इसीप्रकार बहुव्रीहि समास में भी समझना चाहिये जैसे "चित्रा गौर्यस्य असौ चित्रगुः" इत्यादि बहुव्रीहि समास में यदि एक देशान्वय का स्वीकार करें अर्थात् उक्त नियम को नहीं मानें तो गोपदकी गोस्वामी में लक्षणा और गो पदार्थैक देश गो रूप अर्थ में चित्र पदार्थ का अभेदान्वय समझना चाहिये। (२२) यदि एकदेशान्वय का स्वीकार नहीं करें तो गोपदकी चित्राभिन्न गो स्वामी में लक्षणा और चित्रपद को तात्पर्य्यग्राहक समझना चाहिये।

(२३) एवमारूढवानरो वृक्ष इत्यत्र वानरपदस्य वानरारोहण कर्मणि लक्षणा आरूढपदं तात्पर्यग्राहकम्। एवमन्यत्रापि बोध्यम्।

(२३) इसीप्रकार "आरूढ़ः वानरःयं (वृक्षं) असौ आरूढ़ वानरो वृक्षः" इत्यादि समासस्थलमें भी वानर पदकी वानर कर्त्तृक आरोहणरूप क्रियाके कर्ममें लक्षणा और आरूढ़-पद तात्पर्य्य ग्राहक है। इसीप्रकार स्थानान्तर में भी समझना चाहिये।

(२४) तत्पुरुषे तु पूर्वपदे लक्षणा तथाहि। राजपुरुष इत्यादौ राजपदार्थेन सह पुरुषादिपदार्थस्य साक्षान्नान्वयो निपातातिरिक्त नामार्थयो-र्भेदेनान्वय बोधस्या व्युत्पन्नत्वात्। (२५) अन्यथा राजापुरुष इत्यत्रापि तथा-न्वयबोधःस्यात्।

(२४) एवं तत्पुरुष समास में पूर्व पदमें लक्षणा होती है। जैसे राज्ञः पुरुषः राज पुरुषः इत्यादि षष्ठी तत्पुरुष समास में राजपदार्थ के साथ पुरुष पदार्थका साक्षात् भेद अर्थात् अभे-दातिरिक्त स्वत्वादि सम्बन्धसे अन्वय नहीं हो सकता क्योंकि यह नियम है कि निपातातिरिक्त नामार्थद्वयका साक्षात् भेद सम्बन्धसे अन्वय नहीं होताहै (२५) अन्यथा (यदि निपाताति-रिक्त नामार्थद्वयका भी साक्षात् भेद सम्बन्धसे अन्वय माना जाय तो) राजापुरुषः इस स्थलमें भी स्वत्वादिरूप भेद सम्बधसे अन्वय बोध होने लगेगा इसलिये उक्त नियमका मानना अत्यन्त आवश्यक है

(२६) पटो न घट इत्यादौ घटपटाभ्यां नञः साक्षाद्भेदान्वय न्निपातातिरिक्तेति। (२७) नीलो घट इत्यादौ नमार्थयो रभेदसम्बन्धेनान्वया द्भेदेनेति।

(२६) "पटोन घटः" इत्यादि स्थल मे घटका प्रतियोगिता सम्बन्धसे नञर्थ भेदमें एवं भेदका अनुयोगिता सम्बन्धसे पटमें अन्वय होने के कारण नियम में निपाताति-रिक्तत्व विशेषण दिया गया है नञ् को निपातरूप होने के कारण निपातातिरिक्त नामार्थ में नञर्थ भेदका ग्रहण नहीं होगा अतः नञर्थ भेदमें घटका प्रतियोगिता सम्बन्ध से एवं पटमें भेदका अनुयोगिता सम्बन्ध से अन्वय होनेपर भी नियम में व्यभिचार नहीं होगा (२७("नीलोघटः" इत्यादि स्थल में नील और घटरूप नामार्थद्वयका अभेद सम्बन्ध से अन्वय होता है अतः नियम में भेद अर्थात् अभेदातिरिक्त सम्बन्धकी विवक्षा की गई है। इस नि-यम के अनुरोधसे राज पदार्थका पुरुष पदार्थ में स्वत्व सम्बन्धसे अन्वय नहीं हो सकता है।

(२८) न च राजपुरुष इत्यादौ लुप्तविभक्तेः स्मरणं कल्प्य मिति वाच्य-म्। अस्मृतविभक्तेरपि ततो बोधोदयात् (२९) तस्माद्राजपदादौ राज-सम्बन्धिनि लक्षणा, तस्य च पुरुषेण सहाभेदान्वयः (३०) द्वन्द्वे तु धवखदिरौ छिन्धीत्यादौ धवः खदिरश्च विभक्त्यर्थं द्वित्वप्रकारेण बुध्यते तत्र न लक्षणा

(२९) „शङ्का„—राजपुरुष इत्यादि स्थल में राजपदोत्तर लुप्त षष्ठी विभक्ति स्मरण की कल्पना कर के राजपदार्थ का षष्ठ्यर्थ स्वत्व में निरूपितत्व सम्बन्ध से एवं स्वत्व पुरुष में स्वरूपसम्बन्धसे अन्वय द्वारा राज निरूपित स्वत्ववान् पुरुषः इत्याकारक शाब्दबोध राज पुरुष इस समासस्थल में हो ही जायगा फिर राज पदकी राजसम्बन्धी में लक्षणा व्यर्थ है समा०—जिस पुरुषको विभक्तिका स्मरण नहीं भी हुआ है अर्थात् प्रकृति प्रत्ययानभिज्ञ पुरु को भी राजपुरुष इत्यादि समासस्थलमें शाब्दबोध होता है लेकिन अब यह नहीं होगा। (२ अतः राजपुरुष इत्यादि समासस्थल में राज पदकी राज सम्बन्धीमें लक्षणा मानकर राज सम्बन्धीका पुरुषके साथ अभेदान्वय मानना ही युक्त है। (३०) एवं "धव खदिरौ छिन्धि इत्यादि इतरेतर योग द्वन्द्व समासमें द्विवचनार्थ द्वित्वप्रकारक धवखदिरविशेष्यक बोध होत है अतः इतरेतर योगद्वन्द्व में लक्षणा माननेकी आवश्यकता नहीं है।,

(३१) न च साहित्ये लक्षणेति वाच्यम् साहित्य शून्ययो रपि द्वन् दर्शनात्।

(३१) प्रत्येक वृत्ति धर्ममें समुदायवृत्तित्वका अनुभव नहीं होता अतः द्वित्व संख्याको प्रत्येक में वृत्तित्व मानना आवश्यक है, तब घट और आकाश इन दोनों में वर्त्तम द्वित्वको आकाशमें भी वर्त्तमान होनेके कारण आकाशौ इस वाक्य को प्रामाण्यापत्ति होजा गी तद्वारणार्थ यह नियम माना गया है कि उद्देश्यतावच्छेदक व्याप्य जो संख्या वही सु विभक्तिका अर्थ है तब घटाकाशोभयवृत्ति द्वित्व संख्या को आकाशत्वरूप उद्देश्यतावच्छेदक का व्याप्य नहीं होनेके कारण उस द्वित्वका सुप् विभक्तिसे बोध नहीं होगा अतः "आकाशौ इसवाक्य में प्रामाण्यापत्ति नहीं हो सकती है परन्तु उक्त नियम मानने पर "धवखदिरौ इत्यादि इतरेतर योग द्वन्द्वसमास में खदिर रूप उत्तर पदको धवखदिरोभयनिष्ठ साहित्याश्रय लक्षणा मानना युक्त है क्योंकि यदि लक्षणा नहीं मानी जायगी तो "धवखदिरौ" इस वाक्य सुबर्थ द्वित्वका उद्देश्यतावच्छेदक अगत्या धवत्व और खदिरत्व को ही मानना होगा। त एक धव और एक खदिर वृत्ति द्वित्वको धवत्वखदिरत्वात्मक उद्देश्यतावच्छेदक का व्याप्य न होने के कारण एवं धवद्वयनिष्ठ द्वित्वको धवत्वरूप उद्देश्यतावच्छेदक का व्याप्य, और खदि द्वयनिष्ठ द्वित्वको खदिरत्वरूप उद्देश्यतावच्छेदक का व्याप्य होनेके कारण एक धव और एक खदिर के तात्पर्यसे "धव खदिरौ" यह प्रयोग नहीं होगा और धवद्वय तथा खदिरद्वय तात्पर्यसे उक्त प्रयोग होने लगेगा इस कारण मीमांसक लोग खदिररूप उत्तर पद की ध खदिरोभयवृत्ति साहित्याश्रयमें लक्षणा मानते हैं। तब उक्त साहित्य हीको सुबर्थ द्वित्व उद्देश्यतावच्छेदक होनेके कारण उक्त साहित्यरूप उद्देश्यतावच्छेदकका व्याप्यसंख्या एक ध तथा एक खदिर गत द्वित्व होगा न कि धवद्वय वृत्ति एवं खदिरद्वयवृत्ति द्वित्व होगा इसलि एक धव और एक खदिर के तात्पर्य से "धवखदिरौ" यह प्रयोग होगा और धवद्वय खदिरद्वयके तात्पर्यसे उक्त प्रयोग नहीं होगा। लेकिन इस तरह मीमांसकों का खदिर उत्तर पदकी धव खदिरोभयवृत्ति साहित्याश्रयमें लक्षणा मानना युक्त नहीं है क्योंकि सामान धिकरण्यरूप साहित्य शून्य विरुद्ध घटत्व तथा पटत्व के तात्पर्य से भी "घटत्व पटत्वेस्त इत्यादि स्थलमें द्वन्द्वसमास देखाजाता है।

(३२) नचैक क्रियान्वयित्वरूपं साहित्यमस्तीति वाच्यम् । क्रियाभेदेपि धवखदिरौ पश्य छिन्धीत्यादि दर्शनात् साहित्यस्याननुभवाच्च । (३३) अत एव राजपुरोहितौ सायुज्यकामौ यजेयातामित्यत्र लक्षणा भावाद् द्वन्द्व आश्रीयते तस्मात्साहित्यं नार्थः ।

(३२) शङ्का—सामानाधिकरण्यरूप साहित्याश्रयमें लक्षणा नहीं है किन्तु एक क्रियान्वयित्व रूप साहित्याश्रयमे ही लक्षणा मानते हैं अतः घटत्व पटत्त्वादि रूप विरुद्ध पदार्थोंमे सामानाधिकरण्यात्मक साहित्य नहीं रहने पर भी घटत्व पटत्वेस्तः" इस स्थल में अस् धात्वर्थ रूप एक क्रियान्वयित्वात्मक साहित्य रहनेके कारण द्वन्द्व समासकी अनुपपत्ति नहीं होगी। समा०-धव दर्शन एवं खदिरच्छेदन तात्पर्येण धव खदिरौ पश्य छिन्धि इत्यादि स्थलमें एक क्रियान्वयित्व रूप साहित्य के धव खदिरोभय में वृत्ती नहीं होने परभी उक्त स्थल में द्वन्द्व समास होता है किन्तु अब वह नहीं होगा। एक युक्ति यह भी है कि द्वन्द्व स्थल में साहित्य विषयक बोधका अनुभव भी नहीं होता है अतः साहित्याश्रयमें लक्षणा युक्ति सिद्ध नहीं है। परन्तु साहित्याश्रयमें लक्षणा नहीं मानने वाले नैयायिकोंके मत में एक धव तथा एक खदिरके तात्पर्यसे धव खदिरौ इस वाक्य की अनुपपत्ति और धवद्वय एवं खदिरद्वयके तात्पर्यसे उक्त वाक्य की आपत्तिरूप दोषका वारण नहीं होगा इसका समाधान नैयायिक लोग इस प्रकार करते हैं कि जहां एक धर्म उद्देश्यतावच्छेदक है उसी स्थलमे सुप् विभक्तिको उद्देश्यतावच्छेदक व्याप्य संख्या बोधकत्व का नियम है और नाना धर्म जहां उद्देश्यतावच्छेदक है वहां उक्त नियम नहीं मानते हैं। अतः आकाशत्वरूप एक धर्म को उद्देश्यतावच्छेदकत्व स्थलमें उक्त नियम माननेके कारण "आकाशौ" इस वाक्य को प्रामाण्यापत्ति नहीं होगी एवं धवत्व तथा खदिरत्व रूप नाना धर्म को उद्देश्यतावच्छेदकत्व स्थल में उक्त नियम को नहीं मानने के कारण एक धव तथा एक खदिर के तात्पर्यसे "धव खदिरौ" इस वाक्य की प्रमाणता में कोई बाधा नहीं होगी। (३३) साहित्याश्रयमें लक्षणा नहीं मानने वाले नैयायिकों के मत का पोषक एक यह भी युक्ति है कि "राजपुरोहितौ सायुज्यकामौ यजेयाताम्" इस विधिवाक्यस्थलमें राज्ञः पुरोहितौ राजपुरोहितौ यह षष्ठी तत्पुरुष अथवा राजा च पुरोहितश्च इति राज पुरोहितौ यह द्वन्द्व समास है इस संशय को निराकरण करते हुए पूर्वाचार्योंने कहा है कि षष्ठी तत्पुरुष समास मानने से लक्षणा की कल्पना प्रयुक्त गौरव होगा अतः उक्त विधि वाक्यमें द्वन्द्व समास माननाहीं उचित है। किन्तु यदि द्वन्द्व समास में भी लक्षणा मानी जाय तो पूर्व आचार्योंका उक्त कथन असंगत हो जायगा। इससे भी यह पर्यवसित हुआ कि उक्त इतरेतर द्वन्द्व समासस्थल मे लक्षणा स्वीकार करना युक्त नहीं है।

(३४) किन्तु वास्तवो भेदो यत्र तत्र द्वन्द्वः न च नीलघटयोरभेद इत्यादौ कथमिति वाच्यम् । तत्र नीलपदस्य नीलत्वे घटपदस्य घटत्वे लक्षणा, अभेद

इत्यस्य चाश्रयाभेद इत्यर्थात्। (३५) समाहार द्वन्द्वे तु यदि समाहारोऽप्यनुभूयत इत्युच्यते तदा अहिनकुलमित्यादौ परपदे अहिनकुलसमाहारे लक्षणा पूर्वपदं तु तात्पर्यग्राहकम्।

(३४) परन्तु यदि आप ऐसा कहें कि कर्मधारय समास के समान द्वन्द्व समास में भी यदि लक्षणा नहीं मानी जायगी तो कर्मधारय से द्वन्द्व में भेद नहीं होगा। इसका उत्तर ग्रन्थकार इस प्रकार देते हैं कि समस्यमान दोनों पदों के अर्थों में जहां परस्पर वास्तविक भेद रहता है उसको द्वन्द्व समास कहते हैं और जहां भेद नहीं रहता है उसको कर्मधारय समास कहते हैं।

शङ्का—यदि समस्यमान दोनों पदार्थों में परस्पर भेदही लक्षणा का बीज होतो "नील घटयो रभेदः" इस स्थलमें नील और घट इन दोनों पदार्थों में परस्पर भेद नहीं रहने के कारण द्वन्द्व समास किस प्रकार होगा? समा०—नील और घट पदके क्रमसे नीलत्व और घटत्व रूप अर्थमें लक्षणा है अतः उन दोनोंमें परस्पर भेद रहनेके कारण द्वन्द्व समासकी अनुपपत्ति नहीं होगी और अद्यापि घटका अभेद परका आश्रयाभेद अर्थ है अतः अर्थ में भी बाधा नहीं होगी जिस हेतु नीलत्व और घटत्व के आश्रयमें अभेद है ऐसा अर्थ हुआ। (३५) "अहिनकुलम्" इत्यादि समाहार द्वन्द्व में यदि अहिनकुल समुदायत्व रूप समाहार के बोध कासी अनुभव होतो नकुलपद उत्तर पदकी अहिनकुल समाहार में लक्षणा मानकर अहिपद पूर्व पदमें तात्पर्य ग्राहकत्व मानना आवश्यक है।

(३६) न च भेरीमृदङ्गं वादयेत्यत्र कथं समाहारस्यान्वयः, अपेक्षाबुद्धि विशेषरूपस्य तस्य वादनासम्भवादिति वाच्यम्। परम्परासम्बन्धेन तदन्वयात्।

(३६) शङ्का—समाहार द्वन्द्वमें यदि पर पदकी समुदायत्वरूप समाहार में लक्षणा मानी जाय तो "भेरीमृदङ्गम्वादय" इस स्थलमें शब्दजनक संयोगानुकूल व्यापार रूप वादन क्रियाकी कर्मतारूप द्वितीयार्थ में समुदायत्व रूप प्रकृत्यर्थ समाहार का अन्वय किस प्रकार हो सकता है? समा०—वादन क्रियाकी कर्मता समुदायत्व निष्ठ नहीं होनेके कारण उक्त कर्मता में समुदायत्वरूप प्रकृत्यर्थका निष्ठत्व सम्बन्ध से अन्वय नहीं करके परम्परा अर्थात् सामानाधिकरण्य सम्बन्धसे अन्वय करते हैं। अतः भेरीमृदङ्गनिष्ठ उक्त कर्मतामें तन्निष्ठ समुदायत्व का सामानाधिकरण्य सम्बन्ध से रहने के कारण अन्वयबोधकी बाधा नहीं होगी।

(३७) एवं पञ्चमूलीत्यादावपि। परे त्वहिनकुल मित्यादा वहिर्नकुलश्च बुध्यते प्रत्येक मेकत्वान्वयः, समाहारसंज्ञा च ऐकत्वं नपुंसकत्वं च प्राणितूर्येत्यादिसूत्रेणोक्तं तत्रैव, अन्यत्रैकवचनमसाध्वित्याहुः।

(३७) जैसे "अहिनकुलम्" इत्यादि स्थल में नकुल पदकी अहिनकुल समाहारमें लक्षणा और अहि पदमें तात्पर्यग्राहकत्व माना गया है इसी प्रकार पञ्चानां मूलानां समाहारः पञ्चमूली इत्यादि स्थलमें भी मूल पदकी पञ्चमूल समाहारमें लक्षणा और पञ्चरूप पूर्व पदमें तात्पर्यग्राहकत्व माना जाता है। नवीन नैयायिकों का मत है कि अहिनकुलम् इत्यादि समाहार द्वन्द्व स्थलमें अहिनकुल समुदायत्व का बोध नहीं होता है किन्तु एक वचनार्थ एकत्वप्रकारक अहि नकुल प्रत्येक विशेष्यक बोधमात्रका अनुभव होता है। इसलिये वहां नकुल पदकी अहि नकुल समुदायत्व में लक्षणा और पूर्व पदमें तात्पर्यग्राहकत्व मानना व्यर्थ है। "द्वन्द्वश्च प्राणितूर्य सेनाङ्गानाम्" "सनपुंसकम्" इन पाणिनीय सूत्रोंसे क्रमिक जहां पद साधुत्वार्थ एक वचनान्तत्व और नपुंसकत्वका विधान किया गया है वह समाहार द्वन्द्व कहाजाता है समाहार शब्द पारिभाषिक मात्र है। समाहारका अन्वयबोध नहीं होता है। समाहार संज्ञाका प्रयोजन यह है कि समाहारातिरिक्त अर्थात इतरेतर द्वन्द्व स्थल में एकवचन विभक्ति असाधु है।

(३८) पितरौश्वशुरावित्यादौ पितृपदे जनक दम्पत्योः श्वशुरपदे स्त्रीजनक दम्पत्योर्लक्षणा। एवमन्यत्रापि (३९) घटा इत्यादौ तु न लक्षणा, घटत्वेन रूपेण नानाघटोपस्थिति सम्भवात्।

(३८) "माता च पिता च पितरौ" इस एक शेषस्थलमें मातृ पदके लोप होनेके कारण उक्त स्थलमें पितृ पदकी जनक दम्पती में और श्वश्रूश्च श्वशुरश्च श्वशुरौ इस एक शेषस्थलमें श्वश्रू पदके लोप होने के कारण श्वशुर पदकी स्त्रीके जनक दम्पती में लक्षणा है। इसी प्रकार "पुमान्स्त्रिया" इत्यादि पाणिनीय सूत्रसे जहां२ एक शेषका विधान किया गया है उन एक शेषस्थलों में भी लक्षणा समझनी चाहिये। (३९) किन्तु घट पद की शक्तिके ज्ञानसे घटत्वेन रूपेण उपस्थित सकल घटोंमें वहुवचनार्थ वहुत्वका भान होनेमें कोई बाधा नहीं रहने के कारण घटश्च घटश्च घटश्च इति घटाः इत्यादि एक शेषस्थलमें घट पदकी घट समुदायमें लक्षणा नहीं है।

(४०) कर्मधारयस्थले तु नीलोत्पलमित्यादावभेदसम्बन्धेन नील पदार्थ उत्पलपदार्थे प्रकारः तत्र च न लक्षणा, अतएव निषादस्थपतिं याजयेदित्यत्र न तत्पुरुषो लक्षणापत्तेः किन्तु कर्मधारयो लक्षणाभावात्।

(४०) एवम् नीलं च तत् उत्पलं नीलोत्पलम् इत्यादि कर्मधारय स्थलमें अभेद सम्बन्धसे नील प्रकारक उत्पल विशेष्यक बोधमें कोई बाधा नहीं होने के कारण लक्षणा मानने की आवश्यकता नहीं है। अतएव "निषादस्थपतिं याजयेत्" इस विधि वाक्य में निषादस्थपति, पदमें निषादानां स्थपतिः निषादस्थपतिः इत्याकारक षष्ठी तत्पुरुष समास मानने से निषादरूप पूर्व पदकी निषाद सम्बन्धीमे लक्षणा की कल्पना से होने वाले गौरव के भयसे निषादश्चासौस्थपतिः निषादस्थपतिः ऐसा कर्मधारय समासही मानना युक्त है। क्योंकि कर्मधारयमें लक्षणा नहीं होने के कारण लक्षणाकी कल्पना से होनेवाला गौरव नहीं होगा। यह जो पूर्व आचार्यों का कथन है वह भी कर्मधारयमें लक्षणा नहीं मानने पर असङ्गत नहीं होता।

(४१) न च निषादस्य सङ्कर जाति विशेषस्य वेदानधिकारात् याजनासंभव इति वाच्यम्, निषादस्य विद्या प्रयुक्तेस्तस्य एवकल्पनात् ।

(४१) शङ्का—यदि आप कहें कि निषाद सङ्कर जाति विशेष है "शूद्र षड् वर्णसङ्कराः" इस वचनसे उसमें भी शूद्र तुल्यत्व सिद्ध होने से "नस्त्री शूद्रौ वेदमधीयाताम्" इस वचन के अनुसार उक्त निषादरूप स्थपति (राजा) को वेद मन्त्र पढ़नेका अधिकार नहीं रहने के कारण यह यज्ञ किस प्रकार कर सकेगा ?

समा० उक्त श्रुति से बोधित निषाद कर्तृक यजन की अनुपपत्तिके भयसे निषादरूप सङ्कर जाति विशेषमें यागोपयुक्त वेद मन्त्र का पठनाधिकार की कल्पना करते हैं।

(४२) लाघवेन मुख्यार्थस्यान्वये तदनुपपत्त्या कल्पनायाः फलमुख-गौरवतयाऽदोषत्वादिति

(४२) यदि आप कहें कि निषादरूप सङ्कर जाति विशेषमें वेद मन्त्र के अध्ययना-धिकार की कल्पना करने से आपके मतमें भी गौरव होगा तो इसके उत्तर में हम यह कह सकते हैं कि उक्त विधि वाक्य में आये हुए "निषादस्थपति" रूप समस्त पदमें लक्षणा की कल्पना न करने से होने वाले लाघव के अनुरोधसे कर्मधारय पक्ष का अवलम्बन सिद्ध होने के बाद ही उक्त सङ्कर जाति विशेषमें वेदाधिकारित्व की कल्पना करनी पड़ती है अतएव यह गौरव फलमुख होने के कारण दोषाधायक नहीं होगा ।

(४३) उपकुम्भमर्धपिप्पलीत्यादौ परपदे तत्सम्बन्धिनि लक्षणया पूर्वपदार्थ-प्रधानतया चान्वयबोध इति (४४) इत्थं च समासे न क्वापि शक्तिः पदशक्त्यैव निर्वाहादिति ।

(४३) "कुम्भस्य समीपम् उपकुम्भम्" इत्यादि अव्ययीभाव समासमें कुम्भरूप उत्तर पदकी कुम्भ सम्बन्धी में लक्षणा और उसका उप रूप पूर्व पदार्थ समीप के साथ अभेदान्वय होने के कारण "कुम्भ सम्बन्ध्यभिन्नं समीपम्" ऐसा पूर्व पदार्थ विशेष्यक बोध होता है एवम् अर्धं पिप्पल्याः अर्धपिप्पली इत्यादि तत्पुरुष समासमें भी पिप्पली रूप पर पदकी पिप्पली सम्बन्धीमें लक्षणा और उसका अर्ध रूप पूर्व पदार्थ के साथ अभेदान्वय होने के कारण पिप्पली सम्बन्ध्य भिन्नम् अर्धम् इत्याकारक पूर्व पदार्थ विशेष्यक बोध होता है । (४४) समासमें वैयाकरण जो शक्ति मानते हैं उसका पूर्वोक्त रीतिसे खण्डन होता है । समासघटक तत्तत्पद की शक्ति या लक्षणा माननेही से बोधयितव्य अर्थका बोध होजाता है अतः न्याय मतसे समास में शक्ति नहीं मानी जाती है ।

का०८२,८३ पूर्वा०

आसत्ति योग्यताकाङ्क्षा तात्पर्यज्ञानमिष्यते ॥
कारणं सन्निधानं तु पदस्यासत्तिरुच्यते ।

का० अर्थ ।

आसत्ति ज्ञान योग्यता ज्ञान आकाङ्क्षाज्ञान और तात्पर्यज्ञान ये शाब्दबोध के प्रति कारण हैं। पदोंके परस्पर सान्निध्यको आसत्ति कहते हैं (कारिकामें आसत्ति पद आसत्ति ज्ञानार्थक है)।

(१) आसत्तिरित्यादि। आसत्तिज्ञानं योग्यताज्ञान माकांक्षाज्ञानं तात्पर्य ज्ञानं च शाब्दबोधे कारणम् ॥ (२) तत्रासत्तिपदार्थमाह, सन्निधानं त्विति।

(१) कारिकार्थ मे स्पष्ट है, (२) शाब्दबोध कारण ज्ञानके विषय आसत्ति पदार्थ का निरूपण "सन्निधानन्तु," इत्यादि ग्रन्थसे करते हैं।

(३) यत्पदार्थस्य यत्पदार्थे नान्वयोऽपेक्षितस्तयो रव्यवधानेनोपस्थितिः कारणम् । (४) तेन 'गिरिर्भुक्तमग्निमान् देवदत्तेन' इत्यादौ न शाब्दबोधः । (५) नीलो घटो द्रव्यं पटः, इत्यादावासत्तिभ्रमाच्छाब्दबोधः । आसत्तिभ्रमाच्छाब्द भ्रमाभावेऽपि न क्षतिः ।

(३) जिस पदार्थका जिस पदार्थ के साथ अन्वय वक्ताके तात्पर्यका विषय हो उन पदों का अव्यवधान अर्थात् परस्पर सान्निध्य आसत्ति पदार्थ है और उसका ज्ञान शाब्द-बोधमें कारण है। (४) अतः "गिरिःअग्निमान्" "भुक्तं देवदत्तेन" इस तात्पर्य से जहां "गिरि भुक्तमग्निमान्देवदत्तेन" यह वाक्य कहा गया है। वहां गिरि पदार्थ का अग्निमत् पदार्थ के साथ एवं भुक्त पदार्थका देवदत्त पदार्थ के साथ अन्वय तात्पर्यका विषय है। और गिरि पदका अग्निमत् पदमें एवं भुक्त पदका देवदत्त पदमें अव्यवधान नहीं है इस कारण शाब्द बोध नहीं होता है। (५) "नीलःपटः" "द्रव्यं घटः" इस तात्पर्य से जहां नीलो घटो द्रव्यं पटः इस वाक्य का प्रयोग किया गया है वहां नील पदार्थ और घट पदार्थ का अन्वय वक्ता के तात्पर्यका विषय नहीं है इस कारण नील पद और घट पदमें परस्पर अव्यवधान रहने परभी आसत्ति नहीं रह सकती है तब जो उक्त स्थलमें "नीलो घटः" इत्याकारक शाब्द बोध होता है वह भ्रमात्मक आसत्ति ज्ञानही से मानना होगा और उस घट में नील रूप रहने के कारण उक्त शाब्द बोध प्रमात्मकही है अतः भ्रमात्मक आसत्तिज्ञान से प्रमात्मक शाब्द बोध नहीं हो सकता यह प्राचीनों का मत सङ्गत नहीं है।

(६) ननु यत्र 'छत्री कुण्डली वासस्वी देवदत्तः, इत्युक्तं तत्रोत्तरपद स्मरणेन पूर्व पद स्मरणस्य नाशादव्यवधानेन तत्तत्पदस्मरणासम्भव इति चेन्न (७) प्रत्येक पदानुभव जन्य संस्कारै श्चरमस्य तावत्पद विषयक स्मरणस्या व्यवधानेनोत्पत्तेः। (८)नाना सन्निकर्षै रेकप्रत्यक्षस्येव नानासंस्कारै रेकस्मरणो त्पत्तेरपि सम्भवात्। (९) तावत्पद संस्कार सहितचरमवर्ण ज्ञानस्योद्बोधक-त्वात्।

(६) शङ्का—योग्य विभु विशेष गुण का नाश स्वोत्तरवर्त्ति गुण से अवश्य होने के कारण छत्री कुण्डली वासस्वी देवदत्तः इस वाक्य स्थलमें छत्री पदके ज्ञान का नाश कुण्डली पदके ज्ञानसे एवं कुण्डली पदके ज्ञानका नाश वासस्वी पदके ज्ञानसे हो जायगा तब छत्री पदज्ञानाव्यवधानेन एवं कुण्डलीपदज्ञानाव्यवधानेन देवदत्त पदज्ञान रूप आसत्ति ज्ञान नहीं रहने के कारण उक्त वाक्य से देवदत्त पदार्थके साथ छत्री और कुण्डली पदार्थका अन्वय बोध किस प्रकार होगा? * (७-९) समा० — घट और चक्षु का संयोग एवं पट और चक्षुका संयोग इन दोनों से जिस प्रकार घट पट विषयक समूहालम्बन प्रत्यक्ष होता है उसी प्रकार छत्री कुण्डली वासस्वी देवदत्तः इस स्थान में प्रत्येक पदके अनुभव से उत्पन्न नाना संस्कार के सहित देवदत्त पद घटक चरम वर्णज्ञानरूप उद्बोधक से उसके अव्यवहितोत्तर क्षणमें छत्री इत्यादि सकल पदोंका जो समूहालम्बन स्मरण होगा वह छत्री कुण्डली एवं देवदत्त पद विषयक भी है। अतः छत्री कुण्डली पद विषयक उक्त समूहालम्बन और देवदत्त पद विषयक उक्त समूहालम्बन को एक होने के कारण किसी से व्यवधान नहीं हो सकता अतः छत्री पद ज्ञाना व्यवधानेन एवं कुण्डली पद ज्ञानाव्यवधानेन देवदत्तपद ज्ञानरूप आसत्तिज्ञान होने के कारण छत्री कुण्डली [वा]सस्वी देवदत्तः, इस वाक्य स्थल में उक्त शाब्दबोध की अनुपपत्ति नहीं होगी।

(१०) कथमन्यथा नाना वर्णै रेकपदस्मरणम्।

‡ (१०) यदि नाना संस्कार सहित चरमवर्ण ज्ञान से समूहालम्बन स्मरण की उत्पत्ति न मानी जाय तो घटादि पद घटक उत्तरोत्तर वर्ण ज्ञान से पूर्व पूर्व वर्ण ज्ञानको नष्ट हो जाने के कारण (तत्तद्वर्ण पूर्वा परी भावापन्न वर्ण समुदायात्मक) घटादि पद का ज्ञान भी न हो सकेगा। अतः आपको भी तत्तत्पद घटक तत्तद्वर्णानुभवजन्य नाना संस्कार सहित चरम वर्णज्ञान रूप उद्बोधक से तत्तत्पद घटक सकल वर्ण विषयक समूहालम्बन स्मरण रूप ही पद का ज्ञान मानना होगा।

---

* "तावत्पद संस्कार सहित चरम वर्णज्ञानस्योद्बोधकत्वात्" इस मुक्तावलीकी पंक्तिमें तावत्पद संस्कार सहितत्व चरमवर्ण ज्ञानका उपलक्षण मात्र है इस हेतु चरम वर्णज्ञान मात्रमें उद्बोधकत्व सिद्ध हुआ।

‡ "कथ मन्यथा नानावर्णै रेक पदस्मरणम्" इस पंक्तिमें नानावर्ण शब्दका तत्तद्वर्ण विषयक नाना संस्कार अर्थ है।

(११) परन्तु तावत्पदार्थानां स्मरणादेकदैव खले कपोतन्यायात् तावत्पदार्थानां क्रियाकर्मभावेनान्वयबोधरूपः शाब्दबोधो भवतीति केचित् । (१२) वृद्धा युवानः शिशवः कपोताः खले यथाऽमी युगपत् पतन्ति तथैव सर्वे युगपत् पदार्थाः परस्परेणान्वयिनो भवन्ति ।

(११) पद ज्ञान के समान आशुतर विनाशी क्रमिक पदार्थोपस्थिति का भी मेल नहीं होने के कारण सभी शाब्दबोध में तत्तत्पदार्थानुभव जन्य नाना संस्कार सहित चरम पदार्थ ज्ञान रूप उद्बोधक से उत्पन्न होनेवाली समूहालम्बन स्मरणात्मक पदार्थोपस्थिति ही को कारणत्व मानना होगा। अतः शाब्दबोध से पूर्व युगपत् (एकसाथ) सकल पदार्थो पस्थिति रहने के कारण सभी शाब्द बोध "विशेष्ये विशेषणम्" तत्रापि विशेषणान्तरम् । इस न्याय ही से होगा किन्तु "विशिष्ट वैशिष्ट्यावगाही" नहीं होगा। क्योंकि विशिष्ट वैशिष्ट्यावगाहि बोध के प्रति विशेषणतावच्छेदक प्रकारक निश्चय कारण है जो उक्त शाब्दबोध के पूर्व में नहीं है यह जो प्राचीन आचार्यों का मत है वह "परन्तु" इत्यादि ग्रन्थ से कहा जाता है। सकल पदार्थों का युगपत् स्मरण रहने के कारण खले कपोतन्याय के अनुसार सकल पदार्थों का क्रिया कारक भावसे शाब्दबोध होता है। (१२) इसमें उदयनाचार्यकी सम्मति दिखलाते हैं कि जिस प्रकार वृद्ध युवा और शिशु कपोत एकही समय में खरिहान में आ बैठते हैं उसी प्रकार युगपत् उपस्थित सभी पदार्थ परस्पर अन्वय को प्राप्त करते हैं।

(१३) अपरेतु यद्यदाकांक्षितं योग्यं सन्निधानं प्रपद्यते। तेन तेनान्वितः स्वार्थः पदैरेवावगम्यते, (१४) तथा च खण्डवाक्यार्थबोधानन्तरं तथैव पदार्थस्मृत्या महावाक्यार्थबोध इत्यप्याहुः ।

(१३ १४) नवीन अपने वक्ष्यमाण सिद्धान्त में प्रामाणिकत्व सूचित करने के लिये प्रथमतः प्रशस्त पादाचार्य की सम्मति "यद्यदा कांक्षितम्" इत्यादि ग्रन्थसे कहते हैं। जो २ पद परस्पर आकांक्षा योग्यता तथा सन्निधि मत्त्वेन ज्ञात होते हैं। तत्तत्पदार्थसे अन्वित जो स्वार्थ वह पदोंसे प्रथमतः ज्ञात होता है और तदनन्तर महा वाक्यार्थ बोध होता है। ऐसा स्वीकार करने से पूर्वोक्त समूहालम्बन रूप तत्तत्पदार्थ स्मरण के विना भी शाब्द बोध का निर्वाह होगा। शङ्का—यदि आप कहें कि "घटमानय" इत्यादि स्थल में लोट् रूप चरम पदके अर्थकी स्मृति कालमें घट पदार्थ स्मरणको नष्ट हो जाने के कारण तत्तत्पदार्थ विषयक समूहालम्बन स्मरण की कल्पना आवश्यक है समा०—चरम पदार्थस्मृति कालमें घट स्मरण को नष्ट हो जाने पर भी "घटनिष्ठ कर्मत्वम्" इत्याकारक खण्ड वाक्यार्थ विषयक शाब्दबोध ही को पदजन्य पदार्थोपस्थिति रूप होने के कारण उसीसे "घटनिष्ठ कर्मता निरूपका नयनं कार्यम्" इत्याकारक महा वाक्यार्थ बोधका निर्वाह होगा। नवीन के मतमें खण्ड वाक्यार्थ बोध के विना महावाक्यार्थ बोध नहीं होता है अतएव सभी महावाक्यार्थ बोध से पूर्व तत्तत् खण्ड वाक्यार्थ बोधरूप विशेषणतावच्छेदक प्रकारक निश्चयको रहने के हेतु

सभी महावाक्यार्थ बोध विशिष्ट वैशिष्ट्यावगाही रूप होते हैं। जहां खण्ड वाक्यार्थ बोध के नाश होने के बाद महावाक्यार्थ बोध उत्पन्न होता है वहां भी खण्ड वाक्यार्थ बोध समाना कारक जो खण्ड वाक्यार्थ विषयक स्मरण उसकी कल्पना करके विशिष्ट वैशिष्ट्यावगाही महा वाक्यार्थ बोध का निर्वाह होता है ऐसा नवीन कहते हैं। परन्तु यहा यह समझना चाहिये कि "घटमानय" इत्यादि स्थल में जहां 'घटनिष्ठं कर्मत्वम्' इत्यादि खण्ड वाक्यार्थ बोध के अग्रिम क्षणमें लोट् रूप चरम पदका स्मरण हुआ है और उसके अग्रिम क्षणमें कार्यत्व रूप लोट् के अर्थ का स्मरण हुआ है वहां तृतीय क्षणमें घटनिष्ठं कर्मत्वं इत्याकारक खण्ड वाक्यार्थ बोध का नाश हो जाने के कारण उक्त महावाक्यार्थ बोध की उपपत्ति के लिये तत्तत्पदार्थ विषयक समूहालम्बन स्मरण की कल्पना आवश्यक हो जायगी। एवं प्रत्यक्ष ज्ञान जिस प्रकार विशिष्ट वैशिष्ट्यावगाही और विशेष्ये विशेषणं तत्रापि विशेषणान्तरम् इस रीति से भी माना जाता है उसी प्रकार जहां विशिष्ट वैशिष्ट्यावगाही बोध की विशेषणता वच्छेदक प्रकारक निश्चयादि रूप सामग्री नहीं है वहां विशेष्ये विशेषणम् तत्रापि विशेषणा-न्तरम् इस रीति से ही शाब्दबोध मानना उचित है और जहां विशिष्ट वैशिष्ट्यावगाही बोध की विशेषणतावच्छेदक प्रकारक निश्चयादि रूप सामग्री है वहां विशिष्ट वैशिष्ट्यावगाही शाब्दबोध मानना उचित है।

(१५) एतेन तावद्वर्णा भिव्यङ्ग्यः पदस्फोटोपि निरस्तः (१६) तत्तद्वर्ण संस्कार सहित चरमवर्णोपलम्भेन तद्व्यञ्जके नैवोपपत्तेरिति।

(१५,१६)'एतेन' इत्यादि ग्रन्थ से वैयाकरण मत सिद्ध स्फोट का खण्डन किया जाता है। वैयाकरण कहते हैं कि पूर्वापरी भावापन्न तत्तद्वर्ण समुदायात्मक घटादि पदों को एक क्षण में नहीं रहने के कारण अर्थोपस्थापकता नहीं हो सकती है। अतः स्फोट मानना आवश्यक है और वह स्फोट अर्थ का उपस्थापक होने के कारण "स्फुटति ज्ञायते अर्थः अस्मात्" इस व्युत्पत्ति से स्फोट पद व्यवहारका विषय है। और वह ब्रह्म रूप है, किन्तु अतिरिक्त पदार्थ रूप नहीं है। अतः अतिरिक्त पदार्थ की कल्पना प्रयुक्त गौरव भी नहीं होगा यदि कोई शङ्का करे कि स्फोट ब्रह्म रूप होने के हेतु एकही होगा तब तो उसी को सकल पदार्थोपस्थापकता मानने के कारण घट पदोच्चारण के अनन्तर पटादि की उपस्थिति क्यों नहीं होगी। तो इसका समाधान यह है कि पद स्फोट का अभिव्यञ्जक है और पद से अभिव्यक्त होकर स्फोट अर्थ का उपस्थापक होता है अतः घट पद से अभिव्यज्यमान स्फोट में घटोपस्थापकता एवं पट पद से अभिव्यज्यमान स्फोट में पटोपस्थापकता मानते हैं अतः उक्त दोष नहीं होगा। एवं पदसे अभिव्यज्यमान स्फोट पद स्फोट शब्द से, और वाक्य से अभिव्यज्यमान स्फोट वाक्य स्फोट शब्द से कहा जाता है। इस मत का खण्डन नैयायिक इस प्रकार करते हैं कि आपके कथनानुसार पूर्वापरी भावापन्न तत्तद्वर्ण समुदायात्मक पद को किसी एक क्षण में नहीं रहने के कारण स्फोटका अभिव्यञ्जकत्व किस प्रकार होगा? यदि आप कहें कि अभिव्यञ्जकत्व अभिव्यञ्जक ज्ञान विषयत्व रूप है अतः पद घटक तत्तद्वर्णानुभव जन्य संस्कार

सहित चरमवर्णज्ञानरूप उद्बोधक से जन्य जो पदघटक तावद्वर्ण विषयक समूहालम्बन स्मरण रूप अभिव्यञ्जक ज्ञान तद् विषयत्वात्मक स्फोटाभिव्यञ्जकत्व पूर्वापरी भावापन्न वर्ण समुदाय रूप पदमें हो सकता है तो इसी प्रकार मैं भी कहूंगा कि पद में अर्थोपस्थापकत्व अर्थोपस्थापक ज्ञान विषयत्व रूप है और उक्त रीति से अर्थोपस्थापक उक्त समूहालम्बन स्मरण विषयत्व पदमें रह सकता है तब अर्थोपस्थित्यर्थ स्फोट की कल्पना व्यर्थ है।

(१७) इदंतु बोध्यम् । यत्र द्वारमित्युक्तं तत्र पिधेहीति पदस्य ज्ञानादेव बोधो नतु पिधानादि रूपार्थज्ञानात्, (१८) पदजन्य पदार्थोपस्थिते स्तत्तच्छाब्द बोधे हेतुत्वात् । (१९) किंच क्रियाकर्म पदानांतेनतेनैवसह साकांक्षत्वात् (२०) तेन क्रियापदं बिना कथं शाब्दबोधः स्यात् ।

(१७ १८) "इदं तु बोध्यम्" इत्यादि ग्रन्थ से प्रभाकर के मतका नैयायिक खण्डन करते हैं। प्रभाकर का मत है कि तत्पदार्थ विषयक शाब्द बोध के प्रति पदजन्य तत्पदार्थो पस्थितित्वेन कारणता माननेमें गौरव है। अतः लाघवात् केवल तत्पदार्थोपस्थितित्वेनैव कारणता मानना उचित है तब वाक्यघटक एक पदका ज्ञान जहां नहीं है वहां तत्पद स्मरणात्मक तत्पदाध्याहार की कल्पना करके तत्पदार्थ स्मृतिद्वारा शाब्दबोध मानने में गौरव होगा। अतः तत्पदार्थ स्मरणात्मक तत्पदार्थाध्याहार ही की कल्पना समुचित है। इसका खण्डन नैयायिक इस प्रकार करते हैं कि यदि तद्विषयक शाब्दबोध के प्रति केवल तत्पदार्थ विषयक उपस्थितित्वेनैव कारणता मानेंगे तो जहां कोकिल रूप अर्थ में पिक पद की शक्ति का ज्ञान नहीं है और पिको रौति इत्याकारक पद ज्ञान है एवं कोकिल का प्रत्यक्ष है। वहां पिक पद से कोकिल का शाब्दबोध नहीं होता है। लेकिन अब प्रत्यक्षात्मक पिक पदार्थ की उपस्थिति और पिक पद ज्ञानादि रूप शाब्दबोध की सामग्री को रहने के कारण क्यों नहीं होगा ? इस आपत्ति के भयसे गौरव रहने पर भी पदजन्य पदार्थोपस्थितित्वेनैव शाब्द बोध के प्रति कारणता मानना उचित है। अतः जहां पर "द्वारम्" इतनाही कहा गया है किन्तु "पिधेहि" पद का उच्चारण नहीं किया गया है वहां यदि "पिधेहि" रूप पदाध्याहार की कल्पना नहीं कर के पिधानादि रूप अर्थाध्याहार की कल्पना की जाय तो तद्विषयक शाब्दबोध के प्रति पद जन्य तत्पदार्थोपस्थिति रूप कारण नहीं रहने के हेतु शाब्द बोध नहीं होगा। (१९ २०) पदाध्याहार में एक और भी युक्ति है कि क्रिया और कर्म वाचक पदमें परस्पर आकांक्षा रहती है और आकांक्षाज्ञान शाब्दबोध में कारण है तब यदि "पिधेहि" रूप क्रिया पदका अध्याहार नहीं करेंगे तो आकांक्षा ज्ञान नहीं रहने के कारण शाब्दबोध कैसे होगा।

(२१) तथा पुष्पेभ्य इत्या दौस्पृहयतीति पदाध्याहारं बिना चतुर्थ्यनुपपत्तेः पदाध्याहार आवश्यकः ।

(२१) एवं जहाँ "पुष्पेभ्यः" इतनाही कहा गया है किन्तु स्पृहयति पद का उच्चारण नहीं किया गया है वहाँ यदि "स्पृहयति" पद का अध्याहार नहीं माना जायगा तो स्पृह धातु के योग नहीं रहने के कारण "स्पृहेरीप्सितः" इस पाणिनीय सूत्रसे पुष्प पदोत्तर चतुर्थी विभक्ति नहीं होगी। एतदर्थ भी पदका अध्याहार आवश्यक है।

योग्यतां निर्वक्ति, पदार्थे इत्यादिना—

पदार्थे इत्यादि कारिका से योग्यता का निरूपण करते हैं।

का०८३ उत्त०

पदार्थे तत्र तद्वत्ता योग्यता परिकीर्तिता ॥

का० अर्थ।

प्रकृत वाक्य घटक एक पदार्थ में अपर पदार्थ के सम्बन्ध को योग्यता कहते हैं।

(१) एकपदार्थेऽपरपदार्थ सम्बन्धो योग्यतेत्यर्थः। तज्ज्ञानाभावाच्च 'वह्निना सिञ्चति, इत्यादौ न शाब्दबोधः।

(१) सिञ्चन में यदि करणत्व रूप तृतीयान्तार्थ का निरूपकत्व सम्बन्ध नहीं रहने के कारण सिच् धात्वर्थ में वह्नि करणत्व की योग्यता नहीं है किन्तु जल ही से सिञ्चन होने के कारण सिच् धात्वर्थ में जल करणत्व ही की योग्यता रहेगी अतः "वह्निना सिञ्चति" इत्यादि स्थल में उक्त योग्यता ज्ञान के नहीं रहने के कारण शाब्दबोध नहीं होता है।

(२)नन्वेतस्या योग्यताया ज्ञानं शाब्दबोधात्प्राक् सर्वत्र न सम्भवति वाक्यार्थस्यापूर्वत्वादिति चेन्न तत्तत्पदार्थे स्मरणे सति क्वचित्संशय रूपस्य क्वचिन्निश्चय रूपस्यापि योग्यताया ज्ञानस्य सम्भवात्।

(२) शङ्का—शाब्दबोध से पूर्व वाक्यार्थ को अनिश्चित रहने के कारण एक पदार्थ में अपर पदार्थ सम्बन्ध रूप योग्यता का ज्ञान नियमतः शाब्दबोध से पूर्व नहीं रहेगा तब वह कारण किस प्रकार हो सकता है? समा० बुबोधयिषया वाक्योच्चारण में वाक्यार्थ ज्ञान कारण है अतः वाक्यार्थ ज्ञान के विना बुबोधयिषासे वाक्य प्रयोग नहीं हो सकता है इसलिये वाक्य प्रयोग कारणी भूत प्रत्यक्षादि रूप वाक्यार्थ ज्ञान शाब्दबोध से पूर्व वक्ता को अवश्य रहेगा। श्रोता को भी वाक्य घटक तत्तत पदार्थ का स्मरण होने पर किसी स्थल में संशयात्मक और किसी स्थल में निश्चयात्मक योग्यता ज्ञान को शाब्दबोध से पूर्व होने में कोई बाधा नहीं है।

(३) नव्यास्तु योग्यताया ज्ञानं न शाब्दज्ञाने कारणम् वह्निना सिञ्चति इत्यादौ सेके वह्निकरणकत्वाभाव रूपाऽयोग्यता निश्चयेन प्रतिबन्धान्न शाब्दबोधः। (४) तदभावनिश्चयस्य लौकिक सन्निकर्षाजन्य दोषविशेषाजन्य ज्ञानमात्रे प्रतिबन्धकत्वाच्छाब्दबोधं प्रत्यपि प्रतिबन्धकत्वं सिद्धम्। (५) योग्यता ज्ञान विलम्बाच्च शाब्दबोध विलम्बोऽसिद्ध इति वदन्ति ॥

(३) नवीन आचार्य शाब्दबोध के प्रति योग्यता ज्ञान को कारण नहीं मानते वे कहते हैं कि "वह्निना सिञ्चति" इत्यादि स्थल में सिञ्चन में वह्नि करणकत्वाभाव रूप अयोग्यता का निश्चय अर्थात् वह्निसे सिञ्चन नहीं हो सकता है ऐसा निश्चय प्रतिबन्धक है अतः उक्त वाक्य से वह्नि करणक सेक विषयक शाब्दबोध नहीं होगा। (४) क्योंकि "लौकिक सन्निकर्षाजन्य दोष विशेषा जन्य अनाहार्य तत्प्रकारक" ज्ञान मात्र के प्रति अनाहार्य और अप्रामाण्य ज्ञानानास्कन्दित तदभाव प्रकारक निश्चय प्रतिबन्धक है। अतः वह्निकरण कत्वाभाव प्रकारक सेक विशेष्यक निश्चय रहने से वह्निकरणकत्व प्रकारक सेक विशेष्यक शाब्द बोध की उत्पत्ति नहीं हो सकती है तब योग्यता ज्ञानको कारणत्व मानना व्यर्थ है। (५) यदि आप कहें कि कारण विलम्ब से कार्यका विलम्ब अनुभव सिद्ध है तब शाब्दबोध के प्रति योग्यता ज्ञानको कारणत्व नहीं मानें तो योग्यता ज्ञानके विलम्बसे शाब्दबोध का विलम्ब किस प्रकार होगा ? इसका उत्तर मूल में देते हैं कि योग्यता ज्ञान के विलम्ब से शाब्दबोध में विलम्ब होताही नहीं है।

का० ८४

आकांक्षां निर्वक्ति, यत्पदेनेत्यादि-

यत्पदेन इत्यादि कारिकासे आकांक्षाका निरूपण करते हैं-

यत्पदेन विनायस्या ननुभावकता भवेत्।
आकांक्षा वक्तुरिच्छातु तात्पर्यं परिकीर्तितम् ॥

का० अर्थ।

जिस पदके बिना जिस पदमें यादृश शाब्दबोधजनकत्व नहीं होता है तत्पद सहित तत्पदमें तादृश शाब्दबोधानुकूल आकांक्षा रहती है। और वक्ताको इच्छा तात्पर्य है।

(१) येन पदेन विना यत्पदस्यान्वयाननुभावकत्वं तेन पदेन सहं तस्या कांक्षेत्यर्थः। (२) क्रियापदं विना कारकपदं नान्वयबोधं जनयतीति तेन तस्याकांक्षा

(१) इसका अर्थ कारिकार्थमें स्पष्ट है। (२) जैसे "आनयेत्यादि" क्रिया पदके

विना "घटम्" इत्यादि कारक पद घट कर्मक आनयन विषयक शाब्द बोधका उत्पादक नहीं होताहै अतः "आनय" पद सहित "घटम्" इस पदमें तादृश शाब्दबोधानुकूल आकांक्षा मानी जाती है।

(३) वस्तुतस्तु क्रिया कारक पदानां सन्निधान मासत्त्या चरितार्थम्। (४) परन्तु घटकर्मताबोधं प्रति घटपदोत्तर द्वितीया रूपा कांक्षा ज्ञानं कारणम्। तेन घटः कर्मत्व मानयनं कृति रित्यादौ न शाब्दबोधः।

(३) वास्तविक विचार करें तो क्रिया वाचक आनयेत्यादि पद और कर्म वाचक घटमित्यादि पद ये दोनों जहां नहीं हैं अर्थात् इन दोनोंमें एक मात्र है वहां पदोंका सन्निधान रूप आसत्ति नहीं रहने के कारण आसत्ति ज्ञानके अभाव से शाब्दबोध का नहीं होना उपपन्न हो जायगा फिर आकांक्षा ज्ञानको शाब्द बोधके प्रति कारणत्व मानना व्यर्थ है। (४) इसका उत्तर "परन्तु" इत्यादि ग्रन्थसे कहते हैं कि यदि शाब्दबोधके प्रति आकांक्षा ज्ञानको कारणता नहीं मानी जाय तो "घटः कर्मत्वम् आनयनं कृतिः" इस वाक्य स्थलमें घट कर्मत्व आनयन और कृति वाचक उक्त घटादि पदों की परस्पर आसत्ति रहने के कारण आसत्ति ज्ञान और योग्यता ज्ञानादि रूप शाब्दबोध की सामग्री को रहनेके कारण "घटनिष्ठकर्मता निरूपकानयनम् कार्यम्" इत्याकारक शाब्दबोध की आपत्ति होगी। और आकांक्षा ज्ञान को कारणत्व मानने से घटमानय इत्याकारक "घटपदोत्तर द्वितीयात्व एवं आङ् पूर्वक णीञ् धातूत्तर लोड़ा देशाख्यातत्व" रूप आकांक्षा के ज्ञान को उक्त स्थलमें नहीं रहने के कारण शाब्दबोध की आपत्ति नहीं होगी।

(५) 'अयमेति पुत्रोराज्ञः पुरुषोऽपसार्यताम्' इत्यादौ तु पुत्रेण सह राज-पदस्य तात्पर्यग्रहसत्त्वात्तेनैव सहान्वयबोध। पुरुषेण सह तात्पर्यग्रहे तु तेन सहान्वयबोधः स्यादेव।

(५) "अयमेति पुत्रोराज्ञः पुरुषोऽपसार्यताम्" इस स्थल में राज पदको जब पुत्र और पुरुष इन दोनों पदोंके साथ आकांक्षा है तब उक्त वाक्य से कहीं "राज्ञः पुत्रः एति पुरुषोऽपसार्यताम्" इत्याकारक और कहीं "राज्ञः पुरुषः एति पुत्रोऽपसार्यताम्" इत्याकारक जो वैकल्पिक शाब्दबोध होता है वह युक्त नहीं है अर्थात् सर्वत्र "राज्ञः पुत्रः एति" और राज्ञः पुरुषः एति" ऐसा दोनो तरह का शाब्दबोध क्यों नहीं होगा। इस शङ्का का उत्तर देते हैं कि उक्त वाक्यस्थल में राजपद का जहां पुत्र के साथ तात्पर्यज्ञान रहता है वहां "राज्ञः पुत्रः एति पुरुषोऽपसार्यताम्" एवं जहां पुरुष के साथ तात्पर्य ज्ञान रहता है वहां "राज्ञः पुरुषः एति पुत्रोऽपसार्यताम्" इत्याकारक शाब्दबोध होता है। कहने का सारांश यह है कि उक्त वाक्यस्थल में उभयाकारक बोधानुकूल आकांक्षा ज्ञान रहने पर भी जहां यादृश बोधानुकूल तात्पर्य ज्ञान रहता है वहां तादृश ही शाब्दबोध होता है।

(६) तात्पर्यं निर्वक्ति, वक्तुरिच्छेति।

(६) वक्तुरिच्छेत्यादि कारिकासे तात्पर्य का स्वरूप बतलाते हैं।

(७) यदि तात्पर्यज्ञानं कारणं न स्यात्तदा 'सैन्धवमानय' इत्यादौ क्वचिदश्वस्य क्वचिल्लवणस्य बोधो न स्यात्। (८) न च तात्पर्यग्राहकप्रकरणादीनामेव शाब्दबोधे कारणत्वमस्त्विति वाच्यम् तेषामननुगमात्।

(७) यदि शाब्दबोध में तात्पर्यज्ञान को कारण न माना जाय तो "सैन्धवमानय" इस वाक्यसे यात्रा प्रकरण में अश्वहीका बोध होता है लवणका नहीं। एवं भोजन प्रकरण में लवणही का बोध होता है अश्वका नहीं। यह नियम नहीं हो सकेगा और तात्पर्य ज्ञान को कारण मानने पर यात्रा प्रकरण से सैन्धव पदका अश्वही में तात्पर्य गृहीत होता है। अतः अश्वहीका शाब्दबोध होगा। एवं भोजन प्रकरण से उक्त पदका लवणही में तात्पर्य गृहीत होता है। अतः लवण ही का शाब्दबोध होगा यह नियम उपपन्न होता है। (८) शङ्का— शाब्दबोध का कारणीभूत तात्पर्यज्ञान में कारणत्व न मानकर तात्पर्यज्ञान का कारण जो प्रकरणादि उसीमें यदि शाब्दबोध के प्रति कारणत्व मानें तो क्या हानि? समा०—प्रकरण अनन्त प्रकार के हैं और सकल प्रकार साधारण अनुगत धर्म कोई नहीं है अतः अतिप्रसङ्गाघनापादक रूप कारणतावच्छेदक नहीं मिलने के कारण प्रकरण में शाब्दबोध जनकत्व नहीं मान सकते हैं।

(९) तात्पर्यज्ञानजनकत्वेन तेषामनुगमे तु तात्पर्यज्ञानमेव लाघवात्कारणमस्तु। (१०) इत्थं च वेदस्थलेऽपि तात्पर्यज्ञानार्थमीश्वरः कल्प्यते।

(९) यदि आप कहें कि तात्पर्य ज्ञान जनकत्व को प्रकरण मात्र में रहने के कारण अतिप्रसङ्गाघनापादक तात्पर्य ज्ञान जनकत्व रूप से प्रकरण में शाब्दबोध का जनकत्व क्यों नहीं होगा तो इसके समाधान में हम यह कह सकते हैं कि तात्पर्य ज्ञानत्वापेक्षया तात्पर्य ज्ञान जनकत्व गुरु धर्म है अतः गौरव के भय से तात्पर्य ज्ञान जनकत्व रूप से कारणत्व नहीं मान सकते हैं किन्तु लाघवात् तात्पर्य ज्ञानत्व रूप ही से तात्पर्यज्ञान को कारणत्व है। (१०) शाब्द बोध सामान्य के प्रति तात्पर्यज्ञान में कारणत्व सिद्ध होने पर वेद वाक्य स्थल में शाब्द बोध जनक ज्ञान विषय तात्पर्याश्रयत्वेन ईश्वर की कल्पना की जाती है यदि ईश्वरीय तात्पर्यज्ञान कारण नहीं हो तो तात्पर्य ज्ञान के विना शाब्दबोध होने से व्यभिचार हो जायगा।

(११) न च तत्राध्यापक तात्पर्य ज्ञानं कारणमिति वाच्यम्। सर्गादावध्यापका भावात्। (१२) न च प्रलय एव नास्तीति कुतः सर्गादिरिति वाच्यम्। प्रलयस्यागमेषु प्रतिपाद्यत्वात्।

(११) शङ्का—वेद वाक्याधीन शाब्द बोध में यदि अध्यापक के तात्पर्य ज्ञान ही को कारणत्व माने तो क्या हानि? समा० सृष्टि के पूर्वक्षण में अध्यापक को नहीं रहने के कारण अध्यापक निष्ठ तात्पर्य के ज्ञान से सृष्ट्यादि काल में वेद वाक्याधीन शाब्द बोध नहीं हो सकेगा अतः ईश्वर की कल्पना आवश्यक है। (१२) यहाँ यदि आप कहें कि प्रलय ही नहीं होता है फिर सृष्ट्यादि किस प्रकार होगा। और सृष्टि का आरम्भ असिद्ध होने पर अध्यापक तात्पर्य ज्ञानको कारण मानने से भी कोई हानि नहीं है यह भी नहीं कह सकते हैं क्योंकि प्रलय "नाहो न रात्रि र्नंनभोन भूमिर्नासीत्तमोज्योति रभून्न चान्यत् "इत्यादि वेद वाक्य से सिद्ध है।

(१३) इत्थं च शुकवाक्ये ऽपीश्वरीय तात्पर्य ज्ञानं कारणम्।
(१४) विसंवादिशुकवाक्येतु शिक्षयितुरेव तात्पर्यज्ञानं कारणम्।

(१३) शाब्द बोध सामान्य के प्रति तात्पर्य ज्ञान में कारणत्व सिद्ध होने पर शुकादि वाक्याधीन प्रमात्मक शाब्द बोध में व्यभिचार वारणार्थ ईश्वरीय तात्पर्य ज्ञान ही में कारणत्व मानते हैं (१४) और ईश्वरेच्छा में विसम्वादित्व के भय से शुकवाक्याधीन भ्रमात्मक शाब्द बोधमें ईश्वरीय तात्पर्य ज्ञान को कारणत्व नहीं मानकर उक्त शाब्द बोध में शुक शिक्षक पुरुष के तात्पर्य ज्ञान ही को कारणत्व मानना युक्त है।

(१५) अन्येतु नानार्थादौ क्वचिदेव तात्पर्यज्ञानं कारणम्, तथा च शुकवाक्ये विनैव तात्पर्यज्ञानं शाब्दबोधः। (१६) वेदेत्वनादि मीमांसापरिशोधित-तर्कै रेवार्थावधारणमित्याहुः॥

(१५) कितने आचार्यों का मत है कि शाब्द बोध सामान्य के प्रति तात्पर्य ज्ञान कारण नहीं है किन्तु नानार्थक शब्द स्थल ही में तात्पर्य ज्ञान कारण है इसलिये वेद वाक्याधीन, एवं शुक वाक्याधीन, शाब्दबोध को तात्पर्य ज्ञान के बिना होने पर भी उक्त कार्य कारणभाव में व्यभिचार का प्रसङ्ग नहीं है।

(१६) ऐसे " कपिञ्जलान् आलभेत „ इत्यादि वेद वाक्यस्थल में महर्षियों के अनादि (पारम्परिक) लाघवज्ञानात्मक तर्क से सहकृत अनुमान के द्वारा कपिञ्जल पदोत्तर बहुवचन का अर्थत्व प्रथमोपस्थित त्रित्व ही में निश्चित होता है इस कारण कपिञ्जलत्रयालम्भ ही उक्त वेद का अर्थ है। ऐसा अवधारण किया जाता है।

इति श्री चन्द्रधारि सिंह शर्म विरचितायां चन्द्रिका टीकायां शब्द परिच्छेदः समाप्तः

अथ स्मृतिप्रक्रिया ।

(१) पूर्वमनुभव स्मरणभेदाद्बुद्धे र्द्वैविध्यमुक्तम् । (२) तत्रानुभव प्रकारा दर्शिताः सुगमतया स्मरणं न दर्शितम् ।

(१) पहले बुद्धिके दो प्रभेद अनुभव और स्मरण कहे गये हैं । (२) ज्ञानान्तर्गत अनुभवके प्रभेद दिखलाये गये किन्तु स्मरण का विचार सुलभ होनेके कारण पहले नहीं दिखलाया गया है ।

(३) तत्रहि पूर्वानुभवः कारणम् (४) अत्र केचित् । अनुभवत्वेन न कारणत्वं किन्तु ज्ञानत्वेनैव (५) अन्यथा सकृदनुभवस्थले स्मरणानन्तरं स्मरणं न स्यात् (६) समान प्रकारक स्मरणेन पूर्वसंस्कारस्य विनष्टत्वात् (७) मन्मतेतु तेनैव स्मरणेन संस्कारान्तरद्वारा स्मरणान्तरं जन्यते इत्याहुः ।

(३) स्मरणके प्रति पूर्वानुभव कारण होता है । (४) इस विचार पर किसी का ऐसा भी मत है कि स्मरणके प्रति अनुभव मात्र कारण नहीं है किन्तु ज्ञान कारण है । (५) अगर स्मरणके प्रति ज्ञानत्वेन कारणता न स्वीकार करें तो जहां पर एकही वार अनुभव हुआ है वहां पर स्मरण होने के वाद फिर स्मरण नहीं होगा । (६) क्योंकि नियम हैं कि समान प्रकारक स्मरण से पूर्व संस्कारका नाश होता है । (७) अव हमारे मत में पूर्व संस्कारके नाश करने वाले प्रथम ही स्मरणसेअन्य संस्कार द्वारा दूसरा स्मरण उत्पन्न होता है ।

(८) तन्न यत्र समूहालम्बनोत्तरं घटपटादीनां क्रमेण स्मरणमजनिष्ट, सकल विषयक स्मरणं तु नाभूत्तत्र फलस्य संस्कारनाशकत्वा-भावात्कालस्य रोगस्य चरमफलस्य वा संस्कारनाशकत्वं वाच्यम् । (९) तथाच न क्रमिक स्मरणानुपपत्तिः ।

*(८) ऐसा कहना युक्त नहीं है । क्योंकि जहां घट पट विषयक समूहालम्बन रूप अनुभव के वाद घटपटादि का क्रमिक (पहले घटका तव पटादि का) स्मरण हुआ है । अर्थात् सकल विषय का स्मरण समान काल में नहीं हुआ है वहां घटके स्मरण रूप फल को संस्कार नाश के प्रति हेतुता नहीं हो सकती है कारण यह है

*स्मरण के प्रति प्राचीन आचार्य ज्ञानत्वेन हेतुता मानते हैं जैसे पहले ज्ञान (स्मरण वा अनुभव) तव दूसरे क्षण में संस्कार उसके वाद समयानुसार उद्बोधक द्वारा स्मरण तव पूर्व संस्कार का नाश और सजातीय दूसरे संस्कार की उत्पत्ति पुनः कालान्तर में उद्बोधक द्वारा स्मरण तव पूर्व संस्कार का नाश (इत्यादि) स्मरण के प्रति अर्वाचीन लोग अनुभवत्वेन हेतुता मानते हैं, जैसे पहले अनुभव तव संस्कार उसके वाद उद्बोधक द्वारा स्मरण और वह पूर्व संस्कार ही भविष्यत् तत्तत् सव स्मरणों के प्रति कारण होता है ।

कि घटके स्मरणरूप फल में समूहालम्बन संस्कार का नाश हो जाने पर पटादिका स्मरण नहीं हो सकेगा, किन्तु पटादिका स्मरण होता है इसलिये संस्कार नाश के प्रति—काल, रोगविशेष या चरम स्मरण को हेतु मानना होगा नकि आन्तरालिक स्मरणको। (९) इसलिये क्रमिक स्मरण की अनुपपत्ति नहीं होगी।

(१०) न च पुनः पुनः स्मरणात् दृढतरसंस्कारानुपपत्तिरिति वाच्यं, (११) झटित्युद्बोधक समवधानस्य दार्ढ्यपदार्थत्वात्।

(१०) शंका—अनुभवत्वेन कारणतावादी के मत में स्मरणको संस्कारानुत्पादकत्व मानने के कारण प्रथम स्मरणसे साधारण, द्वितीय से दृढ, तृतीय से दृढतर, और चतुर्थ से दृढतम संस्कार की उत्पत्ति जो प्रतिपादित है वह नहीं हो सकती। (११) समा०-दृढ, दृढतर, दृढतम, संस्कार नहीं होता किन्तु (पुनः पुनः स्मरणसे) शीघ्र, शीघ्रतर, शीघ्रतम, उद्बोधक का समवधान होता है और उसी को दार्ढ्य पदार्थ कहते हैं।

(१२) न च विनिगमना विरहादेव ज्ञानत्वेनापि जनकत्वं स्यादिति वाच्यं, विशेषधर्मेण व्यभिचाराज्ञाने सामान्यधर्मेणा न्यथासिद्धत्वात्।

(१२) शंका—संस्कारके प्रति अनुभवत्व रूप ही से कारणता है इसमें कुछ विशेष प्रमाण नहीं रहने के कारण ज्ञानत्व रूप से भी संस्कारके प्रति कारणत्व मानना ही पड़ेगा। समा०-यह नहीं कहा जा सकता क्योंकि नियम है कि विशेष धर्म रूपसे कारणता स्वीकार करने में अगर व्यभिचार ज्ञान न हो तो सामान्यरूप से कारणता मानने पर अन्यथा सिद्धि हो जाती है।

(१३) कथमन्यथा दण्डस्य भ्रमिद्वारा द्रव्यत्वेन रूपेण न कारणत्वम्।

(१३) अगर ऐसा नहीं होता तो भ्रमिद्वारा घटके प्रति दण्डत्व रूप ही से दण्ड में कारणता है और द्रव्यत्वरूप से नहीं है। ऐसा नहीं माना जा सकता था। अर्थात् द्रव्यत्व रूप से भी कारणता हो जाती।

(१४) न चान्तरालिक स्मरणानां संस्कारनाशकत्वसंशयाद्व्यभिचारसंशय इति वाच्यम्। अनन्त संस्कार तन्नाशकल्पनापेक्षया लाघवेन चरमस्मरणस्यैव संस्कारनाशकत्व कल्पनेन व्यभिचारसंशयाभावात्। इति स्मृति प्रक्रिया।

(१४) शङ्का—यहां पर यह नहीं कहा जा सकता कि संस्कार के प्रति अनुभवत्व रूप से कारणता मानने में आन्तरालिक स्मरणों को संस्कार नाशकत्व के संशय रहने से व्यभिचार का सन्देह हो जायगा। अतः अनुभवत्वेन कारणता नहीं हो सकती। समा०-क्योंकि ज्ञानत्व रूप से कारणता मानने वाले के मतमें अनन्त संस्कार और उनके नाश की कल्पना करनी पड़ेगी उसकी अपेक्षा चरम स्मरण ही में संस्कार नाशकत्व की कल्पना करने में लाघव है अतः व्यभिचार शंका नहीं हो सकती।

—* इति स्मृतिप्रकिया *—

इदानीं क्रमप्राप्तं मनो निरूपयितुमाह—

अब क्रम प्राप्त होने से मनका निरूपण करनेके लिये उपपादन करते हैं।

का० ८५

साक्षात्कारे सुखादीनां करणं मन उच्यते।
अयौगपद्याज्ज्ञानानां तस्याणुत्व मिहेष्यते॥

का० अर्थ

*सुखादि प्रत्यक्ष के प्रति मन करण कहा जाता है। एक काल में अनेक इन्द्रियों से नाना ज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती है इसलिये वह अणु माना जाता है।

(१) एतेन मनसि प्रमाणं दर्शितम् (२) तथाहि सुखसाक्षात्कारः सकरणको जन्यसाक्षात्कारत्वात् चाक्षुषसाक्षात्कारवत्। (३) इत्यनुमानेन मनसः करणत्व सिद्धिः।

(१) "साक्षात्कारे" इत्यादि कारिकासे मनमें प्रमाण दिखलाया गया। (२) क्योंकि सुखका साक्षात्कार जन्य साक्षातकार होने के कारण चाक्षुष साक्षात्कार के समान सकरणक है। (३)इस अनुमान से सुखसाक्षात्कार में सकरणकत्व सिद्ध होने पर बाह्येन्द्रिय करणकत्व की सम्भावना नहीं रहने के कारण मनः करणकत्व की सिद्धि होती है।

(४) न चैवं दुःखादिसाक्षात्काराणामपि करणान्तराणि स्युरिति वाच्यं, लाघवादेकस्यैव तादृश सकलसाक्षात्कार करणतया सिद्धेः। (५) एवं सुखादीनामसमवायिकारण संयोगाश्रयतया मनसः सिद्धिर्बोद्धव्या।

(४) अगर कहें कि सुखसाक्षात्कार का करण जैसे मन माना गया उसी प्रकार दुःखादि के साक्षात्कार का भी कोई दूसरा करण मानना चाहिये तो उसका उत्तर यह कहा जायगा कि लाघव के वजह सुखसाक्षात्कार के करण रूपसे सिद्ध जो मन उसी को दुःख साक्षात्कार का भी करण मानते हैं। अन्य को करण मानने पर गौरव होगा। (५) इसी रीति से सुख दुःख का असमवायि कारण जो आत्ममनः संयोग उस संयोग के आश्रय रूप से भी मनकी सिद्धि होती है (यह जानना चाहिये)।

---

*विषय को इन्द्रिय के साथ इन्द्रिय को मन के साथ और मन को आत्मा के साथ युगपत् सम्बन्ध हो जाने के बाद तत्तत् विषय का प्रत्यक्ष होता है कहने का सारांश यह है कि अगर मन का महत्परिमाण हो तो एक ही समय अनेक इन्द्रियों के साथ उसका संयोग हो सकता है तब चाक्षुष श्रावणादि प्रत्यक्ष एक ही काल में हो जाय लेकिन ऐसा कथमपि नहीं होता है इसलिए मन का अणु परिमाण माना जाता है।

(६) तत्र मनसोऽणुत्वे प्रमाणमाह । अयौगपद्यादिति। (७) ज्ञानानां चाक्षुषरासनादीनामयौगपद्यमेककालोत्पत्ति र्नास्तीत्यनुभव सिद्धम्। (८) तत्र नानेन्द्रियाणां सत्यपि विषयसंनिधाने यत्संबन्धादेकेनेन्द्रियेणज्ञानमुत्पद्यते यद संबन्धाच परंज्ञानं नोत्पद्यते तन्मनसो विभुत्वे चासन्निधानं न संभवतीति न विभु मनः।

(६) अयौग पद्यात् इत्यादि कारिका से मन अणु है इसमें प्रमाण कहते हैं। (७) चाक्षुष रासनादि ज्ञानोंकी एक काल में उत्पत्ति नहीं होती है, यह अनुभव सिद्ध है। (८) उस स्थल में नाना इन्द्रियोंके अपने अपने विषयोंसे सम्बन्ध रहने पर भी जिस (मन) के सम्बन्ध से एकही इन्द्रिय से ज्ञान उत्पन्न होता है और जिसके असम्बन्ध से दूसरे से ज्ञान उत्पन्न नहीं होता है यह (मन) अगर विभु हो तो किसी से असम्बन्ध नहीं होगा, किन्तु असम्बन्ध होता है इसलिये मन विभु नहीं है। याने अणु है।

(९)न च तदानीमदृष्टविशेषो द्बोधक विलम्बादेव तज्ज्ञान विलम्ब इति वाच्यं, तथा सति चक्षुरादीनामप्यकल्पनापत्तेः।

(९) शङ्काः—कार्यमात्र के प्रति केवल अदृष्ट कारण नहीं है किन्तु उद्बुद्ध अदृष्ट कारण है अतः जिस इन्द्रिय से होने वाले ज्ञान के अनुकूल अदृष्ट का उद्बोधक विलम्ब से सम्बलित होता है उस इन्द्रिय से होने वाले ज्ञान में विलम्ब और जिस इन्द्रिय से होनेवाले ज्ञान के अनुकूल अदृष्टका उद्बोधक शीघ्र सम्बलित होता है उस इन्द्रिय से जन्य ज्ञान में अविलम्ब होता है। ऐसा मानने से नाना इन्द्रिय से होनेवाले ज्ञानों में क्रमिकत्व सिद्ध हो ही जाता है फिर इसके लिये मनमें अणुत्व मानना व्यर्थ है। समा०—दृष्टसामग्री रहते हुए भी अदृष्ट के विलम्ब ही से कार्य का विलम्ब माना जाय तो चाक्षुषादि प्रत्यक्ष के प्रति भी चक्षुरादि इन्द्रियों को कारणत्व मानना व्यर्थ हो जायगा। क्योंकि जिस पुरुष को चक्षु नहीं है उसमें चाक्षुष प्रत्यक्षानुकूल उद्बुद्ध अदृष्ट की कल्पना नहीं करते हैं एवं जिसको चक्षु है उसमें चाक्षुष प्रत्यक्षानुकूल उद्बुद्ध अदृष्ट की कल्पना करते हैं। इसीसे चाक्षुष प्रत्यक्ष का अनुत्पाद और उत्पाद सिद्ध हो जायगा। फिर उसके लिये चाक्षुष प्रत्यक्ष में चक्षु को कारणत्व मानना व्यर्थ हो जायगा।

(१०) न च दीर्घशष्कुली भक्षणादौ नानावधानभाजां च कथमेकदा नानेन्द्रियजन्य ज्ञानमिति वाच्यं, मनसोऽति लाघवात्त्वरया नानेन्द्रियसंबन्धान्नाना ज्ञानोत्पत्तेः।(११) उत्पल शतपत्र भेदादि वद्यौगपद्य प्रत्ययस्य भ्रान्तत्वात्।

(१०) अणुवादी के उपर पूर्व पक्ष—अगर कहें कि बड़ी रोटी खाते हुए एवं अनेक अवधान करते हुए मनुष्यों को एकही समय में किस प्रकार अनेक इन्द्रियों से अनेक ज्ञान

होते है? समा०:—मन बहुत छोटा है इसलिये अत्यन्त शीघ्र नाना इन्द्रियों से सम्बन्धद्वारा नाना ज्ञानकी उत्पत्ति होती है। (११) जैसे आधाराधेय भाव क्रमसे स्थित कमल के १०० पत्तों का छेदन करने में भ्रम होता है कि एकही भरतवे सब पत्तों का छेदन हुआ है किन्तु वास्तविक रूप से तो वह क्रमशः होता है। वैसेही अनेक अवधानियों को भी ज्ञानकी उत्पत्ति क्रमशः होती है किन्तु युगपत् नहीं होती। युगपत् होने का ज्ञान भ्रममात्र है।

(१२) न च मनसः संकोचविकाश शालित्वादुभयोपपत्तिरस्त्विति वाच्यं, नानावयव तन्नाशादिकल्पने गौरवाल्लाघवा न्निरवयवस्याणुरूपस्यैव मनसः कल्पनादिति सङ्क्षेपः।

(१२) अगर मनमें संकोच विकाश मानकर अनेक इन्द्रियों से होनेवाले नाना ज्ञानों में यौग पद्य और अयौगपद्य इन दोनों की उपपत्ति का साधन करें तो मनका नाना अवयव और उसके नाश तथा प्रागभावादि की कल्पना करने में गौरव होगा इसलिये निरवयव और अणुरूप मनकी कल्पना ही में लाघव है।

—* इति द्रव्यपदार्थो व्याख्यातः *—

द्रव्यं निरूप्य गुणा न्निरूपयति—

द्रव्यका निरूपण करके गुणों का निरूपण करते हैं।
का० ८६ पूर्वा०

अथ द्रव्याश्रिता ज्ञेया निर्गुणा निष्क्रिया गुणाः।

का० अर्थ

गुण, द्रव्यमें समवाय सम्बन्ध से रहते हैं किन्तु गुणमें, गुण और क्रिया नहीं रहता है ऐसा जानना चाहिये।

(१) गुणत्वजातौ किं मानमिति चेत्- इदम्। (२) द्रव्य कर्म भिन्ने सामान्यवति या कारणता सा किञ्चिद्धर्मावच्छिन्ना निरवच्छिन्नकारणताया असम्भवात्। (३) नहि रूपत्वादिकं सत्ता वा तत्रावच्छेदिका न्यूनातिरिक्त देशवृत्तित्वात्। (४) अतश्चतुर्विंशत्यनुगतं किंचिद्वाच्यं तदेव गुणत्वमिति सिद्धम्।

(१) सकल गुणोंमें रहने वाली गुणत्व नामक एक जाति है इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं कह सकते हैं क्योंकि गुरुत्वादि गुणों का प्रत्यक्ष नहीं होनेके कारण उनमें गुणत्वका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता अतः सकल गुणों में एक गुणत्व नामक जाति है इसमें क्या प्रमाण होगा ? इसका समाधान कहते हैं कि इसमें अनुमान प्रमाण है जैसे (२) दण्ड में रहने वाली घटकी कारणता दण्डत्वरूप धर्म से अवच्छिन्ना ही होती है किन्तु निरवच्छिन्ना नहीं होती वैसे द्रव्य कर्म से भिन्न जो सामान्य आश्रय उस में रहनेवाली जो कारणता वह भी किसी धर्म से अवच्छिन्ना अवश्य होगी क्योंकि कारणता निरवच्छिन्ना नहीं होती । (३) रूपत्व या सत्तारूप धर्म से अवच्छिन्ना नहीं हो सकती क्योंकि रूपत्व उस कारणता का न्यून देशवृत्ति एवं सत्ता अधिक देश वृत्ति है और कारणत्वादि का अवच्छेदक वही धर्म होताहै जो उसका अन्यूनानतिरिक्त वृत्तिहो । (४) अतः चौबीस गुणों में रहने वाले किसी ऐसे एक धर्म को मानना होगा जिस धर्म से चतुर्विंशति गुणोंमें रहनेवाली ,वह कारणता अवच्छिन्ना होगी । और उसी अनुगत धर्मको गुणत्व कहतेहैं ।

(५) (द्रव्याश्रिता इति) यद्यपि द्रव्याश्रितत्वं न लक्षणं कर्मादावतिव्याप्तेस्तथापि द्रव्यत्वव्यापकतावच्छेदक सत्ताभिन्नजातिमत्त्वं तदर्थः । (६) भवति हि गुणत्वं द्रव्यत्वव्यापकतावच्छेदकं नत्सत्ता च गुणानामिति ।

(५) यद्यपि द्रव्याश्रितत्व गुणका लक्षण नहीं हो सकताहै क्योंकि जन्य-द्रव्य, कर्म, और जाति में अतिव्याप्ति हो जायगी तोभी द्रव्यत्वका व्यापकतावच्छेदक और सत्तासे भिन्न जो जाति उसका आश्रयत्व गुण का लक्षण हो सकताहै । (६) द्रव्यत्वका व्यापकतावच्छेदक और सत्तासे भिन्न जाति गुणत्व है, उसकी आश्रयता गुणमें रहने के कारण लक्षण समन्वय होताहै ।

(७) द्रव्यत्वं कर्मत्वं वा न द्रव्यत्व व्यापकतावच्छेदकं गगनादौ द्रव्यकर्मणोरभावात् । (८) द्रव्यत्वत्वं सामान्यत्वादिकं वा न जातिरिति तद्व्युदासः ।

(७) द्रव्यत्व या कर्मत्व द्रव्यत्व का व्यापकतावच्छेदक नहींहै क्योंकि नियमहै कि अन्त्यावयवी, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, और मन इनमें समवाय सम्बन्धसे द्रव्य नहीं रहता है । एवं गगनमें क्रिया नहीं रहतीहै, इसलिये जब द्रव्य और कर्म द्रव्यत्वका व्यापक नहींहै, तब द्रव्यत्व और कर्मत्व द्रव्यत्वका व्यापकतावच्छेदक कैसे होगा ? (८) द्रव्यत्वत्व और सामान्यत्वादि द्रव्यत्व का व्यापकतावच्छेदक है किन्तु वह जाति नहीं है अतः द्रव्य कर्म, द्रव्यत्व, और सामान्यमें अतिव्याप्ति नहीं हुई ।

(९) (निर्गुणा इति) यद्यपि निर्गुणत्वं कर्मादावपि तथापि सामान्यवत्त्वे सति कर्मान्यत्वे च सति निर्गुणत्वं बोध्यम् । (१०) जात्यादीनां न सामान्यवत्त्वं, कर्मणो न कर्मान्यत्वं, द्रव्यस्य न निर्गुणत्वमिति तत्र नाति व्याप्तिः ।

(९) यद्यपि निर्गुणत्व कर्मादि में भी है तोभी जिसमें जाति रहे तथा जो कर्म से भिन्न एवं निर्गुण हो उसे गुण समझना चाहिये । (१०) जात्यादि चार में जाति नहीं है क्योंकि जाति द्रव्य, गुण, कर्म, मात्र में रहतीहै कर्म कर्मसे भिन्न नहीं है एवं द्रव्य निर्गुण नहीं है इसलिये जात्यादि चार कर्म, और द्रव्यमें अतिव्याप्ति नहीं हुई ।

(११) निष्क्रिया इति स्वरूप कथनं न तु लक्षणं गगनादावति व्याप्तेः ।

(११) गुणका लक्षण निष्क्रियत्व नहीं हो सकताहै क्योंकि गगनादिमें अतिव्याप्ति हो जायगी अतः " गुण निष्क्रियहै" यह स्वरूपका कथन मात्र हैं ।

का० ८६, ८७ पूर्वा०

रूपं रसः स्पर्शगन्धौ परत्व मपरत्वकम् ॥
द्रवत्वं स्नेह वेगाश्च मता मूर्तगुणा अमी

का० अर्थ

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व, स्नेह, वेग, स्थितिस्थापक ये सब मूर्त्त (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, मन) के गुण हैं ।

१) मूर्तगुणा इति । (२) अत्र वेगेन स्थितिस्थापकोऽप्युपलक्षणीयः । ३) अमूर्तेषु न वर्त्तन्त इत्यर्थः । (४) लक्षणंतु नावदन्यान्यत्वम् । (५) एवमग्रेपि ।

(१) मूर्तगुणाः इस कारिकांश की व्याख्या करनेके लिये पाठ धारण किया गयाहै (२)* यहां (मूर्त्त के कहे हुये गुणो में) वेग शब्दसे वेग और स्थितिस्थापक इन दोनों का ग्रहण हैं ।

*निश्चित स्थान से दूसरी ओर खिंचे हुये शाखादि छोड़ देने पर जिससे फिर अपने पहले स्थान पर चले जाते हैं वही स्थिति स्थापक संस्कार है, (उपलक्षण) स्व- स्वन्तर का संग्राहक ।

(३) रूपादि उक्त गुणों को प्रत्येक मूर्त में नहीं रहने के कारण मूर्त गुण शब्द का अमूर्त में नहीं रहने वाला गुण यह अर्थ है। (४) उक्त गुणों मे भिन्न जो जो पदार्थ हैं तत्तद्भिन्नत्वरूप उक्त गुणान्यतमत्व मूर्त गुणों का लक्षण है। (५) इसी प्रकार अमूर्त गुणोंका भी लक्षण मूर्तमें अवृत्ति जितने गुण हैं तत्तत् गुणान्यतमत्व समझना चाहिये।

का० ८७,८८, पूर्वा०

धर्मा धर्मौ भावना च शब्दो बुद्ध्यादयोऽपि च ॥
एतेऽमूर्तगुणाः सर्वे विद्वद्भिः परिकीर्तिताः।

का० अर्थ

धर्म, अधर्म, भावना, शब्द, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न ये दश अमूर्त के गुण हैं ऐसा विद्वानों ने कहा है।

(१) अमूर्त गुणा इति। (२) मूर्तेषु न वर्तन्त इत्यर्थः।

(१, २) धर्मादि दश गुणों को प्रत्येक अमूर्त में नहीं रहने के कारण अमूर्त गुण शब्द का मूर्त में नहीं रहनेवाला गुण यह अर्थ है।

का० ८८, उत्त०

संख्यादयो विभागान्ता उभयेषां गुणा मताः ॥

का० अर्थ

संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग ये पांचो गुण मूर्त (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, और मन) और अमूर्त (आकाश, काल, दिशा और आत्मा) इन दोनों में अर्थात् द्रव्यमात्र में रहते हैं।

(१) उभयेषामिति। (२) मूर्तामूर्त गुणा इत्यर्थः।

(१, २) इसका अर्थ कारिकार्थ में स्पष्ट है।

का० ८९

संयोगश्च विभागश्च संख्या द्वित्वादिकास्तथा।
द्विपृथक्त्वादय स्तद्व देतेऽनेकाश्रिता गुणाः ॥

संयोग, विभाग, द्वित्वादि संख्या, द्विपृथक्त्वादि ये चार अनेक में रहने वाले गुण हैं।

कारिका घटक चकार से गुरुत्व का ग्रहण है अतः मूर्तगुणमें गुरुत्व को भी समझना चाहिये।

(१) अनेकाश्रिता इति। (२) संयोग विभाग द्वित्वादीनि द्विवृत्तीनि। (३) त्रित्वचतुष्ट्वादिकं त्रिचतुरादिवृत्तीति बोध्यम्।

(१) अनेकाश्रिताः इस कारिकांश की व्याख्या करने के लिये यह पाठ धारण किया गया है। (२) संयोग, विभाग, द्वित्व और द्विपृथक्त्व ये दो वस्तुओं में रहने वाले गुण हैं। (३) त्रित्व और चतुष्ट्वादि ये तीन और चार प्रभृति वस्तुओं में रहने वाले गुण हैं।

का० ९० पूर्वा०

अतः शेष गुणाः सर्वे मता एकैक वृत्तयः।

का० अर्थ

उक्त चारों गुणों से भिन्न जितने गुण हैं वे सब एक एक मात्र में रहने वाले हैं।

(१) रूप रस गन्ध स्पर्शैकत्व परिमाणैकपृथक्त्व परत्वा परत्व बुद्धि सुख, दुःखेच्छा द्वेष प्रयत्न गुरुत्व द्रवत्व स्नेह संस्कारादृष्ट शब्दा इत्यर्थः।

(१) रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, एकत्व, परिमाण, एकपृथक्त्व, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, संस्कार, अदृष्ट, शब्द ये सब एक एक वस्तु में रहनेवाले गुण हैं।

का० ९०. ९१ पूर्वा०

बुद्ध्यादि षट्कं स्पर्शान्ताः स्नेहः सांसिद्धिकोद्रवः॥
अदृष्टभावना शब्दा अमी वैशेषिका गुणाः।

का० अर्थ

बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, स्नेह, सांसिद्धिकद्रवत्व, धर्म, अधर्म भावना और शब्द ये विशेष गुण कहे जाते हैं।

(१) बुद्धि सुख दुःखेच्छा द्वेष प्रयत्ना इत्यर्थः। (२) स्पर्शान्ता रूप रस गन्ध स्पर्शा इत्यर्थः। (३) द्रवो द्रवत्वं।

(१) बुद्ध्यादि शब्द का बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष प्रयत्न अर्थ है। (२) स्पर्शान्त शब्द का रूप, रस, गन्ध, स्पर्श अर्थ है। (३) सांसिद्धिक द्रव शब्द का सांसिद्धिक द्रवत्व अर्थ है।

(४) वैशेषिका इति । (५) विशेषा एव वैशेषिकाः । (६) स्वार्थे ठक् । (७) विशेष गुणा इत्यर्थः ।

(४-७) विशेष शब्द से स्वार्थ में ठक् प्रत्यय करनेसे वैशेषिक शब्द सिद्ध होता है। अतः "वैशेषिका गुणा" इस शब्द का विशेष गुण अर्थ है।

का० ६१, ६२ । पूर्वा०

संख्यादिरपरत्वान्तो द्रवोऽसांसिद्धिकस्तथा ॥
गुरुत्ववेगौ सामान्य गुणा एते प्रकीर्तिताः ।

का० अर्थ

संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, असांसिद्धिक अर्थात् नैमित्तिकद्रवत्व, गुरुत्व और वेग ये सामान्य गुण हैं।

(१) संख्यादिरिति । संख्या परिमाण पृथक्त्व संयोग विभाग-परत्वा परत्वानीत्यर्थः ।

(१) संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व ये गुण संख्यादिर परत्वान्त शब्द से लिये जाते हैं।

का० ६२,६३ ।

संख्यादिरपरत्वान्तो द्रवत्वंस्नेह एवच ॥
एतेतु द्वीन्द्रिय ग्राह्याः —

का० अर्थ ।

संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व, और स्नेह ये गुण दो इन्द्रियों से ग्राह्य हैं।

(१) द्वीन्द्रियेति । चक्षुषा त्वचाऽपि ग्रहण योग्यत्वात् ।

(१) संख्या; परिमाण; पृथक्त्व; संयोग; विभाग; परत्व; अपरत्व द्रवत्व और स्नेह ये नव गुण चक्षु से और त्वचासे ग्रहण (ज्ञान) करने योग्य हैं।

का० ६३

अथ स्पर्शान्त शब्दकाः ।
वाह्यैकैकेन्द्रिय ग्राह्याः ।

का० अर्थ ।

रूप, रस; गन्ध स्पर्श और शब्द ये सब गुण वाह्य एक एक इन्द्रिय से ग्राह्य हैं

(१) बाह्येति । रूपादीनां चक्षुरादिग्राह्यत्वात् ।

(१) रूप, रस, गन्ध, स्पर्श शब्द ये गुण क्रमशः चक्षु, रसना; घ्राण, त्वक् और श्रोत्र इन इन्द्रियों से ग्रहण किये जाते हैं ।

का० ९३, ९४

गुरुत्वादृष्ट भावनाः ।
अतीन्द्रिया विभूनां तु ये स्युर्वैशेषिकागुणाः ।
अकारण गुणोत्पन्ना एते तु परिकीर्तिताः ॥

का० अर्थ ।

+ गुरुत्व, अदृष्ट और भावना ये अतीन्द्रिय हैं । विभुके विशेष गुण अर्थात् बुद्धि; सुख; दुःख; इच्छा; द्वेष; यत्न; धर्म; अधर्म; भावना, शब्द ये दश गुण अकारण गुणोत्पन्न हैं ।

(१) विभूनामिति । (२) बुद्धिसुखदुःखेच्छा द्वेषप्रयत्न धर्माधर्म भावना शब्दा इत्यर्थ । (३) अकारणेति कारणगुणेन कार्ये ये गुणाउत्पद्यन्ते- ते कारणगुणपूर्वका रूपादयो वक्ष्यन्ते । (४) बुद्ध्यादयस्तु न तादृशा आत्मादेः कारणाभावात् ।

(१;२) * बुद्धि, सुख; दुःख इच्छा, द्वेष, प्रयत्न धर्म, अधर्म, भावना और शब्द इतने विभु के विशेष गुण हैं । (३) रूपादि जो स्वाश्रयके समवायिकारण (अवयव) के गुण से कार्य (अवयवी) में उत्पन्न होते हैं वे कारण गुण पूर्वक हैं । (४) उक्त बुद्ध्यादि दश कारण गुण पूर्वक गुण नहीं हैं क्योंकि आत्मा और आकाश का कोई कारण नहीं है ।

का० ९५, ९६, पूर्वा०

अपाकजास्तु स्पर्शान्ता द्रवत्वं च तथा विधम् ।
स्नेहवेगगुरुत्वैक पृथक्त्वपरिमाणकम् ॥
स्थिति स्थापक इत्येतेस्युः कारण गुणोद्भवाः ।

+ जीवन योनि यत्न और स्थितिस्थापक संस्कार ये दोनों गुण भी अतीन्द्रिय हैं ।

* ये दश गुण केवल आत्मा और आकाश के विशेष गुण हैं । काल और दिशा में कोई विशेष गुण नहीं रहता है ।

का० अर्थ।

अपाकज रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, और अपाकज अर्थात् सांसिद्धिक द्रवत्व, स्नेह, वेग, गुरुत्व, एकत्व, एक पृथक्त्व, परिमाण स्थितिस्थापक, ये सब कारण गुणोत्पन्न हैं

(१) अपाकजास्त्विति। (२) पाकज रूपादीनां कारण गुण पूर्वकत्वाभावात् अपाकजा इत्युक्तम्। (३) तथाविध मपाकजम्। (४) तथैकत्वमपि बोध्यम्।

(१.२) पाकज रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, को कारणगुण पूर्वक नहीं होने के कारण रूपादि चार गुणों में अपाकजत्व विशेषण दिया गया। (३) कारिका में "तथाविध" शब्द का अपाकज अर्थ है। (४,) एकत्व को भी कारण गुणपूर्वक समझना चाहिये।

का० ८६, उत्त०

संयोगश्च विभागश्च वेगश्चैते तु कर्मजाः।

का० अर्थ।

संयोग विभाग और वेग ये तीन गुण कर्मज हैं।

(१) कर्मजा इति। यद्यपि कर्मजत्वं न साधर्म्यं घटादावतिव्याप्तेः, संयोगजसंयोगेऽव्याप्तेश्च। (२) तथापि कर्मजन्य वृत्ति गुणत्वव्याप्यजातिमत्त्वं बोध्यम्। (३) एव मन्यत्राप्यूह्यम्।

(१) * अगर संयोग, विभाग, वेग इन तीनों गुणों का साधर्म्य (लक्षण) कर्मजत्व (कर्मजन्यत्व) करते हैं तो घटादि में अतिव्याप्ति हो जायगी क्योंकि घटादि भी क्रिया से उत्पन्न होता है। और संयोगज संयोग में अव्याप्ति हो जायगी क्योंकि वह क्रियाजन्य नहीं है। (२) इसलिये संयोग, विभाग, वेग तीनों का लक्षण, कर्मजन्य में (संयोग, विभाग, वेग में) रहने वाली, जो गुणत्वव्याप्य जाति (संयोगत्व, विभागत्व, वेगत्व) उस जाति का आश्रयत्व है, (३) इसी परिपाटी से दूसरे जगह भी कहीं २ ऊह करना चाहिये (अर्थात् विभुके विशेष गुण और संयोग विभाग इनका अव्याप्य वृत्तित्वरूप साधर्म्य "प्रादेशिको विभु गुणः" इत्यादि कारिका से कहा जायगा किन्तु अव्याप्य वृत्तित्व को कर्म में रहने के कारण अतिव्याप्ति और ईश्वरज्ञान में नहीं रहने के कारण अव्याप्ति होगी अतः वहां भी अव्याप्य वृत्ति में रहनेवाली जो गुणत्वव्याप्यजाति तादृश जातिमत्त्व रूप जाति घटित लक्षण समझना चाहिये)

---

* कपाल (अवयव) और (दूसरा अवयवी) वृक्ष के संयोग से जो (उक्त कपाल वाला) घट और (उक्त) वृक्ष में संयोग उत्पन्न होता है वही संयोग संयोगज संयोग कहा जाता है।

का० ६७।

स्पर्शान्तपरिमाणैक पृथक्त्वं स्नेह शब्दके।
अवेद समवायित्वम्—

का० अर्थ।

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, परिमाण, एकत्व, एकपृथक्त्व (एकमात्रनिष्ठ पृथक्त्व) स्नेह शब्द (और स्थिति स्थापक) ये गुण असमवायि कारण मात्र होते हैं।

(१) स्पर्शान्तेति। (स्पर्शोऽत्रानुष्णो ग्राह्यः)। (२) एक पृथक्त्वमित्यत्र त्वप्रत्ययस्य प्रत्येकमन्वया देकत्वं पृथक्त्वं च ग्राह्यम्। (३) पृथक्त्वपदेन चैक पृथक्त्वं विवक्षितम्।

(१) कारिका घटक "स्पर्शान्तेति ग्रन्थमें" स्पर्शसे अनुष्णस्पर्श लेना चाहिये (इसलिये अनुष्णा शीत और शीतस्पर्श ग्राह्य है)। (२) एकपृथक्त्व घटक त्वप्रत्ययका प्रत्येकमें अन्वय करनेके कारण एकत्व और पृथक्त्व रूप अर्थ लब्ध होता है। (३) पृथक्त्व, पदसे, एक पृथक्त्व विवक्षित है।

(४) अवेद समवायित्वमिति। (५) घटादि रूप रस गन्ध स्पर्शाः कपालादि रूप रस गन्ध स्पर्शेभ्यो भवन्ति। (६) एवं कपालादि परिमाणादीनां घटादिपरिमाणाद्यसमवायिकारणत्वम्। (७) शब्दस्यापि द्वितीय शब्दं प्रत्यसमवायिकारणत्वम्। (८) एवं स्थितिस्थापकैकपृथक्त्वयोरपि ज्ञेयम्।

(४-६) घटादि रूप अवयवीके रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, स्थितिस्थापक, परिमाण, एकत्व, एकपृथक्त्व और स्नेहके असमवायि कारण क्रमशः कपालादिरूप अवयवके रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, स्थितिस्थापक, परिमाण, एकत्व, एक पृथक्त्व और स्नेह होते हैं। (७, ८) द्वितीय शब्दके प्रति पूर्व शब्द असमवायि कारण होता है।

का० ६७,६८।

—अथ वैशेषिके गुणे॥

आत्मनः स्यान्निमित्तत्वम्—

का० अर्थ।

आत्मामें जो विशेष गुण हैं (बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, धर्म अधर्म भावना) वे निमित्तकारण मात्र होते हैं।

(१) निमित्तत्वमिति। (२) बुद्ध्यादीनामिच्छादि निमित्तत्वादिति भावः।

(१,२) बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म अधर्म, भावना ये इच्छादि के प्रति निमित्त कारण मात्र हैं।

का० ९८,९९।

—उष्णस्पर्शगुरुत्वयोः।
वेगेऽपि च द्रवत्वे च संयोगादिद्वये तथा॥
द्विधैव कारणत्वं स्याद्—

का० अर्थ।

उष्णस्पर्श, गुरुत्व, वेग, द्रवत्व, संयोग, विभाग ये सब असमवायि और निमित्त दोनों तरहके कारण होते हैं।

(१) द्विधैवेति। (२) असमवायि कारणत्वं निमित्तकारणत्वं च। (३) तथाहि। (४) उष्णस्पर्श उष्णस्पर्शस्यासमवायि कारणं पाकजे निमित्तम्। (५) गुरुत्वं गुरुत्वपतनयो रसमवायिकारणम् प्रतिघातेनिमित्तम्। (६) वेगो वेगस्पन्दनयोरसमवायी अभिघाते निमित्तम्। (७) द्रवत्वं द्रवत्वस्यन्दनयोरसमवायि, संग्रहे निमित्तम्। (८) भेरीदण्डसंयोगः शब्देनिमित्तम्। (९) भेर्याकाशसंयोगोऽसमवायी। (१०) वंशदलद्वयविभागः शब्देनिमित्तम्। (११) वंशदलाकाशविभागेऽसमवायीति।

(१,२) कारिका घटक "द्विधैव शब्द" से असमवायि और निमित्त दोनों कारण ग्राह्य हैं। (३) यथा। (४) * अवयवीके उष्णस्पर्श के प्रति अवयवका उष्णस्पर्श असमवायि कारण है (यहां कारणगुणोत्पन्न समझना चाहिये)। और पाकज रूप, रस, गन्ध, स्पर्श के प्रति उष्णस्पर्श निमित्त कारण है। यहां (अकारणगुणोत्पन्न समझना चाहिये) (५) + अवयवी के गुरुत्वका असमवायि कारण अवयवका गुरुत्व है और अवयवीके आद्यपतनका असमवायिकारण अवयवि ही का गुरुत्व है। एवं दो अवयवियोंके ठोकरसे जो दोनों अवयवियोंमें प्रतिघात उत्पन्न होता है उस प्रतिघात का निमित्त कारण दोनों अवयवियों

* एक कार्य के प्रति उष्ण स्पर्श दोनों तरह के कारण नहीं होते किन्तु किसी कार्य के प्रति निमित्त और किसी कार्य के प्रति असमवायि कारण होता है।

+ गुरुत्व स्व समानाधिकरण आद्य पतन तथा स्वाश्रयजन्यद्रव्य के गुरुत्व का असमवायि कारण और स्वसमानाधिकरण अभिघात का निमित्त कारण होता है।

का गुरुत्व है। (६) * अवयवीके वेगके प्रति अवयवका वेग असमवायिकारण है और अवयवीके स्पन्दके प्रति अवयवि ही का वेग असमवायि कारण होता है। एवं दो अवयवियोंके ठोकरसे जो दोनों अवयवियोंमें अभिघात उत्पन्न होता है उस अभिघातका निमित्त कारण अवयविगत वेग होता है। (७) + अवयवीके द्रवत्वका असमवायिकारण अवयवका द्रवत्व है और अवयवीके स्पन्दन (पसरने) का असमवायिकारण अवयविका ही द्रवत्व है और चूर्णादिगत पिण्डीभावके प्रति उस पिण्डगत जलका द्रवत्व निमित्तकारण है। (८,९) डंका और लकड़ीका जो संयोग वह (उस संयोग जन्य ध्वन्यात्मक) शब्दके प्रति निमित्त कारण है। एवं डङ्का और आकाश का संयोग असमवायि कारण है। (१०) वंश के दो भागोंके विभाग से होनेवाले शब्दके प्रति उक्त विभाग निमित्तकारण है। (११) एवं वंशदल और आकाशके विभागके प्रति उक्त वंशदलद्वयका विभाग असमवायिकारण होता है।

का० ९९।

अथ प्रादेशिको भवेत्।
वैशेषिको विभुगुणः संयोगादिद्वयं तथा॥

का० अर्थ।

विभुके विशेष गुण (बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष यत्न, धर्म, अधर्म, भावना, शब्द, संयोग, विभाग,) ये सब प्रादेशिक हैं।

(१) प्रादेशिकोऽव्याप्य वृत्तिः॥

(१) × प्रादेशिक अव्याप्य वृत्तिको कहते हैं। अव्याप्य वृत्ति वह है जिसका अपने अधिकरणमें अपना अभाव भी रहता है (जैसा कि उक्त ज्ञानादि १२ हैं)।

का० १००

चक्षुर्ग्राह्यं भवेद्रूपं द्रव्यादेरुपलम्भकम्।
चक्षुषः सहकारि स्याच्छुक्लादिक मनेकधा॥

का० अर्थ।

जो रूप चक्षुमात्र से ग्राह्य और द्रव्यादि के प्रत्यक्ष में कारण तथा—चक्षुका सहकारी (सहायक) भी है। वह रूप शुक्लादि प्रभेद से सात प्रकारका है।

---

* वेग स्वसमानाधिकरण स्पन्द का, तथा स्वाश्रय जन्य द्रव्यगत वेग का, असमवायि कारण, और स्वसमानाधिकरण अभिघात का निमित्त कारण है।

+ द्रवत्व स्वसमानाधिकरण स्यन्दन का, तथा स्वाश्रयजन्य द्रव्यगत द्रवत्व का असमवायि कारण है।

× प्रदेशे भवः प्रादेशिकः स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभाव प्रतियोगित्वं अव्याप्यवृत्तित्वम्।

(१) चक्षुरिति। (२) रूपत्वजातिस्तु प्रत्यक्षसिद्धा। (३) रूपशब्दोल्लेखिनी प्रतीतिर्नास्तीति चेन्मास्तु रूपशब्दप्रयोगस्तथापि नीलपीतादिष्वनुगतजातिविशेषोऽनुभव सिद्ध एव। (४) रूपशब्दाप्रयोगेऽपि नीलो वर्णः पीतोवर्ण इति वर्णशब्दोल्लेखिनी प्रतीतिरस्त्येव। (५) एवं नीलत्वादिकमपि प्रत्यक्षसिद्धम्।

(१,२) रूपत्व जाति तो प्रत्यक्ष सिद्ध है। (३) शङ्का—जब व्यवहारमें केवल रूप शब्दका प्रयोग सब रूपमें नहीं होता है किन्तु तत्तत् नील पीतादि रूपमें नील पीतादिका भी प्रयोग होता है तब सकल नील पीतादि रूपमें रूपत्व जाति है इसमें क्या प्रमाण? समा०—ऐसा तो नहीं। नील पीतादिमें भी रूप शब्दका प्रयोग होताही है यथा नील रूप पीत रूप इत्यादि। इसलिये नील पीतादिमें अनुगत (एक) रूपत्व जाति मानना अनुभव सिद्ध है। (४) कोई व्यक्ति नील पीतादिमें रूप शब्दका प्रयोग नहीं करके यदि नील वर्ण, पीतवर्ण इत्यादि भी प्रयोग करते हैं तथापि दोष नहीं है कारण कि वर्ण शब्दभी रूप शब्द ही का पर्याय है। (५) इसी प्रकार नीलत्वादि जाति भी प्रत्यक्ष सिद्ध है।

(६) न चैकैका एव नील रूपादिव्यक्तय इत्येकव्यक्ति वृत्तित्वान्नीलत्वादिकं न जातिरिति वाच्यं, नीलो नष्टो रक्त उत्पन्न इत्यादिप्रतीतेर्नीलादेरुत्पाद विनाशशालितया नानात्वात्। (७) अन्यथा एकनीलनाशे जगदनीलमापद्येत।

(६) शङ्का,—अगर नीलादि ६ एक एकही वस्तु हैं तब नीलत्वादि ६ जाति नहीं हो सकता है। कारण कि एक (व्यक्ति) मात्र में रहने वाला धर्म जाति नहीं होता है। समा० ——ऐसा ज्ञान होता है कि नील नष्ट हो गया और रक्त उत्पन्न हो गया एवं पुनः रक्त नष्ट हो गया और नील उत्पन्न हो गया अतः यह सिद्ध हुआ कि नीलादि उत्पाद विनाश शाली है। इसलिये नीलादि नाना मानना पड़ेगा और नाना मानने पर जाति में बाधा नहीं हो सकती। (७) और अगर एकही नील मानें तो उस नील के नाश हो जाने के बाद संसार में कहीं भी नील का प्रत्यक्ष नहीं होगा।

(८) न च नीलसमवाय रक्त समवाययो रेवोत्पादविनाश विषयकोऽसौ प्रत्यय इति वाच्यं, प्रतीत्या समवायानुल्लेखात्।

(८) शङ्का—अगर कहें कि नील नष्ट होगया और रक्त उत्पन्न हो गया इस प्रतीति में नील या रक्त के उत्पाद विनाश का भान नहीं होता है। किन्तु नील और रक्त के समवाय सम्बन्ध का जो उत्पाद -विनाश उसी का भान होता है. परन्तु यह ठीक नहीं है. क्योंकि उस प्रतीति के अभिलापक शब्द से समवाय का उल्लेख नहीं होता है।

(९) न च स एवायं नील इति प्रत्ययाल्लाघवाच्चैक्य मिति वाच्यं, प्रत्यक्षस्य तज्जातीय विषयकत्वात्। (१०) सैवेयं गुर्जरीतिवत्। (११) लाघवं तु प्रत्यक्षबाधितम्।

(९,१०) एक नील नष्ट हो जाने पर भी कहीं दूसरे जगह नील देखने पर "सएवायं नीलः" इत्याकारक जो प्रत्यक्ष होता है उसके अनुरोध से, और जगत् में एकही नील मानने मे लाघव है इसलिये भी एकही नील मानना युक्त है। यह कथन भी ठीक नहीं है क्योंकि "जैसे सैवेयं गुर्जरी" जो पुरुष किसी गुर्जरी स्त्री को पहले देख चुका है; पुनः दूसरी गुर्जरी स्त्री को देख कर कहता है कि यह वही गुर्जरी स्त्री है। यह प्रतीति पहले देखी हुई गुर्जरी को विषय नहीं करती किन्तु उसके समान दूसरी गुर्जरी को विषय करती है वैसे ही "सएवायं नीलः" यह प्रतीति भी पूर्वदृष्ट नील के सजातीय नीलान्तर ही को विषय करती है न कि पूर्व नील को विषय करती है अतः जगत में एक ही नील मानना अयुक्त है (११) लाघव रूप तर्क प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है अर्थात् लाघव के बल से प्रत्यक्ष विरुद्ध अर्थ सिद्ध नहीं होता अतः केवल लाघव से एक मात्र नील की सिद्धि असंभव है

(१२) अन्यथाघटादीना मप्यैक्यप्रसंगात्। (१३) उत्पाद विनाश बुद्धेः समवाया वलम्बनत्वापत्तेरिति। (१४) एतेन रसादिकमपि व्याख्यातम्।

(१२) अगर प्रत्यक्ष प्रमाणसे विरुद्ध वस्तु लाघव के अनुरोध से सिद्ध हो तो घटादि में भी एकत्व की आपत्ति हो जायगी। (१३)*घटके उत्पाद विनाश को विषय करनेवाली प्रतीति को घट समवायके उत्पाद विनाश को विषय करने वाली मान सकते हैं। (१४) इसी युक्ति से रसादि की भी व्याख्या हो गयी (अर्थात् रस भी अनेक मानना चाहिये)

(१५) चक्षुर्ग्राह्यमिति। (१६) चक्षुर्ग्राह्य विशेष गुण इत्यर्थः। (१७) एवमग्रेऽपि। (१८) द्रव्यादेरिति। (१९) उपलम्भक मुपलब्धिकारणम्। (२०) इदमेव विवृणोति। (२१) चक्षुष इति। (२२) द्रव्यगुणकर्मसामान्यानां चाक्षुषप्रत्यक्षं प्रति उद्भूतरूपं कारणम्

(१५,१६) कारिकाघटक चक्षुर्ग्राह्य शब्द का चक्षुर्मात्रग्राह्य विशेष गुण अर्थ है। अन्यथा संयोगादि में भी चक्षुर्ग्राह्यत्व रहने के हेतु रूप लक्षण की अति व्याप्ति हो जायगी (१७) +इसी प्रकार रस और स्पर्श के लक्षणमें भी समझना चाहिये। (१८,१९) "उपलम्भक शब्द से प्रत्यक्ष का कारण लिया जाता है (२०,२१) चक्षुष इत्यादि कारिका से (द्रव्यादे रुपलम्भकम्) इसीका विवरण करते हैं। (२२) द्रव्य गुणकर्म और सामान्य के चाक्षुष प्रत्यक्ष के प्रति उद्भूत रूप कारण है।

---

* जैसे कि अनेक नील रहने पर भी आप केवल लाघव के कारण नील रक्तके समवाय का उत्पाद विनाश विषयक ही प्रतीति मान कर एक ही नील मानते हैं वैसे ही अनेक घट रहने पर भी उक्त रीति से एक ही घट मानना पड़ेगा। लेकिन यह ठीक नहीं है। कारणकि प्रत्यक्ष प्रमाण के सम्मुख केवल लाघव अकिंचित्कर है इसलिये प्रत्यक्ष प्रमाण के अनुकूल अनेक नील हैं और अनेक घटभी हैं।

+ रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द ये रसना, घ्राण, त्वक् श्रोत्र से ग्राह्य विशेष गुण हैं।

(२३) शुक्लादिकमनेकधेति। (२४ तच्च रूपं शुक्लनीलपीतरक्तहरित कपिशकर्बुरादि भेदादनेकप्रकारकं भवति। (२५) ननु कथं कर्बुरमतिरिक्तरूपं भवति। (२६) इत्थं नील पीताद्यवयवारब्धो ऽवयवी न तावद्रूपी रूपाऽप्रत्यक्षत्वप्रसङ्गात्। (२७) नापि व्याप्यवृत्ति नीलादिरूपमुत्पद्यते पीतावच्छेदेनापि नीलोपलब्धि प्रसङ्गात् (२८) नाप्यव्याप्यवृत्तिर्नीलादिकमुत्पद्यते व्याप्यवृत्ति जातीयगुणानामव्याप्यवृत्तित्वे विरोधात्। (२९) तस्मान्नानाजातीय रूपैरवयविनि विजातीयंचित्रं रूपमारभ्यते। (३०) अतएवैकं चित्रमित्यनुभवोऽपि। (३१) नानारूपकल्पने गौरवात्।

(२४) यह रूप शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश कर्बुर आदि के भेद से सात प्रकार के होते हैं

(२५) शङ्का— शुक्ल नील पीत रक्त हरित कपिश रूपों से भिन्न कर्बुर रूप (चित्र रूप) क्यों माना जाता है (यह शुक्लादि रूपों का समुदाय है न कि भिन्न है ऐसा मानना चाहिये) (२६) समा०—(कर्बुर रूप को शुक्लादि रूप में भिन्न मानने की युक्ति यह है) नील पीतादि रूप वाले अनेक अवयवों से बने हुये जो अवयवी है उनमें अगर कोई रूप न माने तो उनका प्रत्यक्ष नहीं होगा (क्योंकि चाक्षुष प्रत्यक्ष के प्रति रूप कारण है)। (२७) यदि उनमें व्याप्य वृत्ति नीलादि रूप अनेक माने जाय तो उनके सब भागों में नीलादि का प्रत्यक्ष होने लगेगा किन्तु ऐसा नहीं होता है अतः व्याप्य वृत्ति नीलादि का स्वीकार नहीं कर सकते। (२८) अगर उस अवयवी में अव्याप्य वृत्ति (अवयवीके कुछ अंश में रहने वाला न कि समूचे में) अनेक रूप माने तो यह नहीं हो सकता है क्योंकि नियम यह है कि "व्याप्य वृत्ति जातीय गुण अव्याप्य वृत्ति नहीं होता है" (नील पीतादि व्याप्य वृत्ति है इसलिये यह अव्याप्य वृत्ति नहीं कहा जा सकता) याने जो गुण किसी भी जगह व्याप्य वृत्ति पाया जाता है वह गुण कहीं भी अव्याप्य वृत्ति नहीं हो सकता है (२९) इसलिये नाना रूप वाले अनेक अवयवों से उत्पन्न अवयवी में विजातीय एक चित्र रूप की कल्पना करनी होगी। (३०) नील पीतादि से अतिरिक्त चित्र रूप मानने ही पर नील पीतादि विभिन्न अवयवों से उत्पन्न अवयवी में "एकं चित्र रूपम्" (इसमें एक चित्र रूप है) यह प्रतीति भी प्रामाणिक होती है। (३१) नील पीतादि अनेक रूप वाले अवयवों से बने हुये अवयवी में यदि अनेक रूप माने जायेंगे तो "चित्र रूपम्" इस प्रतीति की विषयता अनेक रूपों में माननी पड़ेगी और ऐसा मानने पर गौरव होगा इसलिये उक्त प्रतीति की विषयता एक अतिरिक्त चित्र रूप ही में माननी चाहिये।

(३२) इत्थं च नीलादीनां पीताद्यारम्भे प्रतिबन्धकत्व कल्पनादवयविनि न पीताद्युत्पत्तिः। (३३) एतेन स्पर्शोऽपि व्याख्यातः।

(३२) पूर्वोक्त युक्तिसे एक स्वतन्त्र चित्ररूप सिद्ध होनेपर शङ्का होगी कि समवाय सम्बन्धसे अवयविगत रूपके प्रति स्व समवायि समवेतत्व सम्बन्धसे अवयवगत रूप जब असमवायि कारण होताहै तब अवयवगत नील पीतादि रूपको स्वसमवायि समवेतत्व सम्बन्धसे चित्रित अवयवीमें रहनेके हेतु उक्त अवयवीमें नील पीत आदि रूपकी उत्पत्ति क्यों नहीं होती ? समा०– समवायसम्बन्धसे पीतरूपके प्रति स्वसमवायि समवेतत्व सम्बन्ध से पीतेतर रूप प्रतिबन्धकहै। एवं समवाय सम्बन्धसे नील रूपके प्रति स्वसमवायि समवेतत्वसम्बन्धसे नीलेतररूप प्रतिबन्धक है इस प्रकार प्रतिबध्य प्रतिबन्धक भाव माननेके कारण चित्रित अवयवीमें पीत नील रूपादि की उत्पत्ति नहीं होगी। (३३)* जो युक्तियां अतिरिक्त चित्र रूप माननेमें बतलायी गयी है उन्ही युक्तियोंसे चित्र स्पर्श भी अतिरिक्त माना जाताहै, यह समझना चाहिये।

(३४) रसादिकमपि नाव्याप्यवृत्ति किंतु नाना जातीयरसवदवयवै रारब्धेऽवयविनि रसाभावेऽपि न क्षतिः। (३५) तत्र रसनयाऽवयवरस एव गृह्यते, रसनेन्द्रियादीनां द्रव्यग्रहे सामर्थ्याभावात्, अवयविनो नीरसत्वेऽपि क्षतेर भावात्।

(३४) + यद्यपि रसादि भी अव्याप्य वृत्ती नहीं है तोभी नाना जातीय रस (मधुर, खट्टा, इत्यादि) वाले अवयवोंसे बने हुए अवयवी में रसाभाव मानने परभी कोई क्षति नही हैं (३५) क्योंकि नाना जातीय रसवाले अवयवोंसे बने हुये अवयवी में जो रस का प्रत्यक्ष होताहै वह अवयवों के ही रसको विषय करताहै नके अवयवीके रसको क्योंकि रसनेन्द्रिय या घ्राणेन्द्रिय से द्रव्य का प्रत्यक्ष नहीं होता है केवल गुणादि ही का होताहै इसलिये अगर अवयवी में रस नहीं मानें तो भी कुछ क्षति नहीं है।

(३६) न च्यास्तु, तत्राव्याप्यवृत्त्येव, नानारूपं, नीलादेः पीतादि प्रतिबन्धकत्व कल्पने गौरवात्। (३७) अतएव लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः। श्वेतः खुर विषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते इत्यादि शास्त्र मप्युपपद्यते।

---

* जैसे चित्ररूप एक स्वतन्त्र रूप माना जाताहै वैसेही चित्र स्पर्श भी एक स्वतन्त्र स्पर्श माना जाताहै।

+ प्र० - आप चित्ररुप और चित्र स्पर्श मानते हैं वैसा ही चित्र रस और चित्र गन्ध भी मानिये।

उत्तर०—चक्षु से त्वक् से जो प्रत्यक्ष होता है उसमें द्रव्य का भी भान होता है न केवल गुण ही का, किन्तु रसना या घ्राण से जो प्रत्यक्ष होता है उसमें केवल गुण ही का भान होता है।

(३६) नवीन का मत है कि चित्रित अवयवी में अतिरिक्त चित्ररूप न मानकर अव्याप्य वृत्ति नाना रूपही की सत्ता माननी चाहिये। क्योंकि अतिरिक्त चित्ररूप माननेसे अवयविगत पीतादि रूपके प्रति अवयवगत पीतेतर रूपोंको एवं अवयविगत नीलरूप के प्रति अवयवगत नीलेतर रूपोंको प्रतिबन्धक मानने के कारण गौरव होगा। (३७) अव्याप्यवृत्ति नाना रूप समुदाय ही चित्ररूप है, ऐसा माननेही पर "जिसका वर्ण लाल हो मुख तथा पुच्छ पाण्डु हो खुर और सींग श्वेत हो वह नील वृष कहाजाताहै" यह शास्त्रका वाक्य भी सङ्गत होता है।

(३८) न च व्याप्या व्याप्यवृत्ति जातीययो र्द्वयोर्विरोधः, माना भावात्।

(३८) प्राचीन-एक जातीय वस्तु व्याप्य वृत्ति और अव्याप्यवृत्ति नही हो सकता है इस नियम से एक अवयवीमें जो आप अनेक रूप मानतेहैं वह अयुक्त है। नवीन इस नियममें कुछ प्रमाण नहीं है।

(३९) न च लाघवादेकं रूपम् अनुभव विरोधात्। (४०) अन्यथा घटादेरपि लाघवादैक्यं स्यात्। (४१) एतेन स्पर्शादिकमपि व्याख्यातमिति वदन्ति।

(३९) (प्राचीन के प्रति नवीन का कथन) अगर आप लाघवके कारण एकही रूप माने तो वहभी ठीक नहीं है क्योंकि यह अनुभव विरुद्ध है। (४०) अगर अनुभव विरुद्ध होने पर भी लाघव के लोभ से एकही रूप मानते हैं, तो लाघव के हेतु घटादिको भी एकही क्यों नहीं मानते हैं। इसलिये मानना होगा कि प्रत्यक्ष विरुद्ध अर्थ की केवल लाघवानुरोध से सिद्धि नहीं होती है। अतः प्रत्यक्ष सिद्ध नाना रूपसे भिन्न एक अतिरिक्त चित्र रूपकी सिद्धि किस प्रकार होगी? (४१) इसी रीतिसे एक अतिरिक्त चित्र स्पर्श भी नहीं है किन्तु अव्याप्यवृत्ति अनेक स्पर्शही को चित्र स्पर्श माना जाता है यह समझना चाहिये।

का० १०१ पूर्वा०

जलादिपरमाणौ तन्नित्यमन्यत्सहेतुकम्।

का० अर्थ

जल और तेजके परमाणुमें जो रूप है वह नित्य है उससे भिन्न जितने रूप हैं वे सब अनित्य हैं।

(१) जलादीति। जलपरमाणौ तेजःपरमाणौ च रूपं नित्यम्। पृथिवीपरमाणुरूपं तु न नित्यं तत्र पाकेन रूपान्तरोत्पत्तेः। (२) नहि घटस्य पाकानन्तरं तदवयवोऽपक्व उपलभ्यते। नहि रक्तकपालस्य कपालिका नीलावयवा भवति। एवंत्रसरेणु परमाणावपि पाकसिद्धेः। (३) अन्यज्जलतेजःपरमाणुरूप भिन्नं रूपं सहेतुकं जन्यम्।

(१) जलपरमाणु और तेज परमाणुमें जो रूप है वह नित्य है और पृथवी परमाणुमें जो रूप है वह अनित्य है क्योंकि पाकद्वारा पृथवी परमाणुमें पूर्व रूप के नाशानन्तर रूपान्तर की उत्पत्ति होती है। (२) यदि ऐसा कहें कि अवयवी और अवयव में परस्पर भेद माना जाता है और पाक सर्वत्र अवयवी मात्रमें देखा जाता है तो परमाणुमें पाक नहीं होने के कारण उसका रूप अनित्य कैसे होगा? इसका उत्तर यह है कि घटादि अवयवी पक्व हो गये और उसके अवयव अपक्व हैं ऐसा नहीं देखा जाता है। एवं पाक होने के कारण कपाल रक्त है और उसके अवयव अपक्व रहने के कारण नील हैं यह भी नहीं देखा जाता। अतः त्रसरेणु पर्यन्त पाक प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध है। इसी रीतिसे परमाणु पर्यन्त पाक सिद्ध होता है अर्थात् अवयवमें पाक के विना अवयवी में पाक कहीं देखा नहीं जाता अतः त्रसरेणु के प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध पाकसे द्व्यणुकमें पाकानुमान एवं द्व्यणुक के पाकसे परमाणुमें पाकका अनुमान होता है। (३) जल परमाणु और तेजः परमाणुके रूप नित्य हैं और उससे भिन्न सकल रूप सहेतुक (जन्य) अर्थात् अनित्य हैं।

रसं निरूपयति = रसका निरूपण करते हैं।

का० १०१, १०२,

रसस्तु रसनाग्राह्यो मधुरादिरनेकधा ॥
सहकारी रसज्ञाया नित्यतादि च पूर्ववत्।

का० अर्थ।

रस रसनेन्द्रियजन्य प्रत्यक्षका विषय है और मधुरादि भेदसे ६ प्रकार का है एवं रसना का सहकारी है और उसमें भी रूप के तरह नित्यत्व, अनित्यत्व माना जाता है।

(१) रसस्त्विति। सहकारीति। रासनज्ञाने रसः कारण मित्यर्थः। (२) पूर्ववदिति। जलपरमाणौ रसो नित्योऽन्यः सर्वोऽपि रसोऽनित्य इत्यर्थः।

(१) एक कार्यके प्रति अनेक कारण अपने में परस्पर सहकारी होते हैं। रासन प्रत्यक्ष के प्रति रस कारण है और रसना भी कारण हैं अतः रसनाका सहकारी रस है (२) नित्यत्व, अनित्यत्व पूर्ववत् (रूप के समान) है, अर्थात् जल परमाणुगत रस नित्य है और उससे भिन्न सब रस अनित्य हैं।

गन्धं निरूपयति घ्राणग्राह्य इति = घ्राणग्राह्य इत्यादि कारिका से गन्ध का निरूपण करते हैं।

का० १०२ उत्त०

घ्राणग्राह्यो भवेद्गन्धो घ्राणस्यैवोपकारकः।

का० अर्थ।

गन्ध घ्राणेन्द्रियजन्य प्रत्यक्षका विषय है और घ्राणका सहकारी है।

(१) उपकारक इति। घ्राणजन्यज्ञाने कारणमित्यर्थः। (२) सर्वो-गन्धोऽनित्य एव।

(१) * घ्राण और गन्ध इन दोनों को घ्राणेन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष के प्रति कारणत्व रहने के कारण गन्ध घ्राणका उपकारक अर्थात् सहकारी है। (२) सब गन्ध अनित्यही है इसका कारण यह है कि पृथिवी के रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, पाकज होने के कारण अनित्य हैं और गन्ध केवल पृथिवी में रहता है अतः गन्ध मात्र अर्थात् परमाणुमें रहनेवाला भी गन्ध अनित्य ही है।

का० १०३ पूर्वा

सौरभश्चासौरभश्च स द्वेधा परिकीर्तितः।

का० अर्थ।

सौरभ असौरभ भेदसे गन्ध दो प्रकारके हैं।

स्पर्शं निरूपयति। स्पर्श इति = स्पर्श इत्यादि कारिकासे स्पर्श का निरूपण करते हैं।

का० १०३ उत्त०

स्पर्शस्त्वगिन्द्रिय ग्राह्यस्त्वचः स्यादुपकारकः॥

का० अर्थ

स्पर्श त्वगिन्द्रिय जन्य प्रत्यक्षका विषय है एवं त्वचाका सहकारी है।

(१) उपकारक इति। स्पार्शनप्रत्यक्षे स्पर्शः कारण मित्यर्थः।

(१) त्वचा और स्पर्श इन दोनों को स्पार्शन प्रत्यक्ष के प्रति कारणत्व रहने के हेतु स्पर्श त्वचा का उपकारक अर्थात् सहकारी है।

---

*एक धर्मावच्छिन्न कार्यता निरूपित कारणत्व सहकारित्व है जैसे दण्ड और चक्र इन दोनों में घटत्व रूप एक धर्मावच्छिन्न कार्यता निरूपित कारणत्व रहने के कारण सहकारित्व होता है।

का० १०४

अनुष्णाशीत शीतोष्णभेदात्स त्रिविधो मतः।
काठिन्यादि क्षितावेव नित्यतादि च पूर्ववत् ॥

का० अर्थ

अनुष्णाशीत, शीत तथा उष्ण भेदसे स्पर्श तीन प्रकारके हैं। कठिन स्पर्श और सुकुमार स्पर्श पृथ्वी मात्र में रहता है। स्पर्श में नित्यत्वा नित्यत्व रूप के समान समझना चाहिये।

(१) अनुष्णाशीतेति। पृथिव्यां वायौ च स्पर्शोऽनुष्णा शीतः। जले शीतः। तेजस्युष्णः। (२) काठिन्येति। कठिन सुकुमारस्पर्शौ पृथिव्यामेवेत्यर्थः। कठिनत्वादिकं तु न संयोगगतो जातिविशेषः, चक्षुर्ग्राह्यत्वापत्तेः। (३) पूर्ववदिति। जलतेजोवायुपरमाणु स्पर्शानित्यास्तद्भिन्नास्त्वनित्या इत्यर्थः।

(१) पृथ्वी और वायु में अनुष्णाशीत स्पर्श रहता है परन्तु पृथ्वी में वह पाकज और वायुमें अपाकज है। जलमें शीत स्पर्श है। तेजमें उष्णस्पर्श है। (२) कठिन और सुकुमार स्पर्श पृथ्वीमात्रमें रहते हैं। कठिन और सुकुमार दोनों स्पर्शही हैं किन्तु संयोग नहीं हैं अर्थात् कठिनत्व सुकुमारत्व रूप जाति विशेष संयोगनिष्ठ नहीं है क्योंकि नियम है कि जो गुण जिस इन्द्रिय से गृहीत होता है तद्गत जातिका भी उसी इन्द्रिय से ग्रहण होता है तव यदि उक्त कठिनत्व सुकुमारत्वात्मक जाति विशेष संयोग में माने जाय तो संयोगके, तरह वे जाति विशेषभी चक्षुरिन्द्रियजन्य प्रत्यक्षके विषय हो जायँगे। (३) पूर्ववत्, अर्थात् जल, तेज और वायुके परमाणुमे रहने वाले स्पर्श नित्य हैं और उससे भिन्न सभी स्पर्श अनित्य हैं।

का० १०५

एतेषां पाकजत्वं तु क्षितौ नान्यत्र कुत्रचित्।
तत्रापि परमाणौ स्यात्पाको वैशेषिके नये ॥

का० अर्थ।

पृथ्वी मात्रमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श पाकज होते हैं वैशेषिक के मतमें पृथ्वी में भी पार्थिव परमाणु मात्र में पाक होता है, इस लिये उनके मतसे पार्थिव परमाणु मात्र में रहने वाले रूपादि पाकज हैं।

(१) एतेषामिति । एतेषां रूप रस गन्ध स्पर्शानां नान्यत्रेति । पृथिव्यां हि रूपरसगन्धस्पर्श परावृत्तिरग्निसंयोगा दुपलभ्यते । नहि शतधापि ध्मायमाने जले रूपादिकं परिवर्तते । (२) नीरे सौरभमौष्ण्यं चान्वयव्यतिरेकाभ्या मौपाधिकमेवेति निर्णीयते । पवनपृथिव्योः शीतस्पर्शादिवत् ।

(१) *पृथ्वी मात्र में रूप रस गन्ध स्पर्श का परिवर्तन अग्निसंयोगसे देखाजाता है अतः पृथ्वी मात्र में रूपादि ४ पाकज माने जाते हैं और जल को सैकड़ों वार तपाने पर भी उसके रूप रसादि परिवर्तित नहीं होते अतः जलादि के रूपादि पाकज नहीं माने जाते हैं। (२) + यदि जलादि के रूपादि पाकज नहीं माने जायेंगे तो सुगन्धित द्रव्यके साथ जल को तपाने पर जो जलमें सौरभ तथा उष्णता की प्रतीति होती है वह किस प्रकार होगी ? इसका समाधान मुक्तावली में कहते हैं कि वायु तथा पृथ्वी में जो शीतस्पर्श का भान होता है वह जैसे अन्वयव्यतिरेक से जल सम्बन्ध रूप उपाधि मूलक ही माना जाता है किन्तु वस्तुतः उन दोनों में शीत स्पर्श नहीं है वैसेही जल में भी जो सौरभ और उष्ण स्पर्श का भान होता है वह भी अन्वय व्यतिरेक से क्रमशः सुगन्धित द्रव्य संयोग और अग्नि संयोग रूप उपाधि कृत ही हैं किन्तु जलमें सौरभ तथा उष्ण स्पर्श नहीं है अतः जलमें भी पाकज रूपादि मानने की आवश्यकता नहीं है।

(३) तत्रापि पृथिवीष्वपि मध्ये परमाणावेव पाक इति वैशेषिका वदन्ति । (४) तेषामयमाशयः । अवयविनाऽवष्टब्धेष्ववयवेषु पाको न संभवति परंतु वह्निसंयोगेनावयविषु विनष्टेषु स्वतन्त्रेषु परमाणुषु पाकः । पुनश्च पक्वपरमाणु संयोगाद्द्व्यणुकादि क्रमेण पुनर्महावयवि पर्यन्त मुत्पत्तिः । तेजसामतिशयित वेगवशा त्पूर्वव्यूह नाशो झटिति व्यूहान्तरोत्पत्ति श्चेति ।

(३) पृथ्वी में भी पृथ्वी के परमाणु में ही पाक होता है यह वैशेषिक अर्थात् कणाद मुनि के अनुगामियों का मत है। (४)× उनका यह तात्पर्य है कि अवयव अवयवी से अवरुद्ध

---

* रूपादि परिवर्तन जनक तेजःसंयोग पाक पदार्थ है।

+ तद्सित्त्वयावत् कारण सत्त्वे तत्सत्त्वे तत्सत्त्वमन्वयः। तदभावे तदभावो व्यतिरेकः यथा दण्ड से भिन्न सकल घट के कारणों को रहते हुए और दण्ड को रहते हुए घट उत्पन्न होता है अतः दण्ड के साथ घट का अन्वय है। एवं दण्ड नहीं रहने से घट उत्पन्न नहीं होता है अतः दण्ड के साथ घट का व्यतिरेक है अन्वय व्यतिरेक ज्ञान से कारणता का ज्ञान होता है ऐसा प्रकृति में भी समझना चाहिये।

(क) × अवयवी से अवष्टब्ध = अवरुद्ध
अवयव में पाक नहीं होने का कारण यह है कि अवयवी से अवरुद्ध परमाणुओं में अग्नि संयोग नहीं हो सकता है।

(ख) दो परमाणुओं के संयोग से द्व्यणुक, तीन द्व्यणुकों के संयोग से त्रसरेणु और चार त्रसरेणुओं के संयोग से चतुरणुक एवं महावयवी तक की उत्पत्ति होती है।

रहता है अतः उसमें पाक नहीं हो सकता है किन्तु वेगवद् वह्निसंयोग से अवयवी के नाश होने के बाद सब परमाणुओं को स्वतन्त्र हो जाने पर प्रत्येक स्वतन्त्र परमाणु में पाक होता है। उसके बाद पक्व परमाणुओंके परस्पर संयोगसे द्व्यणुक त्र्यणुकादि क्रमसे पुनः महावयवीपर्यंत की उत्पत्ति होती है। अग्नि में अत्यन्त वेग होने के कारण पूर्व अवयवी का नाश और अति शीघ्र दूसरे अवयवी की उत्पत्ति होती है सारी कार्यवाही के अति शीघ्र होने के कारण उसका ज्ञान नहीं होता।

(५) अत्र द्व्यणुकादि विनाशमारभ्य कतिभिः क्षणैः पुनरुत्पत्त्या रूपादिमद्भवतीति शिष्यबुद्धि वैशद्यार्थं क्षणप्रक्रिया। (६) तत्र विभागज-विभागानङ्गीकारे नवक्षणा तदङ्गीकारे तु विभागः किंचित्सापेक्षो विभागं जनयेत्। निरपेक्षस्य तत्त्वे कर्मत्वं स्यात्। संयोगविभागयोरनपेक्षं कारणं कर्मेति वैशेषिक सूत्रम्। स्वोत्तरोत्पन्न भावान्तरानपेक्षत्वं तस्यार्थः। अन्यथा कर्मणोऽप्युत्तर संयोगोत्पत्तौ पूर्वसंयोगनाशा पेक्षणादव्याप्तिः स्यात्।

(५) पाकज रूप की उत्पत्ति स्थल में द्व्यणुक के नाश से लेकर पुनः उत्पन्न द्व्यणुक कितने क्षण में रूप को प्राप्त करते हैं इस प्रसङ्गमें शिष्य की बुद्धि का विकाश करने के लिये क्षण की प्रक्रिया बतलायी जाती है। (६) * क्षणप्रक्रिया के विचारमें कारण मात्र के विभाग से होनेवाले विभाग को अङ्गीकार नहीं करने पर नवक्षण की प्रक्रिया होती और उसके अङ्गीकार करने पर विभाग किसी की अपेक्षा करही कर द्वितीय विभाग का जनक होता है। यदि विभाग किसी की अपेक्षा नहीं करके द्वितीय विभाग का जनक हो तो वह विभाग क्रियारूप हो जायगा क्योंकि वैशेषिक सूत्र में कहते हैं कि "जो वस्तु संयोग वा विभाग को उत्पन्न करने में किसीकी अपेक्षा न करे वह कर्म है"। अनपेक्ष शब्दसे ऐसा नहीं समझना कि वह किसी पदार्थ की अपेक्षा नहीं करे किन्तु उसका अभिप्राय यह है कि वह अपनी उत्पत्ति के बाद उत्पन्न किस भाव पदार्थ की अपेक्षा न करे। यदि ऐसा अर्थ नहीं करेंगे तो उत्तर संयोग की उत्पत्ति में पूर्व संयोग के नाश की अपेक्षा करने वाले कर्म में इस लक्षण की अव्याप्ति हो जायगी।

(७) तत्र यदि द्रव्यारम्भक संयोगविनाशविशिष्टं काल मपेक्ष्य विभागज विभागः स्यात्तदा दशक्षणा। (८) अथ द्रव्यनाश विशिष्टं काल-मपेक्ष्य विभागज विभागः स्यात्तदेकादशक्षणा।

---

* विभागज विभाग दो प्रकार के होते हैं कारण मात्र विभाग जन्य विभाग और कारणाकारण विभागजन्य विभाग जैसे कपाल का कपाल से विभाग होने पर जो कपाल में पूर्वदेशावच्छिन्न आकाश से विभाग होता है वही कारण मात्र विभाग जन्य विभाग कहा जाता है। और हस्त पुस्तक के विभाग से जो शरीर पुस्तक का विभाग होता है वही कारणाकारण विभागजन्य विभाग कहा जाता है।

(७) * यदि द्रव्यारम्भक संयोग के नाश क्षण की अपेक्षा करके विभागज विभाग माना जाय तो दश क्षण की प्रक्रिया होती है। (८) यदि द्रव्य के नाश क्षण की अपेक्षा करके विभागज विभाग माना जाय तो ग्यारह क्षण की प्रक्रिया होती है।

(९) तथाहि अथ नवक्षणा। (१०) वह्निसंयोगात्परमाणौ कर्म (११) ततः परमाण्वन्तरेण विभागः। (१२) तत आरम्भकसंयोगनाशः। (क) ततो द्व्यणुक नाशः। (ख) ततः परमाणौ श्यामादिनाशः। (ग) ततो रक्ताद्युत्पत्तिः। (घ) ततो द्रव्यारम्भानुगुणा क्रिया। (ङ) ततो विभागः। (च) ततः पूर्वसंयोग नाशः। (छ) तत आरम्भक संयोगः। (ज) ततो द्व्यणुकोत्पत्तिः। (झ) ततो रक्ताद्युत्पत्तिः।

(९) नव क्षण की प्रक्रिया बतलाते हैं। (१०) पहले अग्निसंयोग से द्वयणुकारम्भक किसी एक परमाणु में कर्म। (११) तब सकर्मक परमाणु का दूसरे परमाणु के साथ विभाग। (१२) +उसके बाद द्वयणुकारम्भक संयोग का नाश। (क) तब द्वयणुक का नाश, क्षण की गणना यहां ही से करनी चाहिये। क्योंकि ग्रन्थकार ने क्षण गणना का आरम्भ द्वयणुक नाश के क्षण से करने के लिये पहले कहा है। (ख) तब परमाणु के श्याम रूपादि का नाश। (ग) उसके बाद परमाणु में रक्त रूपादि की उत्पत्ति। (घ) तब द्वयणुकारम्भानुकूल परमाणु में क्रिया। (ङ) तब सकर्मक परमाणु का पूर्व देश से विभाग। (च) उस के बाद परमाणु के साथ पूर्व देश के संयोग का नाश। (छ) तब द्वयणुकारम्भक परमाणुद्वय संयोग। (ज) तब द्वयणुक की उत्पत्ति। (झ) उसके बाद द्वयणुक में रक्त रूप की उत्पत्ति।

(१३) ननु श्यामादिनाश क्षणे रक्तोत्पत्तिक्षणे वा परमाणौ द्रव्यारम्भानुगुणा क्रियाऽस्त्वितिचेन्न। (१४) अग्निसंयुक्ते परमाणौयत्कर्म तद्विनाशमन्तरेण गुणोत्पत्तिमन्तरेण च परमाणौ क्रियान्तराभावात्कर्मवति कर्मान्तरानुत्पत्तेर्निर्गुणे द्रव्ये द्रव्यारम्भानुगुण क्रियानुपपत्तेश्च।

---

* अवयवद्वय के साधारण संयोग से अवयवी की उत्पत्ति नहीं होती यदि ऐसा होतो कपालद्वय के संयोग मात्र से घट क्यों नहीं बनता? अतः अवयवों के यादृश विलक्षण संयोग से अवयवी की उत्पत्ति होती है तादृश विलक्षण संयोग को द्रव्यारम्भक संयोग कहते हैं।

+ यह द्वयणुक का रक्तरूप पक्व परमाणु के रक्तरूप से उत्पन्न हुआ है किन्तु स्वतन्त्र पाकज नहीं है।

(१३) * जिस क्षणमें परमाणु के श्याम रूपादि का नाश माना गया है अगर उसी क्षण में द्व्यणुकारम्भानुकूल क्रिया मान ली जाय तो जिस क्षणमें परमाणु में रक्त रूपादि की उत्पत्ति मानी गयी है उसी क्षण में परमाणु का पूर्व देश से विभाग भी अवश्य मानना होगा क्योंकि उसके पूर्वक्षण में विभाग को पैदा करनेवाली क्रिया है इसलिये इस मत में केवल सातही क्षणकी प्रक्रिया होगी और जिस क्षण में परमाणु मे रक्त रूपादिकी उत्पत्ति मानीं गई है उस क्षण में अगर द्व्यणुकारम्भानुकूल क्रिया भी मानीजाय तव आठ क्षणकी प्रक्रिया होगी यद्यपि इस पक्ष में लाघवके कारण लालित्य अवश्य है तो भी यह मान्य नहीं है (१४) क्योंकि अग्नि संयोगसे जो द्व्यणुक नाशाकूल परमाणु में क्रिया होती है उस क्रिया का विना नाश हुए तथा अन्य गुणकी विना उत्पत्ति हुये परमाणु में द्व्यणुकोत्पादक दूसरी क्रिया नहीं हो सकती। क्योंकि क्रियाकी उत्पत्तिमें समवाय सम्बन्धसे क्रिया प्रतिबन्धक होती है इसीलिये उसका अभाव कारण होता है। एवं रूपाद्यात्मक गुण से शून्य द्रव्य में द्रव्योत्पादक क्रिया नहीं होती द्व्यणुक नाशक पूर्व क्रियाका नाश द्वितीय क्षणमें होता है और रूपाद्यात्मक गुणोंकी उत्पत्ति तृतीय क्षणमें होती है। इसलिये उसके वादही द्व्यणुकानुकूल क्रिया होगी उससे पूर्व द्वितीय या तृतीय क्षणमें नहीं अतः सात और आठ क्षणकी प्रक्रिया नहीं हो सकती।

(१५) तथापि परमाणौ श्यामादिनिवृत्तिसमकालं रक्ताद्युत्पत्तिः स्यादिति चेन्न, पूर्वरूपादि ध्वंसस्यापि रूपान्तरे हेतुत्वात्। (१६) इति नव क्षणा।

(१५) तथापि परमाणुके श्यामादि गुणके नाश क्षणमें रक्तादिकी उत्पत्ति क्यों नहीं मानते? यह नहीं कह सकते हैं। क्योंकि पूर्व रूप का ध्वंस रूपान्तरकी उत्पत्ति में कारण है अतः उसको एक क्षण पूर्व रहना आवश्यक है इसलिये श्याम रूप नाश क्षणमें रक्तरूप की उत्पत्ति नहीं होसकती। (१६) इस प्रकार नवक्षणकी प्रक्रिया का निरूपण समाप्त हुआ।

(१७) अथ दशक्षणा। (१८) सा च आरम्भकसंयोगविनाश विशिष्टं कालमपेक्ष्य विभागेन विभागजनने सतिस्यात्।

(१७) अब दश क्षणकी प्रक्रियाका निरूपण करते हैं। (१८) यदि विभाग आरम्भक संयोगविनाशविशिष्ट कालकी अपेक्षा करके विभाग का जनक हो तो दश क्षणकी प्रक्रिया होगी।

---

* नव क्षण की प्रक्रिया मानने में गौरव है इसलिये सात या आठ क्षण की प्रक्रिया क्यों नहीं मानते हैं। प्रक्रिया का स्वरूप दिखलाते हैं।

(१९) तथाहि। वह्निसंयोगाद्‌द्व्यणुकारम्भके परमाणौ कर्म। (२०) ततो विभागः। (२१) तत आरम्भकसंयोगनाशः। (क) ततो द्व्यणुकनाश विभागज विभागौ। (ख) ततः श्यामनाश पूर्वसंयोगनाशौ (ग) ततो रक्तोत्पत्त्युत्तर संयोगौ। (घ) ततो वह्निनोदनजन्य परमाणु कर्मणो नाशः। (ङ) ततोऽदृष्टवदात्मसंयोगाद् द्रव्यारम्भानुगुणा क्रिया। (च) ततो विभागः (छ) ततः पूर्वसंयोग नाशः। (ज) तत आरम्भकसंयोगः। (झ) ततो द्व्यणुकोत्पत्तिः। (ञ) ततो रक्तोत्पत्तिः

(१९) जैसे वह्निसंयोग से द्व्यणुकके समवायि कारण परमाणु में क्रिया। (२०) तब परमाणुद्वय का विभाग। (२१) तब द्व्यणुक के असमवायि कारण परमाणुद्वयके संयोग का नाश (क) तब द्व्यणुक का नाश और परमाणुद्वय के विभाग से आकाश के साथ परमाणु का विभाग। (ख) उसके बाद परमाणुके श्यामरूप का नाश तथा पूर्व देशावच्छिन्न आकाश और परमाणु के संयोग का नाश। (ग) तब परमाणु में रक्त रूपकी उत्पत्ति और उत्तरदेशावच्छिन्न आकाशके साथ परमाणु का संयोग (घ) * उस के अनन्तर अग्नि संयोग से उत्पन्न हुई परमाणु की क्रिया का नाश। (ङ) + तब अदृष्टवान् आत्मा के साथ परमाणु के संयोग से परमाणु में द्व्यणुकोत्पादक क्रिया। (च) उसके बाद पूर्व देशावच्छिन्न आकाश के साथ परमाणु का विभाग। (छ) तब पूर्व देशावच्छिन्न आकाश केसाथ परमाणु संयोग का नाश। (ज) तब द्व्यणुकारम्भक परमाणुओं का संयोग। (झ) तब द्व्यणुक की उत्पत्ति। (ञ) उसके बाद द्व्यणुक में रक्त रूपकी उत्पत्ति।

(२२) अथैकादश क्षणा। (२३) वह्नि संयोगात्परमाणौ कर्म। (२४) ततो विभागः। (२५) ततो द्रव्यारम्भकसंयोगनाशः। (क) ततो द्व्यणुकनाशः। (ख) ततो द्व्यणुकनाश विशिष्टं कालमपेक्ष्य विभागजविभाग श्यामनाशौ। (ग) ततः पूर्वसंयोगनाशरक्तोत्पत्ती। (घ) तत उत्तर संयोगः (ङ) ततो वह्निनोदनजन्य परमाणुकर्मनाशः। (च) ततोऽदृष्टवदात्मसंयोगाद्द्रव्यारम्भानुगुणा क्रिया। (छ) ततो विभागः (ज) ततः पूर्वसंयोगनाशः। (झ) ततो द्रव्यारम्भकोत्तरसंयोगः। (ञ) ततो द्व्यणुकोत्पत्तिः। (ट) ततो रक्ताद्युत्पत्तिरिति।

* नोदन = शब्दाजनक संयोग विशेष।

+ इस द्व्यणुक से जो घट उत्पन्न होगा उस घट के भोगानुकूल अदृष्टवान् जो आत्मा वही यहां अदृष्टवदात्म शब्द का अर्थ है।

(२२) अब ग्यारह क्षण की प्रक्रिया का प्रदर्शन करते हैं । (२३) अग्निसंयोगसे परमाणुमें क्रिया । (२४) तब परमाणुद्वय का विभाग । (२५) तब द्व्यणुकारम्भक परमाणुद्वय के संयोग का नाश । (क) तब द्व्यणुक का नाश । (ख) उस के बाद द्व्यणुकनाशविशिष्टकाल की अपेक्षा करके परमाणुद्वय के विभागसे सकर्मक परमाणु का आकाशं के साथ विभाग और परमाणुगत श्याम रूप का नाश । (ग) तब पूर्व देशावच्छिन्न आकाशादि के साथ परमाणु संयोग का नाश और परमाणु में रक्तोत्पत्ति । (घ) उसके अनन्तर उत्तर देशावच्छिन्न आकाश के साथ परमाणु का संयोग । (ङ) तब वह्निसंयोग से उत्पन्न परमाणुके पूर्व कर्मका नाश । (च) उसके बाद अदृष्टवाले आत्माके संयोगसे परमाणुमें द्व्यणुकारम्भानुकूल क्रिया । (छ) तब पूर्वदेश के साथ परमाणु का विभाग । (ज) उस के अनन्तर पूर्व देश के साथ परमाणुके संयोग का नाश । (झ) तब द्व्यणुकारम्भक परमाणुद्वय का संयोग । (ञ) तब द्व्यणुककी उत्पत्ति । (ट) तब द्व्यणुक में रक्त रूप की उत्पत्ति ।

(२६) मध्यम शब्दवदेकस्मादग्निसंयोगान्न रूपनाशोत्पादौ तावत्काल मेकस्याग्नेरस्थिरत्वात् । (२७) किं च नाशक एव यद्युत्पादकस्तदा नष्टे रूपादावग्निनाशे नीरूपश्चिरं परमाणुः स्यात् । (२८) उत्पादकश्चेन्नाशकस्तदा रक्तोत्पत्तौ तदग्निनाशे रक्ततरता न स्यात् ।

(२९)* प्रतिघात के बाद जो शब्द उत्पन्न होता है उस शब्दकी धारा में प्रथम शब्द के बाद चरम शब्दसे पहले जितने शब्द होते हैं वे सब मध्यम शब्द कहलाते हैं, उन मध्यम शब्दोंका स्वभाव है कि वे अपने अपने पूर्व वर्त्ती शब्दका नाशक होते हैं और अपने अपने उत्तर वर्त्ती शब्दका उत्पादक भी होते हैं । इन मध्यम शब्दों के समान अग्नि संयोग के पञ्चम क्षणमें होने वाले द्व्यणुक नाश का प्रयोजक जो (प्रथम क्षणमें होनेवाला) अग्नि संयोग वह श्याम रूप का नाशक और रक्त रूप का उत्पादक दोनों में एक भी नहीं हो सकता। कारण यह है कि उक्त (प्रथम क्षणमें होने वाला) अग्नि संयोग षष्ठ वा सप्तम क्षणमें क्रमशः होने वाले श्याम रूपक नाश और रक्त रूप की उत्पत्ति से पूर्व पञ्चम या षष्ठ क्षण तक नहीं रह सकता । वह अग्नि संयोग केवल अग्नि क्रिया का नाशक और परमाणु क्रिया का उत्पादक है ।

---

* एकस्मात् = द्व्यणुक नाश कात् ।

(२) अग्नेः = अग्निसंयोगस्य ।

(२७) * अगर श्याम रूप के नाशक अग्नि संयोग से रक्तरूपोत्पादक अग्नि संयोग को भिन्न नहीं माना जाय किन्तु श्यामनाशक ही को नियमतः रक्त का उत्पादक माना जाय तो जो अग्नि संयोग श्याम रूप के नाश क्षणही में नष्ट होगया है उस अग्नि संयोग से रक्त रूप की उत्पत्ति नहीं हो सकती क्योंकि रक्त रूपोत्पत्ति के पूर्व क्षण में वह स्वयं ही नहीं है। तब अगर दूसरे अग्नि संयोग से रक्त रूपकी उत्पत्ति आप मानें तथापि नहीं हो सकता क्योंकि वह अग्नि संयोग श्यामरूप का नाशक नहीं है इस से सिद्ध हुआ कि परमाणु नीरूप (रूप रहित) हो जायगा। (२८) यदि नाशकतावच्छेदक और उत्पादकतावच्छेदक दोनों जातियों में अभेद की विवक्षा करें अर्थात् उक्त दोनों जाति एक होनी चाहिये ऐसा यदि कहें तो जिस अग्निसंयोग से रूपोत्पत्ति की सम्भावना नहीं है उस को नाशकता भी नहीं मानेंगे तब पूर्वोक्त दोष नहीं होगा इसलिये (उत्पादकत्वेननाशकः) इत्यादि ग्रन्थ से दूसरा दोष दिया जा रहा है, वह यह है कि रूप नाशकतावच्छेदक अग्नि संयोगनिष्ठ जाति विशेष ही यदि रूपोत्पादकतावच्छेदक हो तो कार्यतावच्छेदक भी सामान्यतः पृथ्वी परमाणु रूपत्व को मानना होगा क्योंकि रक्तत्व रक्ततरत्वादि जाति को कार्यतावच्छेदक मानें तो रूपनाशकाग्नि संयोग से जो कभी नील रूप की कभी पीत रूप की कभी रक्त रूपादि की उत्पत्ति होती है वह नहीं होगी अतः सामान्यतः पृथ्वी परमाणु रूपत्व ही को कार्यतावच्छेदक मानना होगा तब अनुभव सिद्ध जो कार्य (पार्थिव परमाणु रूप) गत रक्तत्व रक्ततरत्व रक्ततमत्वादि रूप वैलक्षण्य है वह नहीं हो सकेगा कारण यह है कि कारणतावच्छेदक को

---

* (वह अग्नि संयोग क्रियाहेतु केवल परमाणु में क्रियोत्पत्ति के समय ही तक रहता है इस-लए न तो वह श्याम रूप का नाशक हुआ और न रक्त रूप का उत्पादक हुआ) किन्तु जो अग्नि संयोग श्यामि रूप का नाशक है उसी अग्नि संयोग को रक्त रूप का उत्पादक नहीं माना जा सकता क्योंकि नियम है कि तत्तद्विजातीय कार्य के प्रति कारणतावच्छेदक भिन्न २ मानना होगा न कि एकही धर्म अनेक विजातीय कार्य के प्रति कारणतावच्छेदक हो सकता है। इसलिये श्याम रूप नाश का कारणतावच्छेदक जो अग्नि संयोग गत जाति है वह रक्त रूप का भी कारणतावच्छेदक नहीं हो सकती है अगर ऐसा कहें कि श्याम रूप नाशक अग्निसंयोगमें ही श्याम रूप नाशकता वच्छेदक और रक्त रूपोत्पादकतावच्छेदक दोनों जाति माने तो यह भी नहीं हो सकता। क्योंकि ऐसा मानने पर सांकर्य दोष लगता है जैसे श्याम रूप नाशक अग्नि संयोग में दोनो जातियाँ हैं एवं किसी अग्नि संयोग में रक्त रूपोत्पादकतावच्छेदक जाति है और नील रूप नाश-कतावच्छेदक जाति नहीं है एवं किसी अग्नि संयोग में नील रूपनाशकतावच्छेदक जाति है और रक्तरूपोत्पादकतावच्छेदक जाति नहीं है इस स्थिति में सुतरां श्याम रूप नाशकतावच्छेदक और रक्त रूपोत्पादक-तावच्छेदक इन दोनो जातियों में सांकर्य दोष लग जायगा इस कारण हम रक्त रूपोत्पादकतावच्छेदक जाति को व्याप्य मानते हैं और श्याम रूप नाशकतावच्छेदक जाति को व्यापक मानते हैं इस प्रकार व्याप्य व्यापक भाव मानने से पर्यवसान यह हुआ कि श्याम रूप नाशक अग्नि संयोग से भिन्न रक्त रूपोत्पा-दक अग्नि संयोग होता ही नहीं है इसी भाव पर किंच इत्यादि ग्रन्थ है।

भिन्न भिन्न नहीं रहने से अर्थात् एक ही रहने से कार्य में वैलक्षण्य नहीं होता है। रूप-नाशकाग्नि संयोग मात्र को रूपोत्पादकता मान कर ही यह दोष बतलाया गया है। अन्यथा पूर्व रूप ध्वंसादि को भी यदि सहकारी मानें तो रक्तत्व रक्ततरत्व रक्त तमत्वादि रूप कार्य वैलक्षण्य की अनुपपत्ति नहीं होगी। जैसे प्रथम अग्नि संयोग से श्यामरूप का नाश और उस नाश के सहित उसी अग्नि संयोग से रक्त रूपोत्पत्ति और दूसरे अग्निसंयोग से रक्त रूप का नाश और तादृश नाश सहित उक्त संयोग से रक्ततर रूपोत्पत्ति और तीसरे अग्नि संयोग से रक्ततर रूप का नाश और तादृश नाश सहित उक्त संयोग से रक्ततम रूप की उत्पत्ति इसी प्रकार दूसरे जगह भी जानना चाहिये।

(२९) अथ परमाण्वन्तरे कर्मचिन्तनात्पञ्चमादि क्षणेऽपि गुणोत्पत्तिः। (३०) तथाहि। (३१) एकत्रपरमाणौ कर्म। (३२) ततो विभागः। (३३) तत आरम्भकसंयोगनाश परमाण्वन्तर कर्मणी। (क) ततस्तु द्व्यणुक नाशः परमाण्वन्तर कर्मजन्यविभाग इत्येकः कालः। (ख) ततः श्यामादिनाशः, विभागाच्च पूर्व संयोग नाशश्चेत्येकः कालः, (ग) ततो रक्तोत्पत्तिः द्रव्यारम्भकसंयोगश्चेत्येकः कालः। (घ) अथ द्व्यणुकोत्पत्तिः। (ङ) ततो रक्तोत्पत्ति-रिति। (च) पञ्चक्षणा।

(२९) * अगर द्व्यणुक के एक परमाणु में द्व्यणुकनाशानुकूल कर्म और उसी द्व्यणुक के दूसरे परमाणु में द्व्यणुकोत्पादनानुकूल कर्म मानें तो ५, ६, ७, ८, क्षणकी भी प्रक्रिया हो सकती है। (३०) जैसे—(३१) अग्नि संयोग से एक परमाणु में कर्म (३२) तब परमाणुद्वय का विभाग। (३३) तब द्व्यणुकारम्भक संयोग का नाश और द्व्यणुकोत्पादनानुकूल (उक्त द्व्यणुकके) दूसरे परमाणु में कर्म (क) तब द्व्यणुक का नाश और परमाण्वन्तर के कर्म से पूर्व देश के साथ उक्त परमाणु का विभाग। (ख) तब परमाणु के श्याम रूप का नाश और परमाणु के पूर्व देश के साथ उत्पन्न हुए विभाग से परमाणु और पूर्व देशके संयोग का नाश। (ग) उस के बाद परमाणु में रक्त रूपो-त्पत्ति और द्व्यणुकारम्भक रक्त परमाणुद्वय का संयोग। (घ) तब द्व्यणुक की उत्पत्ति (ङ) और उस के अनन्तर द्व्यणुक में रक्त रूप की उत्पत्ति (च) यह पांच क्षण की प्रक्रिया हुई।

---

* अगर द्व्यणुक के एकही परमाणु में द्व्यणुक नाशानुकूल कर्म और द्व्यणुकोत्पादनानुकूल कर्म दोनों माने जाय तो ९, १०, ११, क्षण की प्रक्रियायें होती हैं। गुणोत्पत्ति रक्तादि रूपोत्पत्तिः।

(३४) द्रव्यनाशसमकालं परमाण्वन्तरे कर्मचिन्तनात्षष्ठे गुणोत्पत्तिः

(३४) यदि द्व्यणुकनाशकाल में परमाण्वन्तर (दूसरे परमाणु) में कर्म मान जाय तो ६ क्षण की प्रक्रिया होगी ।

(३५) तथाहि । परमाणुकर्मणा परमाण्वन्तरविभागः । (३६) तत आरम्भकसंयोगनाशः । (क) अथ द्व्यणुकनाश परमाण्वन्तरकर्मणी । (ख) अथ श्यामादिनाशः परमाण्वन्तरे कर्मजश्च विभागः । (ग) ततो रक्तोत्पत्तिः परमाण्वन्तरे पूर्वसंयोग नाशश्च । (घ) ततः परमाण्वन्तर संयोगः । (ङ) ततो द्व्यणुकोत्पत्तिः । (च) अथ रक्तोत्पत्तिरिति षट्क्षणा ।

(३५) जैसे अग्नि संयोग से उत्पन्न परमाणु में रहनेवाले कर्म से परमाणुद्वय का विभाग । (३६) तब द्व्यणुक के आरम्भक संयोग का नाश । (क) तब द्व्यणुक का नाश और दूसरे परमाणु में कर्म । (ख) तब परमाणु के श्याम रूप का नाश और दूसरे परमाणु के कर्म से पूर्व देशके साथ उसका विभाग । (ग) उसके बाद परमाणु में रक्त रूप की उत्पत्ति और दूसरे परमाणु में पूर्व देशके साथ संयोग का नाश । (घ) तब रक्त परमाणुद्वय संयोग । (ङ) तब द्व्यणुक की उत्पत्ति । (च) और उसके बाद द्व्यणुक में रक्तरूप की उत्पत्ति । यह ६ क्षणकी प्रक्रिया हुई ।

(३७) एवं श्यामनाशक्षणे परमाण्वन्तरे कर्म चिन्तनात्सप्तक्षणा ।

(३७) इस प्रकार यदि श्याम रूप के नाश क्षण में दूसरे परमाणु में (द्व्यणुकोत्पादनानुकूल) कर्म माना जाय तो सात क्षण की प्रक्रिया होगी ।

(३८) तथाहि । (३९) परमाणौ कर्म ततः परमाण्वन्तरेण विभागः । (४०) तत आरम्भक संयोगनाशः । (क) ततो द्व्यणुक नाशः । (ख) ततः श्यामादिनाश परमाण्वन्तर कर्मणी । (ग) ततो रक्तोत्पत्तिः परमाण्वन्तरे कर्मजविभागश्च । (घ) ततः परमाण्वन्तरेण पूर्व संयोगनाशः । (ङ) ततः परमाण्वन्तरेण संयोगः । (च) ततो द्व्यणुकोत्पत्तिः (छ) ततो रक्तोत्पत्तिः । इति सप्तक्षणा ।

(३८) जैसे— (३९) अग्नि संयोग से परमाणु में कर्म तब उस कर्म से परमाणुद्वय का विभाग। (४०) तब द्व्यणुकारम्भक संयोग का नाश। (क तब द्व्यणुक नाश। (ख) उसके वाद परमाणुमें श्याम रूप का नाश और दूसरे परमाणु में (द्व्यणुकोत्पादनानुकूल) कर्म। (ग) तब परमाणु में रक्त रूप की उत्पत्ति और दूसरे परमाणु के कर्म से पूर्व देश के साथ उसका विभाग। (घ) तब दूसरे परमाणु के साथ पूर्व देश के संयोग का नाश। (ङ) तब द्व्यणुकोत्पादनानुकूल रक्त परमाणुद्वय का संयोग। (च) उस के अनन्तर द्व्यणुक की उत्पत्ति। (छ) और उसके वाद द्व्यणुक में रक्त रूप की उत्पत्ति। यह सात क्षणकी प्रक्रिया हुई।

(४१) एवं रक्तोत्पत्ति समकालं परमाण्वन्तरे कर्मचिन्तनादष्टक्षणा।

(४१) इस प्रकार यदि परमाणु में रक्त रूपोत्पत्ति के क्षणमें द्व्यणुकोत्पादनानुकूल दूसरे परमाणु में कर्म माना जाय तो आठ क्षणकी प्रक्रिया होगी।

(४२) तथाहि। (४३) परमाणौ कर्म। (४४) ततः परमाण्वन्तरविभागः। (४५) तत आरम्भकसंयोगनाशः। (क) ततो द्व्यणुकनाशः। (ख) ततः श्यामनाशः। (ग) ततो रक्तोपत्ति-परमाण्वन्तरकर्मणी। (घ) ततः परमाण्वन्तर कर्मज विभागः। (ङ) ततः परमाण्वन्तरे पूर्वसंयोगनाशः। (च) ततः परमाण्वन्तरसंयोगः। (छ) ततो द्व्यणुकोत्पत्तिः। (ज) अथ रक्तोत्पत्तिरित्यष्टक्षणा।

(४२) जैसे। (४३) अग्निसंयोग से परमाणु में कर्म। (४४) तब परमाणुद्वय का विभाग। (४५) तब द्व्यणुकारम्भक संयोग का नाश। (क) तब द्व्यणुक का नाश। (ख) उसके वाद परमाणुओं के श्यामरूप का नाश। (ग) तब परमाणुओं में रक्त रूप की उत्पत्ति और दूसरे परमाणुमें द्व्यणुकारम्भानुकूल कर्म। (घ) उस के अनन्तर दूसरे परमाणु के कर्मसे पूर्व देशके साथ उसका विभाग। (ङ) तब दूसरे परमाणुमें पूर्व देश के साथ संयोग का नाश। (च) तब द्व्यणुकारम्भानुकूल रक्तपरमाणुद्वय का संयोग। (छ) तब द्व्यणुक की उत्पत्ति। (ज) तब द्व्यणुक में रक्तरूप की उत्पत्ति। यह आठ क्षण की प्रक्रिया हुई।

का० १०६ पूर्वा०

नैयायिकानां तु नये द्व्यणुकादावपीष्यते।

का० अर्थ।

नैयायिकों के मतमें परमाणु और द्व्यणुकादि अवयवी में भी पाक होता है।

(१) नैयायिकानामिति । (२) नैयायिकानां मते द्व्यणुकादाव वयविन्यपि पाको भवति । (३) तेषामयमाशयः । (४) अवयविनां सच्छिद्रत्वाद्वह्नेः सूक्ष्मावयवैरन्तः प्रविष्टैरवयवेष्ववष्टब्धेष्वपि पाको न विरुध्यते (५) अनन्तावयवि तन्नाशकल्पने गौरवात् ।

(१,२) कारिकार्थ में स्पष्ट है । (३) उनका यह आशय है कि (४) अव यवी मात्र में छिद्र होता है इसलिये सूक्ष्म सूक्ष्म अग्नि के अवयव उन छिद्रों के द्वारा अवयवियों के भीतर तक प्रवेश कर जाते हैं और अवयवी के रहते हुए भी अवयवी से सम्बद्ध अवयव तथा अवयवी को भी पका देते हैं इस प्रकार अवयवी में भी पाक मानने में कुछ विरोध नहीं है । (५) वैशेषिकों के मतमें परमाणु मात्रमें पाक मानने के कारण अनन्त अवयवी और अवयवियों के अनन्त नाश और अनन्त उत्पत्ति माननी होगी जिससे उन्हे गौरव होता है ।

(६) इत्थं च सोऽयं घट इत्यादिप्रत्यभिज्ञाऽपि संगच्छते । (७) यत्र तु न प्रत्यभिज्ञा तत्रावयवि नाशोऽपि स्वीक्रियत इति ।

(६) अवयवी में भी पाक मानने वाले नैयायिकों के मत से अवयवी का नाश मानना आवश्यक नहीं है अतएव घटमें पाक होने के बाद 'सोयं घटः' (यह घड़ा वही है) इत्याकारक प्रत्यभिज्ञा जो होती है वह सङ्गत हुई । (७) परन्तु जिस स्थल में पक्व घट में अवयव सन्निवेश के अन्यथा भूत होने के कारण 'सोयं घटः' इत्याकारक प्रत्यभिज्ञा नहीं होती है उस स्थल में उस अवयवी का नाश भी मानते हैं ।

संख्यांनिरूपयितु माह = संख्याका निरूपण करते हैं ।

का० १०६ उत्त० ।

गणनाव्यवहारे तु हेतुः संख्याभिधीयते ॥

का० अर्थ ।

गणना व्यवहार का असाधारण कारण संख्या है ।

(१) गणनेति । (२) गणनाव्यवहारा साधारण कारणं संख्ये-त्यर्थः ।

(१, २) कारिकार्थ में स्पष्ट है ।

का० १०७

नित्येषु नित्यमेकत्वमनित्येऽनित्यमिष्यते ।
द्वित्वादयः परार्धान्ता अपेक्षा बुद्धिजा मताः ॥

का० अर्थ ।

नित्यमें रहने वाली एकत्व संख्या नित्य है और अनित्य में रहने वाली अनित्य है । द्वित्व से लेकर परार्द्ध पर्यन्त संख्या अपेक्षा बुद्धिसे उत्पन्न होतीहै अतएव वह अनित्य होगी ।

(१) नित्येष्विति । (२) नित्येषु परमाण्वादिषु एकत्वं नित्यम् । (३) अनित्ये घटादावेकत्वमनित्य मित्यर्थः । द्वित्वादयो व्यासज्यवृत्ति संख्या अपेक्षा बुद्धिजन्याः ।

(१, ४) नित्य परमाण्वादिगत एकत्व नित्य और अनित्य घटादिगत एकत्व अनित्य है । व्यासज्यवृत्ती अर्थात् एकत्वावच्छिन्नानुयोगिताक पर्याप्त्य प्रतियोगी द्वित्वादि संख्या अपेक्षा बुद्धिसे उत्पन्न होती है ।

का० १०८

अनेकाश्रयपर्याप्ता एते तु परिकीर्तिताः ।
अपेक्षा बुद्धि नाशाच्च नाशस्तेषां निरूपितः ॥

का० अर्थ ।

द्वित्वादि संख्या अनेकाश्रय में पर्याप्ति संबन्ध से रहती है और अपेक्षा बुद्धि के नाश से उन संख्याओं का नाश होता है ।

(१) अनेकेति । यद्यपि द्वित्वादिसमवायः प्रत्येकं घटादावपि वर्तते तथाप्येको द्वाविति प्रत्ययाभावात् एको न द्वाविति प्रत्यय संभवाच्च द्वित्वादीनां पर्याप्ति लक्षणः कश्चन संबन्धोऽनेकाश्रयोऽभ्युपगम्यते ।

(१) यद्यपि द्वित्वादि संख्या स :वाय सम्बन्ध से त्येक घट पटादि में रहती है तो भी 'एको द्वौ ''इत्याकारक प्रतीति नहीं होने के कारण तथा ''एको न द्वौ '' इत्याकारक प्रतीति होने के कारण द्वित्वादि का '' पर्याप्ति '' नामक सम्बन्ध विशेष अनेक पदार्थ ही में माना जाता है न कि एक पदार्थ मात्र में ।

(२) प्रथममपेक्षाबुद्धिः ततोद्वित्वोत्पत्तिः । ततो विशेषणज्ञानं द्वित्वत्वनिर्विकल्पात्मकम् । ततो द्वित्वत्वविशिष्ट प्रत्यक्षम् । अपेक्षाबुद्धिनाशश्च ततो द्वित्वनाश इति ।

(२) प्रथम क्षणमें " अयमेकः अयमेकः " इत्याकारक अपेक्षाबुद्धि होती है, द्वितीय क्षणमें अपेक्षाबुद्धि से द्वित्व की उत्पत्ति, तृतीय क्षण में द्वित्व द्वित्वत्वे इत्याकारक निर्विकल्प क ज्ञान, चतुर्थ क्षण में द्वित्वत्व प्रकारक द्वित्वविशेष्यक सविकल्पक ज्ञान और अपेक्षाबुद्धि का नाश, तब पञ्चम क्षण में द्वित्व का नाश होता है ।

(३) यद्यपि ज्ञानानां द्विक्षण मात्रस्थायित्वं योग्यविभुविशेषगुणानां स्वोत्तर वर्त्तिगुण नाश्यत्वात् । तथाप्यपेक्षाबुद्धेः स्त्रिक्षणावस्थायित्वं कल्प्यते । (४) अन्यथा निर्विकल्पक कालेऽपेक्षाबुद्धिनाशानन्तरं द्वित्वस्यैव नाशः स्यात् । न तु द्वित्वप्रत्यक्षं, तदानीं विषया भावात् । विद्यमानस्यैव चक्षुरादिना ज्ञानजननोपगमात् । तस्मात् द्वित्वप्रत्यक्षादिक मपेक्षाबुद्धेर्नाशकं कल्प्यते ।

(३) योग्य अर्थात् प्रत्यक्ष विषय जो विभुके विशेषगुण = बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, धर्म और शब्द इन सबों का नाश स्वोत्तरोत्पन्न (उनके बाद में पैदा हुये) गुणसे होता है इसलिये सामान्यतः ज्ञानमें द्विक्षणमात्र स्थायित्व माना जाता है तथापि अपेक्षाबुद्धि में त्रिक्षण स्थायित्व की कल्पना की जाती है । (४) अपेक्षा बुद्धि को भी यदि द्विक्षण मात्र स्थायित्व मानें तो तृतीय क्षण में अर्थात् निर्विकल्पक ज्ञानोत्पत्ति क्षणमें अपेक्षा बुद्धि के नाश होने से चतुर्थक्षण में द्वित्व का भी नाश हो जायगा । तब उक्त चतुर्थक्षण में द्वित्व को नहीं रहने के कारण " द्वित्व " का सविकल्पक प्रत्यक्ष नहीं होगा क्योंकि प्रत्यक्ष क्षण में विषय को रहना आवश्यक है इस का कारण यह है कि विद्यमान ही पदार्थ का चक्षुरादि से प्रत्यक्ष होना सर्व सम्मत है । इसलिये द्वित्व का निर्विल्कपक प्रत्यक्ष ही अपेक्षा बुद्धि का नाशक होता है ऐसी कल्पना की जाती है ।

(५) न चापेक्षाबुद्धिनाशात्कथं द्वित्वनाश इति वाच्यं. कालान्तरे द्वित्वप्रत्यक्षा भावात् । अपेक्षाबुद्धिस्तदुत्पादिका तन्नाशात्तन्नाश इति कल्पनात् ।

(५) शं०- अगर ऐसा कहें कि अपेक्षा बुद्धि के नाश से द्वित्वका नाश क्यों माना जाता है ? समा०—यदि नहीं माना जाय तो उक्त अपेक्षाबुद्धि के नाश के बाद भी द्वित्व का प्रत्यक्ष होजाना चाहिये किन्तु नहीं होता है इसलिये द्वित्व का नाश मानना उचित है । अपेक्षाबुद्धि द्वित्व का उत्पादक है और उसी के नाश से द्वित्व के नाश की कल्पना की जाती है ।

(६) अतएव तत्पुरुषीया पेक्षाबुद्धिजन्य द्वित्वादिकं तेनैव गृह्यत इति कल्प्यते ।

(६) जिसहेतु अपेक्षाबुद्धि द्वित्व का उत्पादक मानी गयी है इसीलिये तत्तत् पुरुष की अपेक्षाबुद्धि से पैदा हुए द्वित्वादि का प्रत्यक्ष तत्तत् पुरुष ही को होता है ।

(७) न चापेक्षाबुद्धे र्द्वित्वप्रत्यक्षे कारणत्वमस्त्विति वाच्यं, लाघवेन द्वित्वं प्रत्येव कारणत्वस्योचितत्वात् । (८) अतीन्द्रिये द्व्यणुकादावपेक्षा बुद्धिर्योगिनाम् । सर्गादि कालीन परमाण्वादा वीश्वरीयापेक्षाबुद्धि र्ब्रह्माण्डान्तर वर्तियोगिना मपेक्षाबुद्धिर्वा द्वित्वादिकारणमिति ।

(७) शङ्का—द्वित्व के प्रत्यक्ष ही में अपेक्षाबुद्धि को कारणत्व क्यों नहीं मानते ? समा०—ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि-द्वित्व के प्रति अपेक्षाबुद्धि को कारणता मानने की अपेक्षया द्वित्व प्रत्यक्ष के प्रति कारणता मानने में कार्यतावच्छेदक में गौरव है । (८) हम लोगों को अतीन्द्रिय पदार्थों का प्रत्यक्ष नहीं होनेके कारण योगियों की अपेक्षाबुद्धि द्व्यणुकादि अतीन्द्रिय पदार्थों में द्वित्वोत्पादक होती है । ब्रह्माण्ड के सृष्टि काल में योगियों को नहीं रहने पर भी तत्कालीन परमाण्वादि में ईश्वरीयापेक्षाबुद्धि अथवा दूसरे ब्रह्माण्ड में रहने वाले योगियों की अपेक्षाबुद्धि से द्वित्वादि की उत्पत्ति होती है ।

अपेक्षाबुद्धिः केत्यत आह = अपेक्षाबुद्धि क्या है इस पर कहते हैं ।

का० १०६ पूर्वा०

अनेकैकत्वबुद्धिर्या सापेक्षाबुद्धिरिष्यते ।

का० अर्थ ।

अनेक तत्तद्धर्म्म विशेष्यक एकत्व प्रकारक जो 'अयमेकः अयमेकः' इत्याकारक ज्ञान वह अपेक्षाबुद्धि कही जाती है ।

(१) अनेकेति । अयमेकोऽयमेक इत्याकारिका इत्यर्थः । (२) इदन्तुबोध्यं यत्रानियतैकत्वज्ञानं तत्र त्रित्वादिभिन्ना बहुत्वसंख्योत्पद्यते यथा सेनावनादाविति कन्दलीकारः ।

(१) "इस का अर्थ कारिकार्थही से गतार्थ है" । (२) यह समझना चाहिये कि जिस स्थल में नियत एकत्वज्ञान नहीं है अर्थात् एकत्व धर्मिक संख्याविशेष का ज्ञान नहीं है वहां त्रित्व चतुष्ट्वादि संख्या से भिन्न एक विजातीय बहुत्व संख्याकी उत्पत्ति होती है जैसे सेना वनादि स्थलमें अगणित एकत्व ज्ञान रहने के कारण केवल बहुत्व संख्या की उत्पत्ति होती है क्योंकि उस स्थल में बहुत्व संख्यासेभिन्न किसी संख्याका ज्ञान नहीं होता है यह कन्दलीकार का मत है ।

(३) आचार्यास्तु त्रित्वादिकमेव बहुत्वं मन्यन्ते । तथाच त्रित्वत्वादि व्यापिका बहुत्वत्व जातिर्नातिरिच्यते । सेना वनादावुत्पन्नेऽपि त्रित्वादौ त्रित्वत्वाद्यग्रहो दोषात् ।

(३) परन्तु उदयनाचार्य का मत है कि उन स्थलों में बहुत्व संख्या त्रित्व चतुष्ट्वादि रूप ही है किन्तु अतिरिक्त नहीं है अर्थात् जहां हजार सेना है वहां सेनागत सहस्रत्व ही बहुत्व है एवं जहां एक हजार एक सेना है वहां एकाधिक सहस्रत्व ही बहुत्व है किन्तु अतिरिक्त नहीं है। तब यही पर्यवसित हुआ कि त्रित्वत्वादि व्यापक अर्थात् त्रित्व चतुष्ट्वादि में रहने वाली बहुत्वत्व जाति त्रित्वत्व चतुष्ट्वादि से भिन्न नहीं है। सेना वनादि स्थल में त्रित्वादि रूप बहुत्व संख्या उत्पन्न होने पर भी नियतैकत्व ज्ञानाभाव रूप दोष से त्रित्वादिगत त्रित्वत्वादि जाति का ज्ञान नहीं होता है ।

(४) इत्थंचेतो बहुतरेयं सेनेति प्रतीतिरुपपद्यते । बहुत्वस्य संख्यान्तरत्वे तु तत्तारतम्या भावान्नोपपद्येतेत्यवधेयम् ।

(४) बहुत्व को त्रित्व चतुष्ट्वादि संख्या से अतिरिक्त नहीं मानने के कारण " इतो बहुतरेयंसेना " ' यह सेना इस से अधिक है ' इत्याकारक प्रतीति की उपपत्ति होती है क्योंकि बहु सेनागत बहुत्व सहस्रत्वादि रूप है और अन्य सेनागत बहुत्व शतत्वादि रूप है। बहुत्व को त्रित्वादि संख्या से अतिरिक्त मानने वाले कन्दलीकार के मत में दोनो सेनागत बहुत्वों में तारतम्य नहीं रहने के कारण " इतो बहुतरेयं सेना " इत्याकारक प्रतीति की उपपत्ति नहीं हो सकती है ।

—०*०—

परिमाणं निरूपयति = परिमाण का निरूपण करते हैं ।

का० १०६, उत्त० ।

परिमाणं भवेन्मान व्यवहारस्य कारणम् ।

का० अर्थ ।

मान व्यवहार का असाधारण कारण " परिमाण " अर्थात् परिमिति है ।

(१) परिमाणमिति । परिमिति व्यवहारा साधारणं कारणं परिमाण मित्यर्थः ।

(१) इस का अर्थ कारिकार्थ ही से गतार्थ है ।

का० ११०, पूर्वा०

अणु दीर्घं महद्ध्रस्वमिति तद्भेद ईरितः ।

का० अर्थ ।

उक्त "परिमाण" अणु दीर्घ महत् ह्रस्व के भेद से चार प्रकार का है ।

(१) तच्चतुर्विधम् अणु महद्दीर्घं ह्रस्वं चेति ।

(१) इस का अर्थ कारिकार्थ ही से गतार्थ है ।

का० ११० उत्त० १११ पूर्वा० ।

अनित्येतदनित्यं स्यान्नित्ये नित्य मुदाहृतम् ॥
संख्यातः परिमाणाच्च प्रचयादपि जायते ।

का० अर्थ ।

अनित्य द्रव्यगत परिमाण अनित्य है और नित्यद्रव्यगत परिमाण नित्य है अनित्यद्रव्य गत परिमाण-संख्या परिमाण प्रचय इन तीनों से उत्पन्न होते हैं ।

(१) तत् । परिमाणम् । नित्यमित्यत्र परिमाण मित्यनुषज्यते । जायत इत्यत्रापि परिमाण मित्यनुवर्तते । अनित्यमिति पूर्वेणान्वितम् । (२) तथा चानित्यपरिमाणं संख्याजन्यं परिमाणजन्यं प्रचयजन्यं चेत्यर्थः ।

(१) कारिकागत "तत्" पद परिमाण बोधक है और "नित्य" पद परिमाणपद साकांक्ष है । कारिका गत "जायते" पद भी परिमाणपद साकांक्ष है और अनित्य-पदार्थ परिमाण पदार्थ के साथ अन्वित है । (२) तब अनित्य परिमाण संख्याजन्य परिमाणजन्य और प्रचयजन्य है ऐसा अर्थ हुआ ।

तत्र संख्याजन्यमुदाहरति = उन में संख्याजन्य परिमाण का प्रदर्शन करते हैं ।

का० १११ उत्त०

अनित्यं द्व्यणुकादौ तु संख्याजन्यमुदाहृतम् ॥

का० अर्थ ।

द्व्यणुक, त्र्यणुकगत अनित्य परिमाण संख्याजन्य कहा गया है ।

(१) अनित्यमिति । द्व्यणुकस्य त्रसरेणोश्च परिमाणं प्रति परमाणुपरिमाणं द्व्यणुकपरिमाणं वा न कारणं परिमाणस्य स्वसमान जातीयोत्कृष्टपरिमाणजनकत्वात् । (२) द्व्यणुकस्याणु परिमाणं तु परमाणवणुत्वापेक्षया नोत्कृष्टम् । त्रसरेणुपरिमाणं तु न सजातीयम् । (३) अतः परमाणौ द्वित्वसंख्या द्व्यणुकपरिमाणस्य, द्व्यणुके त्रित्वसंख्या च त्रसरेणु परिमाणस्यासमवायिकारणमित्यर्थः ।

(१) द्व्यणुक परिमाण के प्रति परमाणु परिमाण एवं त्र्यणुक परिमाण के प्रति द्व्यणुक परिमाण कारण नहीं हैं क्योंकि नियम है कि "परिमाण" स्व समान जातीय जो उत्कृष्ट परिमाण उसी का जनक होता है। (२) *इस स्थिति में द्व्यणुक परिमाण परमाणु परिमाणापेक्षया उत्कृष्ट अर्थात् अणुतर नहीं है एवं त्र्यणुकगत महत् परिमाण द्व्यणुकगत अणुपरिमाण का सजातीय नहीं है। (३) अतः द्व्यणुकपरिमाण और त्रसरेणु परिमाण के प्रति क्रमशः परमाणु परिमाण और द्व्यणुक परिमाण कारण नहीं है। किन्तु द्व्यणुक परिमाण के प्रति परमाणुगत द्वित्व संख्या " और त्रसरेणु परिमाण के प्रति द्व्यणुकगत त्रित्व संख्या असमवायि कारण है।

परिमाणजन्यं परिमाणमुदाहरति = परिमाणजन्य परिमाण का प्रदर्शन करते हैं।

का० ११२, ११३ पूर्वा०

> परिमाणं घटादौ तु परिमाणज मुच्यते ।
> प्रचयः शिथिलाख्यो यः संयोगस्तेन जन्यते ॥
> परिमाणं तूलकादौ—

का० अर्थ ।

घटादि (अवयवि) गत परिमाण कपालादि (अवयव) गत परिमाण से उत्पन्न होते हैं, तूलकादिगत शिथिल (ढीला) संयोग प्रचय कहा जाता है और प्रचय से तूलकादि में परिमाण की उत्पत्ति होती है।

(१) परिमाणं घटादाविति । घटादिपरिमाणं कपालादिपरिमाण जन्यम् । (२) प्रचयजन्यमुदाहर्तुं प्रचयं निर्वक्ति प्रचय इति ।

(१) कारिकार्थ में स्पष्ट है। (२) प्रचयजन्य परिमाण को दिखाने के लिये पहले प्रचय का स्वरूप बतलाते हैं।

* "सजातीय" परिमाण विभाजक अणुत्व महत्त्वादि रूप से विवक्षित है। अतः द्व्यणुक परिमाण का सजातीय त्र्यणुक परिमाण नहीं है।

का० ११३ पूर्वा०

नाशस्त्वाश्रय नाशतः ।

का० अर्थ ।

परिमाण का नाश आश्रय नाश के अधीन है ।

(१) परिमाणं चाश्रयनाशादेव नश्यतीत्याह—(२) नाश इति । अर्थात्परिमाणस्यैव । (३) न चावयविनाशः कथं परिमाण नाशकः सत्यप्यवयविनि त्रिचतुरादिपरमाणु विश्लेषे तदुपचये चावयविनःप्रत्यभिज्ञानेऽपि परिमाणान्तरस्य प्रत्यक्षसिद्धत्वादिति वाच्यम्, परमाणु विश्लेषे हि द्व्यणुकस्य नाशोऽवश्यमभ्युपेयस्तन्नाशे च त्रसरेणुनाश एवं क्रमेण महावयविनो नाशस्यावश्यकत्वात् ।

(१) कारिकार्थ में स्पष्ट है । (२) नाश शब्द यहां परिमाण नाशका बोधक है । (३) शङ्का–जिस अवयवी से तीन चार परमाणु हट गये हैं अथवा उस में मिल गये हैं उस अवयवी में "सएवायम्" इत्याकारक प्रतीति पूर्ववत् होती है अतः अवयवी का नाश नहीं मान सकते और उस अवयवी में परिमाणान्तर प्रत्यक्ष सिद्ध है । इसलिये अवयवि नाश परिमाण नाशक कैसे होगा ? समा०--परमाणुओं के परस्पर हट जाने से उन के संयोग नष्ट हो जाने के कारण द्व्यणुक का नाश अवश्य मानना होगा । एवं द्व्यणुकों को नष्ट हो जाने से उन के संयोग नष्ट हो जाने के कारण त्रसरेणु का भी नाश अवश्य होगा । इस प्रकार महावयवी पर्यन्त का नाश अवश्य मानना होगा क्योंकि असमवायि कारण के नाश से द्रव्य का नाश अवश्य होता है ।

(४) सति च नाशकेऽनभ्युपगममात्रेण नाशस्यापलपितुमशक्यत्वात् । (५) शरीरादावयवोपचयेऽसमवायिकारणनाशस्यावश्यकत्वादवयविनाश आवश्यकः ।

(४) नाश की सामग्री रहने पर अस्वीकार मात्र से नाश का अपलाप नहीं हो सकता है । (५) एवं शरीरादि के अवयवों के उपचय स्थल में पूर्व शरीर के असमवायि कारण अवयव संयोग का विनाश अवश्य होता है । इसलिये अवयवी रूप शरीर का विनाश भी अवश्य मानना होगा जिससे पूर्व परिमाण नष्ट होकर परिमाणान्तर उत्पन्न होता है इस से भी पर्यवसित हुआ कि विना अवयवी के नाश से परिमाण का नाश नहीं होता है ।

(६) न च पटाद्यविनाशेऽपि तन्त्वन्तरसंयोगात्परिमाणाधिक्यं न स्यादिति वाच्यं, तत्रापि वेमाद्यभिघातेना समवायिकारणतन्तुसंयोगनाशात्पटनाशस्यावश्यकत्वात् ।

(६) शंका—पट के रहते हुए भी कुछ तन्तुओं के जोड़ने से उस पट में परिमाण का आधिक्य होता है यह नहीं होगा क्योंकि बिना पटके नाश होने से पूर्व परिमाण का नाश नहीं हो सकता है और बिना पूर्व परिमाण नाश के परिमाणान्तर की उत्पत्ति नहीं होगी । समा०—तन्त्वन्तर संयोग जनक अभिघात से पट के असमवायि कारण तन्तुद्वय संयोग को नष्ट हो जाने से पट का नाश अवश्य मानना होगा ।

(७) किं च तन्त्वन्तरस्य तत्पटावयवत्वे पूर्वं तत्पट एव न स्यात्तन्त्वन्तररूपकारणा भावात् ।(८)तन्त्वन्तरस्या वयवत्याभावे च न तेन परिमाणाधिक्यं संयुक्त द्रव्यान्तरवत्

(७) एवं तन्त्वन्तर यदि पूर्व पट का अवयव माना जाय तो (समवायि कारण रूप) तन्त्वन्तर से पूर्व उक्त पटरूप कार्य ही सिद्ध नहीं होगा क्योंकि कार्य से पहले कारण का रहना आवश्यक है किन्तु वह यहां नहीं है । (८) यदि तन्त्वन्तर उक्त पट का कारण नहीं माना जाय तो उन तन्त्वन्तरों से परिमाण का आधिक्य नहीं होगा । जैसे घट पट के संयोग से उन दोनों का परिमाण नहीं बढ़ता है केवल संयुक्त व्यवहार मात्र होता है ।

(६) तस्मात्तत्र तन्त्वन्तरसंयोगे सति पूर्वपटनाशस्ततः पटान्तरोत्पत्तिरित्यवश्यं स्वीकार्यम् । (१०) अवयविनः प्रत्यभिज्ञानं तु साजात्येन दीप कलिकादिवत् ।

(६) इसलिये पूर्व पट के साथ तन्त्वन्तर संयोग होने से पहले पूर्व पट का नाश तब द्वितीय पट की उत्पत्ति होती है यह अवश्य मानना होगा । (१०) " सएवायं पटः " इत्याकारक तद् पटरूप अवयवी की प्रत्यभिज्ञा तो दीप शिखा को प्रति क्षण भिन्न होने पर भी " सैवेयं दीपकलिका " इत्याकारक प्रत्यभिज्ञा के समान साजात्य विषयक है ।

(११) न च पूर्वतन्तव एव तन्त्वन्तरसहकारात्पूर्वपटे सत्येव पटान्तरमारभन्तामिति वाच्यं, मूर्तयोः समानदेशताविरोधात्तत्र पटद्वयासंभवा देकदा नाना द्रव्यस्य तत्रोपलम्भस्य बाधितत्वाच्च । (१२) तस्मात्पूर्वद्रव्यस्य प्रतिबन्धकस्य विनाशे द्रव्यान्तरोत्पत्ति रित्यस्यावश्यमभ्युपेयत्वात् ॥

(११) शंका—पूर्वतन्तु नवीन तन्त्वन्तर के साहाय्य से पूर्व पट के रहते हुए ही पटान्तर की उत्पत्ति करता है ऐसा मानें वह भी नहीं हो सकता। क्योंकि दो मूर्त्त समवाय सम्बन्ध से एक जगह में नहीं रह सकते हैं। अतः एक तन्तु में पटद्वय की समवाय सम्बन्ध से उत्पत्ति असम्भव है। एवम् एक तन्तु में एक कालावच्छेदेन समवाय सम्बन्ध से दो पट का प्रत्यक्ष भी नहीं होता है। (१२) इस से यही पर्यवसित होता है कि समवाय सम्बन्ध से उत्तर पट का समवाय सम्बन्ध से प्रतिबन्धक जो पूर्व पट उस के नाश हुए बिना नवीन पट की उत्पत्ति उन तन्तुवों में नहीं हो सकती यह आप को अवश्य मानना होगा।

पृथक्त्वं निरूपयति = पृथक्त्व का निरूपण करते हैं।

का० ११३, ११४

सङ्ख्यावत्तु पृथक्त्वं स्यात्पृथक्प्रत्ययकारणम् ॥
अन्योन्याभावतो नास्य चरितार्थत्वमिष्यते ।
अस्मात्पृथगिदं नेति प्रतीतिर्हि विलक्षणा ॥

का० अर्थ

यह इस से पृथक् है इस व्यवहार का असाधारण कारण पृथक्त्व है उस में नित्यत्वा नित्यत्व संख्या के समान है, वह पृथक्त्व अन्योन्या भाव से गतार्थ नहीं हो सकता है क्योंकि "इदमस्मात् पृथक्" इत्याकारक पृथक्त्व प्रतीति से "इदमिदन्न" इत्याकारक अन्योन्याभाव की प्रतीति में वैलक्षण्य का स्पष्ट भान होता है।

(१) संख्यावदिति। पृथक्प्रत्ययासाधारणं कारणं पृथक्त्वम्। (२) तन्नित्यतादिकं संख्यावत्। तथाहि नित्येष्वेकत्वम् नित्यम्। अनित्येष्व नित्यम् अनित्यमेकत्वं तु आश्रयद्वितीयक्षणे चोत्पद्यतेऽऽश्रयनाशान्नश्यति। तथैक पृथक्त्वमपि। द्वित्वादिवच्च द्विपृथक्त्वादिकमपीत्यर्थः।

(१) कारिकार्थ ही से स्पष्ट है। (२) पृथक्त्वगत नित्यत्व, अनित्यत्व, संख्या के समान है। जैसे नित्यगत एकत्व संख्या नित्य और अनित्यगत एकत्व संख्या अनित्य होती है। एवम् अनित्य एकत्व आश्रयोत्पत्ति के द्वितीय क्षण में उत्पन्नहोता है और आश्रय के नाश से नष्ट होता है। तथा एक पृथक्त्व भी नित्यगत नित्य और अनित्यगत अनित्य है एवम् आश्रयोत्पत्ति के द्वितीय क्षण में उत्पन्न होता है और आश्रय के नाश से नष्ट होता है। इसी प्रकार द्वित्वादिसंख्या के समान द्विपृथक्त्वादि भी अनित्य और अपेक्षाबुद्धि रूप निमित्त कारण से उत्पन्न होने वाला तथा अपेक्षाबुद्धि के नाश से नष्ट होने वाला है यही अभिप्राय है।

(३) नन्वयमस्मात्पृथगित्यादा वन्योन्याभावो भासते, तत्कथं पृथक्त्वं गुणान्तरं स्वीक्रियते, न चास्तु पृथक्त्वं न त्वन्योन्याभाव इति वाच्यं, रूपं न घट इति प्रतीत्यनापत्तेः । (४) नहि रूपे घटावधिकं पृथक्त्वं गुणान्तरमस्ति न वा घटे घटावधिकं पृथक्त्वमस्ति येन परंपरा संबन्धः कल्प्यत त्यन्त आह । (५) अस्मादिति ।

(३) शङ्का—" इदमस्मात् पृथक् " इस प्रतीति में अन्योन्याभाव ही का भान मानने से कुछ हानि नहीं है तब पृथक्त्व रूप गुणान्तर मानना व्यर्थ है । यदि अन्योन्या भाव को नहीं मानकर " इदम् इदं न " इस प्रतीति का विषय पृथक्त्व ही को मानें तो इस प्रश्न का समाधान यह दिया जा सकता है कि ऐसी स्थिति में " रूपं न घटः " ऐसी प्रतीति नहीं होगी । (४) क्योंकि रूप को गुण होने के कारण घटावधिक पृथक्त्व रूप में नहीं रह सकता है क्योंकि गुण में गुण नहीं रहता है । " रूपं न घटः" इस प्रतीति में सामानाधिकरण्य सम्बन्ध से घटावधिक पृथक्त्व का रूप में भान होता है ऐसा भी नहीं कह सकते क्योंकि घट में यदि घटावधिक पृथक्त्व रहे तब घटवृत्ति रूप में घटावधिक पृथक्त्व सामानाधिकरण्य रूप परम्परा सम्बन्ध से भासित हो सकता है किन्तु ऐसा नहीं है इस से यह पर्यवसित हुआ कि अन्योन्या भाव को नहीं मानकर पृथक्त्व से अन्योन्या भाव को गतार्थ नहीं कर सकते हैं अर्थात् अन्योन्या भाव मानना आवश्यक है। तब " इदमस्मात् पृथक् " इस प्रतीति का विषय अन्योन्या भाव ही को मान लेने से काम चल जाता है तब पृथक्त्व को मानना व्यर्थ है यह प्रश्न अभी तक निरुत्तरित रह गया अतः (५) " अस्मात् पृथक् इदं नेति " इत्यादि कारिका से समाधान करते हैं कि अन्योन्या भाव ही को मान कर यदि पृथक्त्व नहीं माना जाय तो अर्थ भेद के विना प्रतीति में भिन्नाकारत्व नहीं होने के कारण " इदमस्मात् पृथक् " " इदम् इदन्न " इन दोनो प्रतीतियों में वैलक्षण्य नहीं होगा ।

(६) ननु शब्द वैलक्षण्यमेव न त्वर्थ वैलक्षण्य मिति चेन्न विनार्थ भेदं घटात्पृथगिति वद्घटो न पट इत्यत्रापि पंचमी प्रसङ्गात् (७) तस्माद्यदर्थयोगे पञ्चमी सोऽर्थो नञर्थान्योन्याभावतो भिन्नो गुणान्तरं कल्प्यत इति ।

(६) उक्त दोनों प्रतीतियों में केवल शब्द भेद कृत भेद है । अर्थ भेद कृत भेद नहीं है यह शंका भी निर्मूल ही है क्योंकि यदि अर्थ भेद न हो तो जैसे " घटात् पृथक् " इस प्रयोग में पञ्चमी विभक्ति होती है उसी प्रकार " घटो न पटः " इस प्रयोग में भी पंचमी विभक्ति होनी चाहिये किन्तु नहीं होती है । (७) इसलिये यदर्थक शब्द के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है उस पृथक्त्व रूप अर्थ को " न अर्थ " अन्योन्या भाव से भिन्न गुणान्तर मानना होगा ।

संयोगं निरूपयति = संयोग का निरूपण करते हैं।

का० ११५

अप्राप्तयोस्तु या प्राप्तिः सैव संयोग ईरितः ।
कीर्तित स्त्रिविधस्त्वेष आद्योऽन्यतर कर्मजः ॥

का० अर्थ ।

अमिलित द्रव्यद्वय का जो मिलन वह संयोग कहा जाता है वह संयोग तीन प्रकार का है जिस में प्रथम अन्यतर कर्मजन्य है अर्थात् संयुक्त होनेवाले दो द्रव्यों में किसी एक द्रव्य के कर्म से पैदा होनेवाला है।

(१) अप्राप्तयोरिति । तं विभजते- कीर्तित इति । एष संयोगः ।

(१) अर्थ स्पष्ट है ।

का० ११६, ११७ पूर्वा०

तथोभयक्रियाजन्यो भवेत्संयोगजोऽपरः ।
आदिमः श्येनशैलादि संयोगः परिकीर्तितः ॥
मेषयोः संनिपातो यः स द्वितीय उदाहृतः ।

का० अर्थ ।

दूसरा उभय कर्मजन्य और तीसरा संयोगजन्य है इन तीनों में पर्वत के साथ श्येनादि पक्षी का संयोग प्रथम अन्यतर कर्मजन्य संयोग है। भेड़ों का सन्निपात (टक्कर) रूप द्वितीय उभय कर्मजन्य संयोग है ।

(१) सन्निपातः संयोगः। द्वितीय उभय कर्मजः ।

(१) अर्थ स्पष्ट है ।

का० ११७ उत्त० ११८ ११९ पूर्वा०

कपालतरु संयोगात्संयोगस्तरुकुम्भयोः ॥
तृतीयः स्यात्कर्मजोऽपि द्विधैव परिकीर्तितः ।
अभिघातो नोदनं च शब्दहेतुरिहादिमः ॥
शब्दाहेतुर्द्वितीयः स्याद्

का० अर्थ।

कपाल वृक्ष के संयोग से उत्पन्न घट वृक्ष का संयोग तृतीय संयोगजन्य संयोग है। अन्यतर कर्मजन्य और उभय कर्मजन्यरूप जो कर्मज संयोग वह अभिघात और नोदन के भेद से दो प्रकार का होता है। शब्द का जनक जो संयोग वह अभिघात कहा जाता है और शब्द का अजनक जो संयोग वह नोदन कहा जाता है।

(१) तृतीय इति। संयोगजसंयोग इत्यर्थः। तृतीयःस्यादिति पूर्वेणान्वितम्। आदिमः अभिघातः। द्वितीयो नोदनाख्यः संयोग इति।

(१) अर्थ स्पष्ट है।

विभक्तप्रत्यय कारणं विभागं निरूपयति = यह इस से विभक्त है इस प्रतीतिका असाधारण कारण जो विभाग उस का निरूपण करते हैं।

का० ११९, १२०,

विभागोऽपि त्रिधा भवेत्।
एककर्मोद्भवस्त्वाद्यो द्व्यकर्मोद्भवोऽपरः॥
विभागजस्तृतीयः स्यात्तृतीयोऽपि द्विधा भवेत्।
हेतु मात्र विभागोत्थो हेत्वहेतु विभागजः॥

का० अर्थ।

विभाग भी तीन प्रकार का होता है, प्रथम एक कर्मजन्य (अन्यतर कर्मजन्य) है। द्वितीय उभय कर्मजन्य है और तृतीय विभागजन्य है। तृतीय जो विभागजन्य विभाग वह भी कारण मात्र विभागजन्य विभाग और कारणाकारण विभागजन्य विभाग के भेद से दो प्रकार का होता है।

(१) विभाग इति। एक कर्मेति। तदुदाहरणं तु श्येनशैलविभागादिकं पूर्ववद्बोध्यम्। (२) तृतीयोऽपि विभागजविभागःकारणमात्रविभागजन्यः कारणाकारणविभागजन्यश्चेति। (३) आद्यस्तावत् यत्र कपाले कर्म ततः कपालद्वयविभागः। (४) ततो घटारम्भकसंयोगनाशः। (५) ततो घट नाशः। (६) ततस्तेनैव कपालविभागेन सकर्मणः कपालस्याकाशविभागो जन्यते। (७) तत आकाशसंयोगनाशः। (८) तत उत्तरदेशसंयोगः। (९) ततः कर्मनाश इति।

(१) उक्त तीन प्रकार के विभागों में पर्वत से जो श्येनादि पक्षी का विभाग वह अन्यतर कर्मज विभाग है एवं मेषद्वय का विभाग उभय कर्मज विभाग है । (२) तीसरा जो विभागजविभाग वह कारण मात्र विभागजन्य और कारणाकारण विभागजन्य के भेद से दो प्रकार का है । (३) कारण मात्र विभागजन्य विभाग का उदाहरण यह है कि जिस स्थान में एक कपाल में कर्म हुआ है तब कपालद्वय का विभाग, ((४) तब घट का आरम्भक जो कपालद्वयसंयोग उसका नाश । (५) तब घट नाश (६) तब उसी कपाल विभाग से सकर्मक कपाल में आकाश के साथ विभाग उत्पन्न होता है । (७) तब पूर्व देशावच्छिन्न जो कपालाकाशसंयोग उस का नाश होता है । (८) तब उत्तर देश के साथ कपाल का संयोग होता है । (९) तब कपाल कर्म का नाश होता है । कपाल कपाल के विभाग से उत्पन्न जो कपाल और आकाश का विभाग वही कारण मात्र विभागजन्य विभाग है ।

(१०) न च तेन कर्मणैव कथं देशान्तरविभागो न जन्यत इति वाच्यम्, एकस्य कर्मणः आरम्भकसंयोगप्रतिद्वन्द्वि विभागजनकत्वस्य अनारम्भकसंयोगप्रतिद्वन्द्वि विभागजनकत्वस्य च विरोधात् । अन्यथा विकसत्कमल कुड्मलभङ्गप्रसंगात् ।

(१०) * शंका—कपालद्वय विभाग का कारण जो एक कपालगत कर्म उसी से कपालाकाश विभागोत्पत्ति क्यों नहीं मानते हैं ? समा०— आरम्भक संयोग विरोधि विभाग-जनकत्व एवं अनारम्भक संयोग विरोधि विभागजनकत्व इन दोनों में परस्पर विरोध है अर्थात् एक वस्तु में ये दोनों नहीं रह सकते हैं इसलिये आरम्भक कपालद्वय संयोग विरोधि विभागजनक जो कपालगत कर्म वह अनारम्भक कपालाकाश संयोग के विरोधी जो कपालाकाश विभाग उसका जनक नहीं हो सकता है ।

(११) अन्यथा विकसत्कमलकुड्मल भङ्ग प्रसङ्गात् ।

(११) अनारम्भक संयोग विरोधि विभागजनक कर्म को यदि आरम्भक संयोग विरोधि विभाग के जनक मानें तो खिलते हुए कमल-कोष का नाश हो जायगा क्योंकि कमल पत्रों का अग्रावच्छेदेन जो द्रव्यानारम्भक परस्पर संयोग तद्विरोधी विभाग का जनक जो पत्रगत कर्म है उस कर्म से मूलावच्छेदेन पत्रों का जो कमलारम्भक संयोग तद्विरोधी जो मूलावच्छेदेन कमल पत्र विभाग वह उत्पन्न हो जायगा । तब उस विभाग से कमलारम्भक संयोग नाश होने के बाद कमल का भी नाश सुतरां हो जायगा ।

(१२) तस्माद् यदीदमनारम्भक संयोगप्रतिद्वन्द्वि विभागं जनयेत्त-दारम्भकसंयोगप्रतिद्वन्द्विविभागं न जनयेत् ।

* द्रव्योत्पादक अवयव द्वय संयोग आरम्भक संयोग कहलाता है ।

(१२) इसलिये कपाल गत कर्म से यदि अनारम्भक कपालाकाश संयोग का विरोधी विभाग उत्पन्न हो तो घटारम्भक संयोग विरोधी कपालद्वय विभाग उत्पन्न नहीं होगा। तब यह सिद्ध हुआ कि कपालगत कर्म से कपालाकाश विभाग उत्पन्न नहीं होगा।

(१३) न च कारण विभागेनैव द्रव्यनाशात् पूर्वं कुतो देशान्तर विभागो न जन्यत इति वाच्यम्, आरम्भक संयोगप्रतिद्वन्द्वि विभागवतोऽवयवस्य सति द्रव्ये देशान्तरविभागासंभवात्।

(१३) शंका करते हैं कि कपालद्वय विभाग से घट नाश के पूर्व क्षण में अर्थात् कपालद्वय संयोग नाश क्षण में कपालाकाश विभाग क्यों नहीं उत्पन्न होता है जो आप घट नाश के उत्तर क्षण में मानते हैं? समा०—आरम्भक संयोग विरोधि विभागाश्रय कपालादि रूप अवयव में जब तक घटादि रूप द्रव्य समवायेन रहेगा तब तक उस अवयव का आकाशादि रूप देशान्तर के साथ विभाग नहीं हो सकता है। क्योंकि आरम्भक संयोग विरोधि विभागाश्रय अवयव में देशान्तर विभाग के प्रति समवाय सम्बन्धेन घटादि रूप द्रव्य प्रतिबन्धक है।

(१४) द्वितीयस्तावत्। यत्र हस्तक्रियया हस्ततरुविभागस्ततः शरीरेऽपि विभक्तप्रत्ययो भवति तत्र शरीरतरुविभागे हस्तक्रिया न कारणं व्यधिकरणत्वात्। (१५) शरीरे तु क्रिया नास्त्येव अवयविकर्मणो यावद्वयवकर्मनियतत्वात्। (१६) अतस्तत्र कारणाकारणविभागेन कार्याकार्य विभागो जन्यत इति।

(१४) कारणाकारण विभागजन्य विभाग का उदाहरण। जहां हस्त में क्रिया होने के कारण हस्त वृक्ष का विभाग हुआ है तब उस विभाग से शरीर और वृक्ष में विभाग की प्रतीति होती है इसलिये शरीर और वृक्ष का विभाग मानना होगा उस विभाग में हस्त की क्रिया असमानाधिकरण होने के कारण कारण नहीं है। (१५) अवयवी के प्रत्येक अवयवों में जब तक क्रिया नहीं होती तब तक अवयवी क्रियावान् नहीं कहाता है। इसलिये हस्त मात्र में क्रिया होने के कारण शरीर में क्रिया नहीं मानी जा सकती जिस को समानाधिकरण होने के कारण शरीर वृक्ष विभाग के प्रति कारणत्व मानना युक्त होता। (१६) इसलिये (अगत्या) कारणाकारण विभाग रूप हस्त तरु विभाग से कार्याकार्य विभाग रूप शरीर तरु विभाग उत्पन्न होता है ऐसा मानना होगा।

(१७) अत एव विभागो गुणान्तरम्। अन्यथा शरीरे विभक्तप्रत्ययो न स्यात्। अतः संयोग नाशेन विभागो नान्यथासिद्धो भवति।

(१७) विभागज विभाग मानने के कारण संयोगध्वंस रूप विभाग नहीं मा न सकते हैं। क्योंकि संयोगध्वंस रूप ही यदि विभाग माना जाय तो हस्त तरु विभागानन्तर शरीर में तरु विभागप्रत्यय नहीं होगा क्योंकि हस्तक्रियाजन्य जो हस्ततरुसंयोगध्वंस वह शरीर में वृत्ती नहीं है। हस्तक्रियो व्यधिकरण होने के कारण शरीर गत संयोगजसंयोग ध्वंस का कारण नहीं होगा। यदि शरीर में क्रिया होती तो तज्जन्य शरीरगत संयोगज संयोग का नाश होता किन्तु उस समय सकल अङ्ग में क्रिया नहीं है अतः शरीर में क्रिया नहीं मानी जा सकती इसलिये संयोग ध्वंस रूप विभाग नहीं है किन्तु गुणान्तर है तव हस्त क्रिया जन्य हस्त तरु विभाग से शरीर तरु विभाग शरीर में रहने के कारण शरीरगत विभक्तप्रत्यय में कोई बाधा नहीं है।

परापर व्यवहारनिमित्ते परत्वापरत्वे निरूपयति —

परापर व्यवहार का असाधारण कारण जो परत्व और अपरत्व उन दोनों का निरूपण करते हैं।

का० १२१, १२२

परत्व चापरत्व च द्विविधं परिकीर्तितम् ।
दैशिकं कालिकं चापि मूर्त एव तु दैशिकम् ॥
परत्वं मूर्तसंयोग भूयस्त्वज्ञानतो भवेत् ।
अपरत्वं तदल्पत्वबुद्धितः स्यादितीरितम् ॥

का० अर्थ।

दैशिक और कालिक के भेद से परत्व तथा अपरत्व दो दो प्रकार के होते हैं। जिन में दूरत्व, समीपत्व रूप दैशिक परत्वापरत्व मूर्त मात्र में रहते हैं। दैशिक परत्व बहुतर मूर्त संयोगान्तरितत्व ज्ञान से उत्पन्न होता है और दैशिक अपरत्व अल्पतर मूर्त संयोगान्तरितत्व ज्ञान से उत्पन्न होता है।

(१) परत्वं चेति। दैशिक मिति। दैशिकपरत्वं बहुतर मूर्तसंयोगान्तरितत्व ज्ञानादुत्पद्यते। एवं तदल्पीयस्त्व ज्ञानादपरत्व मुत्पद्यते। अत्राव धित्वार्थं पञ्चम्यपेक्षा। यथा पाटलिपुत्रात्काशीमपेक्ष्य प्रयागः परः पाटलिपुत्रात्कुरुक्षेत्रमपेक्ष्य प्रयागोऽपर इति।

(१) उदाहरण पाटलिपुत्र (पटना) से काशी तक मध्य में जितने मूर्त संयोग हैं उन से अधिक मूर्तसंयोग पटने से प्रयाग तक हैं इत्याकारक ज्ञान से काशी की अपेक्षा प्रयाग में परत्व उत्पन्न होता है । एवं पटना और कुरुक्षेत्र के मध्य में जितने मूर्त संयोग हैं, तदपेक्षया अल्प मूर्त संयोग पटना और प्रयाग के मध्य में है । इत्याकारक ज्ञान रहने पर प्रयाग में अपरत्व उत्पन्न होता है " पाटलि पुत्रात् " पदप्रयोग घटक पञ्चमी अवधित्व ज्ञानार्थ अपेक्षित है ।

का० १२२ पू०

तयोरसमवायी तु दिक्संयोगस्तदाश्रये ।

का० अर्थ ।

दैशिक परत्वापरत्व का असमवायि कारण दैशिक परत्वापरत्वाश्रय के साथ दिशा का संयोग है ।

(१) तयोर्दैशिक परत्वापरत्वयोः । असमवायी असमवायिकारणम् । तदाश्रये दैशिक परत्वापरत्वाश्रये ।

(१) कारिकार्थ से स्पष्ट है ।

का० १२३, १२४

दिवाकरपरिस्पन्द भूयस्त्वज्ञानतो भवेत् ॥
परत्वमपरत्वं तु तदीयाल्पत्वबुद्धितः । -
अत्र त्वसमवायी स्यात्संयोगः कालपिण्डयोः ॥

का० अर्थ ।

दिवाकर के परिस्पन्द (क्रिया) में भूयस्त्वज्ञान से ज्येष्ठत्व रूप] कालिक परत्व उत्पन्न होता है । एवं दिवाकर परिस्पन्द में अल्पत्व ज्ञान से कनिष्ठत्व रूप कालिक अपरत्व उत्पन्न होता है । कालिक परत्वापरत्व का असमवायि कारण कालिक परत्वापरत्वाश्रय के साथ काल का संयोग है ।

(१) दिवाकरेति । अत्र परत्वमपरत्वं कालिकं ग्राह्यम् । (२) यस्य, सूर्यपरिस्पन्दापेक्षया यस्य सूर्यपरिस्पन्दोऽधिकः स ज्येष्ठः । यस्य न्यूनः स कनिष्ठः । (३) कालिक परत्वापरत्वे जन्यद्रव्य एव । अत्र कालिक परत्वापरत्वयोः ।

(१) कारिका घटक परत्वापरत्व शब्द से कालिक परत्वापरत्व समझना चाहिये (२) जिस वस्तु की उत्पत्ति समय से लेकर वर्तमान समय पर्यन्त सूर्य परिस्पन्दापेक्षया जिस वस्तु की उत्पत्ति समय से लेकर वर्तमान समय पर्यन्त सूर्य परिस्पन्द अधिक है वह ज्येष्ठ हैं। अगर अल्प है तो वह कनिष्ठ है। (३) जिस हेतु नित्य वस्तु की उत्पत्ति नहीं होती हैं अतः कालिक परत्व और अपरत्व जन्यद्रव्य मात्र में रहते हैं। कारिका में "अत्र" शब्द कालिक परत्वा परत्व पर है ।

का० १२५ पूर्वा०

अपेक्षाबुद्धिनाशेन नाशस्तेषां निरूपितः ।

का० अर्थ ।

अपेक्षाबुद्धि के नाश से दैशिक और कालिक परत्वापरत्व का नाश होता है ।

(१) तेषां कालिकदैशिकपरत्वापरत्वानाम् ।

(१) कारिका घटक तत्पद कालिक और दैशिक परत्वापरत्व बोधक हैं ।

क्रमप्राप्तां बुद्धिं निरूपयितुमाह = निरूपण क्रमप्राप्त बुद्धि का निरूपण करते हैं।

का० १२५ १२६. १२७

बुद्धेः प्रपञ्चः प्रागेव प्रायशो विनिरूपितः ॥
अथावशिष्टोऽप्यपरः प्रकारः परिदर्श्यते ।
अप्रमा च प्रमाचेति ज्ञानं द्विविध मिष्यते ॥
तच्छून्ये तन्मतिर्या स्यादप्रमा सा निरूपिता ।
तत्प्रपञ्चो विपर्यासः संशयोऽपि प्रकीर्तितः ॥

का० अर्थ ।

बुद्धि के प्रभेद (प्रकार) का निरूपण पूर्व ही अधिक हो चुका है। अब उस के अवशिष्ट प्रकार बतलाये जाते हैं। यथार्थ और अयथार्थ के भेद से ज्ञान दो प्रकार के होते हैं। तदभाववद्विशेष्यक और तत्प्रकारक जो ज्ञान वह अयथार्थ ज्ञान कहाता है। अयथार्थ ज्ञान विपर्यास और संशय के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

(१) बुद्धेरिति । तत्प्रभ्रमं निरूपयति-तच्छून्य इति । तदभाववति तत्प्रकारकं ज्ञानं भ्रम इत्यर्थः । तत्प्रपञ्चोऽप्रमाप्रपञ्चः ।

(१) इस का अर्थ कारिकार्थ से ही स्पष्ट है ।

का० १२८ ।

आद्यो देहेष्वात्मबुद्धिः शङ्खादौ पीततामतिः ।
भवेन्निश्चयरूपा या संशयोऽथ प्रदर्श्यते ॥

का० अर्थ ।

निश्चयात्मक भ्रम विपर्यास कहलाता है यथा "गौरोऽहम्" इत्याकारक देह विशेष्यक आत्मत्व प्रकारक निश्चय एवं "शङ्खः पीतः" इत्याकारक शंख विशेष्यक पीतत्व प्रकारक निश्चय विपर्यास है । अब संशय का स्वरूप बतलाते हैं ।

(१) आद्य इति । विपर्यास इत्यर्थः । शरीरादौ निश्चयरूपं यदात्मत्व प्रकारकं ज्ञानं गौरोऽहमित्याकारकम् । एवं शङ्खादौ पीतः शङ्ख इत्याकारकं यज्ज्ञानं निश्चयरूपं तद्भ्रम इति ।

(१) कारिकार्थ से ही स्पष्ट है ।

का० १२९

किंस्विन्नरो वा स्थाणुर्वेत्यादि बुद्धिस्तु संशयः ।
तदभावाप्रकारा धीस्तत्प्रकारा तु निश्चयः ॥

का० अर्थ ।

"अयं नरो वा स्थाणुर्वा" इत्याकारक बुद्धि संशय रूप है एवं तदभावा प्रकारक तत्प्रकारक ज्ञान निश्चय है ।

(१) किं स्विदिति । किं स्विदितिवितर्के । निश्चयस्य लक्षणमाह-तद भावेति तदभावा प्रकारकं तत्प्रकारकं ज्ञानं निश्चयः ।

(१) किंस्वित् शब्द वितर्कार्थक है । तदभावेत्यादि कारिका से निश्चय का लक्षण कहते हैं जो कारिकार्थ से स्पष्ट है ।

संशयं लक्षयति = संशय का लक्षण करते हैं।

का० १३० ।

स संशयो मतिर्या स्यादेकत्राभाव भावयोः ।
साधारणादिधर्मस्य ज्ञान संशय कारणम् ॥

का० अर्थ ।

एक वस्तु विशेष्यक विरुद्ध भावाभाव प्रकारक ज्ञान संशय है। साधारणादि धर्म ज्ञान संशय का कारण है ।

(१) स संशय इति। एक धर्मिक विरुद्ध भावाभाव प्रकारकं ज्ञानं संशय इत्यर्थः ।

(१) कारिकार्थ से स्पष्ट है ।

(२) साधारणेति। उभय साधारणो यो धर्मस्तज्ज्ञानं संशयकारणम्। (३) यथोच्चैस्तरत्वं स्थाणुपुरुषसाधारणं ज्ञात्वायं स्थाणुर्नवेति संदिग्धे। (४) एवं असाधारण धर्मज्ञानमपि कारणम्। यथा शब्दत्वस्य नित्यानित्यव्यावृत्तत्वेन शब्दे गृहीतत्वाच्छब्दो नित्यो न वेति संदिग्धे ।

(२) कोटिद्वय समानाधिकरण जो धर्म उस का ज्ञान संशय का कारण है। (३) यथा स्थाणुत्व स्थाणुत्वा भाव रूप कोटिद्वय समानाधिकरण उच्चैस्तरत्व का पुरोवर्त्ती "इदम्" पदार्थ में ज्ञान होने से "अयंस्थाणुर्न वा" इत्याकारक सन्देह होता है (४) एवं कोटि द्वय के असमानाधिकरण जो धर्म उस का ज्ञान भी संशय का कारण है । यथा "शब्दो नित्यः शब्दत्वात्" इस स्थल में शब्द को पक्ष होने के कारण शब्द में नित्यत्व, एवं नित्यत्वाभाव का निश्चय नहीं है इसलिये शब्दत्व में नित्यत्व सामानाधिकरण्य एवं नित्यत्वाभाव सामानाधिकरण्य का निश्चय नहीं होगा, अतः "नित्यत्व नित्यत्वाभाव रूप कोटिद्वया समानाधिकरण शब्दत्ववान् शब्दः" इत्याकारक ज्ञान होने से "शब्दो नित्यो न वा" इत्याकारक सन्देह होता है।

(५) विप्रतिपत्तिस्तु शब्दो नित्यो न वेत्यादि शब्दात्मिका न संशय कारणं शब्दव्याप्ति ज्ञानादीनां निश्चयमात्रजनकत्व स्वभावात्। (६) किंतु तत्र शब्देनकोटिद्वय ज्ञानं जन्यते संशयस्तु मानस एवेति ।

(५) "शब्दो नित्यो न वा" इत्यादि शब्द रूप विप्रतिपत्ति संशय का कारण नहीं है क्योंकि शब्द और व्याप्ति ज्ञानादि को निश्चय मात्र जनकत्व स्वभाव है। (६) किन्तु विप्रतिपत्ति स्थल में "शब्दः नित्यो न वा" इत्याद्याकारक शब्द रूप विप्रतिपत्ति से नित्यत्व नित्यत्वा भावाद्यात्मक कोटिद्वय का स्मरण होता है तदनन्तर शब्दादि विशेष्यक नित्यत्व नित्यत्वा भावादि प्रकारक संशय मानस (उपनीत भानात्मक) होता है।

(७) एवं ज्ञाने प्रामाण्य संशयाद्विषयसंशय इति।

(७) एवं "अयं घटः" इत्याकारक घटत्वप्रकारक ज्ञान में "इदं घटत्व प्रकारकं ज्ञानं घटत्ववति घटत्व प्रकारकं नवा" इत्याकारक प्रामाण्य संदेह से "अयं घटो न वा" इत्याकारक घटत्व का संशय होता है।

(८) एवं व्याप्य संशयादपि व्यापक संशय इत्यादिक बोध्यम्
(९) किंतु संशये धर्मिज्ञानं धर्मीन्द्रियसंनिकर्षो वा कारण मिति।

(८) एवं धूमादि रूप व्याप्य के सन्देह से वह्न्यादि रूप व्यापक का सन्देह होता है। (९) एवं संशय में धर्मी का ज्ञान, अथवा धर्मी के साथ इन्द्रिय सन्निकर्ष कारण है।

का० १३१

दोषोऽप्रमाया जनकः प्रमायास्तु गुणो भवेत्।
पित्तदूरत्वादिरूपो दोषो नानाविधः स्मृतः॥

का० अर्थ।

अप्रमा के प्रति दोष और प्रमा के प्रति गुण कारण है। पित्त दूरत्वादि भेद से दोष अनन्त प्रकार के हैं।

(१) दोष इति। अप्रमां प्रति दोषः कारणम्। प्रमां प्रति गुणः कारणम्। (२) तत्रापि पित्तादिरूपा दोषा अननुगताः। तेषां कारणत्व मन्वयव्यतिरेकाभ्यां सिद्धम्। (३) गुणस्य प्रमा जनकत्वं तु अनुमानात्सिद्धम्। यथा प्रमा ज्ञानसाधारणकारणभिन्नकारणजन्या जन्यज्ञानत्वात् अप्रमावत्।

(१) कारिकार्थ से स्पष्ट है। (२) पित्तादि रूप दोष अननुगत है। अप्रमात्मक ज्ञान के साथ अन्वय व्यतिरेक रहने के हेतु वह अप्रमात्मक ज्ञान के प्रति कारण माना जाता है। (३) गुण में प्रमाजनकत्व अनुमान से सिद्ध है यथा "प्रमा ज्ञानसामान्य कारण भिन्न कारण जन्या जन्यज्ञानत्वात् अप्रमावत्" अर्थात् आत्म मनः संयोग त्वङ्मनः संयोगादिरूप ज्ञानसामान्य के कारण से भिन्न पित्तादि दोषरूप कारणजन्य, अप्रमा ज्ञान के तरह प्रमा ज्ञान भी जन्य ज्ञानरूप होने के कारण उक्त संयोगादि रूप ज्ञान सामान्य के कारण से भिन्न सन्निकर्षादि रूप गुण जन्य है।

(४) नच दोषाभाव एव कारणमस्त्विति वाच्यं पीतः शङ्ख इति ज्ञानस्थले पित्तदोषसत्त्वाच्छङ्खत्व प्रमानुत्पत्ति प्रसङ्गात्। (५) विनिगमना विरहा दनन्तदोषाभाव कारणत्वमपेक्ष्य गुणस्य कारणताया न्याय्यत्वात्।

(४) शङ्का—प्रमा में गुण को कारण नहीं मान कर दोषाभाव ही को कारणता मानें तो क्या हानि है? समा०—"पीतः शंखः" इत्याकारक आंशिक अप्रमात्मक प्रमा में पित्त रूप दोष रहने के कारण दोषाभाव नहीं रहेगा। अतः वह ज्ञान शंखत्वांश में प्रमा है यह नहीं होगा। (५) और यह भी कारण है कि सकल दोष में एक दोषत्व अनुगत नहीं रहने के कारण दोषत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक दोष सामान्या भाव को आप कारण नहीं कह सकते हैं क्योंकि वह अप्रसिद्ध हो जायगा। अतः विनिगमना विरहात् अनन्त तत्तत् दोषाभाव कूट ही को कारणत्व मानना होगा। तदपेक्षया लाघवात् गुण ही को कारणत्व मानना उचित हैं।

(६) नच गुणसत्त्वेऽपि पित्तेन प्रतिबन्धाच्छंखे न श्वैत्यज्ञानमतः पित्तादि दोषा भावानां कारणत्वमवश्यं वाच्यं तथाच किं गुणस्य हेतुत्व कल्पनयेति वाच्यं, तथाप्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां गुणस्यापि हेतुत्वसिद्धेः।

(६) (शंका) यदि कहें कि शंखगत शुक्ल रूप के साथ चक्षुः संयुक्त समवाय रूप सन्निकर्षात्मक गुण रहने पर भी नेत्रगत पित्तदोष प्रयुक्त शंख में शुक्ल रूप की प्रमा नहीं होती है। अब उक्त गुण रहने के कारण प्रमा होनी चाहिये। अतः प्रमा के प्रति दोषाभाव को कारणत्व मानना आवश्यक हुआ तब गुण को कारणत्व मानना व्यर्थ है। (समाधान) यह युक्त नहीं है क्योंकि नेत्रगत पित्तादि दोष रहित पुरुषों को दोषाभाव रहने पर भी शंख में पीत रूप प्रकारक प्रमा नहीं होती है। वह क्यों नहीं होगी अतः सन्निकर्षादि रूप गुण को भी प्रमा के प्रति कारण मानते हैं। तब दोषाभाव को रहते हुए भी पीत रूप के साथ सन्निकर्षात्मक गुण नहीं है इसलिये शंख में पीत प्रमा नहीं होती है।

(७) एवं भ्रमं प्रति गुणाभावः कारण मित्यस्यापि सुवचत्वात् ।

(७) प्रमा के साथ गुण में अन्वय व्यतिरेक रहने पर भी यदि आप प्रमा के प्रति केवल दोषाभाव को कारण मानकर गुण को अन्यथासिद्ध मानें तो भ्रम के साथ दोष में अन्वय व्यतिरेक रहने पर भी भ्रम के प्रति गुणाभाव ही को कारणत्व मानकर दोष को अन्यथा सिद्ध क्यों नहीं माना जाय ? इस से यह पर्यवसित हुआ कि भ्रम के प्रति यथा दोष और गुणाभाव दोनों कारण हैं तथा प्रमा के प्रति भी गुण और दोषाभाव दोनों कारण हैं । नेत्रगत पित्तदोष विशिष्ट पुरुष को दोष रहने पर भी पीत पट में पीत रूप प्रकारक भ्रम नहीं होता । अतः भ्रम के प्रति सन्निकर्ष रूप गुणाभाव को कारणत्व मानते हैं एवं सन्निकर्ष रूप गुणाभाव रहने पर भी बिना पित्तादि दोष के शंख में पीत रूप प्रकारक भ्रम नहीं होता अतः भ्रम के प्रति दोष को भी कारणत्व मानना आवश्यक है ।

(८) तत्र दोषाः के इत्याकांक्षायामाह-पित्तेति ।

(८) दोष किस को कहते हैं इस आकांक्षा के निवृत्यर्थ पित्तेत्यादि कारिका से दोष का स्वरूप कहते हैं ।

(९) क्वचित्पीतादिभ्रमे पित्तं दोषः । क्वचिच्चन्द्रादेः स्वल्पपरिमाण-भ्रमे दूरत्वं दोषः । क्वचिच्च वंशोरगभ्रमे मण्डूक वसाञ्जनमित्येवंरूपा दोषा अननुगता भ्रान्तिजनका इत्यर्थः ।

(९) कहीं शंखादि में पीत रूप के भ्रम में नेत्रगत पित्त जन्य पीतिमा दोष है । कहीं चन्द्रादि में अल्प परिमाण के भ्रम में चन्द्रादिगत दूरत्व दोष है । कहीं वंश में सर्पत्व भ्रम में मण्डूक मज्जाञ्जन दोष है । इस प्रकार अननुगत अनन्त दोष भ्रम का जनक होते हैं ।

अथ के गुणा इत्याकांक्षायां प्रत्यक्षादौ क्रमशो गुणान्दर्शयति—

प्रमात्मक ज्ञान में कारणीभूत गुण कौन है इत्याकारक आकांक्षा निवृत्यर्थ प्रत्यक्षादि प्रमात्मक ज्ञान में कारणीभूत प्रत्येक २ गुण दिखलाते हैं ।

का० १३२, १३३,

प्रत्यक्षे तु विशेष्येण विशेषणवता समम् ।
संनिकर्षो गुणस्तु स्यादथ त्वनुमितौ पुनः ॥
पक्षे साध्यविशिष्टे तु परामर्शो गुणो भवेत् ।
शक्ये सादृश्यबुद्धिस्तु भवेदुपमितौ गुणः ॥

का० १३४

शाब्द^बोध योग्यतायास्तात्पर्यस्याथ वा प्रमा ।
गुणः स्याद्भ्रमभिन्नं तु ज्ञानमत्रोच्यते प्रमा ॥

का० अर्थ ।

विशेषण विशिष्ट विशेष्य के साथ जो इन्द्रिय का सन्निकर्ष वह प्रत्यक्ष प्रमा में गुण है। साध्यविशिष्ट पक्ष में जो साध्यव्याप्य हेतु वैशिष्ट्यावगाही परामर्श वह अनुमिति प्रमा में गुण है। गवयादि पद के शक्यार्थ गवयादियों में जो गवादि का सादृश्य ज्ञान वह उपमिति प्रमा में गुण है। प्रमात्मक योग्यता ज्ञान अथवा प्रमात्मक तात्पर्य ज्ञान शाब्द बोध प्रमा में गुण है।

(१) प्रत्यक्षे त्विति। प्रत्यक्षे विशेषणवद्विशेष्यसंनिकर्षो गुणः। अनुमितौ साध्यवति साध्यव्याप्यवैशिष्ट्यज्ञानं गुणः। एवमग्रेऽप्यूह्यम्।

(१) इन का अर्थ कारिकार्थ में ही स्पष्ट है।

(२) प्रमां निरूपयति। भ्रमभिन्नन्तु ज्ञानमत्रोच्यते प्रमा। भ्रम भिन्न मिति।

(२) "भ्रमभिन्नम्" इत्यादि कारिका से प्रमा का निरूपण करते हैं, भ्रम से भिन्न ज्ञान प्रमा कहलाता है।

ननु यत्र शुक्तिरजतयोरिमे रजते इति ज्ञानं जातं तत्र रजतांशेऽपि प्रमा न स्यात्, तज्ज्ञानस्य भ्रमभिन्नत्वाभावादत आह—

शंका करते हैं कि यदि भ्रमभिन्न ज्ञान को प्रमा माने तो जिस स्थल में शुक्तिका और रजत इन दोनों में रजतत्व प्रकारक "इमे रजते" इत्याकारक एक ज्ञान उत्पन्न हुआ है उस स्थल में "इमे रजते" यह ज्ञान शुक्तिकांश में भ्रम और रजतांश में प्रमा है जो भ्रम-भिन्न नहीं होने के कारण रजतांश में भी प्रमात्मक नहीं होगा अतः "अथवा" इत्यादि कारिका से प्रमा का लक्षणान्तर करते हैं।

का० १३५, १३६, पूर्वा०

अथवा तत्प्रकारं यज्ज्ञानं तद्वद्विशेष्यकम्।
तत्प्रमा न प्रमा नापि भ्रमः स्यान्निर्विकल्पकम् ॥
प्रकारतादिशून्यं हि संबन्धानवगाहि तत्।

का० अर्थ।

"तदाश्रयविशेष्यक तत्प्रकारक ज्ञान" प्रमा है और निर्विकल्पक ज्ञान न प्रमा है न भ्रम है। जिस हेतु निर्विकल्पक ज्ञान प्रकारता विशेष्यता शून्य और सम्बन्धा नवगाही होता है।

(१) अथवेति। तद्वद्विशेष्यकं तत्प्रकारकं ज्ञानं प्रमेत्यर्थः।

(१) इस का अर्थ कारिकार्थ से ही स्पष्ट है।

(२) अथैवं स्मृतेरपि प्रमात्वं स्यात्। (३) ततः किमिति चेत्तथा सति तत्करणस्यापि प्रमाणान्तरत्वं स्यादिति चेन्न। यथार्थानुभव करणस्यैव प्रमाणत्वेन विवक्षितत्वात्।

(२) (शंका) तद्वद्विशेष्यक तत्प्रकारक ज्ञान ही यदि प्रमा हो तो स्मृत्यात्मक ज्ञान को भी तादृश होने के कारण प्रमात्वापत्ति हो जायगी। (३) स्मृति को प्रमा रूप होने से क्षति ही क्या है। तब स्मृति को प्रमात्मक होने से तत्करण संस्कार वा अनुभव को पञ्चम प्रमाण मानना होगा। समा०— यह नहीं कह सकते हैं। क्योंकि यथार्थानुभव करण ही को मैं प्रमाण रूप मानता हूं। स्मृति को यथार्थानुभव रूप नहीं होने के कारण उस का करण संस्कारादि प्रमाणान्तर नहीं हो सकता है।

(४) इदं तु बोध्यम्। येन संबन्धेन यद्वत्ता तेन संबन्धेन तद्वद्विशेष्यकत्वं तेन संबन्धेन तत्प्रकारकत्वं वाच्यम्। (५) तेन कपालादौ संयोगादिना घटादिज्ञाने नातिव्याप्तिः।

(४) यहां यह समझना चाहिये कि जिस सम्बन्ध से प्रकार विशेष्य में रहता हो उस सम्बन्ध से तद्वत्व और तत्प्रकारकत्व लेना चाहिये। (५) अतः समवाय सम्बन्ध से कपाल में घट को रहने पर भी संयोग सम्बन्ध से घट प्रकारक कपाल विशेष्यक ज्ञान में अति व्याप्ति नहीं हुई। क्योंकि प्रकारतावच्छेदकीभूत संयोग सम्बन्ध से कपाल में घटवत्ता नहीं है।

(६) एवं सति निर्विकल्पकं प्रमा न स्यात्तस्य सप्रकारकत्वाभावादत आह— न प्रमेति।

(६) प्रमात्मक ज्ञान के ऐसे लक्षण करने से निर्विकल्पक ज्ञान किंचित्प्रकारक नहीं होने के कारण प्रमा रूप नहीं होगा इस शंका का "न प्रमा" इत्यादि कारिका से इष्टापत्ति द्वारा खण्डन करते हैं।

(७) ननु वृक्षे कपिसंयोगज्ञानं भ्रमः प्रमा च स्यादितिचेन्न प्रतियोगिव्यधिकरण संयोगाभाववति संयोगज्ञानस्य भ्रमत्वात् ।

(७) शंका करते हैं कि जिस वृक्ष में कपिसंयोग किसी एक देशावच्छेदेन है उसी वृक्ष में अन्यदेशावच्छेदेन कपि संयोगाभाव को रहने के कारण तादृश वृक्ष विशेष्यक कपि संयोग प्रकारक ज्ञान कपि संयोगाभाववद्विशेष्यक कपि संयोग प्रकारक होने के कारण भ्रम रूप एवं कपि संयोगवद्विशेष्यक कपि संयोग प्रकारक होने के कारण प्रमा रूप भी हो जाना चाहिये। समा०—प्रतियोगिव्यधिकरण कपिसंयोगाभाववद्विशेष्यक कपिसंयोग प्रकारक ज्ञान को भ्रम रूप मानताहूं। उक्त वृक्ष में प्रतियोगिव्यधिकरण होकर कपिसंयोगाभाव को नहीं रहने से उक्त ज्ञान प्रतियोगिव्यधिकरण कपिसंयोगाभाववद्विशेष्यक कपिसंयोग प्रकारक नहीं है अतः भ्रम रूप नहीं होगा केवल प्रमा रूप हैं।

(८) नच वृक्षे संयोगाभावावच्छेदेन संयोगज्ञानं भ्रमो न स्यात्तत्र संयोगाभावस्य प्रतियोगिसमानाधिकरणत्वादिति वाच्यं, तत्र संयोगाभावावच्छेदेन संयोगज्ञानस्य भ्रमत्वात् । लक्ष्यस्याननुगमाल्लक्षणाननुगमेऽपि न क्षतिः ।

(८) शङ्का करते हैं कि कपिसंयोगवत् वृक्ष मे कपिसंयोगाभाव प्रतियोगिव्यधिकरण होकर नहीं रहता है अतः कपिसंयोगाभाववान् कपिसंयोगी इत्याकारक वृक्ष मे कपिसंयोगाभावावच्छेदेन कपिसंयोगज्ञान भ्रम रूप नहीं होगा। समा०-अव्याप्यवृत्ति पदार्थ प्रकारक भ्रम लक्षण तदभावावच्छेदेन तत्प्रकारक ज्ञानत्व है। अतः कपिसंयोगाभावावच्छेदेन वृक्ष में कपि संयोग प्रकारक ज्ञान को भ्रम रूप होने में कोई बाधा नहीं है। व्याप्यवृत्ति पदार्थ प्रकारक भ्रम का लक्षण उक्त तदभाववद्विशेष्यक तत्प्रकारक ज्ञानत्व है। लक्ष्य को अननुगत होने के कारण लक्षण का अननुगम होने पर भी कोई क्षति नहीं है।

का० १३६ उक्त०

प्रमात्वं न स्वतो ग्राह्यं संशयानुपपत्तितः ॥

का० अर्थ।

प्रमात्व स्वतो ग्राह्य नहीं है अर्थात् जिस सामग्री से ज्ञान का ग्रह होता है उसी सामग्री से तज्ज्ञाननिष्ठ प्रमात्व का ग्रह नही होता है, यदि ऐसा न माना जाय तो ज्ञानोत्पत्त्यनन्तर "इदं ज्ञानं प्रमा न वा" इत्याकारक संशय नहीं होगा। (इसका हेतु मुक्तावली में बतलाया गया है)

(१) प्रमात्वमिति, मीमांसका हि प्रमात्वं स्वतो ग्राह्यमिति वदन्ति ।
(२) तत्रगुरूणां मते ज्ञानस्य स्वप्रकाशरूपत्वात्तज्ज्ञानप्रामाण्यं तेनैव गृह्यत

इति । (३) भट्टानां मते ज्ञानमतीन्द्रियम् । (४) ज्ञानजन्या ज्ञातता प्रत्यक्षा तया च ज्ञान मनुमीयते । (५) मुरारिमिश्राणां मतेऽनुव्यवसायेन ज्ञानं गृह्यते । (६) सर्वेषामपि मते तज्ज्ञानविषयकज्ञानेन तज्ज्ञानप्रामाण्यं गृह्यते ।

(१) मीमांसक लोग ज्ञान में प्रमात्व स्वतोग्राह्य मानते हैं । अर्थात् ज्ञान ग्राहक सामग्री से ही ग्राह्य मानते हैं । (२) गुरु प्रभाकर के मत में ज्ञान स्वप्रकाश है अर्थात् अपने को भी विषय करता है अतः स्वात्मक ज्ञानसे जैसे स्वनिष्ठ ज्ञानत्व गृहीत होता है उसी प्रकार ज्ञाननिष्ठ प्रमात्व भी गृहीत होता है। (३) कुमारिल भट्ट के मत से ज्ञान का प्रत्यक्ष नहीं होता है। (४) ज्ञानोत्पत्ति होने पर विषयनिष्ठ ज्ञानजन्य एक ज्ञातता नाम का धर्म विशेष उत्पन्न होता है जो प्रत्यक्ष सिद्ध है। तादृश ज्ञातता से ज्ञान का अनुमान किया जाता है यथा—"यह ज्ञातता घटवृत्ति घटत्व प्रकारक ज्ञातता रूप होने के कारण घटविशेष्यक घटत्व प्रकारक ज्ञानजन्य है। जो ज्ञातता यद्वृत्ति यत्प्रकारक होती है वह तद्विशेष्यक तत्प्रकारक ज्ञानजन्य होती है यथा घटवृत्ति घटत्व प्रकारक ज्ञातता है। (५) एवं मुरारि मिश्र के मत में ज्ञान का ग्रहण अनुव्यवसाय से होता है। (६) उक्त सबों के मत में तज्ज्ञान विषयक ज्ञान से तज्ज्ञान निष्ठ प्रामाण्य गृहीत होता है।

(७) विषयनिरूप्यं हि ज्ञानमतो ज्ञानवित्तिवेद्यो विषयः । (८) तन्मतं दूषयति—न स्वतो ग्राह्यमिति ।

(७) ज्ञान विषय से निरूप्य होता है अर्थात् विषया विषयक प्रत्यक्ष का अविषय होता है। अतः ज्ञान ज्ञान से पूर्व ज्ञान का विषय ज्ञात होता है। इसलिये तद्वन्निष्ठ विशेष्यता निरूपित तन्निष्ठ प्रकारताकत्व रूप जो विषय घटित प्रमात्व वह ज्ञान ज्ञान से ज्ञात होता है। (८) उक्त मीमांसक मत का "प्रमात्वं न स्वतो ग्राह्यम्" इत्यादि कारिका से नैयायिक खण्डन करते हैं।

(९) संशयेति । यदि ज्ञानस्य प्रामाण्यं स्वतो ग्राह्यं स्यात्तदाऽनभ्यासदशापन्नज्ञाने प्रामाण्यसंशयो न स्यात् । तथाहि यदि ज्ञानं ज्ञात तदा त्वन्मते प्रामाण्यं ज्ञातमेवेति कथं संशयः । (१०) यदि तु ज्ञानं न ज्ञातं तदा धर्मिज्ञानाभावात्कथं संशयः । (११) तस्माज्ज्ञाने प्रामाण्यमनुमेयम् ।

(९) यदि ज्ञाननिष्ठ प्रामाण्य ज्ञान ग्राहक सामग्री से ग्राह्य माना जाय तो अनिश्चित प्रामाण्यक जो ज्ञान उस ज्ञान के सजातीय ज्ञान में प्रामाण्य का सन्देह नहीं होगा

क्योंकि यदि ज्ञान का ज्ञान है तो मीमांसक मत से ज्ञाननिष्ठ प्रामाण्य भी निश्चित ही हो जायगा अतः प्रामाण्य का सन्देह नहीं हो सकता है। (१०) यदि ज्ञान ज्ञात नहीं है तो संशय में धर्मि ज्ञान को कारण होने के हेतु ज्ञान रूप धर्मि ज्ञान के अभाव से ज्ञान में प्रामाण्य का सन्देह नहीं हो सकता है। (११) इसलिये ज्ञान में प्रामाण्य अनुमेय है।

(१२) तथाहि। इदं ज्ञानं प्रमा सम्यादिप्रवृत्तिजनकत्वात् यन्नैवं तन्नैवं यथाऽप्रमा। (१३) इदं पृथिवीत्वप्रकारकं ज्ञानं प्रमा, गन्धवति पृथिवीत्वप्रकारकज्ञानत्वात्। (१४) एवमिदं जलत्वप्रकारकं ज्ञानं प्रमा स्नेहवति जलत्वप्रकारक ज्ञानत्वात्।

(१२) जैसे यह ज्ञान सफल प्रवृत्ति का जनक होने के कारण प्रमा है जो ज्ञान प्रमा नहीं होता है वह सफल प्रवृत्ति का जनक नहीं होता है जैसे अप्रमात्मक ज्ञान। (१३) पृथ्वी में पृथिवीत्व का ज्ञान होने पर यह पृथिवीत्व प्रकारक ज्ञान गन्धवत् में पृथिवीत्वप्रकारक ज्ञान रूप होने के कारण प्रमा है। (१४) एवं जल में जलत्व का ज्ञान होने पर यह जलत्व प्रकारक ज्ञान स्नेहवत् में जलत्व प्रकारक ज्ञान रूप होने के कारण प्रमा है। इत्यादि अनुमानों से ज्ञान में प्रामाण्य ज्ञात होता है।

(१५) न च हेतुज्ञानं कथं जातमिति वाच्यं, पृथिवीत्वप्रकारकत्वस्य स्वतो ग्राह्यत्वात्। (१६) तत्र गन्ध ग्रहणे गन्धवद्विशेष्यकत्वस्यापि सुग्रहत्वात्। (१७) तत्प्रकारकत्वावच्छिन्न तद्वद्विशेष्यकत्वं परं न गृह्यते, संशयानुरोधात्।

(१५) शंका करते हैं कि गन्धवद्विशेष्यक पृथिवीत्व प्रकारक ज्ञानत्व रूप हेतु का एवं स्नेहवद्विशेष्यक जलत्व प्रकारक ज्ञानत्व रूप हेतु का ज्ञानात्मक पक्ष में ज्ञान कैसे हुआ। समा०—ज्ञान निष्ठ जो पृथिवीत्व प्रकारकत्व उस को मैं स्वतोग्राह्य अर्थात् ज्ञान ज्ञान से ग्राह्य मानता हूं। (१६) एवं पृथिवी में गन्ध ज्ञान होने के कारण गन्धवद्विशेष्य कत्व भी ज्ञान ज्ञान से ग्राह्य है। (१७) परन्तु पृथिवीत्वादि प्रकारकत्वावच्छिन्न पृथिवीत्ववद्विशेष्यकत्व रूप प्रमात्व स्वतो ग्राह्य नहीं माना जाता है। क्योंकि यदि तादृश प्रमात्व स्वतो ग्राह्य माना जाय तो ज्ञानोत्पत्त्यनन्तर ज्ञान में प्रामाण्य का सन्देह नहीं होगा।

(१८) ननु "सर्वेषां ज्ञानानां यथार्थत्वात्प्रमालक्षणे तद्वद्विशेष्यकत्वं विशेषणं व्यर्थम्, नच रङ्गे रजतार्थिनः प्रवृत्तिर्भ्रमजन्या न स्यात् तव मते भ्रमस्या भावादिति वाच्यम्, तत्रहि दोषाधीनस्य पुरोवर्तिनि स्वतन्त्रोपस्थित रजतभेदाग्रहस्य हेतुत्वात्। सत्यरजतस्थले तु विशिष्ट ज्ञानस्य सत्त्वात्तदेव कारणम्।

(१८) मीमांसक कहते हैं कि ज्ञान मात्र यथार्थ ही होता है। अयथार्थ ज्ञान होता ही नहीं। तब "तद्विशेष्यक तत्प्रकारक ज्ञानत्व रूप जो यथार्थ ज्ञान का लक्षण है उस में तत्प्रकारक ज्ञानत्व मात्र यदि कहें तथापि कोई दोष नहीं होगा अतः लक्षण घटक 'तद्विशेष्यकत्व रूप विशेषण व्यर्थ है क्योंकि यह विशेषण केवल भ्रम में अतिव्याप्ति वारणार्थ है जो भ्रम मीमांसक मत में माना ही नहीं जाता है। यदि नैयायिक कहें कि रंग में रजतार्थियों की प्रवृत्ति भ्रम से होती है किन्तु अब नहीं होगी। क्योंकि आप (मीमांसक) के मत में तो भ्रम माना ही नहीं जाता है। (मीमांसक का समाधान) रंग में रजतार्थियों की जो विसम्वादिनी प्रवृत्ति होती है जिस को नैयायिक भ्रमजन्य कहते हैं उस प्रवृत्ति में पुरोवर्ति रङ्गनिष्ठ चाकचिक्य रूप दोषाधीन स्वतन्त्रोपस्थित अर्थात् स्वातन्त्र्येण स्मृति विषय जो रजत उस रजत के भेदाग्रह को भ्रम के बदले में कारण मानते हैं। अतः उक्त तादृश भेदाग्रह से विसम्वादि प्रवृत्ति होने में कोई बाधा नहीं होगी। और जहां वास्तविक रजत है तत्स्थलीय सम्वादिनी अर्थात् सफल प्रवृत्ति में रजतत्व प्रकारक विशिष्ट ज्ञान को रहने के हेतु तादृश विशिष्ट ज्ञान ही कारण माना जाता है।

(१९) अस्तु वा तत्रापि भेदाग्रहः स एव कारणमिति। न चान्यथाख्यातिः सम्भवति, रजत प्रत्यक्षकारणस्य रजत सन्निकर्षस्याभावाद्रंगे रजतबुद्धेरनुपपत्ते रितिचेन्न। सत्यरजतस्थले प्रवृत्ति प्रति विशिष्ट ज्ञानस्य हेतुतायाः क्लृप्तत्वादन्यत्रापि तत्कल्पनात्।

(१९) मीमांसक कहते हैं कि विसम्वादि प्रवृत्ति मे भेदाग्रह और सम्वादि प्रवृत्ति मे विशिष्ट ज्ञान इन दोनों को पृथक् २ कारणता मानने से मुझे गौरव होगा अतः प्रवृत्ति मात्र मे भेदाग्रह ही को कारणता मानना युक्त है। अतः सत्य रजतस्थल मे भी प्रवृत्तिके प्रति रजत भेदाग्रह को ही कारणता मानते हैं। मीमांसक शंका करते हैं कि रजतत्व प्रकारक प्रत्यक्ष का कारण जो चक्षुः संयुक्त समवाय रूप सन्निकर्ष उसको नहीं रहने के कारण रङ्ग मे रजतत्व प्रकारक अन्यथा ख्याति नहीं हो सकती है जो (नैयायिकों के मत मे) विसम्वादि प्रवृत्ति मे कारण होती है (नैयायिक का समा०)—सत्य- रजतस्थलीय सम्वादि प्रवृत्ति के प्रति रजत भेद ग्रहा भावापेक्षया लाघवात् रजतत्व प्रकारक विशिष्ट ज्ञान ही को कारणता स्वीकृत है। इसलिये असत्य रजतस्थलीय विसम्वादि प्रवृत्ति मे भी रजतत्व प्रकारक विशिष्ट ज्ञान ही को लाघवात् कारण मानना होगा।

(२०) न च संवादिप्रवृत्तौ तत्कारणं विसम्वादिप्रवृत्तौ च भेदाग्रहः कारणमिति वाच्यं, लाघवेन प्रवृत्तिमात्रे तस्य हेतुत्व कल्पनात्।

(२०) यदि आप (मीमांसक) कहें कि सम्वादि प्रवृत्ति मे विशिष्ट ज्ञान कोका-रणता मानने पर भी विसम्वादि प्रवृत्ति में भेदाग्रह ही कारण है तो यह कथन युक्त नहीं होगा क्योंकि सम्वादि प्रवृत्ति मे विशिष्ट ज्ञान और विसम्वादि प्रवृत्ति मे भेदाग्रह इन दोनो को कारणता मानने मे गौरव होगा अतः प्रवृत्ति मात्र मे विशिष्ट ज्ञान ही को कारणता मानना युक्त है।

(२१) इत्थं च रंगे रजतत्वविशिष्टबुद्ध्यनुरोधेन ज्ञानलक्षणप्रत्यासत्ति कल्पनेऽपि न क्षतिः, फलमुखगौरवस्यादोषत्वात् ।

(२१) प्रवृत्ति मात्र के प्रति लाघवात् विशिष्ट ज्ञान को कारणता मानने पर रङ्ग में रजतत्वभासक सन्निकर्ष नहीं रहने के कारण रङ्ग में रजतत्व भानार्थ ज्ञान लक्षण प्रत्यासत्ति की कल्पना आवश्यक है अतः तादृश प्रत्यासत्ति कल्पनाकृत गौरव फलमुख होने के कारण दोषाधायक नहीं है।

(२२)किंच यत्र रंग रजतयोरिमे रजते रंगेवेति ज्ञानं जातं तत्र न कारण-बाधोऽपि ।

(२२) एवं जहां रङ्ग और रजत इन दोनों में " इमे रजते रंगे वा " इत्याकारक ज्ञान हुआ है उस स्थलमे रजतत्व अथवा रङ्गत्वके साथ चक्षुः संयुक्त समवाय रूप लौकिक सन्निकर्षका अभाव नहीं रहने के कारण सन्निकर्षाभाव प्रयुक्त अन्यथाख्याति का अभाव नहीं हो सकता है जो कि आप (मीमांसक) पूर्व में कह चुके हैं ।

(२३) अपि च यत्र रंगरजतयोरिमे रजतरंगे इति ज्ञानं तत्रोभयत्र युगपत्प्रवृत्तिनिवृत्ती स्याताम्, रंगे रंगभेदग्रहे रजते रजतभेदग्रहे चान्यथाख्याति भयात्त्वन्मते दोषादेव रंगे रजतभेदाग्रहस्य रजते रंगभेदाग्रहस्य च सत्त्वात् ।

(२३) जहां पुरोवर्ती रङ्ग तथा रजत में युगपत् रङ्ग में रजतत्व ज्ञान और रजत मे रंगत्व ज्ञान हुआ है वहां युगपत् प्रवृत्ति निवृत्ति की आपत्ति (मीमांसक मत में) हो जायगी क्योंकि रंग में रंग भेदाग्रह और रजत में रजत भेदाग्रह अन्यथाख्याति नहीं मानने वाले मीमांसक को मानना होगा एवं चाक् चिक्य रूप दोष वश रंग में रजत भेदाग्रह और रजत में रंग भेदाग्रह भी मानना होगा । अतः रजतार्थी व्यक्ति को रंग मे रजत भेदाग्रह रूप प्रवृत्ति का कारण और रंगमे रंग भेदाग्रह रूप निवृत्ति का कारण दोनों ही रह गये एवं रंगार्थी व्यक्ति को रंग में रंग भेदाग्रह रूप प्रवृत्ति का कारण और रंग में रजत भेदाग्रह रूप निवृत्ति का कारण दोनों ही रह गये

इसी प्रकार रजत में भी रजतार्थी और; रंगार्थी व्यक्तियों की प्रवृत्ति निवृत्ति का कारण समझना चाहिये। किन्तु यह आपत्ति नैयायिक मत में नहीं है। क्योंकि रंग में चाकचिक्य रूप दोष वश रजतत्व ज्ञान होने के कारण रजतार्थी की प्रवृत्ति होती है और उक्त दोषवश रंगत्व ज्ञान नहीं होने के कारण निवृत्ति नहीं होगी इसी प्रकार रंगार्थी का भी समझना चाहिये।

(२४) किञ्चानुमितिं प्रति भेदाग्रहस्य हेतुत्वे जलह्रदे वह्निव्याप्यधूमवद्भेदाग्रहादनुमितिर्निराबाधा। यदि च विशिष्टज्ञानं कारणं तदाऽयोगोलके वह्निव्याप्यधूमज्ञानमनुमित्यनुरोधादापतितम्। सेयमुभयतः पाशारज्जुः।

(२४) अन्यथा ख्याति मानने में ग्रन्थकार "किंचेत्यादि" ग्रन्थ से एक और भी युक्ति दिखलाते हैं। अनुमिति के प्रति मीमांसक व्याप्यवद् भेदाग्रह को यदि कारण माने तो दोष वश वह्नि व्याप्य धूमवद्भेदाग्रह जल में होने के कारण उसको "वह्नि मज्जलम्" इत्याकारक अनुमित्यात्मक अन्यथाख्याति माननी होगी। निवारणार्थ यदि अनुमिति के प्रति व्याप्यवद् भेदाग्रह को कारणत्व नहीं मानकर व्याप्य प्रकारक विशिष्ट ज्ञान ही को कारण माने तो "अयोगोलकं वह्नि मत्" इत्याकारक अनुमिति होती है। तदर्थ तत् कारणीभूत विशिष्ट ज्ञानात्मक वह्निव्याप्य धूमवदयोगोलकम् इत्याकारक परामर्श रूप अन्यथा-ख्याति मानना आवश्यक हो जायगा अतः अन्यथाख्याति भयभीत मीमांसक अनुमिति के प्रति व्याप्यवद्भेदाग्रह और विशिष्ट ज्ञान इन दोनों में एक को भी कारण नहीं कह सकते हैं।

(२५) इत्थं चान्यथाख्यातौ प्रत्यक्षमेव प्रमाणं रङ्गं रजततयाऽवेदिषमित्यनुभवादिति संक्षेपः।

(२५) *इस प्रकार अनेक युक्ति सिद्ध जो अन्यथाख्याति उस में सर्वप्रमाणापेक्षया बलवत्तर प्रत्यक्ष प्रमाण भी "इत्थम्" इत्यादि ग्रन्थ से ग्रन्थकार दिखलाते हैं। जैसे रङ्ग को मैं रजत करके जानता था अर्थात् रजतत्वनिष्ठ प्रकारता निरूपित रङ्गनिष्ठ विशेष्यता शालि प्रत्यक्ष वानहम्। इत्याकारक अनुव्यवसायात्मक प्रत्यक्ष भी अन्यथाख्याति में प्रमाण है।

———*———

पूर्वं व्याप्तिरुक्ता तद्ग्रहोपायस्तु न दर्शित इत्यतस्तं दर्शयति —

व्याप्ति का निरूपण पहले किया जा चुका है। परन्तु व्याप्तिग्रह का उपाय दिखलाया नहीं गया है। अतः व्याप्तिग्रह का उपाय बतलाते हैं।

* प्रयत्नमेव यहां एवकारमप्यर्थक है।

का० १३७

व्यभिचारस्याग्रहोऽपि सहचारग्रहस्तथा ।
हेतुर्व्याप्तिग्रहे तर्कः क्वचिच्छंकानिवर्तकः ॥

का० अर्थ ।

व्यभिचार ज्ञानाभाव और सहचार ग्रह ये दोनों व्याप्ति ज्ञान के कारण हैं और तर्क कहीं कहीं व्याप्तिज्ञान के प्रतिबन्धक व्यभिचार शंका का विघातक होनेसे व्याप्ति ज्ञान में उपयोगी होता है ।

(१) व्यभिचारस्येति । व्यभिचाराग्रहः सहचारग्रहश्च व्याप्तिग्रहे कारणम् । (२) व्यभिचारग्रहस्य व्याप्तिग्रहे प्रतिबन्धकत्वात्तदभावः कारणमित्यर्थः । (३) एवमन्वयव्यतिरेकाभ्यां सहचारग्रहस्यापि हेतुता । (४) भूयोदर्शनं तु न कारणं व्यभिचारास्फूर्तौ सकृद्दर्शनेऽपि क्वचिद्व्याप्तिग्रहात् । क्वचिद्व्यभिचारशङ्काविधूननद्वारा भूयोदर्शनमुपयुज्यते ।

(१) कारिकार्थ में स्पष्ट है । (२) व्याप्ति ज्ञान में व्यभिचार ज्ञान को प्रतिबन्धक होने के कारण प्रतिबन्धकाभाव रूप व्यभिचारज्ञानाभाव व्याप्तिज्ञान का कारण है । (३) एवं साध्य साधन सामानाधिकरण्य ज्ञान रूप सहचार ज्ञान को व्याप्तिज्ञान के साथ अन्वय व्यतिरेक रहने के कारण व्याप्तिज्ञान के प्रति कारणत्व है । (४) व्यभिचार का अज्ञान रहने से एकवार भी साध्य साधन के सामानाधिकरण्य का ज्ञान होने पर कहीं कहीं व्याप्ति का ज्ञान हो जाता हैं । अतः व्याप्ति ज्ञान में बारम्बार साध्य साधन सामानाधिकरण्य ज्ञानात्मक भूयो दर्शन कारण नहीं है । किन्तु व्याप्ति ज्ञान प्रतिबन्धक व्यभिचार शंका के अपनयन द्वारा भूयो दर्शन व्याप्ति ज्ञान में उपयोगी है ।

(५) यत्र तु भूयोदर्शनादपि शङ्का नापैति तत्र विपक्षबाधकतर्कोऽपेक्षितः । (६) तथाहि वह्निविरहिण्यपि धूमः स्यादिति यद्याशङ्का भवति तदा सा वह्नि धूमयोः कार्यकारणभावस्य प्रतिसन्धानान्निवर्तते ।

(५) और जहां पर भूयोदर्शन होने पर भी व्यभिचार शंका की निवृत्ति नहीं होती है । वहां पर व्याप्तिज्ञान प्रतिवन्धक व्यभिचार शंका के निवर्तक तर्क की अपेक्षा होती है । (६) जैसे—"धूमो यदि वह्नि व्यभिचारीस्यात्" अर्थात् वह्नि शून्य देश में भी यदि धूम उत्पन्न हो इत्याकारक व्याप्ति ज्ञान प्रतिवन्धक यदि शङ्का हो तो वह वह्नि धूम के कार्यकारणभाव के निश्चय से निवृत्त होती हैं ।

(७) यद्ययं वह्निमान्न, स्यात्तदा धूमवान्न, स्यात् ारणं विना कार्यानुत्पत्तेः।

(७)* जैसे " धूमो यदि वह्नि व्यभिचारीस्यात् तदा वह्निजन्यो न स्यात् " अर्थात् वह्नि शून्य देश में भी यदि धूम उत्पन्न हो तो धूम वह्नि का जन्य-नहीं होगा। क्योंकि कारण के विना कार्य की उत्पत्ति नहीं होती है।

(८) यदि च क्वचित्कारणं विना कार्यं भविष्यति तदाऽहेतुक एव भविष्यतीति तत्राप्याशङ्का भवेत्तदा सा व्याघातादपसारणीया। (९) यदि हि कारणं विना कार्यं स्यात्तदा धूमार्थं वह्नेस्तृप्त्यर्थं भोजनस्य वा नियमत उपादानं तवैव न स्यादिति। (१०) यत्र स्वत एव शंका नावतरति तत्र न तर्कापेक्षापीति तदिदमुक्तम्—तर्कः क्वचिच्छङ्कानिवर्तक इति।

(८) यदि क्वचित् कारण के विना भी कार्य की उत्पत्ति होती होगी तो धूम भी कारण के विना भी उत्पन्न हो सकता है। यह यदि शंका हो तो व्याघात से उस शंका की निवृत्ति करनी चाहिये। (९) जैसे कारण के विना भी यदि कार्य की उत्पत्ति हो तो धूमार्थ वह्नि का एवं तृप्त्यर्थ भोजन का नियमतः उपादान (ग्रहण) जो होता है वह आप के मत से नहीं होना चाहिये। (१०) जहां व्याप्तिज्ञान प्रतिबन्धक व्यभिचार शंका स्वतः उत्पन्न नहीं होती है वहां तर्क की अपेक्षा भी नहीं है। अतः मूल में कहा है कि "तर्कः क्वचिच्छङ्कानिवर्तकः" अर्थात् व्यभिचार शंका निवृत्यर्थ तर्क की अपेक्षा सार्वत्रिक नहीं है।

इदानीं परकीयव्याप्तिग्रह प्रतिबन्धार्थं मुपाधिं निरूपयति—

परकीय व्याप्ति ज्ञान के प्रतिबन्ध का प्रयोजक उपाधि का " साध्यस्य " इत्यादि कारिका से निरूपण करते हैं।

का० १३८

साध्यस्य व्यापको यस्तु हेतोरव्यापकस्तथा।
स उपाधिर्भवेत्तस्य निष्कर्षोऽयं प्रदर्श्यते॥

का० अर्थ।

साध्य का व्यापक और हेतु अर्थात् साधन का अव्यापक जो पदार्थ वह उपाधि कहलाता है। उस उपाधि का निष्कर्ष वतलाते हैं।

*"यद्ययं वह्निमान् नस्यात् तदा धूमवान् न स्यात्" इस पंक्ति का यदि यह अर्थ करें कि "यदि यह पर्वत वह्निमान् नहीं होगा तो धूमवान् भी नहीं होना चाहिये " तो यद्ययं वह्निमान् न स्यात् तदा धूमवान् न स्यात् " इस विषय परिशोधक तर्क को व्याप्तिग्राहक नहीं होने के कारण असङ्गति हो जायगी। अतः उक्त पंक्ति का " धूमो यदि वह्नि व्यभिचारीस्यात् तर्हि वह्नि जन्यो न स्यात् " इत्याकारक अर्थ करना उचित है।

(१) साध्यस्येति । साध्यत्वाभिमत व्यापकत्वे सति साधनत्वाभिमताव्यापकत्व मुपाधिरित्यर्थः ।

(१) साध्यत्वेन अभिमत वस्तु का व्यापक होकर साधनत्वेन अभिमत वस्तु का अव्यापक जो पदार्थ वह उपाधि कहलाता है ।

(२) ननु स श्यामो मित्रातनयत्वादित्यत्र शाकपाकजन्यत्वं नोपाधि स्यात्तस्य साध्यव्यापकत्वाभावाच्छ्यामत्वस्य घटादावपि सत्त्वात्, एवं वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वादित्यत्रोद्भूतरूपवत्त्वं नोपाधिः स्यात्प्रत्यक्षत्वस्यात्मादिषु सत्त्वात्तत्र च रूपाभावात्, एवं ध्वंसो विनाशी जन्यत्वादित्यत्र भावत्वं नोपाधिः स्यात् विनाशित्वस्य प्रागभावेऽपि सत्त्वात्तत्र च भावत्वाभावादिति चेन्न ।

(२) शका करते हैं कि साध्य व्यापक होकर साधना व्यापक ही यदि उपाधि रूप हो तो " स श्यामो मित्रा तनयत्वात् " इस अनुमान में शाक पाकजन्यत्व नील घटादि में नहीं रहने के कारण श्यामत्व रूप साध्य व्यापक नहीं है (अतः उक्त स्थल में शाक पाक जन्यत्व उपाधि नहीं होगा । एवं " वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्ष स्पर्शाश्रयत्वात् " इस अनुमान में उद्भूतरूपवत्त्व प्रत्यक्षत्व रूप साध्य के आश्रय आत्मादि में नहीं रहने के कारण प्रत्यक्षत्व रूप साध्य का व्यापक नहीं है । अतः उद्भूत रूपवत्त्व उपाधि नहीं होगा । इसी प्रकार "ध्वंसो विनाशी जन्यत्वात्" इस स्थल मे विनाशित्व रूप साध्य के अधिकरण प्रागभाव में भावत्व को नहीं रहने के कारण विनाशित्व रूप साध्य का व्यापक भावत्व नहीं है । अतः वह भी उपाधि नहीं होगा ।

(३) यद्धर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वं तद्धर्मावच्छिन्नसाधनाव्यापकत्व मित्यर्थे तात्पर्यात् ।

(३) समा०—केवल साध्य व्यापक और साधना व्यापक ही उपाधि नहीं है किन्तु यद्धर्मविशिष्ट साध्य का व्यापक होकर तद्धर्म विशिष्ट साधन का अव्यापक जो वस्तु वह उपाधि रूप है ।

(४) मित्रातनयत्वा वच्छिन्न श्यामत्वस्य व्यापकं शाकपाकजन्त्वं तदवच्छिन्न साधनाव्यापकं च ।

(४) " स श्यामो मित्रा तनयत्वात् " इस स्थल मे मित्रा तनयत्व रूप यद्धर्म विशिष्ट जो श्यामत्वरूप साध्य तद्व्यापक जो शाक पाक जन्यत्व वह मित्रा तनयत्व रूप यद्धर्म वि-

शिष्ट मित्रा तनयत्व रूप साधन के अधिकरण गौर मित्रातनय मे नहीं रहने के कारण मित्रात-नयत्वरूप यद्धर्म विशिष्ट साधन का अव्यापक है अतः शाक पाकजन्यत्व उपाधि हो सकता है।

(५) एवं पक्षधर्मबहिर्द्रव्यत्वा वच्छिन्नप्रत्यक्षत्वस्य व्यापक मुद्-भूत रूप वत्त्वम्। एवं वहिर्द्रव्यत्वा वच्छिन्न साधनस्या व्यापकं च।

(५) एवं "वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्ष स्पर्शाश्रयत्वात्" इस स्थल मे वायु रूप पक्ष में रहने वाले बहिर्द्रव्यत्व रूप यद्धर्म विशिष्ट प्रत्यक्षत्व रूप साध्य का व्यापक जो उद्भूत रूपवत्त्व वह बहिर्द्रव्यत्व रूप यद्धर्म विशिष्ट प्रत्यक्ष स्पर्शाश्रयत्व रूप साधन के अधिकरण वायु मे नहीं रहने के कारण बहिर्द्रव्यत्व रूप तद्धर्म विशिष्ट साधन का अव्यापक है अतः उपाधि हो सकता है।

(६) एवं ध्वंसो विनाशी जन्यत्वादित्यत्र जन्यत्वावच्छिन्न साध्य व्यापकं भावत्वम्।

(६) एवं "ध्वंसो विनाशी जन्यत्वात्" इस स्थल में जन्यत्व रूप यद्धर्म विशिष्ट विनाशित्व रूप साध्य का व्यापक भावत्व जन्यत्व रूप यद्धर्म विशिष्ट जन्यत्वरूप साधन का अव्यापक है। अतः उपाधि हो सकता है।

(७) सद्धेतौ तु एतादृशो धर्मो नास्ति यदवच्छिन्नस्य साध्यस्य व्यापकं तदवच्छिन्नस्य साधनस्य चा व्यापकं किंचित्स्यात्। (८) व्यभिचा-रिणि तूपाध्यधिकरणं यत्साध्याधिकरणं यच्चोपाधिशून्यं साध्य व्यभिचारा धिकरणं तदन्यतरत्वावच्छिन्नस्य साध्यस्य व्यापकत्वं साधनस्य चाव्यापकत्व-मुपाधेरन्ततः संभवतीति।

(७) सद्धेतु स्थल मे ऐसा धर्म एक भी प्रसिद्ध नहीं है यद्धर्मविशिष्ट साध्य का व्यापक और तद्धर्म विशिष्ट साधन का अव्यापक कोई वस्तु हो। (८) और व्यभिचारि स्थल मे उपाध्यधिकरण जो साध्याधिकरण और उपाधि शून्य जो साध्य व्यभिचारनिरूपकाधि करण तदन्यतरत्व को "यद्धर्म" से अन्ततः ग्रहण करके तादृशान्यतरत्व विशिष्ट साध्य का व्यापक और तादृशान्यतरत्व विशिष्ट साधन का अव्यापक उपाधि अन्ततः अवश्य होगा। जैसे — "धूमवान् वह्नेः" इत्यादि स्थल मे आर्द्रेन्धन संयोग रूप उपाध्यधिकरण जो धूमाधिकरण महानसादि और आर्द्रेन्धन संयोग रूप उपाधि शून्य जो धूम व्यभिचाराधिकरण अयोगोलकादि तदन्यतरत्व रूप यद्धर्म विशिष्ट साध्य के सकल

अधिकरण में रहने के कारण तादृशान्यतरत्वात्मक यद्धर्म विशिष्ट साध्य का व्यापक जो आर्द्रेन्धन संयोग वह तादृशान्यतरत्वात्मक यद्धर्म विशिष्ट साधन के अधिकरण अयोगोलक मे नहीं रहने के कारण तद्धर्म विशिष्ट साधन का अव्यापक है। अतः उपाधि हो सकता है ।

——o——

अतएव लक्ष्यमप्युपाधिस्वरूप मेतदनुसारेण दर्शयति = यद्धर्मावच्छिन्न साध्य व्यापकत्व तद्धर्मावच्छिन्न साधना व्यापकत्व रूप उपाधि लक्षण जिस हेतु मूलकार का अभिप्रेत है। अत: उसी लक्षण के अनुसार लक्ष्य " सर्वे " इत्यादि कारिका से दिखलाते हैं।

का० १३९

सर्वे साध्य समानाधिकरणाः स्युरुपाधयः ।
हेतोरेकाश्रये येषां स्वसाध्य व्यभिचारिता ॥

का० अर्थ ।

सभी उपाधि साध्य के समानाधिकरण होते हैं और हेतु के किसी अधिकरण मे उन उपाधियों का व्यभिचारित्व (अभाव) और साध्यका व्यभिचारित्व (अभाव) रहा करता है।

(१) सर्व इत्यादिना स्वसाध्येति स्वं च साध्यं च स्वसाध्ये तयोर्व्यभिचारितेत्यर्थः ।

(१) कारिका घटक स्व पद उपाधि बोधक है। स्वपद और साध्य पद को पूर्व द्वन्द्व समास करके पश्चात् समस्त स्व साध्य पद का व्यभिचारिता पद के साथ षष्ठी तत्पुरुष समास करने पर द्वन्द्वान्ते " द्वन्द्वादौ वा श्रूयमाणं पदं प्रत्येक मभि सम्बध्यते" इस नियम के बल से अभाव रूप व्यभिचारित्व पदार्थ मे स्व और साध्य इन दोनों पदार्थों का अन्वय होता है।

——o——

उपाधेर्दूषकता बीज माह = उपाधिनिष्ठ दोष प्रयोजकता का कारण " व्यभिचारस्येत्यादि " कारिका से कहते हैं।

का० १४० पूर्वा०

व्यभिचारस्यानुमानमुपाधेस्तु प्रयोजनम् ।

का० अर्थ

हेतु में व्यभिचार का अनुमान कराना उपाधि का प्रयोजन है ।

(१) व्यभिचारस्येति उपाधिव्यभिचारेण हेतौ साध्यव्यभिचारानुमानमुपाधेः प्रयोजन मित्यर्थः । (२) तथाहि यत्र शुद्धसाध्यव्यापक उपाधिस्तत्र शुद्धेनैवोपाधिव्यभिचारेण साध्य व्यभिचारानुमानम् । (३) यथा धूमवान्वह्नेरित्यादौ वह्निर्धूमव्यभिचारी तद्व्यापकार्द्रेन्धन संयोग व्यभिचारित्वा दिति । (४) व्यापकव्यभिचारिणो व्याप्यव्यभिचारावश्यकत्वात् ।

(१) साध्य व्यापक जो उपाधि उसका व्यभिचार जहां रहेगा वहां साध्य का व्यभिचार अवश्य होगा । क्योंकि व्यापक का व्यभिचारी पदार्थ व्याप्य का व्यभिचारी अवश्य होता है । अतः आर्द्रेन्धन संयोगादि रूप उपाधि के व्यभिचार रूप हेतु से वह्न्यादि रूप हेतु में धूमादि रूप साध्य का व्यभिचारानुमान उपाधि का प्रयोजन है । (२) जिस स्थल मे शुद्ध साध्य व्यापक उपाधि होता है उस स्थल मे शुद्ध उपाधि व्यभिचार से साध्य व्यभिचारानुमान होता है । (३) धूमवान् वह्नेः इस स्थल मे आर्द्रेन्धन संयोग रूप उपाधि को शुद्ध साध्य व्यापक होने के कारण शुद्ध आर्द्रेन्धन संयोग रूप उपाधि के व्यभिचार से हेतु में साध्य व्यभिचार का अनुमान होता है । जैसे " वह्निः धूमव्यभिचारी धूमव्यापक आर्द्रेन्धन संयोग व्यभिचारित्वात् " । (४) व्यापक व्यभिचारी को व्याप्य व्यभिचारी अवश्य होने के कारण धूम व्यापक आर्द्रेन्धन संयोग का व्यभिचारी जो वह्नि वह धूम का व्यभिचारी अवश्य होगा ।

(५) यत्र तु किंचिद्धर्मा वच्छिन्न साध्यव्यापक उपाधिस्तत्र तद्भवति उपाधि व्यभिचारेण साध्यव्यभिचारानुमानम् । (६) यथा स श्यामो मित्रातनयत्वादित्यादौ मित्रातनयत्वं श्यामत्वव्यभिचारि मित्रातनये शाकपाकजत्व व्यभिचारित्वादिति । (७) बाधानुन्नीतपक्षेतरस्तु साध्यव्यापकताग्राहकप्रमाणाभावात्स्वव्याघातकत्वाच्च नोपाधिः ।

(५) जिस स्थल में यत्किंचिद्धर्म विशिष्ट साध्य का व्यापक उपाधि होता है उस स्थल में तादृश यत्किंचिद्धर्म वन्निष्ठ जो उपाधि व्यभिचार तादृश उपाधि व्यभिचार से हेतु मे साध्य व्यभिचारानुमान होता है। (६) यथा " सश्यामो मित्रातनयत्वात् " इस स्थल मे मित्रातनयत्व रूप यद्धर्म विशिष्ट साध्य व्यापक शाक पाक जन्यत्व रूप उपाधि होने के कारण व्यभिचारानुमान इस प्रकार होगा। " मित्रा तनयत्वं श्यामत्वव्यभिचारि मित्रातनये शाक पाक जन्यत्व व्यभिचारित्वात् " अर्थात् मित्रातनयत्व मित्रा तनयनिष्ठ शाक पाक जन्यत्व का व्यभिचारी होने के कारण श्यामत्व का व्यभिचारी है। (७) जो पक्ष साध्याभाव वत्त्वेन अनिश्चित है अर्थात् जिस पक्ष मे साध्य का सन्देह है तादृश पर्वतादि रूप पक्ष भिन्नत्व मे साध्य व्यापकता निश्चायक प्रमाण नहीं रहने के कारण उक्त पक्षेतरत्व में साध्य व्यापकता का निश्चय नहीं होगा। इसलिये वह उपाधि नहीं है। दूसरी युक्ति यह है कि यदि पक्षतरत्व उपाधि माना जाय तो सब सद्धेतु स्थलों में भी पक्षेतरत्व रूप उपाधि अवश्य होने के कारण अनुमान मात्र का उच्छेद हो जायगा। तब हेतु मेः व्यभिचारानुमान द्वारा उपाधि को दूषकता नहीं होगी अतः स्वनिष्ठ दूषकत्वा भाव सम्पादकत्व रूप स्वव्याघातकत्व हेतुक उक्त पक्षेतरत्व मे उपाधित्वा भाव की सिद्धि होगी।

(८) बाधोन्नीतस्तूपाधिर्भवत्येव। (९) यथा वह्निरनुष्णः कृतकत्वादित्यादौ प्रत्यक्षेण वह्नावुष्णत्वग्रहे वह्नीतरत्वमुपाधिः। यत्र तूपाधेः साध्यव्यापकता संदिह्यते स संदिग्धोपाधिः। (१०) पक्षेतरस्तु संदिग्धोपाधिरपि नोद्भावनीयः कथक संप्रदायानुरोधादिति।

(८) साध्याभाववत्त्वेन निश्चित जो पक्ष तादृश पक्षेतरत्व उपाधि रूप होता ही है। (९)जैसे "वह्निः अनुष्णः कृत कत्वात्" इस स्थल में वह्नि रूप पक्ष में अनुष्णत्व रूप साध्य का अभाव अर्थात् उष्णत्व का प्रत्यक्ष प्रमाण से निश्चय रहने के कारण वह्नीतरत्व रूप उपाधि हो सकता है। जिस उपाधि में साध्य व्यापकता का सन्देह रहता है वह संदिग्धोपाधि शब्द से व्यवहृत होता है। (१०) संदिग्ध साध्यवत् पक्षेतरत्व यद्यपि संदिग्धोपाधि है। तथापि भाष्यकारादियों के संप्रदायानुरोध से कथा में दोषत्वेन उद्भावन योग्य नहीं है।

(११) केचित्तु सत्प्रतिपक्षोत्थापनमुपाधि फलम्। (१२) तथाहि। अयोगोलकं धूमवद्वह्नेरित्यादावयोगोलकं धूमाभाववदार्द्रेन्धनाभावादिति सत्प्रतिपक्षसंभवात् (१३) इत्थं च साधन व्यापकोऽपि क्वचिदुपाधिः। (१४) यथा करका पृथिवी कठिनसंयोगवत्त्वादित्यादावनुष्णाशीतस्पर्शवत्त्वम्।

(११) किसी का मत है कि सत्प्रतिपक्षोत्थापन उपाधि का फल है। (१२) जैसे "अयो गोलकं धूमवद्वह्नेः" इस स्थल में धूम व्याप्य वह्निमद् योगोलकम्" इत्याकारक परामर्श काल में "धूमाभावव्याप्य आर्द्रेन्धन संयोगाभाववदयोगोलकम्" इत्याकारक परामर्श होने के कारण सत्प्रतिपक्ष होता है। (१३) जिनके मत में सत्प्रतिपक्षोत्थापन ही उपाधि का फल है उन के मत से क्वचित्साधन व्यापक पदार्थ भी उपाधि रूप होता है। (१४) जैसे करका पृथिवी कठिन संयोगवत्त्वात्" इस अनुमान में अनुष्णाशीत स्पर्शवत्त्व कठिन संयोगवत्त्व रूप हेतु का व्यापक होने पर भी उपाधि रूप होता है। अनुष्णाशीत स्पर्शवत्त्व रूप उपाधि से सत्प्रतिपक्षोत्थापन इस प्रकार होता है। जैसे "पृथिवीत्वव्याप्य कठिन संयोगवत्त्ववती करका" इत्याकारक परामर्श के समय में पृथिवीत्वा भाव व्याप्य अनुष्णाशीत स्पर्शवत्त्वा भाववती करका इत्याकारक परामर्श होने से सत्प्रति पक्षोत्थापन समझना चाहिये।

(१५) न चात्र स्वरूपासिद्धिरेव दूपणमिति वाच्यं, सर्वत्रोपाधेर्दूपणान्तर सांकर्यात्। (१६) अत च साध्यव्यापकः पक्षावृत्तिरुपाधि रित्याहुः।

(१५) * शंका करते हैं कि "करका पृथिवी कठिन संयोग वत्त्वात् इस स्थल में करका को पिघलने के बाद उस मे कठिन संयोग नहीं रहेगा। अतः पक्ष में हेत्वभाव और साध्याभाव रहने के कारण स्वरूपा सिद्धि और बाधादि दोष के रहते हुए उपाधि दोष नहीं रहने पर भी हेतु में दुष्टत्व व्यवहार हो ही जायगा। तब साधन व्यापक अनुष्णाशीत स्पर्शवत्त्व को उपाधि रूप मानना व्यर्थ है। समा०—सर्वत्र उपाधि स्थल में व्यभिचारादिरूप दोष अवश्य रहते हुए भी जैसे उपाधिरूप दोष माना जाता है उसी तरह प्रकृत स्थल में भी स्वरूपासिद्धि बाधादि दोष रहते हुए अनुष्णाशीत स्पर्शवत्त्व रूप उपाधि माना जा सकता है। (१६) जिनके मत में सत्प्रतिपक्षोत्थान उपाधि का फल है उन के मत में साध्य व्यापक पक्षावृत्ति पदार्थ उपाधि रूप है।

का० १४०. १४१

शब्दोपमानयोर्नैव पृथक्प्रामाण्यमिष्यते ॥
अनुमानगतार्थत्वादिति वैशेषिकं मतम्।
तन्न सम्यग्विना व्याप्तिबोधं शब्दादिबोधतः॥

का० अर्थ।

वैशेषिक (कणाद) के मत से शब्द और उपमान इन दोनों में अनुमान से पृथक्

* स्वरूपासिद्धिरेव यहां एव शब्द अप्यर्थक है।

प्रामाण्य नहीं है। अर्थात् अनुमान ही में ये दोनों अन्तर्गत हैं किन्तु नैयायिक मत से य ठीक नहीं है क्योंकि शब्द और उपमान जन्य बोध व्याप्ति ज्ञान की अपेक्षा नहीं करता है

(१)शब्दोपमानयोरिति। वैशेषिकाणां मते प्रत्यक्ष मनुमानं च प्रमाणम् (२) शब्दोपमानयो स्त्वनुमानविधयैव प्रामाण्यम्। (३) तथाहि-दण्डेन ग मानयेत्यादिलौकिक पदानि यजेतेत्यादि वैदिकपदानि वा तात्पर्यविषय स्मारितपदार्थसंसर्गप्रमापूर्वकाणि आकांक्षादिमत्पदकदम्बत्वाद्घटमानयेति पदकदम्बवत्।

(१) वैशेषिक मत में प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो ही प्रमाण हैं। (२) क्योंवि शब्द और उपमान में अनुमान रूप ही से प्रामाण्य है किन्तु अनुमान से पृथक् प्रामाण्य नहीं है।(३) बुबोधयिषा से वाक्यों के उच्चारण में वाक्यार्थ ज्ञान कारण है। अर्थात किसी को समझाने के लिये जो वाक्योच्चारण किया जाता है उस में वाक्यार्थ का ज्ञान कारण है। क्योंकि वाक्यार्थ ज्ञान जिस को नहीं है वह आदमी बुबोधयिषा से वाक्योच्चा-रण नहीं कर सकता है। अतः "घटमानय" यह वाक्य आकांक्षा; योग्यता, तात्पर्य सहित पद समूह रूप होने के कारण जिस प्रकार वक्ता के तात्पर्य का विषय जो पद द्वारा स्मरण कराये गये घट, कर्मत्व, आनयन, और कार्यत्व,रूप पदार्थों का परस्पर सम्बन्ध, उस सम्बन्ध के यथार्थ ज्ञान से होता है। उसी प्रकार "दण्डेन गामानय" इत्यादि लौकिव वाक्य और "यजेत" इत्यादि वैदिक वाक्य आकांक्षा, योग्यता, और तात्पर्य सहित पदों का समूह रूप होने के कारण वक्ता के तात्पर्य का विषय जो पदस्मारित दण्ड, करणत्व, गो, कर्मत्व, आनयन और कार्यत्व, रूप पदार्थों का परस्पर सम्बन्ध, एवं याग, इष्टसाधनत्व, कृति साध्यत्व, और बलवदनिष्टा ननुबन्धित्व रूप पदार्थोंका परस्पर सम्बन्ध उस सम्बन्धके यथार्थ ज्ञान से होता है और यह ज्ञान "दण्डेनगामानय" इस वाक्य से होने वाला जो दण्डकर-णक गोकर्मकानयनङ्कार्यम् इत्याकारक ज्ञान एवं "यजेत" इस वाक्य से होनेवाला जो यागः इष्ट साधनं,कृति साध्यो, बलवदनिष्टा ननुबन्धी च इत्याकारक ज्ञान; तद्रूप है इस लिए शब्दसे जैसा बोध आनुभविक है वैसा बोध अनुमान ही से लब्ध हो जाता है। अतः शब्द प्रमाण का अनुमान ही में अन्तर्भाव है।

(४) यद्वा एते पदार्था मिथःसंसर्गवन्तः, योग्यतादिमत्पदोपस्थापित-त्वात्, तादृशपदार्थवत्। (५) दृष्टान्तेऽपि दृष्टान्तान्तरेण साध्यसिद्धि-रिति।

(४) पद विशेष्यक अनुमान को बतला कर यद्वा इत्यादि ग्रन्थ से पदार्थ विशेष्यक अनुमान का प्रदर्शन करते हैं। योग्यतादि मत्पदों से उपस्थापित होने के कारण योग्यतादि

मत्पदोपस्थापित घट, कर्मत्व, आनयन, और कार्यत्व, रूप पदार्थान्तर के सदृश "दण्डेन गामानय" इत्यादि वाक्यगतः वाती पदों से उपस्थापित दण्ड, करणीय गो, कर्मत्व, आनयन, और कार्यत्व, रूप पदार्थ भी परस्पर सम्बद्ध हैं। यह ज्ञान "दण्डेन गामानय" इस वाक्य से होनेवाला जो दण्डकरणक गो कर्मकानयनं कार्यम्, इत्याकारक ज्ञान तद्रूप है इस कारण शब्द से जैसा बोध आनुमविक है वैसा बोध अनुमान ही से लब्ध हो जाता है। अतः शब्द प्रमाण का अनुमान में अन्तर्भाव है। (५) "घटमानय" इत्यादि वाक्य घटक पदोंसे उपस्थापित घट, कर्मत्व, आनयन, और कार्यत्व, रूप पदार्थसमुदायात्मक दृष्टान्त में भी "घटमानय इत्यादि वाक्य घटक पदोपस्थापित पदार्थ रूप दृष्टान्तान्तर से परस्पर संसर्गवत्त्व रूप साध्य का निश्चय करना चाहिये।

(६) एवं गवयव्यक्तिप्रत्यक्षानन्तरं गवयपदं गवयत्वप्रवृत्तिनिमित्तकम्, असतिवृत्त्यन्तरे वृद्धैस्तत्र प्रयुज्यमानत्वात्। असति च वृत्त्यन्तरे वृद्धैर्यत्र यत्प्रयुज्यते तत्तत्प्रवृत्तिनिमित्तकम्। यथा गोपदं गोत्वप्रवृत्ति निमित्तकम्।

(६) एवम् इत्यादि ग्रन्थ मे उपमान के अनुमान प्रमाण मे अन्तर्भाव का प्रदर्शन करते हैं। गोत्व रूप अर्थ मे गो पद की लक्षणा नहीं है तथापि गोत्व के तात्पर्यसे गो पद का प्रयोग वृद्ध लोग करते हैं और गोपद गोत्वप्रवृत्तिनिमित्तक माना जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि जिस अर्थ में जिस पद की लक्षणा नहीं है परन्तु वृद्ध लोग उस अर्थ में उस पद का प्रयोग करते हैं, वह पद तत्प्रवृत्तिनिमित्तिक होता है इस लिये गवय व्यक्तिके प्रत्यक्षानन्तर गवय पद में गवयत्व प्रवृत्ति निमित्तकत्व का निश्चय अनुमान से हो जायगा क्योंकि गवयत्वरूप अर्थमें गवय पदकी लक्षणा नहींहै तथापि गवयत्वरूप अर्थमें गवय पद का प्रयोग वृद्ध लोग करते हैं। अतः गवय पद गवयत्व प्रवृत्ति निमित्तिक है अर्थात् गवय पद का प्रवृत्ति निमित्त याने वाच्यतावच्छेदक गवयत्व है, इत्याकारक ज्ञान जो कि उपमान से होता है वह अनुमान ही से हो जायगा तब उपमान को प्रमाणान्तर मानना व्यर्थ है।

(७) यद्वा गवयपदं सप्रवृत्तिनिमित्तकं साधुपदत्वादित्यनुमानेन पक्षधर्मताबलात्गवयत्व प्रवृत्तिनिमित्तकत्वं सिद्ध्यति।

(७) अथवा गवयपद साधु पद होने के कारण किंचित्प्रवृत्ति निमित्तक है" इस अनुमान से (गवय पद में किंचित्प्रवृत्ति निमित्तकत्व की सिद्धि के पश्चात्) गवय पद में अन्यप्रवृत्ति निमित्तकत्व नहीं है इस इतरबाध निश्चय की सहायता से गवयत्वप्रवृत्ति निमित्तकत्व की सिद्धि होती है।

(८) तन्मतं दूषयति–तन्न सम्यगिति, (९) व्याप्तिज्ञानं विनापि शाब्दबोधस्यानुभव सिद्धत्वात् । (१०) न हि सर्वत्र शब्दश्रवणानन्तरं व्याप्तिज्ञाने प्रमाणमस्तीति । (११) किंच सर्वत्र शाब्दस्थले यदि व्याप्ति-ज्ञानं कल्प्यते तदा सर्वत्रानुमितिस्थले पदज्ञानं कल्पयित्वा शाब्दबोध एव किं न स्वीक्रियत इति ध्येयम् ।

(८) "तन्नसम्यक्" इत्यादि ग्रन्थ से वैशेषिक मत का नैयायिक खण्डन करते हैं ।(९) व्याप्ति ज्ञान के विना भी शाब्द बोध होता है इस कारण शब्द जन्य बोध का अन्तर्भाव अनुमिति में नहीं होसकता है । (१०) सर्वत्र शब्द श्रवणानन्तर व्याप्ति ज्ञान हो ही कर शाब्द बोध होता है इस में कोई प्रमाण नहीं है । (११) एवं सर्वत्र शाब्द बोध स्थल में व्याप्ति ज्ञान की कल्पना कर के यदि आप (वैशेषिक) शाब्द बोध का अनुमिति में अन्तर्भाव करते हैं तो सर्वत्र अनुमिति स्थल में पदज्ञान की कल्पना कर के शाब्द बोध ही में अनुमिति का अन्तर्भाव क्यों नहीं मानते हैं । इस विनिगमना विरह से यह सिद्ध होता है कि जैसे अनुमिति स्थान में पद ज्ञान की कल्पना नहीं की जा सकती है वैसे शाब्द बोध स्थल में भी व्याप्ति ज्ञान की कल्पना नहीं हो सकती है तब शब्द में पृथक् प्रामाण्य मानना आवश्यक हो जायगा ।

का० १४२, १४३ पूर्वा०

त्रैविध्यमनुमानस्य केवलान्वयि भेदतः ।

द्वैविध्यं तु भवेद्व्याप्तेरन्वयव्यतिरेकतः ॥

अन्वयव्याप्तिरुक्तैव व्यतिरेकादिहोच्यते ।

का० अर्थ ।

केवलान्वयि केवल व्यतिरेकि और अन्वयव्यतिरेकि के भेद से अनुमान तीन प्रकार का होता है एवं अन्वय और व्यतिरेक के भेद से व्याप्ति दो प्रकार की होती है । उस में अन्वय व्याप्ति का प्रदर्शन पूर्व ग्रन्थ से किया जा चुका है अब व्यतिरेक व्याप्ति का प्रदर्शन यहां किया जा रहा है ।

(१) त्रैविध्यमिति । अनुमानं हि त्रिविधं केवलान्वयि केवलव्यति-रेक्यन्वयव्यतिरेकि भेदात् । (२) तत्रासद्विपक्षः केवलान्वयी । (३) यथा घटोऽभिधेयः प्रमेयत्वादित्यादौ । तत्र हि सर्वस्यैवाभिधेयत्वाद्विपक्षासत्त्वम् ।

(१) इस का अर्थ कारिका के अर्थ से ही स्पष्ट है। (२) अलीक है विपक्ष जिस का ऐसा जो साध्य उस साध्य की अनुमिति का जो करण अर्थात् अत्यन्ताभावा प्रतियोगि साध्यक अनुमिति का जो करण वह केवलान्वयि अनुमान कहलाता है। (३) जैसे घटोभिधेयः प्रमेयत्वात्" इस स्थल में पदशक्यत्वात्मक अभिधेयत्व रूप साध्य का अभाव कहीं नहीं है अतः अत्यन्ताभाव का अप्रतियोगी जो अभिधेयत्व रूप साध्य उस साध्य की अनुमिति का करणत्व प्रमेयत्व रूप हेतु में है। इस कारण प्रमेयत्व केवलान्वयि अनुमान कहलाता है।

(४) असत्सपक्षः केवलव्यतिरेकी। यथा पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्त्वादित्यादौ। तत्र हि जलादित्रयोदशभेदस्य पूर्वमनिश्चिततया निश्चितसाध्यवतः सपक्षस्याभावात्। (५) सत्सपक्षविपक्षोऽन्वयव्यतिरेकी यथा वह्निमान्धूमादित्यादौ। तत्र सपक्षस्य महानसादेर्विपक्षस्य जलह्रदादेश्च सत्त्वादिति।

(४) एवं अलीक है सपक्ष जिसका ऐसा जो अनुमान वह केवलव्यतिरेकि अनुमान कहलाता है। जैसे "पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्त्वात्" इस स्थल में जलादि का जो चतुर्दश भेद तादृश चतुर्दश भेद रूप जो साध्य उस साध्य के अभाव का जलादि में निश्चय रहने के कारण जलादि विपक्ष ही हुआ किन्तु सपक्ष नहीं होगा एवं पृथिवी मे अनुमिति से पूर्व उक्त साध्य का सन्देह रहने के कारण पृथिवी भी पक्ष ही है नकि सपक्ष है। अतः इस स्थल में सपक्ष नहीं रहने के कारण गन्धवत्त्व रूप हेतु केवलव्यतिरेकि अनुमान कहलाता है। यद्यपि इस स्थल में पृथिवी से इतर जलादि ८ और गुणादि६ येचौदह पदार्थ हैं। अतः पृथिवी में १४ भेद का साध्य करना युक्त था तब जो मुक्तावली में त्रयोदश भेद लिया है वहां "त्रयोदशानु भेदः त्रयोदश भेदः" इस व्युत्पत्ति से त्रयोदश भेद शब्द से त्रयोदश निष्ठ चतुर्दश भेद अभिप्रेत है। अतः असङ्गति नहीं हुई। (५) एवं वर्तमान है सपक्ष और विपक्ष जिस का ऐसा जो अनुमान वह अन्वयव्यतिरेकि अनुमान कहलाता है जैसे "वह्निमान् धूमात्" यहां महानस रूप सपक्ष और जल ह्रदादि रूप विपक्ष रहने के कारण धूम हेतु अन्वय व्यतिरेकि अनुमान कहलाता है।

तत्र व्यतिरेकिणि व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानं कारणं तदर्थं व्यतिरेकव्याप्तिं निर्वक्ति = "पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्त्वात्" इत्यादि स्थल मे व्यतिरेक व्याप्ति ज्ञान ही अनुमिति का कारण है। इस हेतु व्यतिरेक व्याप्ति का निरूपण करते हैं।

का० १४३ उत्त० ।

साध्याभाव व्यापकत्वं हेत्वभावस्य यद्भवेत् ।

का० अर्थ ।

साध्याभाव व्यापकीभूत जो अभाव तादृशाभाव प्रतियोगित्व व्यतिरेक व्याप्ति है।

(१) साध्या भावेति। साध्याभाव व्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वमित्यर्थः। (२) अत्रेदं बोध्यम्। यत्संबन्धेन यदवच्छिन्नंप्रति येन संबन्धेन येन रूपेण व्यापकता गृह्यते तत्सम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक तद्धर्मावच्छिन्नाभाववत्ता ज्ञानात्तत्सम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक तद्धर्मावच्छिन्नाभावस्य सिद्धिरिति ।

(१) इस का अर्थ कारिकार्थ ही में स्पष्ट है। (२) यहां यह समझना चाहिये कि जिस संबन्ध से यद्धर्मावच्छिन्न के प्रति जिस संबन्ध से यद्धर्मावच्छिन्न में व्यापकत्व गृहीत होता है तत्संबन्धावच्छिन्न तद्धर्मावच्छिन्न प्रतियोगितानिरूपक जो अभाव तत्प्रकारक ज्ञान से तत्सम्बन्धावच्छिन्न तद्धर्मावच्छिन्न प्रतियोगिता निरूपक अभाव की अनुमिति होती है। जैसे संयोग सम्बन्ध से धूमत्वावच्छिन्न के प्रति संयोग सम्बन्ध से वह्नित्वेन रूपेण वह्नि में व्यापकता का ज्ञान होने से संयोग संबन्धावच्छिन्न वह्नित्वावच्छिन्न प्रतियोगिता निरूपक जो वह्न्यभाव तादृशा भाव प्रकारक ज्ञान जलादि में होने से जलादि में संयोग सम्बन्धावच्छिन्न धूमत्वावच्छिन्न प्रतियोगिता निरूपक धूमाभाव की सिद्धि अर्थात् अनुमिति होती है, क्योंकि यह नियम है कि व्यापक का अभाव व्याप्य और व्याप्य का अभाव व्यापक होता है अतः वह्न्य भाव रूप व्याप्य से धूमाभाव रूप व्यापक की सिद्धि होती है।

(३) इत्थं च यत्र विशेषणतादि संबधेनेतरत्वव्यापकत्वं गन्धाभावे गृह्यते तत्र गन्धाभावाभावेनेतरत्वात्यन्ताभावः सिध्यति। यत्र तु तादात्म्य संबन्धेनेतरव्यापकत्वं गन्धाभावस्य गृह्यते तत्र तादात्म्यसंबन्धेनेतरस्याभावः सिध्यति। स एवान्योन्याभावः। (४) एवं यत्र संयोगसंबन्धेन धूमं प्रति संयोगसम्बन्धेन वह्नेर्व्यापकता गृह्यते तत्र संयोगसम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक वह्न्यभावेन जलह्रदे संयोगसम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक धूमाभाव सिध्यति।

(३) ऐसा नियम रहने के कारण जहां स्वरूप सम्बन्ध से जलादिनिष्ठ इतरत्व के प्रति स्वरूप सम्बन्ध से गन्धाभाव में व्यापकत्व का ज्ञान है, वहां गन्धाभाव के स्वरूप सम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक अभाव अर्थात् गन्धके ज्ञान से स्वरूप सम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक इतरत्वाभाव की अनुमिति होती है। और जहां तादात्म्य सम्बन्ध से जलादि रूप इतर के प्रति स्वरूप सम्बन्ध से गन्धाभाव में व्यापकता का ज्ञान है वहां गन्धाभाव के स्वरूप सम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक अभाव अर्थात् गन्धके ज्ञान से तादात्म्य सम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक इतराभाव अर्थात् इतर भेद की अनुमिति होती है। (४) इसकी व्याख्या इसी कारिका की मुक्तावली न० २ में "अन्ये इत्यादि ग्रन्थ से हो चुकी है।

(५) अत्र च व्यतिरेकव्याप्तिग्रहे व्यतिरेकसहचारज्ञानं कारणम्। (६) केचित्तु व्यतिरेकसहचारेणान्वयव्याप्तिरेव गृह्यते न तु व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानं कारणम्। यत्र व्यतिरेकसहचाराद्व्याप्तिग्रहस्तत्र व्यतिरेकीत्युच्यते। (७) साध्यप्रसिद्धिस्तु घटादावेव जाता पश्चात्पृथिवीत्वावच्छेदेन साध्यत इति वदन्ति।

(५) व्यतिरेक व्याप्ति ज्ञान में व्यतिरेक सहचार ज्ञान अर्थात् "साध्याभाव समानाधिकरणो हेत्वभावः" इत्याकारक सहचार ज्ञान ही कारण है। (६) कुछ आचार्यों का ऐसा मत है कि व्यतिरेक व्याप्ति ज्ञान से अनुमिति नहीं होती है। किन्तु केवल अन्वयव्याप्तिज्ञान ही से अनुमिति होती है। अन्वयव्याप्ति ज्ञान ही कचित् अन्वय सहचार ज्ञान से कचित् व्यतिरेक सहचार ज्ञानसे कचित् उभय सहचार ज्ञानसे होता है जहां केवल व्यतिरेक सहचार ज्ञान से व्याप्ति ज्ञान हुआ है वहीं अनुमान केवल व्यतिरेकी कहलाता है। (७) पृथिवी इतरेभ्योभिद्यते गन्धवत्वात् इस स्थल में सपक्ष नहीं रहने के कारण साधन में साध्य के सामानाधिकरण्य का निश्चय होना असम्भव है। तब हेतु व्यापक साध्य सामानाधिकरण्य रूप अन्वय व्याप्ति ज्ञान उक्त स्थल में नहीं होगा। इसी शंका का "साध्य प्रसिद्धिस्तु" इत्यादि मुक्तावली से निराकरण करते हैं अर्थात् "पृथिवी इतरेभ्योभिद्यते गन्धवत्वात्" इस स्थल में घटादि रूप जिन पृथिवी मे इतर भेद का निश्चय है उसी पृथिवी के द्वारा साधन में साध्य के सामानाधिकरण्य का निश्चय होने के कारण उक्त स्थलमें उक्त अन्वय व्याप्ति का ज्ञान हो सकता है। यत्किञ्चित् घटादि रूप पृथिवीमें साध्य निश्चय रहने पर भी पृथिवीत्वावच्छेदेन साध्य निश्चय नहीं रहनेके कारण पृथिवीत्वावच्छेदेन इतर भेद को साध्यता हो सकती है।

का० १४४।

अर्थापत्तिस्तु नैवेह प्रमाणान्तरमिष्यते।
व्यतिरेकव्याप्तिबुद्ध्या चरितार्था हि सा यतः॥

का० अर्थ ।

अर्थापत्ति प्रमाणान्तर अर्थात् अनुमानातिरिक्त प्रमाण नहीं है क्योंकि व्यतिरेक व्याप्ति ज्ञान ही में वह अन्तर्भूत हो सकता है।

(१) अर्थापत्तिरिति । अर्थापत्तिः प्रमाणान्तरमिति केचन मन्यन्ते (२) तथाहि- यत्र देवदत्तस्य शतवर्षजीवित्वं ज्योतिः शास्त्रादवगतं जीविनो गृहासत्त्वं च प्रत्यक्षादवगतं तत्र शतवर्षजीविनो गृहासत्त्वं वहिःसत्त्वं विनाऽनुपपन्नमिति वहिःसत्त्वं कल्प्यत इति । तदनुमानेन गतार्थत्वा न्नेष्यते ।

(१) मीमांसक तथा वेदान्ती अर्थापत्ति को प्रत्यक्षादि चार प्रमाण से अतिरिक्त प्रमाण मानते हैं। (२) जैसे देवदत्त का शतवर्ष तक जीना ज्योतिष शास्त्र से निश्चित है और जीते हुए देवदत्त का घर में नहीं रहना प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है। तब शतवर्ष जीवी देवदत्त का गृहासत्त्व वहिःसत्त्व के विना अनुपपन्न है। इत्याकारक अनुपपत्ति ज्ञान रूप अर्थापत्ति प्रमाण से शतवर्ष जीवी देवदत्त में वहिःसत्त्व की कल्पना की जाती है परन्तु यह शतवर्ष जीवी देवदत्त में वहिःसत्त्व का ज्ञान अनुमान प्रमाण ही से सिद्ध हो सकता है इस कारण अनुमान प्रमाण से अतिरिक्त अर्थापत्ति प्रमाण नैयायिक नहीं मानते हैं।

(३) तथाहि—यत्र जीवितत्वस्य वहिः सत्त्व गृहसत्त्वान्यतर व्याप्यत्वं गृहीतं तत्रान्यतरसिद्धौ जायमानायां गृहसत्त्व बाधा वहिः सत्त्वमनुमितौ भासते ।

(३) जैसे यन्निष्ठ जीवित्व में गृह सत्त्व वहिः सत्त्वान्यतर व्याप्यत्व का निश्चय होने पर जीवित्व हेतु से गृह सत्त्व वहिः सत्त्वान्यतर की सिद्धि की जाती है। वहां गृह सत्त्व क प्रत्यक्ष प्रमाण से बाध निश्चय रहने के कारण केवल वहिः सत्त्व का अनुमिति में भान होता है "जैसे देवदत्तो वहिरास्ते गृहासत्त्वे सति जीवित्वात्"।

(४) एवं पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्त इत्यादौ पीनत्वस्य भोजन व्याप्यत्वावगमाद्भोजनसिद्धौ दिवा भोजनबाधे रात्रिभोजनं सिध्यतीति। (५) अभाव प्रत्यक्षस्यानुभविकत्वादनुपलम्भोऽपि न प्रमाणान्तरम् ।

(४) "एवं पीनोऽयं देवदत्तो दिवा न भुंक्ते" इत्यादि स्थल में भी दिवा भोजन नहीं करने वाले देवदत्त का पीनत्व रात्रि भोजन के विना अनुपपन्न है इत्याकारक अनुपपत्ति ज्ञान रूप अर्थापत्ति प्रमाण से देवदत्त में रात्रि भोजन कर्तृत्व की कल्पना की जाती है। परन्तु यह देवदत्तमें रात्रि भोजन कर्तृत्व का ज्ञान अनुमान प्रमाण से ही सिद्ध हो जायगा।

जैसे पीनत्व मे भोजन कर्तृत्व व्याप्यत्व का निश्चय होने पर पीनत्व हेतु से भोजन कर्तृत्व की सिद्धि होने पर दिन में भोजन कर्तृत्व के अभाव का निश्चय प्रत्यक्ष प्रमाण से रहनेके कारण अनुमिति में रात्रि भोजन कर्तृत्व का भान होता है। जैसे "देवदत्तो रात्रि भोजी दिवाऽभुंजानत्वेसति पीनत्वात् इत्यादि। इस प्रकार जब अनुमान से ही अर्थापत्ति का प्रयोजन सिद्ध हो जाता है तब उस का प्रमाणान्तर मानना व्यर्थ है। (५) विशेषणता सन्निकर्ष से अभाव का प्रत्यक्ष होता है ऐसा अनुभव होने के कारण अभाव ज्ञान का जनक अनुपलब्धि भी एक अतिरिक्त प्रमाण नहीं है।

(६) किंचानुपलम्भस्याज्ञातस्य हेतुत्वे ज्ञानाकरणकत्वात्प्रत्यक्षत्वम्। (७) ज्ञातस्य हेतुत्वे तु तत्राप्यनुपलम्भान्तरापेक्षेत्यनवस्था।

(६) एवं अनुपलब्धि को प्रमाणान्तर मानने पर एक और भी दोष लगेगा वह यह है कि अनुपलम्भ यदि अज्ञात होकर अभाव ज्ञान का जनक हो तो अभाव ज्ञान को ज्ञाना करणक ज्ञान रूप होनेके कारण उस में प्रत्यक्षत्वापत्ति हो जायगी क्योंकि ज्ञाना करणक ज्ञान प्रत्यक्षात्मक ही होता है। (७) यदि ज्ञात होकर अनुपलम्भ अभाव ज्ञान का जनक हो तो उपलम्भा भाव रूप अनुपलम्भ के ज्ञानार्थ उपलम्भ रूप प्रतियोगी की अनुपलब्धि कारण होगी। इस प्रकार अनवस्था हो जायगी।

(८) एवं चेष्टापि न प्रमाणान्तरं तस्याः संकेतग्राहक शब्दस्मारकत्वेन लिप्यादिसमशीलत्वाच्छब्द एवान्तर्भावात्। (९) यत्र च व्याप्त्यादि ग्रहस्तत्रानुमितिरेवेति।

(८) इसी प्रकार चेष्टा भी प्रमाणान्तर नहीं है। क्योंकि चेष्टा को संकेत ग्राहक शब्द के स्मारक होने के कारण संकेत ग्राहक शब्द के स्मारक लिप्यादि से होने वाले बोध को शाब्द बोध में अन्तर्भूत होने के कारण जैसे लिप्यादि प्रमाणान्तर नहीं है वैसे चेष्टा भी प्रमाणान्तर नहीं है किन्तु शब्द प्रमाण ही मे अन्तर्भूत है। (९) यदि चेष्टा स्थल मे व्याप्ति ज्ञान हो ही कर बोध हो तो तादृश बोध को अनुमिति रूप होने के कारण अनुमानान्तर्गत ही चेष्टा हो जायगी। अतः चेष्टा भी प्रमाणान्तर नहीं है।

सुखं निरूपयति = सुख का निरूपण करते हैं।

का० १४५ पूर्वा०।

सुखं तु जगतामेव काम्यं धर्मेण जायते।

का० अर्थ ।

सकल प्राणियों की इच्छा का विषय जो सुख वह धर्म से उत्पन्न होता है ।

(१) सुखंत्विति । काम्यमभिलाष विषयः । (२) धर्मजेति । धर्मत्वेन सुखत्वेन कार्यकारणभाव इत्यर्थः ।

(१) स्पष्ट है । (२) सुख रूप कार्य के प्रति धर्म निमित्त कारण है ।

दुःखं निरूपयति = दुःख का निरूपण करते हैं ।

का० १४५ उत्त० ।

अधर्मजन्यं दुःखं स्यात्प्रतिकूल सचेतसाम् ॥

का० अर्थ ।

सकल प्राणियों के द्वेष का विषय जो दुःख वह अधर्म से उत्पन्न होता है ।

(१) अधर्मेति । अधर्मत्वेन दुःखत्वेन कार्यकारणभाव इत्यर्थः । (२) प्रतिकूलमिति । दुःखत्वज्ञानादेव सर्वेषां स्वाभाविकद्वेषविषय इत्यर्थः ।

(१) दुःख रूप कार्य के प्रति अधर्म निमित्त कारण है । (२) दुःख दुःखत्व ज्ञान मात्र से प्राणी मात्र के स्वाभाविक अर्थात् द्वेषानधीन द्वेष का विषय होता है ।

इच्छां निरूपयति = इच्छा का निरूपण करते हैं ।

का० १४६

निर्दुःखत्वे सुखे चेच्छा तज्ज्ञानादेव जायते ।
इच्छातु तदुपाये स्यादिष्टोपायत्व धीर्यदि ॥

का० अर्थ ।

दुःखाभाव की इच्छा में दुःखाभाव ज्ञान और सुख की इच्छा में सुखज्ञान कारण है। दुःखाभाव और सुख के साधन में इष्ट साधनता ज्ञान रहने से उस साधन की इच्छाहोती है।

(१) निर्दुःखत्व इति । इच्छा द्विविधा फलविषयिणी उपायविषयिणी च । (२) फलं तु सुखं दुःखाभावश्च । (३) तत्र फलेच्छां प्रति फलज्ञानं कारणम् । (४) अतएव पुरुषार्थः संभवति । (५) यज्ज्ञातं सत्स्ववृत्तितयेष्यते स पुरुषार्थ इति तल्लक्षणात् । इतरेच्छानधीनेच्छाविषयत्वं फलितोऽर्थः । (६) उपायेच्छां प्रतीष्टसाधनताज्ञानं कारणम् ।

(१) फलेच्छा और उपायेच्छा के भेद से इच्छा दो प्रकार की होती है। (२) सुख और दुःखाभाव फल कहलाता है। (३) फलेच्छा के प्रति फल ज्ञान कारण है। (४) इसी लिये सुख और दुःखाभाव दोनों पुरुषार्थ हो सकते हैं। (५) क्योंकि जिस के ज्ञान मात्र से सभी को उस की प्राप्ति की इच्छा हो अर्थात् जो इतरेच्छानधीन इच्छा का विषय हो वह पुरुषार्थ (स्वतः पुरुषार्थ) कहा जाता है। (६) उपायेच्छा के प्रति इष्ट साधनता का ज्ञान कारण है।

का० १४७ ।

चिकार्षा कृतिसाध्यत्वप्रकारेच्छा च या भवेत् ।
तद्धेतुः कृतिसाध्येष्टसाधनत्वमतिर्भवेत् ॥

का० अर्थ ।

कृति साध्यत्व प्रकारक इच्छा को चिकीर्षा कहा जाता है। कृति साध्यता का ज्ञान और इष्ट साधनता का ज्ञान उस (चिकीर्षा) का कारण है।

(१) चिकीर्षेति । कृतिसाध्यत्वप्रकारिका कृतिसाध्य विषयिणीच्छा चिकीर्षा पाकं कृत्या साधयामीति तदनुभवात् । (२) चिकीर्षा प्रति कृति साध्यताज्ञान मिष्टसाधनताज्ञानं च कारणम् (३) तद्धेतुरिति । अतएव वृष्ट्यादौ कृतिसाध्यताज्ञानाभावान्न चिकीर्षा ।

(१) कृति साध्यत्व प्रकारक जो कृतिसाध्य विषयक इच्छा वह चिकीर्षा कहलाती है। "पाकं कृत्या साधयामि" अर्थात् अपने यत्न से पाक का सम्पादन मैं करूं। इत्याकारक प्रतीति चिकीर्षा को विषय करती है। (२) चिकीर्षा के प्रति "इदंमत्कृति साध्यम्" और "इदम्मदिष्ट साधनम्" इत्याकारक कृति साध्यता ज्ञान और इष्टसाधनता ज्ञान कारण है। (३) यतः कृतिसाध्यता ज्ञान चिकीर्षा के प्रति कारण है अतः वृष्टि में कृति-साध्यता ज्ञान रूप कारण का अभाव रहने के कारण चिकीर्षा नहीं होती।

का० १४८ पूर्वा० ।

बलवद्द्विष्ट हेतुत्वमतिः स्यात्प्रतिबन्धिका ।

का० अर्थ ।

चिकीर्षा के प्रति बलवद्द्विष्ट साधनता का ज्ञान प्रतिबन्धक है।

(१) बलवदिति । बलवद्द्विष्टसाधनताज्ञानं प्रतिबन्धकम् । अतो मधुविषसंपृक्तान्नभोजने न चिकीर्षा बलवद्द्वेषः प्रतिबन्धक इत्यन्ये ।

(१) बलवद्द्विष्ट साधनता के ज्ञान को चिकीर्षा के प्रति प्रतिबन्धक होने के कारण मधु और विष से मिले हुए अन्न के भोजन में कृति साध्यता ज्ञान और इष्टसाधनता ज्ञान रहने पर भी चिकीर्षा नहीं होती है। किसी का ऐसा भी मत है कि बलवद्द्विष्ट साधनता के ज्ञान से पैदा हुआ जो बलवद्द्वेष वही चिकीर्षा में प्रतिबन्धक है।

का० १४८ उत्त०

तदहेतुत्वबुद्धेस्तु हेतुत्वं कस्यचिन्मते ॥

का० अर्थ ।

एवं किसी के मत से चिकीर्षा के प्रति वलवत् अनिष्ट के अजनकत्व का ज्ञान ही कारण है।

(१) तदहेतुत्वेति । बलवदनिष्टाजनकत्वज्ञानं कारण मित्यर्थः ।

(१) इस का अर्थ कारिकार्थ से स्पष्ट है।

द्वेषं निरूपयति = द्वेष का निरूपण करते हैं।

का० १४९ पूर्वा० ।

द्विष्टसाधनताबुद्धिर्भवेद्द्वेषस्य कारणम् ।

का० अर्थ ।

उपाय द्वेष के प्रति वलवद्द्विष्ट साधनता ज्ञान कारण है। एवं दुःख और सुखाभाव रूप फल के द्वेष के प्रति तत्तत्फल का ज्ञान कारण है।

(१) द्विष्टसाधनतेति । दुःखोपायविषयकं द्वेषं प्रति बलवद्द्विष्टसाधनता ज्ञानं कारणमित्यर्थः । (२) बलवदिष्टसाधनता ज्ञानं प्रतिबन्धकम् । तेन नान्तरीयक दुःखजनके पाकादौ न द्वेषः ।

(१) कारिकार्थ से स्पष्ट है। (२) एवं उपाय विषयक द्वेष के प्रति बलवत् इष्ट साधनताका ज्ञान प्रतिबन्धक है अतः पाक जनक जिस दुःख के विना पाक नहीं हो सकता है तादृश दुःख के जनक पाक में द्विष्टसाधनता का ज्ञान रूप द्वेष का कारण रहने पर भी भोजन रूप वलवत् इष्ट के प्रति साधनता का ज्ञान रूप प्रतिबन्धक रहने के कारण पाक मे द्वेष नहीं होता है।

प्रयत्नं निरूपयति = प्रयत्न का निरूपण करते हैं

का० १४९, १५० पूर्वा० ।

प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च तथा जीवन कारणम् ॥
एवं प्रयत्नत्रैविध्यं तान्त्रिकैः परिकीर्तितम् ।

का० अर्थ ।

प्रवृत्ति, निवृत्ति और जीवन योनि भेद से प्रयत्न तीन प्रकार का होता है । ऐसा पण्डितों ने कहा है ।

(१) प्रवृत्तिश्चेति । प्रवृत्ति-निवृत्ति-जीवनयोनि यत्न भेदात्प्रयत्नस्त्रिविध इत्यर्थः ।

(१) इस का अर्थ कारिकार्थ ही से स्पष्ट है ।

का० १५०, १५१ पूर्वा० ।

चिकीर्षा कृतिसाध्येष्टसाधनत्वमतिस्तथा ॥
उपादानस्य चाध्यक्षं प्रवृत्तौ जनकं भवेत् ।

का० अर्थ ।

चिकीर्षा, कृतिसाध्यताज्ञान, इष्टसाधनताज्ञान और प्रवृत्ति का साध्य जो पदार्थ उस के समवायि कारण का प्रत्यक्ष ये प्रवृत्ति के कारण हैं ।

(१) चिकीर्षेत्यादि । मधुविषसंपृक्तान्न भोजनादौ बलवदनिष्टानुबन्धित्वेन चिकीर्षाभावान्न प्रवृत्तिरिति भावः । (२) कृतिसाध्यताज्ञानादिवद्बल वदनिष्टाननुबन्धित्वज्ञानमपि स्वतन्त्रान्वयव्यतिरेकाभ्यां प्रवृत्तौ कारणमित्यपि वदन्ति । (३) कार्यताज्ञानं प्रवर्तकमिति गुरवः ।

(१) मधु और विष से मिले हुये अन्न के भोजन में बलवदनिष्टाननुबन्धित्व का ज्ञान अर्थात् महदनिष्टा प्रयोजकत्व का ज्ञान नहीं रहनेके कारण प्रवृत्ति कारणीभूत चिकीर्षा नहीं होती है इस लिये उस में प्रवृत्ति नहीं होती है । (२) किसी का मत है कि प्रवृत्ति के प्रति स्वतन्त्र अन्वय व्यतिरेक रहने के कारण कृति साध्यता ज्ञानादि जैसे स्वतन्त्र कारण हैं वैसे बलवदनिष्टाननुबन्धित्व ज्ञान को भी प्रवृत्ति के प्रति स्वतन्त्र अन्वय व्यतिरेक रहने के कारण प्रवृत्ति में बलवदनिष्टा ननुबन्धित्व ज्ञान भी स्वतन्त्र कारण है । (३) गुरु प्रभाकर का मत है कि कार्यता का ज्ञान (कृति साध्यता ज्ञान) प्रवृत्ति में कारण है ।

(४) तथाहि—ज्ञानस्य प्रवृत्तौ जननीयायां चिकीर्षातिरिक्तं नापेक्षित मस्ति । (५) सा च कृतिसाध्यताज्ञानसाध्या, इच्छायाः स्वप्रकारप्रकारक धीसाध्यत्वनियमात् । चिकीर्षा हि कृतिसाध्यत्वप्रकारिकेच्छा । तत्र कृति-साध्यत्वं प्रकार स्तत्प्रकारकज्ञानं चिकीर्षायां तद्द्वारा च प्रवृत्तौ हेतुः ।

(४) अर्थात् कृति साध्यता ज्ञान स्वजन्य प्रवृत्ति में चिकीर्षा से अतिरिक्त (इष्ट साधनता ज्ञानादि रूप) किसी की अपेक्षा नहीं करता है। (५) नियम है कि इच्छा समान प्रकारक ज्ञान से जन्य होती है इस लिये चिकीर्षा को कृति साध्यत्व प्रकारक इच्छा रूप होने के कारण चिकीर्षा में कृति साध्यत्व प्रकारक ज्ञान कारण है एवं चिकीर्षा द्वारा प्रवृत्ति में भी कृति साध्यत्व प्रकारक ज्ञान कारण है।

(६) नत्विष्ट साधनता ज्ञानं तत्र हेतुः। कृत्यसाध्येऽपि चन्द्रमण्डला नयनादौ प्रवृत्त्यापत्तेः। (७) ननु कृत्यसाध्यताज्ञानं प्रतिबन्धक मिति चेन्न तदभावापेक्षया कृतिसाध्यताज्ञानस्य लघुत्वात्।

(६) किन्तु इष्ट साधनता ज्ञान प्रवृत्ति में कारण नहीं है। यदि ऐसा हो तो कृत्य साध्य चन्द्रमण्डलानयन में भी इष्ट साधनता ज्ञान रहने के कारण प्रवृत्त्यापत्ति हो जायगी। (७) शङ्का—प्रवृत्ति के प्रति कृत्य साध्यता ज्ञान को प्रतिबन्धक मानते हैं अतः कृत्यसाध्यताज्ञान चन्द्रमण्डलानयन में रहने के कारण प्रवृत्ति की आपत्ति नहीं होगी। समा० प्रवृत्ति के प्रति कृत्यसाध्यता ज्ञान प्रतिबन्धक हो तो प्रतिबन्धकाभाव को कारण रूप होने के हेतु कृत्यसाध्यता ज्ञानाभाव को कारणता माननी होगी। तदपेक्षया लाघवात् कृति साध्यता ज्ञान ही को प्रवृत्ति के प्रति कारणत्व मानना युक्त है।

(८)नच द्वयोरपि हेतुत्वं, गौरवात्।

(८) प्रवृत्ति के प्रति कृतिसाध्यता ज्ञान और इष्ट साधनता ज्ञान दोनो कारण नहीं हैं क्योंकि जब कृतिसाध्यता ज्ञान ही को कारणता मानने से निर्वाह हो जाता है तब कृति-साध्यता ज्ञान एवं इष्ट साधनता ज्ञान दोनों ज्ञानों को प्रवृत्ति के प्रति कारणता मानने से गौरव है।

(९) ननु त्वन्मतेऽपि मधुविषसंपृक्तान्नभोजने चैत्यवन्दने च प्रवृत्त्यापत्तिः कार्यताज्ञानस्य सत्त्वादिति चेन्न। (१०) स्वविशेषणवत्ताप्रतिसंधान-जन्यकार्यताज्ञानस्य प्रवर्तकत्वात्। (११) काम्ये हि यागपाकादौ कामना स्वविशेषणम्। (१२) ततश्च बलवदनिष्टाननुबन्धि काम्यसाधनताज्ञानेन कार्यताज्ञानम्। ततः प्रवृत्तिः।

(९) (नैयायिक की शङ्का) प्रवृत्ति के प्रति यदि कृतिसाध्यता ज्ञान ही को कारणता मानी जाय तो मधुविषसंपृक्तान्न भोजन में और बौद्ध के देवता विशेष रूप चैत्य के वन्दन में कृति साध्यता ज्ञान रहनेके कारण प्रवृत्तिकी आपत्ति होजायगी। (१०) (मीमांसक का समा०) प्रवृत्ति के प्रति सामान्यतः कृतिसाध्यता ज्ञान कारण नहीं है किन्तु स्वविशेषण

यत्ता ज्ञानजन्य कार्यता ज्ञान ही को कारणता मानते हैं यहां " स्व " पद का अर्थ प्रवृत्त्याश्रय पुरुष है। (११)पाक यागादिरूप सकामकार्य विषयक प्रवृत्तिस्थल में स्वविशेषण शब्दसे कामना लेनी चाहिये। एवं कामना रूप"स्वविशेषणवत्ता"स्वविषयसाधनतावत्ता सम्बन्ध से विवक्षित है। यह इस सम्बन्ध से इष्ट साधन पदार्थ मात्र में रहती है इसकारण इष्ट साधनता रूप हो सकती है। और इष्ट साधनता कार्यतानुमापक पक्ष्यमाण हेतुका घटक है इसलिये इष्ट साधनता ज्ञान रूप स्वविशेषणवत्ता ज्ञान को हेतु ज्ञान विधया कृतिसाध्यत्वानुमिति रूप ज्ञानमें कारणत्व समझना चाहिये। (१२) अतः काम्य पाक यागादि स्थलमें "मत्कृति विना असत्वे सति बल-वदनिष्टा ननुबन्धित्व विशिष्ट मदिष्ट साधनत्व ज्ञान रूप जो स्वविशेषणवत्ता ज्ञान तादृश ज्ञानजन्य जो पाकादि विशेष्यक कृति साध्यत्वानुमिति अर्थात् " पाकोमत्कृति साध्यः मत्कृ-तिविना असत्वे सति बलवदनिष्टाननुबन्धित्व विशिष्ट मदिष्टसाधनत्वात् " इत्याकारक अनुमिति रूप कार्यता ज्ञान यही काम्यस्थलीय प्रवृत्ति के प्रति कारण है। अतः मधु विष संपृक्तान्न भोजन और चैत्यवन्दन में बलवदनिष्टाननुबन्धित्व विशिष्ट इष्ट साधनत्व नहीं रहने के कारण तादृश कार्यता ज्ञान नहीं होता है अतः प्रवृत्त्यापत्ति नहीं होगी।

(१३) तृप्तश्च भोजने न प्रवर्तते तदानीं कामनायाः पुरुष विशेषणत्वा भावात्। (१४) नित्ये च शौचादिकं पुरुष विशेषणम्। (१५) तेन शौचादिज्ञानाधीन कृतिसाध्यताज्ञानात्तत्र प्रवृत्तिः।

(१३) भोजन से तृप्त व्यक्ति को तत्काल में भोजनजन्य तृप्ति की इच्छा नहीं रहने के कारण भोजन में इष्टसाधनता ज्ञान नहीं होता है। अतः " मत्कृतिविना असत्वे सति बलवदनिष्टाननुबन्धित्व विशिष्ट मदिष्ट साधनत्व ज्ञानजन्य कृतिसाध्यता ज्ञान भोजन में नहीं है अतः तत्काल में भोजन विषयक प्रवृत्ति नहीं होती है। (१४) एवं नित्य कर्मस्थल में "स्वविशेषणवत्ता प्रतिसन्धान " घटक स्वविशेषण शब्द से शौच एवं आदि पद ग्राह्य विहित काल जीवित्वादि रूप अर्थ लिये जाते हैं। तादृश स्वविशेषणवत्त्व स्वरूप सम्बन्धसे विवक्षित हैं। (१५) अतः शौचादि रूप पुरुष विशेषणवत्ता ज्ञानजन्य जो सन्ध्यावन्दनादि विशे-ष्यक अनुमिति रूप कृति साध्यता ज्ञान यह सन्ध्या वन्दनादि नित्यकर्म विषयक प्रवृत्तिका कारण है। सन्ध्या वन्दनादि विशेष्यक तादृश कृति साध्यतानुमिति इस प्रकार होती है। यथा - " अह मिदानीं कृति साध्य सन्ध्यावन्दनः विहित काल जीवित्वे सति शौचादि मत्वात् " अर्थात् सन्ध्या वन्दनोचित काल में जीते हुए और शौचादि मान् मुझसे सन्ध्या वन्दन करने योग्य है।

(१६) ननु तदपेक्षया लाघवेन बलवदनिष्टाननुबन्धीष्टसाधनता-विषयककार्यताज्ञानत्वेनैव हेतुत्वमस्तु बलवदनिष्टाननुबन्धित्वं चेष्टोत्पत्ति-

नान्तरीयक दुःखाधिक दुःखाजनकत्वं बलवद्द्वेषविषय दुःखाजनकत्वं वेति चेन्न । (१७) इष्टसाधनत्व कृतिसाध्यत्व योर्युग पज्ज्ञातुमशक्यत्वात्साध्यत्व साधनत्वयोर्विरोधात् । (१८) असिद्धस्य हि साध्यत्वं सिद्धस्य च साधनत्वम् । (१९) न चैकमेकेनैकदा सिद्धमसिद्धं चेति ज्ञायते तस्मात्कालभेदादुभयं ज्ञायत इति ।

(१६) नैया० शङ्का०—बलवदनिष्टाननुबन्धित्व विशिष्ट इष्टसाधनता ज्ञानजन्य कार्यता ज्ञानापेक्षया बलवदनिष्टा ननुबन्धित्व विशिष्ट इष्ट साधनता विषयक कार्यता ज्ञान ही को " जन्यत्व और ज्ञानत्व " से अघटित होने के कारण लाघवात् प्रवृत्ति के प्रति कारणत्व मानना उचित है । बलवदनिष्टा ननुबन्धित्व विशिष्ट शब्द का इष्टोत्पत्ति नान्तरीयक दुःखाधिक दुःखाजनकत्व अर्थात् जितने दुःख के विना इष्टोपत्ति नहीं हो सकती है । तावत् दुःखसे अधिक दुःख का अजनकत्व अथवा बलवद्द्वेष विषय दुःख का अजनकत्व अर्थ है (१७-१९) समा० जब तक कार्य की सिद्धि अर्थात् उत्पत्ति नहीं होती है तब तक उस काय में कृति साध्यता रहती है और कार्य की उत्पत्ति के बाद उसमें इष्ट साधनत्व होता है इससे यह सिद्ध हुआ कि कृति साध्यत्व और इष्ट साधनत्व इन दोनों में कालिक परस्पर विरोध है । अतः एक काल में एक वस्तु को सिद्ध (उत्पन्न) और असिद्ध (अनुत्पन्न) करके एक आदमी नहीं समझता है इसलिये एक वस्तु में एक कालावच्छेदेन इष्टसाधनत्व औरकृत साध्यत्व का ज्ञान एक आदमी को होना असम्भव है । अर्थात् विभिन्न काल ही में हो सकता है । इसलिये बलवदनिष्टाननुबन्धित्व विशिष्ट इष्ट साधनता विषयक कार्यता (कृतिसाध्यता) ज्ञान को नैयायिक कारण नहीं मानसकते हैं ।

(२०) मैवम् । लाघवेन बलवदनिष्टाननुबन्धीष्ट साधनत्वे सति कृति साध्यताज्ञानस्य हेतुत्वात् । (२१) नच साध्यत्व साधनत्वयोर्विरोधो यदा कदाचित्साध्यत्वसाधनत्वयोरविरोधादेकदा साध्यत्वसाधनत्वयोश्च ज्ञानात् ।

(२०, २१) (नैया० खण्डन) काम्य, नित्यादि, स्थलीय प्रवृत्ति सामान्य के प्रति बलवदनिष्टाननुबन्धित्व, विशिष्ट इष्ट साधनता विषयक कृतिसाध्यता ज्ञान ही लाघवात् कारण है । इष्ट साधनत्व कृति साध्यत्व इन दोनों में परस्पर कालिक विरोध रहने पर भी काल के भेद से एक वस्तु में इष्टसाधनत्व कृतिसाध्यत्व रह सकता है । इसलिये एक वस्तु में एक कालीन इष्टसाधनत्व, कृतिसाध्यत्व का ज्ञान नहीं होने पर भी सामान्यतः इष्टसाधनत्व कृतिसाध्यत्व का ज्ञान हो सकता है ।

(२२) नव्यास्तु ममेदं कृतिसाध्यमिति ज्ञानं न प्रवर्तक मनागते तस्य ज्ञातुमशक्यत्वात् । (२३) किंतु यादृशस्य पुंसः कृतिसाध्यं यद्दृष्टं तादृशत्वं स्वस्य प्रतिसंधाय तत्र प्रवर्तते । (२४) तेनौदन कामस्य तत्साधनता ज्ञानवत स्तदुपकरणवतः पाकः कृतिसाध्य स्तादृशश्चाहमिति प्रतिसंधाय पाके प्रवर्तत इत्याहुः । (२५) तन्न । स्वकल्पित लिप्यादिप्रवृत्तौ यौवने कामोद्रेकादिना संभोगादौ च तदभावात् ।

(२२) प्रभाकर मतानुयायि मीमांसक विशेष का मत है कि "ममेदं कृति साध्यम्" इत्याकारक ज्ञान प्रवृत्ति का कारण नहीं है। क्योंकि अनागतावस्था में "इदम्" पदार्थ का प्रत्यक्ष नहीं होने के कारण तादृश ज्ञान नहीं हो सकता है। (२३) किन्तु यादृश पुरुष के प्रयत्न से यादृश कार्य को सिद्ध होते हुए जिस पुरुष ने देखा है वह पुरुष अपने को तादृश पुरुष के समान समझकर तादृश कार्य में प्रवृत्त होता है। (२४) अतः ओदन की इच्छा करने वाले पाक धर्मिक कृतिसाध्यता ज्ञान वाले और पाकोपकरण वाले व्यक्ति की कृति का साध्य पाक होता है। मैं भी तादृश अर्थात् ओदन की इच्छा करने वाला पाक में धर्मिक कृति साध्यता ज्ञान वाला और पाकोपकरण वाला हूँ। ऐसा समझकर पाक में प्रवृत्त होता है। (२५) मीमांसक का यह मत ठीक नहीं है। क्योंकि स्वकल्पित विजातीयाक्षर में और प्रारम्भिक युवावस्था पन्न पुरुषों की कामातुरता जन्य सम्भोग विशेष में तादृश ज्ञान नहीं रहने के कारण स्वकल्पित विजातीयाक्षर एवं प्रारम्भिक युवावस्थापन्न पुरुषों की कामातुरता जन्य सम्भोग विशेष में उन पुरुषों की जो प्रवृत्ति होती है वह अब इस मत के अनुसार नहीं हो सकेगी।

(२६) इदं तु बोध्यम् । इदानींतनेष्टसाधनत्वादि ज्ञानं प्रवर्तकं तेन भावियौवराज्ये बालस्य न प्रवृत्तिः, तदानीं कृतिसाध्यत्वाज्ञानात् ।

(२६) ऐसा समझना चाहिये कि नैयायिक के मत से प्रवृत्ति के प्रति जो बलवदनिष्टानुबन्धित्व इष्ट साधनत्व और कृति साध्यत्व के ज्ञान को कारण कहा गया है। वह तत्कालीन प्रवृत्ति के प्रति तत्कालीन बलवदनिष्टानुबन्धित्वादि ज्ञान कारण है। अतः राजपुत्र को भावि यौवराज्य में तत्कालीन कृति साध्यता ज्ञान नहीं रहने के कारण तत्काल में प्रवृत्ति नहीं होती है।

(२७) एवं तृप्तस्य भोजने नप्रवर्तते तदानीमिष्टसाधनत्वा ज्ञानात् । (२८) प्रवर्तते च रोगदूषितचित्तो विषादिभक्षणे तदानीं बलवदनिष्टानुबन्धित्वाज्ञानात् ।

(२७) एवं भोजन से तृप्त पुरुषों को भोजन में तत्कालीन इष्ट साधनता ज्ञान नहीं रहने के कारण तत्कालीन भोजन में प्रवृत्ति नहीं होती है। (२८) रोगादि जन्य आत्यन्तिक दुःख से दुःखित चित्त वाले पुरुष को विषादि भक्षण में तत्कालीन बलवदनिष्टाननुबन्धित्व ज्ञान रहने के कारण तत्काल में प्रवृत्ति होती है।

(२९) न चास्तिकस्यागम्यागमन शत्रुवधादि प्रवृत्तौ कथं बलवदनिष्टाननुबन्धित्व बुद्धि र्नरकसाधनत्वज्ञानादिति वाच्यम्, उत्कृष्ट रागादिना नरक साधनता धीतिरोधानात्। (३०) वृष्ट्यादौ तु कृतिसाध्यताज्ञानाभावान्न चिकीर्षाप्रवृत्ती किं त्विष्ट साधनता ज्ञानादिच्छामात्रम्। (३१) कृतिश्च प्रवृत्तिरूपा बोध्या। (३२) तेन जीवनयोनियत्नसाध्ये प्राणपञ्चकसंचारे न प्रवृत्तिः। (३३) इत्थं च प्रवर्तकत्वानुरोधाद्विधे रपीष्टसाधनत्वादिकमेवार्थः।

(२९) शङ्का—अगम्या गमन एवं शत्रु वधादि रूप नरक प्रयोजक कर्मों में आस्तिकों को भी क्वचित् प्रवृत्ति होती है। वह बलवदनिष्टाननुबन्धित्व ज्ञान नहीं रहने के कारण कैसे होगी? समा०—उत्कट राग होने से नरक साधनता का ज्ञान तिरोहित हो जाता है इस कारण बलवदनिष्टाननुबन्धित्व का ज्ञान होकर प्रवृत्ति हो सकती है। (३०) वृष्ट्यादिमें कृतिसाध्यता ज्ञान नहीं रहने के कारण तद्विषयक चिकीर्षा और प्रवृत्ति नहीं होती है। किन्तु इष्ट साधनता ज्ञान रहने के कारण वृष्ट्यादि विषयक इच्छा मात्र होती है। (३१,३२) कृति साध्यता ज्ञान घटक कृति पद का प्रवृत्ति अर्थ है अन्यथा जीवनयोनि यत्न साध्य प्राण पंचक संचार में कृतिसाध्यता ज्ञान रह जाने के कारण प्रवृत्त्यापत्ति हो जायगी। (३३) पूर्वोक्त लाघवानुरोध से बलवदनिष्टाननुबन्धित्व ज्ञान इष्टसाधनता ज्ञान और कृति साध्यता ज्ञान इन तीन ही को प्रवृत्ति के प्रति कारणत्व मानने के वजह "यजेत" इत्यादि विधि वाक्यस्थलों में भी प्रवृत्त्यर्थ बलवदनिष्टाननुबन्धित्वादि त्रितय लिङ्, लोट्, तव्यत्, अनीयर् इत्यादि विधि प्रत्ययों का अर्थ माना जाता है।

(३४) इत्थं च 'विश्वजिता यजेत' इत्यादौ यत्र फलं न श्रूयते तत्रापि स्वर्गः फलं कल्प्यते।

(३४) बलवदनिष्ट ननु यन्विलत्यादि अय को विध्यर्थ मानने के कारण "विश्वजिता यजेत" इत्यादि विधिवाक्य स्थलों मे जहां फल का श्रवण नहीं है वहां भी स्वर्ग रूप इष्ट फल की कल्पना की जाती है उसी की साधनताके ज्ञान से उक्त यज्ञ में प्रवृत्ति होती है।

(३५) ननु 'अहरहः संध्यामुपासीत' इत्यादा विष्टानुत्पत्तेः प्रवृत्तिः कथम्, (३६) न चार्थवादिकं ब्रह्मलोकादि प्रत्यवाया भावो वा फलमिति वाच्यं, तथा सति काम्यत्वेन नित्यत्वहान्यापत्तेः। कामनाभावे चाकरणापत्तेः ·(३७) इत्थंच यत्र फलश्रुतिस्तत्रार्थ वादमात्रमिति चेन्न।

(३५) (मीमांसक की शङ्का)' 'अहरहः सन्ध्यामुपासीत' इस विधि वाक्यबोधित सन्ध्योपासन रूप नित्यकर्म से किसी फल विशेष की उत्पत्ति नहीं होने पर भी उस में प्रवृत्ति होती है। अतः इष्ट साधनताज्ञान में प्रवृत्ति कारणत्व मानना युक्त नहीं है तब प्रवर्तक ज्ञान विषय ही को विध्यर्थ होने के कारण इष्टसाधनत्व को जो विधि प्रत्ययार्थ माना जाता है वह कैसे होगा। (३६) यहां ऐसा कहा जा सकता है कि " सन्ध्यामुपासते येतु सततं संशित व्रताः, विधूत पापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकं सनातनम्" इत्यादि अर्थ वाद वाक्य से सिद्ध पाप नाश पूर्वक ब्रह्मलोक प्राप्ति रूप ही सन्ध्योपासन का फल है अतः उस फल की साधनता के ज्ञान ही से प्रवृत्ति होगी। एवं इष्ट साधनत्व विधि प्रत्ययार्थ भी होगा परन्तु यह कैसे होगा। क्योंकि कर्मनिष्ठ नित्यत्व और काम्यत्व में परस्पर विरोध रहने के कारण सन्ध्योपासन में " सफलत्वे सति विधिप्रतिपाद्यत्व" रूप काम्यत्व मानने से " निष्फलत्वे सति विधि प्रतिपाद्यत्व" रूप नित्यत्व का अभाव हो जायगा यदि आप इसे इष्ट कर तो फलकामनावत् पुरुष ही को काम्य कर्माधिकार होने के कारण जैसे-पुत्र कामना शून्य पुरुषों को पुत्रेष्टि यज्ञ नहीं करने पर भी उन को प्रत्यवाय नहीं होता है उसी प्रकार ब्रह्मलोक की कामना शून्य द्विज को सन्ध्योपासन नहीं करने पर भी प्रत्यवाय नहीं होना चाहिये। (३७) अतः सन्ध्योपासनादि रूप नित्यकर्मों में निष्फलत्व मान कर " शौचादि " रूप स्वविशेषणवत्ता ज्ञानजन्य कृति साध्यता ज्ञान को नित्य कर्म स्थल में प्रवृत्तिका कारण कहना होगा तब " सन्ध्यामुपासते येतु " इत्यादि फल बोधक स्मृति को अप्रामाण्य हो जायगा। अतः तादृश फल बोधक स्मृति को प्रशंसा बोधक अर्थ वाद रूप ही मानना उचित है पर यह भी ठीक नहीं है।

(३८) श्रद्धा श्राद्धादौ नित्यत्व नैमित्तिकत्वयोरिव नित्यत्वकाम्यत्वयोरप्यविरोधात्।

(३८) क्योंकि ग्रहण निमित्तक श्राद्ध गत नित्यत्व नैमित्तिकत्व एवं भरणी नक्षत्र निमित्तक श्राद्धगत काम्यत्व नैमित्तिकत्व के समान नित्यत्व और काम्यत्व में विरोध नहीं मानते हैं तब सन्ध्योपासन रूप नित्य कर्म में काम्यत्व मानने पर भी नित्यत्वाभाव का आपत्ति नहीं हो सकती है।

(३९) नच कामनाभावेऽकरणापत्तिः, त्रिकालस्तवपाठादाविव कामनासद्भावस्यैव कल्पनात् ।

(३९) शङ्का-सन्ध्यावन्दनादि नित्यकर्म भी यदि काम्य हो तो फलकामनावान् पुरुष को ही काम्यकर्माधिकारी होने के कारण जिस पुरुष को फल की कामना नहीं है। वह पुरुष यदि सन्ध्योपासन नहीं करे तो उसको पापोत्पत्ति होती है वह अब नहीं होगी। समा०- " अकुर्वन् विहितं कर्म नरो भवति किल्बिषी " इस वचन के साथ " शुचिकर्म-कुर्वीत " इस विधि वाक्य को एक वाक्यता करने से ज्ञात होता है कि शौचशून्य पुरुष को विहित नित्य कर्माननुष्ठानसे प्रत्यवाय नहीं होता है। एवं शौच विशिष्ट पुरुषको विहित कर्माननुष्ठान से प्रत्यवाय अवश्य होता है। तब त्रिकाल पठनीय सन्ध्योपासनाङ्ग नित्यकर्मात्मक गायत्री कवचके पाठ नहीं करने से पापोत्पाद हो जायगा। अतः गायत्री कवच पाठ में यथा " पापानुत्पाद रूप " फल की कामना अवश्य है तथा सन्ध्योपासनादि रूप नित्य कर्म में भी तत्कर्मा करण प्रयुक्त पापानुत्पाद रूप इष्ट की साधनता के ज्ञान ही से नित्य कर्म में प्रवृत्ति होगी।

(४०) न तु वेदबोधितकार्यताज्ञानात्प्रवृत्तिरिति संभवति। (४१) स्वेष्टसाधनत्वमविज्ञाय तादृश कार्यताज्ञान सहस्रेणापि प्रवृत्तेरसंभवात् ।

(४०, ४१) किन्तु नित्यकर्म स्थल में शौचादि रूप स्वविशेषणवत्ता ज्ञानजन्य कार्यता ज्ञान से प्रवृत्ति होती है। यह जो मीमांसकों का कथन है वह नहीं हो सकता है। क्योंकि जब तक अपने इष्ट की साधनता का ज्ञान नहीं होगा तब तक शौचादि रूप स्वविशेषणवत्ता ज्ञानजन्य कार्यता ज्ञान सहस्र से भी प्रवृत्ति होना असम्भव है।

(४२) यदपि पण्डापूर्वं फलमिति तदपि न। कामनाभावेऽकरणापत्तेस्तौल्यात्। (४३) कामनाकल्पने त्वार्थवादिकफलमेव रात्रिसत्रन्यायात्कल्प्यताम्। (४४) अन्यथा प्रवृत्त्यनुपपत्तेः। तेनानुत्पत्ति प्रत्यवायस्यान्ये मन्यन्ते।

(४२) प्रभाकर का मत है कि नित्यकर्मजन्य " पण्ड " (नपुंसक) अर्थात् फल का अजनक अपूर्व (अदृष्ट) रूप फल होता है तादृश फल रूपइष्ट साधनता के ज्ञान ही से नित्यकर्म में प्रवृत्ति होती है। यह भी ठीक नहीं है क्योंकि पण्डापूर्व रूप फल से इष्ट सिद्धि

नहीं होने के कारण तादृश फल की इच्छा प्रायशः किसी को नहीं होगी। अतः उस की कामना से शून्य पुरुष को सन्ध्यावन्दनादि रूप नित्य कर्म नहीं करने पर पापोत्पत्ति होती है यह नहीं होगी। (४३) रात्रि सत्र नामक यज्ञ का विधि वाक्य में फल श्रवण नहीं है। तथापि विश्वजित् यज्ञ के समान स्वर्ग फल की कल्पना नहीं हो सकती है क्योंकि जहां पर विधि वाक्य में अथवा अर्थवाद वाक्य में कहीं भी फल का श्रवण नहीं रहता है। वहीं अश्रुत स्वर्गादि रूप फल की कल्पना की जाती है। क्योंकि नियम है कि जहां श्रुत फल की सम्भावना नहीं हो वहीं अश्रुत फल की कल्पना होती है। विश्वजित् यज्ञ का तो अर्थवाद वाक्य में भी फल का श्रवण नहीं है। अतः अश्रुत स्वर्ग रूप फल की कल्पना की जाती है। किन्तु रात्रि सत्र यज्ञ का तो अर्थवाद वाक्य में प्रतिष्ठा रूप फल का श्रवण है। अतः अश्रुत स्वर्ग रूप फल की कल्पना जैसे नहीं की जाती है वैसे सन्ध्यावन्दनादि रूप नित्य कर्म के प्रत्यवाया भावादि रूप फल का अर्थवाद वाक्य में श्रवण रहने के कारण अश्रुत पापापूर्वात्मक फल की कल्पना उचित नहीं है। (४४) यदि सन्ध्यावन्दनादि रूप नित्य कर्म का कुछ भी फल नहीं माना जाय तो उन कर्मों में शिष्टों की प्रवृत्ति नहीं होगी अतः नवीन विद्वान् अर्थवाद वाक्यान्तर से सिद्ध प्रत्यवायानुत्पत्ति ही को सन्ध्या वन्दनादि रूप नित्यकर्मों का फल मानते हैं।

(४५) एवम्- ' सन्ध्यामुपासते ये तु सततं शंसितव्रताः। विधूतपापास्तेयान्ति ब्रह्मलोक मनामयम्। (४६) एवम् " दद्यादहरहः श्राद्धं पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ' इति प्रीत्यात्मकमेव फलमस्तु।

(४५) एवं प्राचीन का मत है कि सन्ध्या वन्दन रूप नित्यकर्म का पाप निवृत्ति पूर्वक ब्रह्मलोक प्राप्ति ही फल है जो "सन्ध्या मुपासते" इत्यादि अर्थवाद वाक्य से भी सिद्ध होता है। (४६) एवं " दद्यादहरहः श्राद्धम् " इत्यादि अर्थवाद वाक्य सिद्ध पितृ-प्रीति नित्यकर्मात्मक पितृश्राद्ध का फल है।

(४७) नच पितृप्रीतिः कथं फलं व्यधिकरणत्वादिति वाच्यं, गया श्राद्धादाविवोद्देश्यत्व संबन्धेनैव फलजनकत्वस्य क्वचित्कल्पनात्। (४८) अत एवोक्तं शास्त्रदर्शितफल मनुष्ठानकर्तरीत्युत्सर्ग इति।

(४७) शंका—यदि आप कहें कि क्रियात्मक श्राद्धाधिकरण श्राद्धकर्त्ता में पितृ प्रीति नहीं रहने के कारण श्राद्ध का फल पितृ प्रीति कैसे होगी? समा०—ऐसा नहीं कह सकते हैं। क्योंकि उद्देश्यता सम्बन्ध से गया श्राद्ध जैसे-पितृनिष्ठ स्वर्ग प्राप्ति रूप फल का कारण होता है वैसे उद्देश्यता सम्बन्ध से साधारण श्राद्ध भी पितृ प्रीति रूप फल का कारण है। अतः समवायेनपितृ प्रीतिरूप कार्यको उद्देश्यता सम्बन्धसे श्राद्धात्मक कारणके साथ पितृ

रूप एक देश में रहने के कारण श्राद्ध का फल पितृ प्रीति हो सकती है। (४८) जिस हेतु श्राद्ध रूपक्रिया का फल श्राद्ध कर्त्ता को नहीं हो कर केवल पितृ मात्र को होता है अत: शास्त्र प्रतिपादित अनुष्ठान का फल अनुष्ठान कर्ता को होता है। यह (उत्सर्ग) सामान्य नियम है। अर्थात् वहुस्थलाभि प्रायक है किन्तु सार्वत्रिक नहीं है

(४९) पितृणां मुक्तत्वे तु स्वस्य स्वर्गादि फलं, यावन्नित्य नैमित्तिकानुष्ठानस्य सामान्यतः स्वर्गजनकत्वात्। (५०) पराडा पूर्वार्थ – प्रवृत्तिश्च न संभवति। नहि तत् सुखदुःखाभाववत् स्वतःपुरुषार्थो न वा तत्साधनम्। (५१) प्रत्यवायानुत्पत्तौ कथं प्रवृत्तिरिति चेदित्थम्, यथा हि नित्ये कृते प्रत्यवायाभावस्तिष्ठति तदभावे तद भावः। एवं प्रत्यवाया भावसत्त्वे दुःख प्रागभावसत्त्वं तदभावे तदभाव इति योगक्षेमसाधारणकारणताया दुःखप्राग भावं प्रत्यपि सुवचत्वात्। (५२) एवमेव प्रायश्चित्तस्यापि दुःख प्रागभावहेतुत्वमिति।

(४९) जहां पर गया श्राद्ध से पूर्व ही पितर को मोक्ष हो चुका है वहां पितृनिष्ठ स्वर्ग प्राप्त्यादि रूप फल होना असम्भव है। अतः वहां श्राद्ध कर्ता निष्ठ स्वर्ग प्राप्ति ही गया श्राद्ध का फल मानते हैं। क्योंकि सकल नित्य नैमित्तिकानुष्ठान को सामान्यतः स्वर्ग जनकत्व सिद्धान्त सिद्ध है। (५०) सुख दुःखा भाव और इन दोनों के साधन इन तीन हीं पदार्थों के उद्देश्य से लोगों की प्रवृत्ति होती है किन्तु पराडा पूर्व इन तीनों में एक भी नहीं है। अतः पराडा पूर्व के उद्देश्य से किसी की प्रवृत्ति नहीं होती है। इस लिये पराडा पूर्व किसी भी कर्म का फल नहीं हो सकता है। पूर्व ग्रन्थ में पराडापूर्व रूप फल को श्रुत फल रूप नहीं होने के कारण सन्ध्या वन्दनादि रूप नित्यकर्म का पराडापूर्व फल नहीं है यह कहा गया है। और अब पराडापूर्व के उद्देश्य से किसी की प्रवृत्ति नहीं होती है अतः पराडापूर्व किसी भी कर्म का फल नहीं हो सकता है। यह कहा जाता है। इन दोनों मे प्रकार के भेद रहने के कारण पुनरुक्ति नहीं हो सकती है। (५१;५२) * शङ्का–यदि आप कहें कि पापानुत्पत्ति भी तो पराडापूर्व के समान सुख दुःखाभाव एवं इन दोनो का साधन रूप नहीं है तब पापानुत्पत्तिके लिये शिष्ट जनों की सन्ध्यावन्दनादि नित्यकर्मों में प्रवृत्ति क्यों होगी। समा०-

* दण्डाभावाद्घटाभावः इत्याकारक प्रतीति होने के हेतु यथा दण्डाभाव प्रयोज्य घटाभाव होता है तथा पाप प्राग भावाभावा दुःख प्रागभावाभावः इत्याकारक प्रतीति होने के हेतु पाप प्रागभावाभाव प्रयोज्य दुःख प्रागभावाभाव होता है अतः घटात्मक कार्य के अभाव प्रयोजक दण्डाभाव के प्रतियोगित्व दण्ड में रहने के कारण यथा घट के हेतु दण्ड होता है तथा दुःख प्राग भावात्मक कार्य के अभाव प्रयोजक पाप प्रागभावा भाव के प्रतियोगित्व पाप प्रागभाव में रहने के कारण पाप प्रागभाव दुःख प्राग भाव का कारण है।

जैसे नित्य कर्म करने पर प्रत्यवाय प्रागभाव रहता है और नित्यकर्म नहीं करने से प्रत्यवाय प्रागभाव का ध्वंस (पाप) होता है वैसे प्रत्यवाय प्रागभाव रहने से दुःख प्रागभाव रहता है और प्रत्यवाय प्रागभाव के ध्वंस (प्रत्यवाय) होने से दुःख प्रागभाव का ध्वंस (दुःख) होता है। इस प्रकार दुःख प्रागभाव के प्रति प्रत्यवाय प्रागभाव को एवं दुःख प्रागभाव ध्वंस के प्रति प्रत्यवाय प्रागभाव ध्वंस को प्रयोजकत्व है अतः अनादि दुःख प्रागभाव के प्रति प्रत्यवाय प्रागभाव को अन्यथा सिद्धि शून्यत्वे सति कार्योत्पत्ति प्राक्क्षणावच्छेदेन कार्य-व्यापकत्व रूप कारणत्व नहीं रहने पर भी कार्याभाव प्रयोजकीभूताभावप्रतियोगित्व रूप योगक्षेम साधारण कारणत्व है और इष्टसाधनता ज्ञान का विषय इष्टसाधनत्व भी एतादृश कारणत्व रूप ही विवक्षित है इस लिये दुःख की अनुत्पत्ति रूप इष्ट की क्षैमिक साधनता को ज्ञान प्रत्यवायानुत्पत्ति में रहने के कारण प्रत्यवायानुत्पत्त्यर्थ सन्ध्या वन्दनादि में प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार प्रायश्चित्त को भी पापनाश द्वारा परम्परया अनादि दुःख प्राग भाव के प्रति उक्त योग क्षेम साधारण कारणता है। अप्राप्त की प्राप्ति योग शब्द का एवं प्राप्त का परिरक्षण क्षेम शब्द का अर्थ समझना चाहिये।

(५३) ननु नकलञ्जं भक्षयेदित्यत्र विध्यर्थे कथं नञर्थान्वयः इष्ट साधनत्वाभावस्य कृति साध्यत्वाभावस्य च बोधयितुमशक्यत्वादिति चेन्न।(५४) तत्र बाधादिष्टसाधनत्वं कृति साध्यत्वं च न विध्यर्थः किंतु बलवदनिष्टाननु बन्धित्व मात्रं तद भावश्च नञा बोध्यते।(५५) अथवा बलवदनिष्टाननु बन्धित्वविशिष्टेष्ट साधनत्वे सति कृति साध्यत्वं विध्यर्थः। तद्भावश्च नञा बोध्यमानो विशिष्टाभावो विशेष्यवति विशेषणाभावेविश्राम्यति,

(५३,५४) शङ्का—"न कलञ्जं भक्षयेत्" इस स्थल में कलञ्ज (शुष्क मांस) भक्षण को इष्ट साधन और कृति साध्य होने के कारण उक्त वाक्य से कलञ्ज भक्षण में इष्टसाधनत्वा भाव और कृति साध्यत्वाभाव की प्रतीति नहीं हो सकती है। समा०—कलञ्ज भक्षण में इष्टसाधनत्व और कृति साध्यत्व ही रहने के कारण उक्तस्थल में केवल बलवदनिष्टा ननुबन्धित्व ही विधि प्रत्ययार्थ है और इष्टसाधनत्व कृतिसाध्यत्व नहीं है, अतः बलवदनिष्टाननुबन्धित्वा भाव मात्र की नञ् घटित उक्त वाक्य से प्रतीति होती है। (५५) * अथवा बलवदनिष्टाननुबन्धित्व विशिष्ट इष्टसाधनत्व विशिष्ट कृतिसाध्यत्व ही

* विशेष्यवत् में विशिष्टाभाव विशेषणाभाव रूप होता है यथा जल में पृथिवीत्व विशिष्ट द्रव्यत्वाभाव रूप विशिष्टाभाव द्रव्यत्व रूप विशेष्यवद्वृत्ति होने के कारण पृथिवीत्वात्मक विशेषणाभावरूप है। एवं विशेषणवत् में विशिष्टाभाव विशेष्याभाव रूप होता है यथा जल में द्रव्यत्व विशिष्ट पृथिवीत्वाभाव रूप विशिष्टाभाव द्रव्यत्व रूप विशेषणवद् वृत्ति होने के कारण पृथिवीत्वात्मक विशेष्याभाव रूप है। कलञ्ज भक्षण में बलवदनिष्टाननुबन्धित्व विशिष्ट, इष्ट साधनत्व विशिष्ट कृति साध्यता भाव रूप विशिष्टा भाव इष्ट साधनत्व विशिष्ट कृति साध्यत्व रूप विशेष्यवद्वृत्ति होने के कारण बलवद निष्टाननुबन्धित्व रूप विशेषण भावात्मक है।

विध्यर्थ है। नञ् घटित वाक्य से तादृश विशिष्टाभाव की प्रतीति होती है। कलञ्ज भक्षण में इष्ट साधनत्व और कृति साध्यत्व के रहने पर भी वलवदनिष्टा ननु वन्धित्व रूप विशेषणाभाव प्रयुक्त उक्त विध्यर्थाभाव रूप विशिष्टाभाव रहता है।

(५६) "ननुश्येनेनाभिचरन् यजेते" त्यादौ कथं वलबदनिष्टाननुवन्धित्वमर्थः, श्येनस्य मरणानुकूलव्यापारस्य हिंसात्वेन नरकसाधनत्वात्, न च वैधत्वान्न निषेध इति वाच्यम्, अभिचारे प्रायश्चित्तोपदेशात्, न च मरणानुकूलव्यापारमात्रं यदि हिंसा तदा खड्गकारस्य कूपकर्तुश्च हिंसकत्वापत्तिर्गललग्नान्न भक्षण जन्यमरणे स्वात्मवधत्वापत्तिश्चेतिवाच्यं, मरणोद्देश्यकत्वस्यापिविशेषणत्वात्, अन्योद्देश्यकक्षिप्तनाराचहतब्राह्मणस्य तु वाचनिकं प्रायश्चित्तम्' इतिचेन्न। (५७) श्येनवारणाय दृष्टा द्वारकत्वेन विशेषणात् (५८) अत एव काशीमरणार्थंकृतशिवपूजादे रपि न हिंसात्वम्।

(५६) शङ्का—शत्रुवध कामः "श्येनेनाभि चरन् यजेत" इत्याकारक विधि वाक्य से प्रतिपादित मारणात्मक अभिचार कर्म हिंसात्मक होने के कारण नरक का साधन होगा। अतः वलवदनिष्टा ननुवन्धित्व रूप विध्यर्थ को वोध कैसे होगा? यदि आप कहें कि माहिं स्यात् सर्वा भूतानि" इत्याकारक निषेध वचन वैधेतर हिंसा ही का निषेध करता हैं। अतः वैधहिंसा निषिद्ध नहीं होने के कारण पाप जनक नहीं होगी। तो धर्म शास्त्र में अभिचारात्मक कर्म के प्रायश्चित्त का जो प्रतिपादन किया गया है वह असंगत हो जाय गा। अतः उसको पाप जनक अवश्य मानना होगा। साक्षात् वा परम्परया मरणानुकूल व्यापार मात्र यदि हिंसा हो तो खड्ग (तलवार) बनाने वाले और धर्मार्थ कूप खुदवाने वाले पुरुषों को हिंसा हो जायगी। क्योंकि उक्त खड्ग से जिसका मरण हो गया है और उक्त कूप में जो प्राणी मर गये हैं परम्परया उनके मरण का प्रयोजक व्यापार उन दोनों में रह जायगा। एवं जिस पुरुष को भोजन समय में कण्ठ में अन्न रुक जाने के कारण मृत्यु हो गई है उस पुरुष को भी आत्म हत्या का पाप होना चाहिये। अतः मरणोद्देश्यक मरणानुकूल व्यापार ही हिंसा है। किन्तु मरणानुकूल व्यापार मात्र हिंसा नहीं है। यदि ऐसा कहें कि जहां पर केवल निशान ठीक करने के लिये बाण फेंकने पर दैव वश उसवाण से अज्ञात ब्राह्मण का वध होजाता है वहां उक्त वाण के फेकने वाले पुरुष के लिये सेतुवन्ध स्थानाधिकरणक स्नानादि रूप प्रायश्चित्त का विधान करने से यह स्थिर होता है कि उस पुरुष का उक्त व्यापार भी हिंसा है। किन्तु यदि मरणोद्देश्यक मरणानुकूल व्यपार ही हिंसा मानी जायगी तो उक्त व्यापार को मरणोद्देश्यक नहीं होने के कारण हिंसा रूपता नहीं होगी। अतः उसके लिये प्रायश्चित्त का विधान अनुचित होगा तो उसका यह त्तर होसकता है कि "माहिंस्यात् सर्वा भूतानि" इस निषेध शास्त्र के रहते हुए भी

"ब्राह्मणं न हन्यात्" इत्याकारक निषेध शास्त्र से ज्ञात होता है कि अज्ञानतः ब्राह्मण मरणानुकूल व्यापार भी पाप का जनक है और उसी का "सेतौ च स्नान मात्रेण ब्रह्म हत्यां व्यपोहति" इत्यादि ग्रन्थ से (वाचनिक) प्रायश्चित्त का विधान है। अत एव मरणोद्देश्यक ब्राह्मण मरणानुकूल व्यापारात्मक ब्रह्म हत्या के प्रायश्चित्ताभाव प्रतिपादक तत्तत् धर्मशास्त्र ग्रन्थों का विरोध इसवाचनिक प्रायश्चित्त प्रतिपादक ग्रन्थ से नहीं होता है। अतः पर्यवसित हुआ कि मरणोद्देश्यक मरणानुकूल व्यापार ही हिंसा है। उक्तपुरुषके उक्त व्यापार को हिंसा रूप न होने पर भी कोई क्षति नहीं है। लेकिन यह कथन ठीक नहीं है। (५७-५८) क्यों कि काशी मरणार्थ शिव की पूजा करने वाले पुरुषों का मरणोद्देश्यक मरणानुकूल व्यापारात्मक शिव पूजन भी हिंसा रूप हो जायगा। अतः अदृष्ट द्वारक मरणोद्देश्यक मरणानुकूल व्यापार ही को हिंसा रूप मानना उचित है। ऐसा मानने पर उक्त शिव पूजन अदृष्ट द्वारा मरणानुकूल व्यापार रूप होने के कारण हिंसा रूप नहीं होगा। इसी प्रकार श्येन याग भी अदृष्ट द्वारा मरणानुकूल व्यापार रूप होने के कारण हिंसा रूप नहीं है।

(५९) न च साक्षान्मरणजनकस्यैव हि हिंसात्वं श्येनस्तु न तथा किंतु तज्जन्यापूर्वमिति वाच्यं, खड्ग घातेन ब्राह्मणे व्रणपाकपरंपरया मृते हिंसात्वानापत्तेः।

(५९) किसी का मत है कि साक्षात् मरण का जनक ही हिंसा है। श्येन याग साक्षात् शत्रुमरण जनक नहीं है किन्तु श्येन याग जन्य अदृष्ट ही साक्षात् शत्रु मरण का जनक है। अतः श्येन याग हिंसा रूप नहीं होगा। लेकिन यह युक्त नहीं है क्यों कि खड्ग घात से व्रण ज्वरादि द्वारा जहाँ ब्राह्मण की मृत्यु हुई है वहां ज्वर ही साक्षात् मरण जनक होने के कारण हिंसा रूप होगा। किन्तु खड्गाघात साक्षात् मरण का जनक नहीं है अतः उस में हिंसात्व की अनुपपत्ति हो जायगी।

(६०) केचित्तु श्येनस्य हिंसा फलं न तु मरणम्। (६१) तेन श्येनजन्य खड्गघातादिरूपा हिंसाऽभिचारपदार्थः। तस्य च पापजनकत्वम्। (६२) अतः श्येनस्य वैधत्वात्पापाजनकत्वेऽपि अग्रिम पापं प्रतिसंधाय सन्तो न प्रवर्तन्त इत्याहुः।

(६०,६१) * और किसी का ऐसा भी मत है कि पूर्वोक्त साक्षात् मरण का जनक ही हिंसा है। अतः श्येन यागजन्य खड्ग घातादि साक्षात् मरण का जनक होने के कारण हिंसा रूपहै और श्येनयाग साक्षात् मरण का जनक नहीं होनेके कारण हिंसा नहीं है किन्तु

* शङ्का—नचेत्यादि ग्रन्थ से साक्षात् मरण जनक ही को हिंसा रूप मानने के कारण पौनरुक्त्य क्यों नहीं होगा। समा०—पूर्व साक्षात् मरण जनक श्येनजन्य अदृष्ट ही को हिंसा रूप कहा है और इस मत में तो तादृश अदृष्ट खड्गघात ही के प्रति कारण माना जाता है मरण के प्रति नहीं। अतः मरण जनक नहीं होने के कारण हिंसा रूप नहीं है इस हेतु दोनों मतों में भेद होने से पौनरुक्त्य नहीं होगा।

हिंसा का जनक है। (६२) अतः श्येन यागजन्य खड्ग घातादि रूप हिंसा ही पाप का जनक है और वैध श्येन याग हिंसा रूप नहीं होने के कारण पाप का जनक नहीं है तो भी श्येन याग से परम्परया पापोत्पत्तिकी सम्भावनासे सज्जन पुरुष श्येन याग में प्रवृत्त नहीं होते हैं।

(६३) आचार्यास्तु आप्ताभिप्रायो विध्यर्थः। 'पाकं कुर्याः' इत्यादावाज्ञादिरूपेच्छा वाचित्ववल्लिङ्मात्रस्येच्छावाचित्वं लाघवात्। (६४) एवं च 'स्वर्गकामो यजेत्' इत्यादौ यागः स्वर्गकामकृतिसाध्यतया आप्तेष्ट इत्यर्थः (६५) ततश्चाप्तेष्टत्वेनेष्टसाधनत्वादिक मनुमाय प्रवर्तते। (६६) कलञ्ज भक्षणे तदभावान्न प्रवर्तते।

(६३) उदयनाचार्य का मत है कि वक्ता की इच्छा विध्यर्थ है। क्योंकि "पाकं कुर्याः" इत्यादि स्थल में विधि प्रत्यय को जिस प्रकार आज्ञा रूप इच्छा वाचकत्व मानते हैं उसी प्रकार लिङ् मात्र को लाघवात् इच्छावाचकत्व मानना उचित है। (६४,६५) तब स्वर्ग कामो यजेत्" इत्यादि स्थल में "यागः मम स्वर्ग कामस्य वलवदनिष्टाननु वन्धीष्ट साधनम् मत्कृति साध्यत्वेन आप्तेन इष्यमाणत्वात्" इत्याकारक अनुमित्यात्मक इष्ट साधनता ज्ञान से प्रवृत्ति होती है। (६६) कलञ्ज भक्षण में किसी विधि वाक्य को नहीं रहने के कारण एतादृश अनुमित्यात्मक इष्ट साधनता ज्ञान नहीं रहेगा। अतः प्रवृत्ति नहीं होती है।

(६७) यस्तु वेदे पौरुषेयत्वं नाभ्युपैति तं प्रति विधिरेव तावद्गर्भ इव श्रुति कुमार्याः पुंयोगे मानम्।

(६७) वक्ता की इच्छा को विधि प्रत्ययार्थ मानने पर जो मीमांसकादिवेद को अपौरुषेय अर्थात् किसी से प्रणीत नहीं मानते हैं। उन के मत में वेद घटक विधि प्रत्ययार्थ किसी की इच्छा नहीं मानी जा सकती है। क्योंकि उन के मत से वेद का कर्त्ता कोई नहीं है। किसी दूसरे पुरुष की इच्छा का वोध कराने में विधि प्रत्यय को सामर्थ्य नहीं है तब जिस प्रकार किसी कुमारी का गर्भ पुरुष संयोग का प्रमाण होता है उसी प्रकार वेद वाक्य घटक विधि प्रत्यय श्रुति कुमारी का स्वकर्तृ पुरुष योग में प्रमाण होता है। अर्थात् यदि वेद निर्माता पुरुष नहीं माना जाय तो किसकी इच्छा वेद घटक विधि प्रत्यय का अर्थ होगा? अतः वेद में पौरुषेयत्व मानना उचित है।

(६८) नच कर्त्रस्मरणं बाधकं, कपिल कणादादिभिरद्यपर्यन्तं कर्तृस्मरणस्यैव प्रतीयमानत्वात्। (६९) अन्यथा स्मृतीनामप्यकर्तृकत्वापत्तेः। तत्रैव कर्तृस्मरणमस्तीति चेद्वेदेऽपि 'छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात्' इत्यादि कर्तृस्मरणमस्त्येव। (७०) एवं 'प्रतिमन्वन्तरं चैषाश्रुतिरन्या विधीयते' इत्यपि द्रष्टव्यम्।

(६८,७०) यदि आप कहें कि वेद कर्त्ता का किसी को स्मरण नहीं है तब वेद में अस्मर्यमाण कर्तृकत्व रहने के कारण "वेदः अपौरुषेयः अस्मर्यमाण कर्तृकत्वात् आकाशवत्" इस अनुमान से अपौरुषेयत्व की सिद्धि होने पर वेद में पौरुषेयत्व की सिद्धि नहीं होगी। यह युक्त नहीं है क्योंकि कपिल कणादादि महर्षियों से वेद में सकर्तृकत्व बोधक स्मृति प्रणयन होने के कारण ज्ञात होता है कि उन लोगों को वेदकर्त्ता का स्मरण अवश्य था। यदि आप शंका करें कि वेद कर्त्ता ईश्वर को जब किसी ने न देखा तब उन का स्मरण किसी को होही कैसे सकता। यह आप का कथन युक्त नहीं होगा क्योंकि वेद कर्त्ता का प्रत्यक्ष नहीं होने पर भी "वेदः पौरुषेयः वाक्य समूहत्वात् महाभारतादिवत्" इस अनुमान से वेद कर्त्ता की अनुमिति होने के बाद उन का स्मरण हो सकता है। यदि आप उक्त अनुमान को अप्रयोजक मान कर वेद में पौरुषेयत्व का अनंगीकार करें तो उक्त रीतिसे मन्वादि स्मृतियों में भी सकर्तृकत्व सिद्ध नहीं होगा। अगर ऐसा कहें कि तत्तत् मन्वादि स्मृति में तत्तत् स्मृति कर्त्ता का नाम प्रतिपादन होने के कारण स्मृति कर्ता का अस्मरण नहीं है अतः स्मृतियों में सकर्तृकत्व माना जाता है। तो इस का उत्तर यह है कि श्रुति में भी "छन्दांसि यज्ञिरे तस्मात्" इत्यादि मन्त्रों से तत्तत् स्थल विशेष में वेद कर्त्ता का भी प्रतिपादन होने के कारण वेद को भी अपौरुषेय नहीं कह सकते हैं। एवं "प्रतिमन्वन्तरं चैषा श्रुतिरन्या विधीयते" इत्यादि स्मृति भी प्रतिमन्वन्तर में विभिन्न श्रुतियां बनाई जाती हैं इस का स्पष्ट प्रमाण है। अतः आप उस को अपौरुषेय नहीं मान सकते हैं।

(७१) 'स्वयंभूरेष भगवान्वेदो गीतस्त्वया पुरा' 'शिवाद्यृषि-पर्यन्ता स्मर्तारोऽस्य न कारकाः'। (७२) इति तु वेदस्य स्तुति मात्रम्। न च पौरुषेयत्वे भ्रमादिसंभवादप्रामाण्यं स्यादिति वाच्यं नित्यसर्वज्ञत्वेन निर्दोषत्वात्। (७३) अतएव पुरुषान्तरस्य भ्रमादिसंभावान्न कपिलादेरपि कर्तृत्वं वेदस्य। (७४) किंच वर्णानामेवानित्यत्वस्य वक्ष्यमाणत्वात्सुतरां तत्संदर्भस्य वेदस्यानित्यत्वमिति सक्षेपः।

(७१-७४) महाभारतमें व्यास देव ने ईश्वरसे कहा है कि हे ईश्वर अनादि वेद रूप भगवान् आप से पूर्व उच्चारित हैं। शिवादि ऋषि पर्यन्त वेद के स्मरण कर्त्ता हैं नकि प्रणेता हैं। यह व्यास देव का बचन वेद की स्तुति रूप होने के कारण अपौरुषेयत्व का प्रमाण नहीं हो सकता है। शङ्का—यदि वेद में पौरुषेयत्व माना जाय तो पुरुष मात्र को भ्रम होने के कारण निर्माण कर्त्ता पुरुष के भ्रम से वेद में अप्रामाण्य हो जायगा। समा०—

ईश्वर को सर्व विषयक नित्य ज्ञानवान् होने के कारण भ्रम होने की सम्भावना नहीं है। अतः वेद में ईश्वर कर्तृकत्व मानने पर भी अप्रामाण्य नहीं होगा। अतएव ईश्वर से भिन्न पुरुषों को भ्रम की सम्भावना अवश्य होने के कारण कपिलादि ऋषियों में भी वेद कर्तृत्व मानना युक्त नहीं है। और वेद में अनित्यत्व की यह भी युक्ति है कि वक्ष्यमाण (का० १६७) प्रतिपादित हेतु से जब प्रत्येक वर्णों को अनित्य मानना होगा। तब सुतरां वर्ण समुदायात्मक वेद को आप नित्य नहीं मान सकते हैं।

(७५) उपादानस्येति। उपादानस्य समवायिकारणस्याध्यक्षं प्रत्यक्षं प्रवृत्तौ कारणमिति।

(७५) उपादान (समवायि कारण) का प्रत्यक्ष प्रवृत्ति में कारण है।

का० १५१ उत्त०।

निवृत्तिस्तु भवेद्द्वेषाद्द्विष्टसाधनताधियः ॥

का० अर्थ उत्त०।

द्वेष और द्वेष विषय जोदुःखादितत्साधनता ज्ञान से दुःखोपाय विषयक निवृत्ति होती है।

(१) निवृत्तिरिति। द्विष्टसाधनता ज्ञानस्य निवृत्तिंप्रति जनकत्वमन्वय व्यतिरेकाभ्यामवधारितमिति भावः।

(१) निवृत्ति के साथ द्विष्ट साधनता ज्ञान का अन्वय व्यतिरेक रहने के कारण निवृत्ति के प्रति द्विष्ट साधनता ज्ञान को भी कारणत्व माना जाता है।

का० १५२।

यत्नो जीवनयोनिस्तु सर्वदातीन्द्रियो भवेत्।
शरीरे प्राणसंचारे कारणं परिकीर्तितम् ॥

का० अर्थ।

प्राणियों के जीवन पर्यन्त रहनेवाला जीवनयोनि नाम का यत्न अतीन्द्रिय है और वह शरीर में प्राण संचार का कारण माना जाता है।

(१) यत्न इति । जीवनयोनियत्नो यावज्जीवनमनुवर्तते स चातीन्द्रियः । (२) तत्र प्रमाणमाह । (३) शरीर इति । प्राणसंचारो हि अधिक श्वासादिः यत्न साध्यः । (४) इत्थं च प्राणसंचारस्य सर्वस्य यत्नसाध्यत्वानुमानात्प्रत्यक्षयत्नबाधाच्चातीन्द्रिय यत्नसिद्धिः । स एव जीवनयोनिर्यत्नः ।

(१) इस का अर्थ कारिकार्थ ही से स्पष्ट है । (२) जीवनयोनि यत्न में प्रमाण कहते हैं । (३) व्यायामादि कालिक दीर्घ श्वास प्रश्वास रूप प्राण संचार प्रयत्न साध्य है । यह सर्वानुभव सिद्ध है । (४) इस से प्राणसञ्चार सामान्य में यत्न साध्यत्व की अनुमिति होती है और तादृश यत्न का प्रत्यक्ष नहीं होने के कारण वह अतीन्द्रिय सिद्ध होता है जो जीवनयोनियत्न के नाम से प्रसिद्ध है ।

गुरुत्वं निरूपयति = गुरुत्व का निरूपण करते हैं ।

का० १५३,१५४ पूर्वा० ।

अतीन्द्रियं गुरुत्वं स्यात्पृथिव्यादिद्वये तु तत् ।
अनित्ये तदनित्यं स्यान्नित्ये नित्यमुदाहृतम् ॥
तदेवासमवायि स्यात्पतनाख्ये तु कर्मणि ।

का० अर्थ ।

गुरुत्व पृथ्वी और जल में रहता है और अतीन्द्रिय है परमाणुगत गुरुत्व नित्य और तदन्यगत गुरुत्व अनित्य है और वही गुरुत्व आद्य पतन का असमवायि कारण है ।

(१) अतीन्द्रियमिति । अनित्य इति । अनित्ये द्व्यणुकादौ तद्गुरुत्वमनित्यम् । नित्ये परमाणौ नित्यम् । गुरुत्व मित्यनुवर्तते । तद्गुरुत्वमसमवायि असमवायि कारणम् । पतनाख्य इति । आद्यपतनइत्यर्थः ।

(१) कारिकार्थ में ही स्पष्ट है ।

द्रवत्वं निरूपयति = द्रवत्व का निरूपण करते है ।

का० १५४,१५५ ।

सांसिद्धिकं द्रवत्वं स्यान्नैमित्तिकमथापरम् ॥
सांसिद्धिकं तु सलिले द्वितीयं क्षितितेजसोः ।
परमाणौ जले नित्यमन्यत्रा नित्यमुच्यते ॥

का० अर्थ।

सांसिद्धिक नैमित्तिक भेद से द्रवत्व दो प्रकार के होते हैं। उन में सांसिद्धिक द्रवत्व जल में और नैमित्तिक द्रवत्व पृथ्वी और तेज में रहता है। जल परमाणु में रहने वाला द्रवत्व नित्य और पार्थिव तैजस परमाण्वादि एवं जलीय द्व्यणुकादि में रहने वाला द्रवत्व अनित्य है।

(१) सांसिद्धिकमिति। द्रवत्वं द्विविधं सांसिद्धिकं नैमित्तिकं चेति। द्वितीयं नैमित्तिकम्। (२) परमाणाविति जल परमाणौ द्रवत्वं नित्यमित्यर्थः। अन्यत्र पृथिवी परमाण्वादौ जलद्व्यणुकादौ च द्रवत्व मनित्यम्। (३) कुत्रचित्तेजसि कुत्रचित्पृथिव्यां च नैमित्तिकं द्रवत्वम्। तत्र को वा नैमित्तिकार्थ स्तद्दर्शयति।

(१,२) कारिकार्थ में स्पष्ट है। (३) सुवर्णादि रूप किसी तेज में एवं घृतादि रूप किसी पृथ्वी में रहने वाला द्रवत्व नैमित्तिक द्रवत्व है। नैमित्तिक होने का कारण (नैमित्तिकमित्यादि कारिका से) बतलाते हैं।

का० १५६।

नैमित्तिकं वह्नियोगात्तपनीयघृतादिषु।
द्रवत्वं स्यन्दने हेतुर्निमित्तं संग्रहे तु तत्॥

का० अर्थ।

सुवर्णादि रूप तेज में और घृत लाक्षादि रूप पृथिवी मे रहने वाला द्रवत्व वह्नि संयोग रूप निमित्त से पैदा होने के कारण नैमित्तिक कहा जाता है। द्रवत्व स्यन्दन का असमवायि कारण और संग्रह का निमित्त कारण है।

(१) नैमित्तिकमिति। वह्नीति। अग्निसंयोगजन्यं नैमित्तिकं द्रवत्वम्। तच्च सुवर्णादिरूपे तेजसि घृतजतु प्रभृतिपृथिव्यां च वर्तत इत्यर्थः। (२) द्रवत्वमिति। हेतुरिति। असमवायिकारण मित्यर्थः। (३) संग्रहे सक्तुकादि संयोगविशेषे तत् द्रवत्वं स्नेहसहित मिति बोद्धव्यम्। तेन द्रुतसुवर्णादिना न संग्रहः।

(१,२) कारिकार्थ में स्पष्ट है। (३) सक्तु वगैरह का पिण्डीभाव रूप संयोग विशेषात्मक संग्रह में स्नेह और द्रवत्व अर्थात् सांसिद्धिक द्रवत्व ये दोनों निमित्त कारण

हैं अतः द्रुत सुवर्णादि में उन दोनों को नहीं रहने के कारण उस से संग्रह नहीं होता है। शङ्का—संग्रह के प्रति केवल स्नेह को कारणत्व मानने से भी किसी दोष की सम्भावना नहीं है तब सांसिद्धिक द्रवत्व को कारणत्व मानना व्यर्थ है। समा०—विनिगमना विरह हो जाने के कारण संग्रह के प्रति स्नेह और सांसिद्धिक द्रवत्व दोनों को कारणत्व मानना आवश्यक होगा।

स्नेहं निरूपयति = स्नेह का निरूपण करते हैं।

का० १५७।

स्नेहो जले स नित्योऽणावनित्योऽवयविन्यसौ।
तैलान्तरे तत्प्रकर्षाद्दहनस्यानुकूलता ॥

का० अर्थ।

जल मात्र में रहने वाला स्नेह नित्य, अनित्य के भेद से दो प्रकार का है। जल परमाणु में नित्य और जन्य जल में अनित्य स्नेह रहता है। तैल में जल रहने पर भी उस जल में अधिक स्नेह रहने के कारण वह जल अग्नि के अनुकूल ही होता है।

(१) स्नेह इति। जल इति। जल एवेत्यर्थः। असौ स्नेहः। (२) ननु पृथिव्यामपि तैले स्नेह उपलभ्यते, न चासौ जलीयः, तथा सति दहनप्रातिकूल्यं स्यादत आह—तैलान्तर इति। तत्प्रकर्षात्, स्नेह प्रकर्षात् तैले उपलभ्यमानः स्नेहोऽपि जलीय एव तस्यप्रकृष्टत्वा दग्नेरानुकूल्यम्। अपकृष्टस्नेहं हि जलं वह्निं नाशयतीति भावः।

(१) स्पष्ट है। (२) शङ्का करते हैं कि तैलादि रूप पृथ्वी में स्नेह उपलब्ध होने के कारण स्नेह जल मात्र में रहता है। यह कैसे हो सकता है। यदि आप कहें कि तैल में भी जल ही का स्नेह उपलब्ध होता है तो यह युक्त नहीं है क्योंकि तैल के भीतर यदि जल माना जाय तो तैल भी अग्नि के अनुकूल नहीं होगा प्रत्युत जल युक्त होने के कारण प्रतिकूल हो जायगा। इस शङ्का का निराकरण "तैलान्तर" इत्यादि कारिका से करते हैं कि तैल में जो स्नेह पाया जाता है वह भी जल ही का है। परन्तु तैलान्तर्गत जल में अधिक स्नेह रहने के कारण वह जल अग्नि के अनुकूल ही होता है। अल्प स्नेह जिसमें रहता है वही जल अग्नि का नाशक होता है।

संस्कारं निरूपयति = संस्कार का निरूपण करते हैं।

का० १५८

संस्कारभेदो वेगोऽथ स्थितिस्थापकभावने।

मूर्त मात्रे तु वेगः स्यात्कर्मजो वेगजः क्वचित्॥

का० अर्थ।

वेग स्थितिस्थापक और भावना के भेद से संस्कार तीन प्रकार का होता है वेग मूर्त मात्र में रहता है औरकर्मज तथा वेगज के भेद से दो प्रकार का होता है।

(१) संस्कारेति। वेग स्थितिस्थापक भावना भेदात्संस्कारस्त्रिविध इत्यर्थः। (२) मूर्तमात्र इति। कर्मज वेगज भेदाद्वेगो द्विविध इत्यर्थः। (३) शरीरादौ हि नोदन जनितेन कर्मणा वेगो जन्यते। (४) तेन च पूर्व कर्म नाशस्तत उत्तरं कर्म। एवमग्रेऽपि।

(१,२) कारि कार्थ ही से स्पष्ट है। (३) शरीरादि गत नोदन संयोगजन्य कर्म से शरीर में वेग उत्पन्न होता है। (४) उस वेग से पूर्व कर्म का नाश और तब उत्तर कर्म की उत्पत्ति होती है। पुनः उत्तर कर्म से पूर्व वेग का नाश और उत्तर वेग की उत्पत्ति होती है इस प्रकार समझना चाहिये।

(५) विना च वेगं कर्मणः कर्मप्रतिबन्धकत्वात्पूर्वकर्मनाश उत्तरकर्मोत्पत्तिश्च न स्यात्। (६) यत्र वेगवता कपालेन जनिते घटे वेगो जन्यते स वेगजो वेगः।

(५) यदि वेग नहीं माना जाय तो नाशक के अभाव के कारण पूर्व कर्म का नाश नहीं होगा। और जब तक पूर्व कर्म का नाश नहीं होगा तब तक उत्तर कर्म की उत्पत्ति नहीं होगी। क्योंकि कर्मोत्पत्ति में कर्म प्रतिबन्धक है अतः पूर्व कर्म नाशार्थ वेग मानना आवश्यक है यही वेग कर्मजं कहलाता है। (६) वेग विशिष्ट कपाल से उत्पन्न घट में जो वेग उत्पन्न होता है वह वेगज वेग का उदाहरण है क्योंकि उस घटगत वेग का असमवायि कारण कपालगत वेग ही है।

का० १५६।

स्थितिस्थापक संस्कारः क्षितौ केचिच्चतुर्ष्वपि।

अतीन्द्रियोऽसौ विज्ञेयः क्वचित्स्पन्देऽपि कारणम्॥

का० अर्थ ।

स्थितिस्थापक संस्कार पृथ्वी में माना जाता है और किसी के मत से यह पृथिव्यादि चारों में माना जाता है। यह संस्कार अतीन्द्रिय है और कहीं २ आकृष्ट शाखादि में जो स्पन्द होता है उस का भी कारण यही है।

(१) स्थितिस्थापकेति । आकृष्ट शाखादीनां परित्यागे पुनर्गमनस्य स्थितिस्थापक साध्यत्वात् । (२) केचिदिति । चतुषु क्षित्यादिषु स्थितिस्थापकं केचिन्मन्यन्ते तदप्रमाणमिति भावः । (३) असौ स्थितिस्थापकः । क्वचिदाकृष्ट शाखादौ ।

(१) आकृष्ट शाखा आदि का जो परित्यागानन्तर पुनः पूर्व देश में गमन होता है उस का कारण जो गुण विशेष उसी का नाम स्थितिस्थापक संस्कार है। (२) किसी का मत है कि स्थितिस्थापक संस्कार पृथ्वी, जल, तेज और वायु इन चारों में मानना चाहिये, परन्तु उस में प्रमाण नहीं रहने के कारण यह मत श्रद्धास्पद नहीं है। (३) अर्थ स्पष्ट है।

का० १६० ।

भावनाख्यस्तु संस्कारो जीववृत्तिरतीन्द्रियः ।
उपेक्षानात्मकस्तस्य निश्चयः कारणं भवेत् ॥

का० अर्थ ।

जीवात्मा में रहनेवाला भावनाख्य संस्कार अतीन्द्रिय है। और उपेक्षानात्मक निश्चय उस का कारण होता है।

(१) भावनाख्य इति । तस्य संस्कारस्य । (२) उपेक्षात्मक ज्ञानात्संस्कारानुत्पत्तेरुपेक्षानात्मक इत्युक्तम् । (३) तत्संशयात्तस्यानुत्पत्तेर्निश्चय इत्युक्तम् । (४) तेनोपेक्षान्यनिश्चयत्वेन संस्कारं प्रति हेतुतेति भावः ।

(१) अर्थ स्पष्ट है। (२-४) उपेक्षात्मक ज्ञान से भावनाख्य संस्कार की उत्पत्ति नहीं होती है। अतः उपेक्षानात्मक कहा गया। उपेक्षानात्मक संशय से उस संस्कार की उत्पत्ति नहीं होती है। अतः तादृश संस्कार के प्रति उपेक्षानात्मक निश्चय को कारणता मानी जाती है।

(५) ननु स्मरणं प्रत्युपेक्षान्यनिश्चयत्वेन हेतुत्वं तेनोपेक्षादिस्थले न स्मरणम् । (६) इत्थं च संस्कारं प्रति ज्ञानत्वेनैव हेतुतास्त्विति चेन्न । (७) विनिगमनाविरहेणापि संस्कारं प्रति उपेक्षान्यनिश्चयत्वेन हेतुतायाः सिद्धत्वात् ।

(५-७) शङ्का है कि संशय से एवं उपेक्षात्मक निश्चय से स्मरण नहीं होता है अतः स्मरण के प्रति उपेक्षान्य निश्चयत्वेन कारणता मानना आवश्यक है। तब संस्कार के प्रति यदि ज्ञानत्वेन कारणता मान ली जाय तो हानि क्या है? क्योंकि संशय एवं उपेक्षात्मक निश्चय से संस्कारोत्पत्ति होने पर भी स्मरण का कारण जो उपेक्षान्य निश्चय, वह नहीं है। अतः स्मरण की आपत्ति नहीं होगी। समा०–विनिगमनाविरहात् संस्कार ही के प्रति उपेक्षान्य निश्चयत्वेन कारणता माने और स्मरण के प्रति यदि ज्ञानत्वेन कारणता मानें तो भी संशय एवं उपेक्षात्मक निश्चय के बाद संस्कार रूप व्यापार की अनुत्पत्ति होने के कारण स्मरण की आपत्ति नहीं होगी। तो इसी प्रकार कारणता क्यों नहीं मानी जाय इत्याकारक विनिगमना विरह से संस्कार एवं स्मरण दोनों ही के प्रति उपेक्षान्य निश्चयत्वेन कारणता माननी होगी ।

(८) किंचोपेक्षास्थले संस्कारकल्पनाया गुरुत्वात्संस्कारं प्रति चोपेक्षान्यनिश्चयत्वेन हेतुतायाः सिद्धत्वात् ।

(८) यदि वास्तविक रूप से विचार किया जाय तो संस्कार ही के प्रति उपेक्षान्य निश्चय की कारणता मानने में विनिगमक प्रतीत होता है। क्योंकि संस्कार के प्रति यदि ज्ञानत्वेन कारणता मानी जाय तो संशय और उपेक्षात्मक निश्चय स्थल में भी संस्कार की कल्पना प्रयुक्त गौरव होगा ।

का० १६१

स्मरणे प्रत्यभिज्ञाया मप्यसौ हेतुरुच्यते।

"स एवायं देवदत्तः" इत्यादि प्रत्यभिज्ञा और स्मरण का कारण भावनाख्य संस्कार है।

(१) असौ संस्कारः। (२) तत्र प्रमाणं दर्शयति स्मरण इति। (३) यतः स्मरणं प्रत्यभिज्ञानं च जनयत्यतः संस्कारः कल्प्यते। (४) विना व्यापारं पूर्वानुभवस्य स्मरणादिजननासामर्थ्यात्स्व स्वव्यापारान्यतराभावे कारणत्वासंभवात् ।

(१) कारिका में "असौ" पद से भावनाख्य संस्कार का ग्रहण होता है। (२) स्मरण इत्यादि कारिका से संस्कार में प्रमाण बतलाते हैं। (३) पूर्वानुभव आशुविनाशी है। किन्तु कालान्तर भावी स्मरण और प्रत्यभिज्ञा को उत्पन्न करता है यह सर्व सम्मत है अतः संस्कार रूप व्यापार की कल्पना की जाती है। (४) पूर्वानुभव को पूर्व ही नष्ट हो जाने के कारण संस्कार रूप व्यापार के बिना पूर्वानुभव को स्मरणादि जनकत्व नहीं हो सकता है। कार्याव्यवहित पूर्व क्षण में कारण अथवा कारण का व्यापार इस अन्यतर के नहीं रहने से उसको कारणत्व नहीं हो सकता है जिस हेतु कार्याव्यवहित पूर्वक्षण वृत्तित्वस्वव्यापारान्यतर कत्व ही कारणता का स्वरूप है।

(५) नच प्रत्यभिज्ञां प्रति तत्तत्संस्कारस्य हेतुत्वे प्रत्यभिज्ञायाः संस्कारजन्यत्वेन स्मृतित्वापत्तिरिति वाच्यम् अप्रयोजकत्वात्। (६) परे त्वनुद्बुद्धसंस्कारात्प्रत्यभिज्ञा नुदयादुद्बुद्ध संस्कारस्य हेतुत्वापेक्षया तत्तस्मरणस्यैव प्रत्यभिज्ञां प्रति हेतुत्वं कल्प्यत इत्याहुः।

(५) शङ्का —प्रत्यभिज्ञा के प्रति तत्तत् संस्कार को कारणता मानने पर प्रत्यभिज्ञा में संस्कार जन्यत्व होने के कारण स्मृतित्वापत्ति हो जायगी। समा०—यह नहीं कह सकते हैं। क्योंकि संस्कारजन्यत्व स्मृतित्व का प्रयोजक है, इसमें कोई अनुकूल तर्क नहीं है। (६) चिन्तामणिकार का मत है कि अनुद्बुद्ध संस्कार से प्रत्यभिज्ञा नहीं होती है। अतः प्रत्यभिज्ञा के प्रति उद्बुद्ध संस्कार ही को कारणता माननी होगी। तदपेक्षया लाघवात् तत्तत् पदार्थ के स्मरण ही को तत्तत् पदार्थ प्रत्यभिज्ञा के प्रति कारणत्व मानना युक्त है। अर्थात् तत्तत् पदार्थ का स्मरण होने पर ही तत्तत् पदार्थ की प्रत्यभिज्ञा होती है। अतः प्रत्यभिज्ञा में संस्कार जन्यत्व नहीं रहने के कारण स्मृतित्वापत्ति नहीं होगी।

अदृष्टं निरूपयति = अदृष्ट का निरूपण करते हैं।

का० १६१,१६२ पूर्वा०

धर्माधर्मावदृष्टं स्याद्धर्मः स्वर्गादिसाधनम् ॥
गङ्गास्नानादियागादि व्यापारः स तु कीर्तितः।

धर्म, अधर्म दोनों अदृष्ट शब्द के अर्थ हैं। उन में धर्म स्वर्ग का कारण है। और यह धर्म गङ्गा स्नानादि यागादि रूप क्रिया का व्यापार है।

(१) धर्माधर्माविति। स्वर्गादीति। स्वर्गादिसकलसुखानां स्वर्गसाधनीभूतशरीरादीनां च साधनं धर्म इत्यर्थः। (२) तत्रप्रमाणं दर्शयितु माह-

यागादीति, यागादिव्यापारतया धर्मः कल्प्यते । (३) अन्यथा यागादीनां चिरविनष्टतया निर्व्यापारतया च कालान्तरभाविस्वर्गजनकत्वं न स्यात् । (४) तदुक्त माचार्यैः–'चिरध्वस्तं फलायालं न कर्मातिशयं विना' इति ।

(१) स्वर्गादि सकल सुखों का एवं स्वर्ग साधनीभूत स्वर्गीय शरीर का कारण धर्म है। (२) धर्म में प्रमाण बतलाने के लिये कहते हैं। यागादि के व्यापार रूप में धर्म की कल्पना होती है। (३) यदि याग का व्यापार धर्म नहीं माना जाय तो व्यापार शून्य याग को स्वर्गादि फल से बहुत पूर्व ही नष्ट हो जाने के कारण चिरकालोत्तर भावी स्वर्गादि के प्रति जनकत्व नहीं होगा। (४) इसी बात को "चिरध्वस्तम्" इत्यादि कारिकासे उदयनाचार्य ने कहा है।

(५) ननु यागध्वंस एव व्यापारः स्यात्, न च प्रतियोगितद्ध्वंसयोरेकत्राजनकत्वं, सर्वत्र तथात्वे मानाभावात्, न च त्वन्मते फलानन्त्यं मन्मते चरमफलस्यापूर्वनाशकत्वान्न तथात्वमिति वाच्यं, कालविशेषस्य सहकारित्वादित्यत आह—(६) गङ्गास्नानेति। गंगास्नानस्य हि स्वर्ग जनकत्वेऽनन्तानां जलसंयोगध्वंसानां व्यापारत्वमपेक्ष्यैकमपूर्वमेव कल्प्यते लाघवादिति भावः।

(५) शंका करते हैं कि यागादि के व्यापार रूप में एक अद्भुत धर्म रूप पदार्थ की कल्पना करनी व्यर्थ है। क्योंकि याग ध्वंस को याग का व्यापार मान लेनेसे भी सामंजस्य हो जाता है। यदि आप कहें कि एक कार्य के प्रति प्रतियोगी और उस के ध्वंस दोनों को जनकत्व कहीं सिद्ध नहीं है तो ऐसा नहीं कह सकते हैं क्योंकि एक कार्य के प्रति प्रतियोगी और उस के ध्वंस इन दोनों को कारणता नहीं हो सकती है इस नियम में कोई प्रमाण नहीं है। यदि आप ऐसा कहें कि धर्म को नहीं मान कर यागध्वंस ही को याग का व्यापार मानें तो यागध्वंस रूप व्यापार का कभी नाश नहीं होने के कारण स्वर्गादि रूप फल का भी कभी अन्त नहीं होगा और हमारे (धर्म रूप व्यापार वादी के) मत से तो चरम फल से धर्म के नाश हो जाने के कारण स्वर्गादि रूप फल का अवसान हो जायगा। किन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि काल विशेष को यागध्वंस रूप व्यापार का सहकारी मानने के कारण काल विशेष के नष्ट हो जाने पर स्वर्गादि रूप फल का अवसान अवश्य हो जायगा। अतः कहते हैं कि–(६) स्वर्ग जनक जो अनन्त जल संयोगात्मक गङ्गा स्नान उस का व्यापार अनन्त तत्तज्जल संयोग ध्वंस को मानना होगा, तदपेक्षया एक धर्म ही को लाघवात् व्यापारत्व मानना युक्त है।

(७) ननु ध्वंसोऽपि न व्यापारोऽस्तु नच निर्व्यापारस्य चिरध्वस्तस्य कथं कारणत्वमिति वाच्यम्, अनन्यथासिद्धनियतपूर्ववर्तित्वस्य तत्रापि सत्त्वात् । (८) अव्यवहितपूर्ववर्तित्वंहि चक्षुस्संयोगादेः कारणत्वे, न तु सर्वत्र, कार्यकालवृत्तित्वमपि समवायि कारणस्य कारणत्वे इत्यत आह—

(७,८) शंका करते हैं कि गंगा स्नानादि क्रिया के ध्वंस में भी यदि उक्त क्रिया का व्यापारत्व नहीं मानें तो हानि ही क्या है ? यदि कहें कि व्यापार रहित चिरध्वस्त गंगा स्नानादि रूप क्रिया स्वर्ग से अव्यवहित पूर्वक्षण में नहीं है और न उसका कोई व्यापार ही है तब वह स्वर्ग का कारण कैसे होगा तो इस का उत्तर यह किया जा सकता है कि जैसे समवायि कारण मात्र का कार्यक्षण में रहना आवश्यक है वैसे ही चक्षुः संयोग रूप प्रत्यक्षादि कारण ही को कार्या व्यवहित पूर्व क्षण में रहना आवश्यक है । और अन्य कारणों में केवल कार्य पूर्व काल वृत्तित्व ही आवश्यक है । अतः गंगास्नानादि रूप क्रियाओं को स्वर्गाव्यवहित पूर्वक्षण में नहीं रहने पर भी कारणत्व होने में कोई बाधा नहीं । इस लिये कहते हैं कि " कर्मनाशा " इत्यादि ।

का० १६२ उत्त० ।

कर्मनाशाजलस्पर्शादिना नाश्यस्त्वसौ मतः ॥

का० अर्थ ।

कर्मनाशा नदी के जल स्पर्शादि से धर्म का नाश होता है ।

(१) कर्मनाशेति । यदि अपूर्वं न स्यात्तदा कर्मनाशा जलस्पर्शादिना नाश्यत्वं धर्मस्य न स्यात्, नहि तेन यागादेर्नाशः प्रतिबन्धो वा कर्तुं शक्यते तस्य पूर्वमेव वृत्तत्वादिति भावः ।

(१) यदि धर्म नहीं माना जाय तो कर्मनाशा नदी के जल स्पर्शादि से नाश किस का होगा ? यागादि क्रिया का नाश या अनुत्पाद उस के जल स्पर्शादि से नहीं हो सकता है । क्योंकि यागादि क्रिया तो पूर्व ही नष्ट हो गई है ।

(२) एतेन देवताप्रीतेरेव फलत्व मित्यपास्तम् । (३) गंगास्नानादौ सर्वत्र देवताप्रीतेरसंभवाच्च । (४) देवतायाश्चेतनत्वेऽपि तत्प्रीतेरनुद्देश्यत्वात् । (५) प्रीतेः सुखस्वरूपत्वेन विष्णुप्रीत्यादौ तदसम्भवात् जन्यसुखादेस्तत्राभावात् । (६) तेन विष्णुप्रीतिजन्यत्वेन पराभिमतस्वर्गादिरेव विष्णुप्रीतिशब्देन लक्ष्यते ।

(२) किसी का मत है कि यागादि क्रिया का देवताप्रीति ही फल है अतः धर्म मानना व्यर्थ है। यह भी पूर्वोक्त ही उत्तर से खण्डित हो गया। क्योंकि यदि धर्म नहीं माना जाय तो उक्त जल स्पर्श से नाश किस का होगा। देवता की प्रीति जल स्पर्श का व्यधिकरण है इस कारण उस से देवता प्रीति का नाश होना असम्भव है। (३) एवं गंगास्नानादि क्रिया से देवता की इष्टसिद्धि कुछ नहीं होने के कारण उनकी प्रीति होना असम्भव है। (४) और दूसरी यह भी युक्ति है कि देवता को चेतन मानने पर भी देवता प्रीति उद्देश्य नहीं रहने के कारण उसे क्रिया का फल कैसे मान सकते हैं। (५) एवं प्रीति सुख विशेष रूप है। ईश्वरात्मक विष्णु में यदि सुख माना भी जाय तथापि उन में जन्यसुख की सम्भावना नहीं है। अतः उनका नित्यसुख यागादि क्रिया का फल किस प्रकार हो सकेगा! (६) अतः विष्णुप्रीति शब्द से लक्षणया विष्णुप्रीति जन्य मीमांसकाभिमत स्वर्गादि ही का बोध होगा।

का० १६३।

अधर्मो नरकादीनां हेतुर्निन्दितकर्मजः।

प्रायश्चित्तादिनाश्योऽसौ जीववृत्ती त्विमौ गुणौ॥

का० अर्थ।

श्रुति स्मृति निषिद्ध कर्म से उत्पन्न होने वाला अधर्म नरकादि सकल दुःखों का कारण है और प्रायश्चित्तादि से नाश्य है। एवं धर्म अधर्म दोनों जीवात्मा में रहते हैं।

(१) अधर्म इति। नरकादिसकलदुःखानां नारकीयशरीरादीनां च साधनमधर्म इत्यर्थः।

(१) अधर्म नरकादि सकल दुःख एवं नारकीय शरीर का कारण है।

तत्र प्रमाणमाह = अधर्म में प्रमाण कहते हैं।

(१) प्रायश्चित्तेति। यदि ह्यधर्मो न स्यात्तदा प्रायश्चित्तादिनाश्यत्वं न स्यात। (२) नहि तेन ब्रह्महननादीनां नाशः प्रतिबन्धो वा विधातुं शक्यते। तस्य पूर्वमेव विनष्टत्वादिति भावः। (३) जीवेति। ईश्वरस्य धर्मा धर्मा भावादिति भावः।

(१) यदि अधर्म नहीं माना जाय तो प्रायश्चित्तादि कर्मों से नाश किस का होगा। अतः अधर्म मानना आवश्यक है। (२) प्रत्यक्ष हननादि रूप पापोत्पादक क्रियाओं का नाश या अनुताप प्रायश्चित्त से नहीं हो सकता है क्योंकि वह पूर्व ही नष्ट हो गया है। (३) धर्म तथा अधर्म ईश्वर में नहीं रहने के कारण जीव मात्र में रहता है।

का० १६४ पूर्वा०।

इमौ तु वासनाजन्यौ ज्ञानादपि विनश्यतः ।

का० अर्थ ।

धर्म और अधर्म, मिथ्याज्ञानजन्य वासना से उत्पन्न होते हैं और तत्वज्ञान से नष्ट होते हैं।

(१) इमौ धर्माधर्मौ। वासनेति। अतो ज्ञानिना कृते अपि सुकृतदुष्कृतकर्मणी न फलायालमिति भावः ।

(१) धर्म तथा अधर्म मिथ्या ज्ञानजन्य वासना से उत्पन्न होते हैं अतः तत्वज्ञानियों को वासना का अभाव रहने के कारण उन से किये हुए यागादि रूप सुकृत एवं गो वधादि रूप दुष्कृत कर्मों से धर्माधर्म नहीं उत्पन्न होते हैं।

(२) ज्ञानादपीति। अपिना भोगपरिग्रहः। (३) ननु तत्त्वज्ञानस्य कथं धर्माधर्मनाशकत्वं 'नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि' इति वचन विरोधात्, इत्थं च तत्त्वज्ञानिनां झटिति कायव्यूहेन सकलकर्मणां भोगेन क्षय इति चेन्न। तत्र भोगस्य वेदबोधितनाशकोपलक्षकत्वात्। कथमन्यथा प्रायश्चित्तादिना कर्मणां नाशः। तदुक्तम्। 'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि' इत्यादिना। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे'। इति।

(२) "ज्ञानादपि" इस वाक्य में आया हुआ "अपि शब्द भोग का बोधक है। (३) यहां कुछ लोग ऐसी शंका करते हैं, कि तत्व ज्ञान में यदि "धर्माधर्म नाशकत्व माने तो भोग के बिना धर्माधर्म का नाश नहीं होता है इस बात को बताने वाला "नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटि शतैरपि" यह वचन विरुद्ध हो जायगा। अतः तत्त्वज्ञानियों के कायव्यूह (सकल धर्माधर्मजन्य भोगार्थ एक कालावच्छेदेन उत्पादित बहु शरीरों) से अति शीघ्र सकल कर्मों का भोग द्वारा नाश होता है। परन्तु यह ठीक नहीं है क्योंकि "नाभुक्तं क्षीयते कर्म" इत्यादि वचन में आया हुआ भुज धातु वेदबोधित अदृष्ट नाशक

अन्य वस्तुओं का भी वोधक है। तब तत्त्व ज्ञान को भी वेदबोधित अदृष्ट नाशक वस्तु विशेष रूप होने के कारण तत्त्व ज्ञान से धर्माधर्म का नाश मानने पर भी उक्त वचन का विरोध नहीं हो सकता है। यदि भो मात्र ही से धर्माधर्म का नाश माना जाय तो प्रायश्चित्तादि को भी पाप नाशकत्व नहीं होगा। अतएव भगवद्गीता में तत्त्वज्ञान को धर्माधर्म नाशकत्व प्रतिपादन करते हुए श्रीकृष्ण भगवान् अर्जुन के प्रति कहा है कि "ज्ञानाग्निः सर्वे कर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन" एवं श्रुति में भी "क्षीयन्ते चास्य कर्माणि" इत्यादि वाक्य से ईश्वर साक्षात्कार प्राप्त करने वाले पुरुषों के धर्माधर्म नष्ट हो जाते हैं। यह कथन भी संगत हो जाता है।

(४) ननु तत्त्वज्ञानिनस्तर्हि शरीरावस्थानं सुखदुःखादि च न स्याज्ज्ञानेन सर्वेषां कर्मणां नाशादिति चेन्न। प्रारब्धेतरकर्मणामेव नाशात्। (५) तत्तच्छरीरभोगजनकं हि यत्कर्म तत्प्रारब्धं तदभिप्रायकमेव नाभुक्तमिति वचनमिति।

(४) यदि आप शंका करें कि तत्त्वज्ञानिओं के तत्त्व ज्ञान से सकल धर्माधर्म नष्ट हो जाने के कारण शरीर की स्थिति नहीं रहेगी और सुख दुःख भी नहीं होंगे। लेकिन यह ठीक नहीं है। क्योंकि तत्त्वज्ञान से प्रारब्धेतर कर्म ही का नाश हो सकता है। (५) तत्तत् शरीर के द्वारा भोग के जनक कर्म हीं को प्रारब्ध कर्म कहते हैं। प्रारब्ध कर्म का नाश भोग के विना नहीं होता है। इसी में "नाभुक्तं क्षीयते कर्म" इत्यादि वचन का तात्पर्य है। "ज्ञानाग्नि रित्यादि" "क्षीयन्ते" चास्यकर्माणि इत्यादि दोनों वचनों में कर्म पद प्रारब्धेतर कर्म का वोधक है। अतएव इन दोनों वचनों का नाभुक्तं क्षीयते कर्म इत्यादि वचन से विरोध नहीं होता है।

शब्दं निरूपयति = शब्द का निरूपण करते हैं।

का० १६४, १६५, १६६ पूर्वा०।

शब्दो ध्वनिश्च वर्णश्च मृदंगादि भवो ध्वनिः॥
कण्ठसंयोगादिजन्या वर्णास्ते कादयो मताः।
सर्वः शब्दो नभोवृत्तिः श्रोत्रोत्पन्नस्तु गृह्यते॥
वीचीतरंगन्यायेन तदुत्पत्तिस्तु कीर्तिता।

का० अर्थ।

ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक के भेद से शब्द दो प्रकार के होते हैं। उन में मृदगादिजन्य शब्द ध्वन्यात्मक है और कण्ठ सयोगादिजन्य ककाराद्यात्मक शब्द वर्णात्मक

है। ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक दोनों प्रकार के शब्द आकाश में समवेत हैं और श्रोत्रेन्द्रिय में उत्पन्न होने पर ज्ञात होते हैं। वीचीतरंगन्याय से शब्द की उत्पत्ति होती है।

(१) शब्द इति। नभोवृत्ति राकाशसमवेतः। दूरस्थशब्दस्याग्रहणादाह श्रोत्रेति। (२) ननु मृदंगाद्यवच्छेदेनोत्पन्ने शब्दे श्रोत्रे कथमुत्पत्तिरत आह वीचीति। (३) आद्यशब्दस्य वहिर्दशदिग वच्छिन्नोऽन्यः शब्दस्तेनैव शब्देन जन्यते। (४) तेन चापरस्तद्व्यापकः। एवं क्रमेण श्रोत्रोत्पन्नो गृह्यत इति।

(१) दूरस्थित शब्दों का ज्ञान नहीं होने के कारण कहा गया है कि श्रोत्र में उत्पन्न होने पर शब्द ज्ञात होते हैं। (२) मृदंगाद्यवच्छेदेन उत्पन्न शब्दों की उत्पत्ति श्रोत्रमें किस प्रकार होगी ? अतः "वीचीत्यादि" शब्द से कहते हैं कि (३) अभिघातादिजन्य प्रथम शब्द से बाहर दश दिग् देशावच्छेदेन व्यापक द्वितीय शब्द उत्पन्न होता है। (४) एवं द्वितीयादि शब्दों से भी दश दिशाओं में तत्तद्व्यापक शब्दान्तर की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार जो शब्द श्रोत्रेन्द्रिय में उत्पन्न होता है वह ज्ञात होता है।

का० १६६ उत्त०।

कदम्बगोलकन्यायादुत्पत्तिः कस्यचिन्मते ॥

का० अर्थ।

किसी के मत से कदम्बगोलक न्याय से शब्द की उत्पत्ति होती है।

(१) कदम्बेति। आद्यशब्दाद्दशदिक्षु दशशब्दा उत्पद्यन्ते। तैश्चान्ये दश शब्दा उत्पद्यन्त इति भावः। (२) अस्मिन्मते गौरवादुक्तं-कस्यचिन्मत इति।

(१) अभिघातादि जन्य प्रथम शब्द से दशों दिशाओंमें दश शब्द उत्पन्न होते हैं। और उन दश शब्दों के प्रत्येक २ शब्द से दश २ शब्द दशों दिशाओं में उत्पन्न होते हैं। (२) इस पक्ष में बहु शब्दों की कल्पना प्रयुक्त कल्पना गौरव होने के कारण इस पक्ष में अस्वरस सूचन करने के लिये कारिका में " कस्यचिन्मते " इस पद का उल्लेख किया गया है।

ननु शब्दस्य नित्यत्वादुत्पत्तिकथनमसंगतमत आह =

शब्द को नित्य होने के कारण उस की उत्पत्ति का कथन असंगत है अतः कहते हैं।

का० १६७ ।

उत्पन्नः को विनष्टः क इति बुद्धेरनित्यता ।
सोऽयं क इति बुद्धिस्तु साजात्यमवलम्बते ॥

का० अर्थ ।

ककारादि शब्दों के उत्पाद विनाश की प्रतीति होने के कारण शब्द में अनित्यता मानी जाती है । यह वही ककार है जिस को पूर्व में सुन चुका हूँ यह प्रतीति पूर्व श्रुत ककार के सजातीय ककार को विषय करती है ।

(१) उत्पन्न इति । शब्दानामुत्पादविनाश प्रत्ययशालित्वादनित्यत्वमित्यर्थः (२) ननु स एवायं ककार इत्यादि प्रत्यभिज्ञानाच्छब्दानां नित्यत्वम्, इत्थं चोत्पादविनाशबुद्धिर्भ्रमरूपैवेत्यत आह । (३) सोऽयंकइति । साजात्यमिति । तत्र प्रत्यभिज्ञानस्य तत्सजातीयत्वंविषयो न तु तद्व्यक्त्यभेदो विषयः । उक्त प्रतीतिविरोधात् । इत्थं च द्वयोरपि प्रतीत्योर्न भ्रमत्वमिति ।

(१) कारिकार्थ ही से स्पष्ट है । (२) यहां ऐसी, शंका होती है कि " स एवायं ककारः " इत्यादि प्रत्यभिज्ञा होने के कारण शब्द को नित्य मानना होगा । अतः शब्द में उत्पाद विनाश की प्रतीति भ्रम रूप ही है इस के उत्तर में कहते हैं कि– (३) "सोऽयंककारः' इत्यादि प्रत्यभिज्ञा, पूर्वश्रुत ककार के सजातीय अन्य ककार को विषय करती है। किन्तु पूर्व श्रुत ककारको विषय नहीं करती है क्योंकि उक्त प्रतीति मेंपूर्व श्रुत ककार को विषय मानने पर ककारादि शब्दों में उत्पाद विनाश की प्रतीति विरुद्ध हो जायगी। पूर्व श्रुत ककार के सजातीय ककार को विषय मानने पर " सोऽयं ककारः " और "उत्पन्नः ककारः" इन दोनों प्रतीतियोंमें किसी को भी भ्रम रूप नहीं मानना पड़ता है ।

ननु सजातीये सोऽयमिति प्रत्यभिज्ञा कुत्र दृष्टेत्यत आह=

पूर्वानुभूत व्यक्ति के सजातीय को विषय करने वाली " सोऽयम् इत्याकारक प्रत्यभिज्ञा आपने कहां देखी है । इस प्रश्न का समाधान करते हैं ।

का० १६८ ।

तदेवौषधमित्यादौ सजातीयेऽपि दर्शनात् ।
तस्मादनित्या एवेति वर्णाः सर्वे मतं हि नः ॥

भा० प्रकाश ।

जिस औषध को मैंने किया था वही औषध दूसरे से किया गया है। इत्यादि स्थल में अन्यकृत औषध को स्व कृत औषध से भिन्न रहने पर भी उस की प्रत्यभिज्ञा होने के कारण उस प्रत्यभिज्ञा को सजातीय विषयक अवश्य मानना होगा। अतः ध्वन्यात्मक एवं वर्णात्मक सभी शब्द अनित्य ही हैं। यह हम नैयायिकों का सिद्धान्त है।

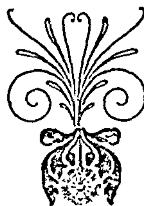
(१) तदेवेति। यदौषधं मयाकृतं तदौषधमन्येनापि कृतमित्यादि दर्शनादिति भावः।

इति सिद्धान्त मुक्तावली समाप्ता ॥

(१) कारिकार्थ से स्पष्ट है।

इति श्री चन्द्रधारिसिंहकृता चन्द्रिका टीका समाप्ता

—:०:—



चि० १ — का० २—१३ — १

पदार्थ ७ हैं।

(१) द्रव्य — नवप्रकार
(१) पृथ्वी (२) जल (३) तेज (४) वायु (५) आकाश (६) काल (७) दिशा (८) आत्मा (९) मन

(२) गुण — चौबीस प्रकार
(१) रूप (२) रस (३) गन्ध (४) स्पर्श (५) संख्या (६) परिमाण (परिमिति) (७) पृथक्त्व (८) संयोग (९) विभाग (१०) परत्व (११) अपरत्व (१२) बुद्धि (१३) सुख (१४) दुःख (१५) इच्छा (१६) द्वेष (१७) कृति (यत्न) (१८) गुरुत्व (१९) द्रवत्व (२०) स्नेह (२१) संस्कार (२२) धर्म (२३) अधर्म (२४) शब्द

(३) कर्म — पांचप्रकार
(१) उत्क्षेपण (२) अपक्षेपण (३) आकुञ्चन (४) प्रसारण (५) गमन (गमन ही में भ्रमण, रेचन, स्पन्दन, उर्ध्वज्वलन, तीर्यगमन ये पांचभी गृहीत हैं।

(४) सामान्य (जाति) — द्रव्य, गुण, कर्म पर रहता है। त्रिविध अथवा द्विविध
(१) पर (सत्ता) (२) अपर (घटत्वादिक) (३) परापर (द्रव्यत्वादि)

(५) विशेष — अनन्त — परमाण्वादि नित्य द्रव्यों के परस्पर भेदक धर्म विशेष

(६) समवाय — एकमात्र — नित्य सम्बन्ध रूप।

(७) अभाव — दो प्रकार
संसर्गाभाव — त्रिविध
(१) प्रागभाव (अनित्य) (२) प्रध्वंसाभाव (अनित्य) (३) अत्यन्ताभाव (नित्य)
अन्योन्याभाव (नित्य)

चि० २ क — का० १९–२३

कार्यकारण विचार

अन्यथासिद्ध भिन्न नियत पूर्ववर्ती कारण है। — प्राग्भाव प्रतियोगी कार्य है — घटादि

१ समवायि — द्रव्यमात्र समवायि कारण होता है। (कपालादि)
(२) असमवायि — गुणकर्म से भिन्न नहीं होता है। (कपालद्वय संयोग)
(३) निमित्त — अणु परिमाण, आत्मातिरिक्त के परम महत्परिमाण, अतिन्द्रिय सामान्य विशेष इन चार से भिन्न पदार्थमात्र निमित्त कारण होते हैं। (व्यापारवत् असाधारण कारण कारण यथा दण्डादि)

चि० २ ख

अन्यथा सिद्ध, कार्य विचार।

अन्यथा सिद्धि — का पंच

(१) दण्डत्व (२) दण्डरूप (३) आकाश (४) कुलाल पिता (५) गर्दभादि (यह पांचवा आवश्यक है)

चि० ३

का० ३५-३८

२

का० १०४।

(१) पृथ्वीमात्र; वृत्ति काठिन्य और सुकुमार स्पर्श दोनो हैं।

का० १०५।

(२) पाकज, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, ये चार केवल पृथ्वी में रहते हैं। किन्तु सकल पृथ्वी में नहीं।

(गन्ध का समवायि कारण)

क्षिति है।

पाकज अनुष्णाशीत स्पर्शादि, वेग, रूप (सप्तविध नैमित्तिक द्रवत्व, गुरुत्व, रस (षड्विध) गन्ध (द्विविध) और स्थितिस्थापक संस्कार, ये समवाय सम्वन्ध से पृथ्वी में रहते हैं।

(१) नित्य (परमाणु रूप)
(२) पृथ्वी परमाणु में रूप नित्य नहीं है
(३) वैशेषिक मत से परमाणुमात्र में पाक और न्याय मत से अवयवीमें भी पाक का० १०५ १०६,

(२) अनित्य (परमाणु से भिन्न यही अवयववती कहाती है) द्व्यणुकादि ही कार्य रूप पृथ्वी हैं

(१) शरीर द्विविध

(२) इन्द्रिय { घ्राण ग्राहक गन्धका है }

(३) विषय { द्व्यणुकादि से ब्रह्माण्ड पर्यन्त }

(१) योनिज

(२) अयोनिज

[१] जरायुज (मनुष्यादि)

[२] अण्डज (पक्षी प्रभृति)

[१] स्वेदज (मशकादि)

[२] उद्भिज्ज (वृक्ष के अङ्कुरादि)

चि० ४

का० ३९-४०

(स्नेह का समवायि कारण)

जल है

[१] अभास्वर शुक्ल रूप [२] मधुर रस [३] शीतस्पर्श [४] संख्या [५] परिमाण [६] पृथक्त्व [७] संयोग [८] विभाग [९] परत्व [१०] अपरत्व [११] गुरुत्व [१२] सांसिद्धिक द्रवत्व [१३] स्नेह [१४] वेग ये १४ गुण समवाय सम्बन्ध से जल में रहते हैं।

- [१] नित्य [परमाणु रूप]
- [२] अनित्य [परमाणु से भिन्न]
  - [१] शरीर { अयोनिज और वरुण लोकमें प्रसिद्ध है }
  - [२] इन्द्रिय { रस ग्राहक रसना }
  - [३] विषय { हिमादि जलमात्र है }

चि० नं० ५

का० ४१-४२

(उष्णस्पर्श का समवायिकारण)

तेज है।

[१] भास्वर शुक्ल रूप [२] उष्णस्पर्श [३] संख्या [४] परिमाण [५] पृथक्त्व [६] संयोग [७] विभाग [८] परत्व [९] अपरत्व [१०] नैमित्तिक द्रवत्व [११] वेग ये ११ गुण समवाय सम्बन्ध से तेज में रहते हैं।

- [१] नित्य [परमाणु रूप]
- [२] अनित्य [परमाणु से भिन्न]
  - [१] शरीर — अयोनिज सूर्य लोक में प्रसिद्ध है
  - [२] इन्द्रिय — रूप ग्राहक नयन
  - [३] विषय
    - (१) भौम (वह्न्यादि)
    - (२) दिव्य (विद्युदादि)
    - (३) औदर्य (उदरस्थ अग्नि)
    - (४) आकरज (सुवर्णादि)

चि० न० ६ का० ४२-४४

अपाकज अनुष्णाशीतस्पर्श का समवायि कारण वायु है।

(१) अपाकज अनुष्णाशीत त्रिलक्षण स्पर्श (२) संख्या (३) परिमाण (४) पृथक्त्व (५) संयोग (६) विभाग (७) परत्व (८) अपरत्व (९) वेग।

ये ९ गुण समवाय सम्बन्ध से पवन में रहते हैं।

(१) नित्य — परमाणु रूप

(२) अनित्य — (परमाणु से भिन्न)

(१) शरीर — { अयोनिज शरीर पिशाचादि का }

(२) इन्द्रिय — { स्पर्श ग्राहक त्वक् }

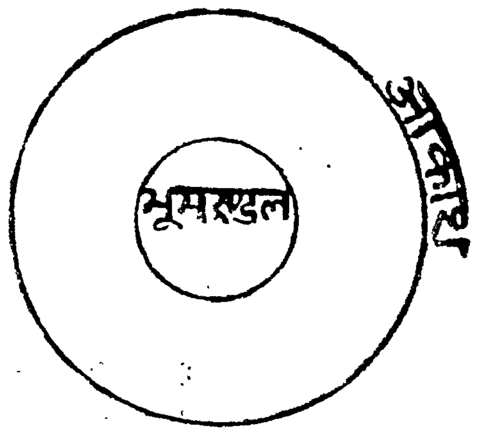
(३) विषय — { प्राणादि ५महा वायु पर्यन्त }

चि० न० ७ का० ४४-४५ ४

(शब्द का समवायि कारण) आकाश है।

(१) आकाश एक है।
(२) किन्तु उपाधि भेद से नाना प्रतीत होता है।
(३) नित्य है।
(४) परममहत् परिमाणवत् है।
(५) इस का इन्द्रिय श्रोत्र है।

(१) संख्या (२) परिमाण (३) पृथक्त्व (४) संयोग (५) विभाग (६) शब्द ये ६ गुण समवाय सम्बन्ध से आकाश में रहते हैं।



चि० नं० ८ का० ४५-४६

(अतीतादि व्यवहार का असाधारण कारण) काल है।

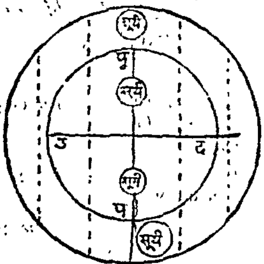
(१) जन्य मात्र का जनक है।
(२) कालिक सम्बन्धेन संसार का आश्रय है।
(३) विभु है।
(४) नित्य है।

(१) संख्या (२) परिमाण (३) पृथक्त्व (४) संयोग (५) विभाग।
ये ५ गुण समवायेन काल में रहते हैं।

यद्यपि एक होने पर भी उपाधि भेद से नाना प्रतीत होता है।

(१) भूत (२) भविष्यत् (३) वर्तमान

दक्षिणायन उत्तरायण



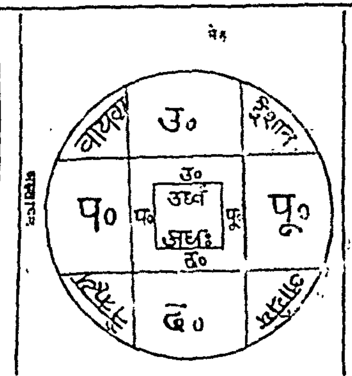
टि० (२) बिन्दु पंक्ति सूर्य-मार्ग प्रदर्शक है।
(१) सूर्य के परिस्पन्द से क्षणादि व्यवहार होता है।

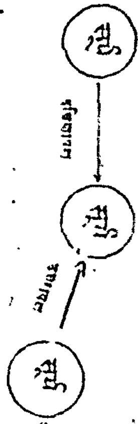
चि० नं० ९ का० ४६-४७

(पूर्वादि व्यवहार का हेतु) दिक् है।

(१) नित्य है।
(२) एक है।
(३) किन्तु उपाधि भेद से नाना ज्ञात होता है।
(४) परम महत् परिमाणवाला है।

संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, और विभाग ये ५ गुण समवाय सम्बन्धेन दिग्वृत्ति हैं।





चि० न० १०   का० ४७-५१

(ज्ञानाधि करण)

आत्मा है ।

(१) जीवात्मा

(क) संसारी है

(ख) शरीर भेद से भिन्न २ है

(ग) अपरिछिन्न है।

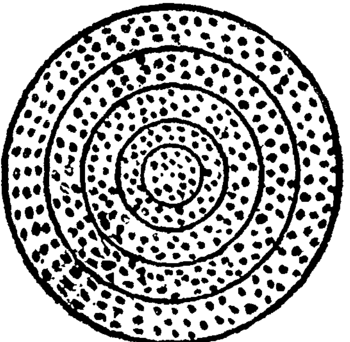
(घ) नित्य है

(ङ) वन्ध और मोक्षका भागी है।

संसारावस्था में

(१) संख्या (२) परिमाण (३) पृथक्त्व (४) संयोग (५) विभाग (६) बुद्धि (७) सुख (८) दुःख (९) इच्छा (१०) द्वेष (११) प्रयत्न (१२) भावना (१३) धर्म (१४) अधर्म ये १४ गुणसमवाय सम्बन्धसे जीवात्मामें रहतेहैं

(१) संसारावस्था



(१) सुख दुःख का सम्बन्ध संसारावस्था है।

(२) आत्माही चैतन्याश्रय है। शरीर इन्द्रिय, मन नहीं है।

(३) क्षणिक विज्ञान नहींहै नित्य विज्ञान नहीं हैं प्रकृति कर्त्री नहीं है। दूसरे की आत्मा उसकी प्रवृत्ति से अनुमेय है। किन्तु अपनी आत्मा "अहम्" इत्याकारक मानस प्रत्यक्ष विषय है।

(२) मोक्षावस्था

(१) शरीर से रहित मुक्तावस्था होती है

(२) उस समय आत्मा में संख्यादि ५ गुण मात्र रहते हैं।

(३) आत्यन्तिक दुःख निवृत्तिमोक्ष है।

(४) यह मोक्ष जीव शरीर के भेद प्रत्यक्ष ही से प्राप्य है।

टि० विन्दु आनन्त्य सूचक है।

(२) परमात्मा

(१) परमात्मा एकहै। (२) सर्वज्ञ है।

(३) अपरिच्छिन्न है। (४) सृष्टि, स्थिति लय इनतीनों का निमित्त कारण है।

(५) ईश्वर का तत्वज्ञान साक्षात या पुण्य द्वारा जीव शरीर भेद प्रत्यक्ष मे ऊपयुक्त है।

(६) परमात्मा मे अदृष्ट और शरीर नहीं रहने के कारण सुख दुःख ऊत्पन्न नहीं होता है।

(१) संख्या (२) परिमाण (३) पृथक्त्व (४) संयोग (५) विभाग (६) बुद्धि (७) इच्छा (८) यत्न ये ८ गुण समवाय सम्बन्ध से ईश्वरमे हैं

(टि०)

ईश्वर की बुद्धि, इच्छा कृति ये ३ नित्य हैं, एक एक हैं, सर्व विषयक हैं और अविकल भी हैं।

सर्व विषयक नित्य ज्ञानवान परमात्मा

चि० न० ११ ७

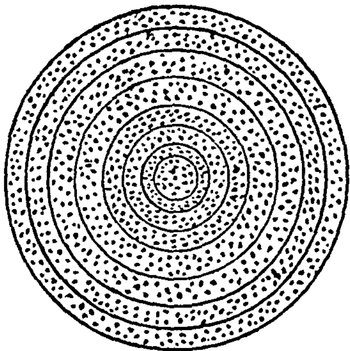
का० ८५

सुखादि के उपलब्धि का साधन कर्त्ता इन्द्रिय मन है।

(१) अणु रूप है।
(२) अनन्त है।
(३) आत्म भेद से भिन्न २ है।
(४) नित्य है।

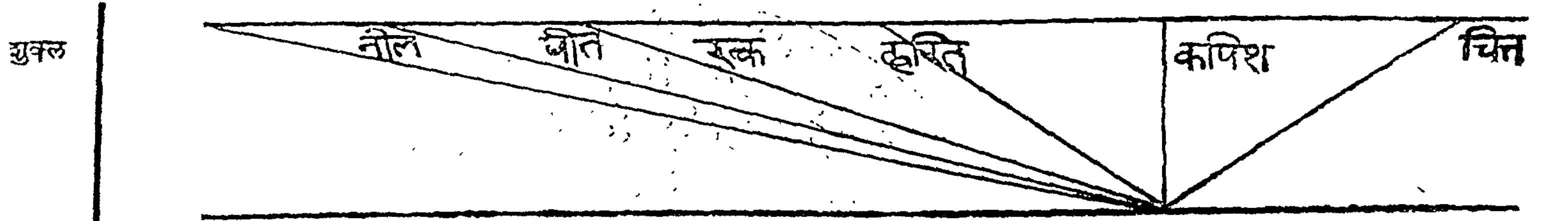
(१) संख्या (२) परिमाण (३) पृथक्त्व (४) संयोग (५) विभाग (६) परत्व (७) अपरत्व (८) वेग।

ये ८ गुण समवाय सम्बन्ध से मन में रहते हैं।



व्यक्ति भेद से मन अनन्त है।

टि० बिन्दु आनन्त्य सूचक है।



(१) शुक्ल
- (१) भास्वर (तेज)
  - (१) पाकज — अप्रसिद्ध
  - (२) अपाकज (तेज)
    - (१) उद्भूत (अनित्य; नित्य) (जन्य तेज, तेजपरमाणु रूप)
    - (२) अनुद्भूत (नित्य अनित्य
      - (१) नित्य — अप्रसिद्ध
      - (२) अनित्य — अप्रसिद्ध
- (२) अभास्वर (जल पृथ्वी मे)
  - (१) पाकज (पृथ्वी)
    - (१) उद्भूत — नि० अप्र० अनि. पृथ्वी
    - (२) अनुद्भूत — नि० अप्र० अनि. पृथ्वी
  - (२) अपाकज जल (कचित्पृथ्वी)
    - (१) उद्भूत — नि. जल पर अ. जन्यजल
    - (२) अनुद्भूत — नि. चक्षु पर अ. चक्षुरूप.

(२)–(७) नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश, चित्र
- (१) भास्वर (अप्रसिद्ध
- (२) अभास्वर
  - (१) पाक
    - (१) उद्भूत { नि० अप्र० अनि० जन्यपृ. }
    - (२) अनुद्भूत (अप्र सिद्ध)
  - (२) अपाकज — अप्रसिद्ध

रूप पर विचार ।

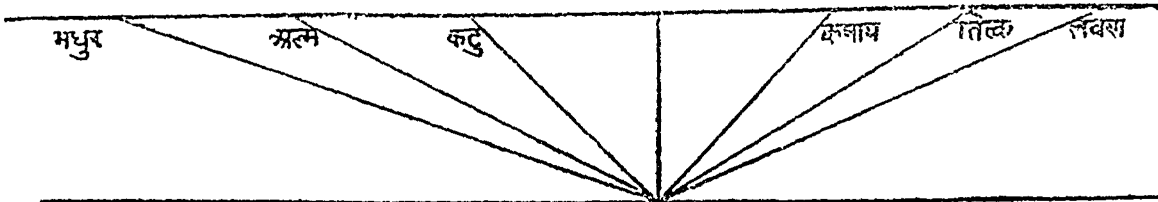
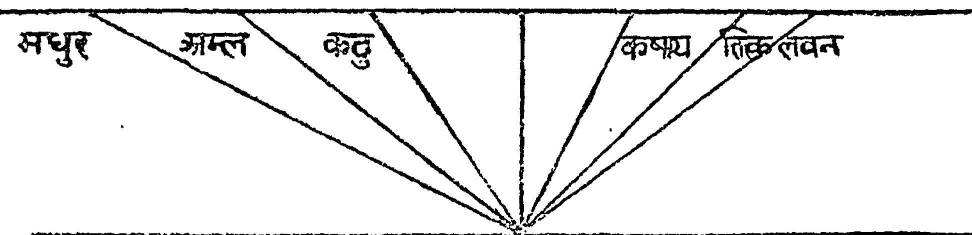
(१) पृथ्वी, जल और तेज के प्रत्यक्ष मे कारण है।
(२) चक्षुरिन्द्रिय ग्राह्य है।
(३) चक्षु का सहकारी है।
(४) पृथ्वी, जल और तेज मे रहता है
(५) विशेष गुण है।
(६) पृथ्वी मे पाकज और-जल तेजों मे अपाकज रूप रहते हैं।
(७) असमवायि एवं निमित्त कारण हैं।
(८) नित्य अनित्य दोनो हैं पाकाश्रय पृथ्वी मे अनित्य अन्यत्र नित्यगत नित्य तद्भिन्न अनित्य हैं।
(९) शुक्लादि सात प्रकार के हैं।
(१०) अपाकज रूप कारण गुणपूर्वक है।
(११) पाकज अकारण गुणपूर्वक है।
(१२) पृथिव्यादि ३से जन्य है।
(१३) पृथ्वी, जल और तेज वृत्ति गुणादि का समानाधिकरण है
(१४) उक्त द्रव्य मे अवृत्ति गुणादि के साथ वैयधिकरण्य है।
(१५) चक्षुःसंयुक्तसमवाय से ग्राह्य है।
(१६) समवाय सम्बन्ध से रहता है।
(१७) रूपत्वप्रतियोगिक मवायानुयोगी है।
(१८) रूपाश्रयनिष्ठ समवायादि का प्रतियोगी है।
(१९) अकर्मज है।
(२०) व्याप्यवृत्ती है (किसी के मत से अव्याप्यवृत्ती है)।
(२१) पृथिव्यादि ३ का साधारण धर्म है।
(२२) इन तीनों से भिन्न मे नहीं रहता है।
(२३) द्रव्यादि प्रत्यक्ष मे कारण है। का० १००
(२४) का० ३५ के उत्तरार्ध मुक्तावली मे "नव यत्न" इत्यादि ग्रन्थ और अपर परिष्कृत लक्षण मे स्वरस आता है कि अपाकज पृथ्वी भी कम है।

टि० भास्कर नीलादि रूप शनिग्रहादियों मे पाया जाता है।

रस पर विचार ।

(१) स्व प्रत्यक्ष मे कारण है।
(२) रसना से ग्राह्य है।
(३) रसना का सहकारी है।
(४) पृथ्वी, जल मे रहता है।
(५) विशेष गुण है।
(६) पाकज अपाकज दोनों हैं।
(७) असमवायि और निमित्त कारण हैं।
(८) पृथ्वी मे अनित्य अन्यत्र नित्यगत नित्य, अनित्यगत अनित्यहै
(९) इस के ६ प्रभेद हैं।
(१०) अपाकज अनित्य रस कारण गुणपूर्वक है। और पाकज अकारण गुणपूर्वक है।
(११) पृथ्वी, जल से जन्य है।
(१२) पृथ्वी जल वृत्ती गुणादि के साथ सामानाधिकरण्य है वह तद् भिन्न के साथ वैयधिकरण्य है।
(१३) रसना संयुक्तसमवाय से ग्राह्य है।
(१४) समवाय सम्बन्ध से रहता है।
(१५) रसत्व प्रतियोगिक समवायादिका अनुयोगी है।
(१६) रसाश्रयनिष्ठ समवायादि का प्रतियोगी है।
(१७) अकर्मज है।
(१८) व्याप्यवृत्ती है।
(१९) पृथ्वी, जल का साधारण धर्म है।
(२०) इस से भिन्न मे नहीं रहता है।
(२१) पाकानाश्रय भी यदि पृथ्वी मानी जाय तो उस पृथ्वी मे रूप रसादियों की परावृत्ति नहीं होने के कारण वे अपाकज होंगे।
(२२) जल परमाणु का रस नित्य और सब अनित्य है।
(२३) मूर्त्ता गुण है।
(२४) पृथ्वी मे पाकज और जल मे अपाकज है।

चि० न० १२



रसना ग्राह्य गुण रस है।
(१) (२) (३) (४) (५) (६)
मधुर
अम्ल
कटु
कषाय
तिक्त
लवण
(१)
पाकज रस | पृथ्वी मात्रमे
(२)
अपाकज रस | जलमात्र मे
(१) (२) (३) (४) (५) (६)
मधुर
अम्ल
कटु
कषाय
तिक्त
लवन
(१)
नित्य
अप्रसिद्ध
(२)
अनित्य
परमाणुसे द्वयणुकादि
(१)
उद्भूत
मधु माधुर्य
(२)
अनुद्भूत
इक्षुरसादिगतं अम्ल रस
नित्य
(जल परमाणु)
(१)
उद्भूत
जल परमाणु
(२)
अनुद्भूत
इक्षुरस परमाणु गतअम्ल रस
अनित्य
(जल द्वयणुकादि)
(१)
उद्भूत
जलगत
(२)
अनुद्भूत
जन्यजल विशेषगत मधुर रस कदाचित हो सकता है

चि० न० १४ घ्राणग्राह्य गुण गन्ध है ।

(१) सौरभ
- (१) उद्भूत — पुष्पादिगत
- (२) अनुद्भूत — घ्राणादिगत

(२) असौरभ
- (१) उद्भूत — विकृत पदार्थ गत
- (२) अनुद्भूत — घ्राणादिगत

गन्ध पर विचार।

(१) स्व प्रत्यक्ष मे कारण है।
(२) घ्राणेन्द्रिय से ग्राह्य है।
(३) घ्राण का सहकारी है।
(४) पृथ्वी मे रहता है।
(५) विशेष गुण है।
६। मूर्त गुण है।
(७) असमवायि और निमित्त कारण है।
(८) अपाकज गन्ध कारण गुण पुर्वक है और पाकज अकारण गुण पुर्वक है।
(९) यह असमवायि कारण भी होता है।
(१०) पृथ्वी मे जन्य है।
(११) सौरभ असौरभ दो प्रभेद हैं।
(१२) घ्राण संयुक्त समवाय से ग्राह्य है।
(१३) समवाय सम्बन्ध मे रहता है।
(१४) अकर्मज है।
(१५) व्याप्यवृत्ति है।
(१६) पृथ्वी का असाधारण धर्म है।
(१७) इस से अतिरिक्तमे नहीं रहता है।
(१८) पाकज होने के कारण अनित्य है।
(१९) पृथ्वी वृत्तियों के साथ सामानाधिकरण्य है।
(२०) तद्भिन्नो के साथ वैयधिकरण्य है।
(२१) गन्धत्व प्रतियोगिक समवायादि का अनुयोगी है।
(२२) पृथ्वीनिष्ठ समवाय का प्रतियोगी है।

चि० नं० १५ त्वगिन्द्रिय मात्रग्राह्य गुण स्पर्श है ।

(१) शीत (जल)

(१) नित्य (जल परमाणु)
(१) उद्भूत — जलपरमाणु
(२) अनुद्भूत — रसनापरमाणु

(२) अनित्य (जल द्व्यणुकादि)
(१) उद्भूत — जलद्व्यणुकादि
(२) अनुद्भूत — रसनाद्व्यणु.

(२) उष्ण (तेज)

(१) नित्य (तेज परमाणु)
(१) उद्भूत — तेज परमाणु
(२) अनुद्भूत — चक्षु परमाणु

(२) अनित्य (तेज द्व्यणुकादि)
(१) उद्भूत — तेजद्व्यणुकादि
(२) अनुद्भूत — चक्षुद्व्यणुका.

(३) अनुष्ण शीत
पृथ्वी (कठिन अनुष्णाशीत)
वायु (विजातीय)

(१) नित्य — वायु परमाणु

(२) अनित्य
तदितर

(१) पाकज पृथ्वीगत
(१) उद्भूत — घटादिगत
(२) अनुद्भूत — घ्राणादिगत

(२) अपाकज वायुगत
(१) उद्भूत — वायुगत
(२) अनुद्भूत — त्वगिन्द्रिय

स्पर्श पर विचार।

(१) स्व प्रत्यक्ष मे कारण है।

(२) त्वगिन्द्रिय ग्राह्य है।

(३) त्वक् सहकारी है।

(४) पृथ्वी, जल, तेज और वायु मे रहता है।

(५) विशेष गुण है।

(६) पाकज एवं अपाकज है।

(७) असमवायि और निमित्त कारण है।

(८) जल, तेज, वायु के परमाणुगत नित्य अन्यत्र अनित्य है।

(९) शीत, उष्ण और अनुष्णाशीत के भेद से ३ प्रकार के हैं। जल मे शीत तेज मे उष्ण और पृथ्वी वायु मे अनुष्णाशीत स्पर्श रहते हैं। उस मे भी पृथ्वी मे पाकज और वायु मे अपाकज स्पर्श है।

(१०) मूर्त्त गुण है।

(११) अपाकज स्पर्श कारण गुणपूर्वक और अन्य स्पर्श अकारण गुणपूर्वक है।

(१२) पृथ्वी जल, तेज वायु से जन्य है।

(१३) त्वक् संयुक्त समवाय से ग्राह्य है।

(१४) स्पर्शत्व प्रतियोगिक समवाय का अनुयोगी है।

(१५) पृथिव्यादि चार के समवाय का प्रतियोगी है।

(१६) अकर्मज है।

(१७) व्याप्य वृत्ति है।

(१८) कठिन और सुकुमार स्पर्श पृथ्वी मात्र वृत्ति है।

(१९) जल, तेज, वायु के परमाणु का स्पर्श नित्य है अन्यत्र अनित्य है।

(२०) अपाकज स्पर्श असमवायि कारण होता है।

(२१) उष्ण स्पर्श असमवायि और निमित्त कारण भी होता है।

(२२) पृथ्वी, जल, तेज वायु [illegible] प्रतियोगी है.

चि० न० १६

गणना व्यवहार का असाधारण कारण संख्या है।

(एकत्व द्वित्वादिसे परार्धपर्यन्त)

(१) एकत्व

(१) नित्य — परमाणुओं मे एवं आकाशादि में रहती है.

(२) अनित्य — अनित्य द्रव्य घटादि मे

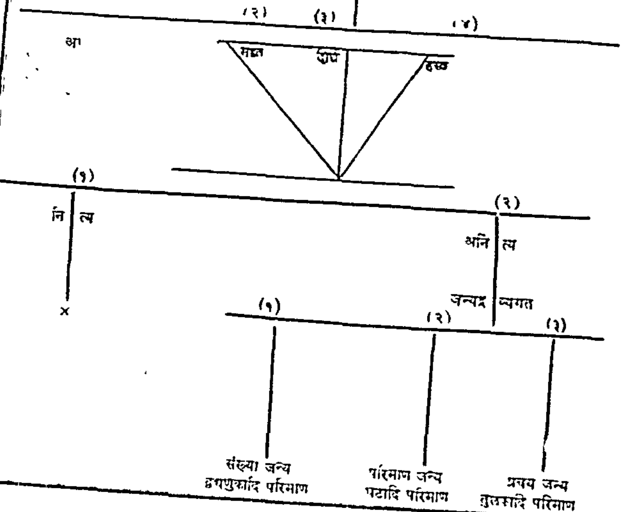
(२) द्वित्वादि परार्धान्त

(१) अनित्य मात्र होती है।

(२) अनित्य द्रव्य मे रहती है। और उस द्रव्य के नाश के साथ संख्या का भी नाश हो जाता है।

संख्या पर विचार।

(१) स्वकीय प्रत्यक्ष मे कारण है।
(२) चक्षु और त्वचासे ग्राह्य है।
(३) चक्षु त्वचा का सहकारी है।
(४) नव द्रव्य मे रहता है।
(५) सामान्य और मूर्त गुण है।
(६) अपाकज है।
(७) असमवायि निमित्त कारण है।
(८) एकत्व संख्या, असमवायि और निमित्तदोनोंकारणहैं द्वित्वादिअनित्यहैं
(९) अनन्त है।
(१०) एकत्व कारण गुणपूर्वकहै और द्वित्वादि अकारणगुणपूर्वक हैं
(११) द्रव्य से जन्य है।
(१२) परिमाण का जनक है।
(१३) सकल गुण से सामानाधिकरण्य है।
(१४) गुणत्वादि के साथ वैयधिकरण्य है।
(१५) त्वक् संयुक्त चक्षु–संयुक्त समवाय दोनोसे ग्राह्य है।
(१६) समवाय सम्बन्ध से रहता है।
(१७) संख्यात्व प्र० समवाय का अनुयोगी है।
(१८) द्रव्यानुयोगिक समवाय का प्रतियोगी है।
(१९) गणना व्यवहार का असाधारण कारण है।
(२०) नित्यगत एकत्व नित्य और अनित्यगत एकत्व अनित्य है।
(२१) व्यासज्यवृत्ति [धर्मद्वय समनियतवृत्ति] द्वित्वादि संख्यारूप धर्म अपेक्षा बुद्धिसे उत्पन्न होता है। एकाश्रय मे समवाय से अनेकाश्रय मे समवाय अन्यतर पर्याप्ति सम्बन्ध से रहती हैं और अपेक्षा बुद्धि एवं आश्रयके नाशसे नष्ट होतीहैं।



परिमाण पर विचार ।

(१) स्व प्रत्यक्ष में कारण है ।
(२) चक्षु और त्वचा दोनों से ग्राह्य है ।
(३) सभी द्रव्यों में रहता है
(४) सामान्य गुण है ।
(५ अपाकज है ।
(६) असमवायि निमित्त कारण है
(७) नित्यगत नित्य, अनित्यगत अनित्य है ।
(८) अणुत्व, दीर्घत्व, महत्त्व ह्रस्वत्व भेद से चतुर्विध है ।
(९) भूत, मूर्त, विभुओं का गुण है ।
(१० कारण गुणपूर्वक है ।
(११) संख्या, परिमाण प्रचयजन्य है ।
(१२) अनित्य परिमाण परिमाण का जनक है ।
(१३) गुण, कर्म जाति के साथ सामानाधिकरण्य है !
(१४) इन से भिन्न के साथ वैयधिकरण्य है ।
(१५) संयुक्त समवाय से प्रत्यक्ष होता है और समवाय सम्बन्ध से रहता है ।
(१६) परिमाणत्व प्र० समवाय का अनुयोगी है.
(१७) द्रव्य अनु. समवाय का प्रतियोगी है.
(१८) अकर्मज है ।
(१९) व्याप्यवृत्ति है ।
(२०) द्रव्यों का धर्म है.
(२१) गुणों में नहीं रहता है ।
(२२) अनुमान से ग्राह्य है ।

टि० प्रचय = शिथिलाख्य संयोग ।

चि० न० १८

पृथक्त्व इस प्रतीति का असाधारण कारण पृथक्त्व है।

(१) एकत्व

(२) द्वित्वादि — अनित्यमात्र

(१) नित्य — नित्यगत नित्य

(२) अनित्य — अनित्यगत अनित्य

(१) स्व प्रत्यक्ष में कारण है।
(२) चक्षु और त्वचा से ग्राह्य है।
(३) नव द्रव्यों मे रहता है।
(४) सामान्य गुण है।
(५) अपाकज है।
(६) असमवायि, निमित्त कारण है।
(७) एक पृथक्त्व नित्यगत नित्य और अनित्यगत अनित्य है। द्वि पृथ— क्त्वादि सर्वत्र अनित्य है।
(८) एक विध है।
(९) भूत, मूर्त, विभु तीनों का गुणहै
(१०) एक पृथक्त्व कारण गुणपूर्वक है द्वि पृथक्त्वादि अकारण गुणपूर्वकहै
(११) द्रव्य जन्य है।
(१२) पृथक् २ व्यवहार का असाधारण कारण है।
(१३) इनसे भिन्नकेसाथ वैयधिकरण्यहै
(१४) संयुक्त समवाय से ग्राह्य है।
(१५) समवाय सम्बन्ध से रहता है।
(१६) पृथक्त्वत्वप्र०समवायका अनुयोगीहै
(१७) द्रव्य अनु. समवायका प्रतियोगीहै
(१८) अकर्मज है।
(१९) व्याप्यवृत्ति है।
(२०) द्रव्योंका साधार्म्य;गुणोंका वैधर्म्यहै

चि० न० १९

दो द्रव्य पदार्थों के मेल का नाम संयोग है।

(१) एक कर्मज — श्येन शैलसंयोग

(२) उभय कर्मज — टक्कर

(३) संयोगज संयोग — कपाल वृक्ष संयोग से जो घट वृक्ष संयोग

[१] अभिघात (शब्दजनक) — नोदन (शब्दकाअनुत्पादक)

(१) स्व प्रत्यक्ष में कारण है।
(२) चक्षु और त्वचा से ग्राह्य है।
(३) सकल द्रव्यों मे रहता है।
(४) सामान्य गुण है।
(५) अपाकज है।
(६) असमवायि निमित्त कारण है।
(७) नित्य और अनित्य है।
(८) नित्यगत नित्य और अनित्यगत अनित्य और अनन्त है।
(९) अकारण गुणपूर्वक है।
(१०) द्रव्यजन्य है।
(११) संयोगज संयोग का जनक है।
(१२) द्रव्यत्व के साथ समानाधिकरण्यहै
(१३) संयुक्त समवाय से ग्राह्य है।
(१४) समवाय सम्बन्ध से रहता है :
(१५) संयोगत्व प्र० समवाय का अनुयोगी है।
(१६) कर्मज है।
(१७) अव्याप्यवृत्ति है।
(१८) द्रव्यों का धर्म है।
(१९) गुणादियों में नहीं रहता है।
(२०) कोई विभुओं का परस्पर संयोग नहीं मानते हैं।
(२१) गजादि के आकार का चक्षु और त्वक् संयुक्त समवायसे प्रत्यक्ष होता है। वह [आकार] अवयवों का आरम्भक संयोग रूप है।

चि० न० २०

(१) स्व प्रत्यक्ष मे कारण है ।
(२) चक्षु और त्वचा से ग्राह्य है ।
(३) सकल द्रव्यों मे रहता है ।
(४) सामान्य गुण है ।
(५) अपाकज है ।
(६) असम्वायि और निमित्त कारण है ।
(७) नित्यगत नित्य और अनित्यगत अनित्य है ।
(८) अनन्त है ।
(९) सकल द्रव्यों का गुण है ।
(१०) द्रव्य जन्य है ।
(११) अकारण गुणपूर्वक है ।
(१२) विभागज विभाग आदि का जनक है ।
(१३) द्रव्यत्व के साथ सामानाधिकरण्य और गुणत्वादि के साथ वैयधिकरण्य है ।
(१४) संयुक्त समवाय सम्बन्धसे ग्राह्य है ।
(१५) समवाय सम्बन्ध से रहता है ।
(१६) विभागत्व प्र० समवाय का अनुयोगी है ।
(१७) द्रव्य अनु. समवाय का प्रतियोगी है ।
(१८) कर्मज है ।
(१९) अव्याप्यवृत्ति है ।
(२०) द्रव्यों मे रहता है ।
(२१) गुणादियों मे नहीं रहता है ।

विभक्ति प्रत्यय का निमित्त विभाग है ।

(१) एक कर्मज — स्पन्दोल विभाग — शब्द का अनुत्पादक

(२) उभय कर्मज
- (१) शब्द जनक
- (२) शब्द जनक

(३) विभागज विभाग
- (१) कारण मात्र विभाग जन्य — एक कपालमे क्रिया से दो कपालों मे विभाग
- (२) कारण अ कारण विभाग जन्य — शरीरहस्तावि भागज विभाग

चि० न० २१

परव्यवहार का असाधारण कारण परत्व है ।

(१) कालिक (ज्येष्ठ)

(२) दैशिक (दूर)

(१) स्व प्रत्यक्ष में कारण है ।
(२) दैशिक परत्व चक्षु और त्वचा से ग्राह्य है ।
(३) कालिक परत्व अतीन्द्रिय है ।
(४) दैशिक परत्व, चाक्षुष, त्वाच ज्ञान सहकारी है । कालिक परत्व सहकारी नहीं है ।
(५) मूर्त में रहता है ।
(६) सामान्य गुण है ।
(७) अपाकज है ।
(८) असमवायि और निमित्त कारण है ।
(९) नित्यगत नित्य, अनित्यगत अनित्य है ।
(१०) द्विविध है ।
(११) भूत, मूर्त दोनो का गुण है ।
)१२) अकारण गुणपूर्वक है ।
(१३) मूर्त द्रव्य जन्य है ।
(१४) परत्व व्यवहार का असाधारण कारण है ।
(१५) मूर्त द्रव्यनिष्ठ धर्म्मों के साथ सामानाधिकरण्यहै
(१६) इन से भिन्न के साथ वैयधिकरण्य है ।
(१७) संयुक्त समवाय सम्वन्ध से ज्ञेय है ।
(१८) समवाय सम्बन्ध से रहता है ।
(१९) परत्वत्व प्रतियोगिक समवाय का अनुयोगी है
(२०) स्वाश्रयानुयोगिक समवाय प्रतियोगी हैं ।
(२१) अकर्मज है ।
(२२) व्याप्यवृत्ति है ।
(२३) मूर्त्तों का साधर्म्य है ।
(२४) तद्भिन्नों का वैधर्म्य है ।

चि० न० २२

अपर व्यवहार का असाधारण कारण अपरत्वहै ।

(१) कालिक (छोटा)

(२) दैशिक (समीप)

इस की भी व्याख्या परत्ववत् ही समझना चाहिये ।

बुद्धिपर विचार

(१) बुद्धि का समवायि कारण आत्मा है।

(२) असमवायि कारण आत्ममनःसंयोग है।

(३) निमित्त कारण त्वङ्मनः संयोग है।

(४) निमित्त कारण मनोमनः संयोग है।

(पक्षधर मिश्र का मत)

(५) साधारण कारण ईश्वरज्ञान ईश्वरेच्छा ईश्वर प्रयत्न काल अदृष्ट है।

(६) विषयमात्र के प्रत्यक्षमे कारण है।

(७) निर्विकल्पक अतीन्द्रिय है। और सविकल्पक मनोग्राह्य है।

(८) वह आत्माका सहकारी कारण है।

(९) आत्मा मे रहता है। परमात्मामे नित्य जीवात्मा मे अनित्य।

(१०) विशेष गुण है।

(११) इसके दो भेद हैं, स्मृति, अनुभव (विस्तर लिख देखो)

(१२) कारण गुणपूर्वक जीवात्मामे और अकारणगुणपूर्वक परमात्मा मे

(१३) आत्म वृत्ति गुणादिका समानाधिकरण है।

(१४) आत्मेतर द्रव्यनिष्ठ गुणादिके साथ वैयधिकरण्य है।

(१५) समवाय सम्बन्ध से रहता है।

(१६) ज्ञानत्वः निरोगिकसमवायानुयोगी है

(१७) ज्ञानाश्रयनिष्ठ समवायादि का प्रतियोगी है।

(१८) अव्याप्यवृत्ति है।

का० ५०,५१,५२,५३,५७

बु | द्धिः

(१) अनु | भव

(२) स्म | रण (पूर्वानुभव से उत्पन्न संस्काराधीन ज्ञान विशेष)

(१) प्रमा (२) अप्रमा

(१) प्रमा | त्मक

(२) अप्र | मात्मक

(इस के भी विवरण प्रमात्मक विवरण के समान समझना चाहिये)

(३) निर्वि | कल्पक

निर्विकल्पात्मक प्रत्यक्ष मात्र होता है। किसी के मत से स्मरण भी निर्विकल्पक होता है।

(१) प्रत्य | क्ष

(१) नि | त्य (ईश्वर प्रत्यक्ष)

(२) अनि | त्य

(१)

(२) अनु | मिति

(१) स्वा | र्थ (अनुमिति कारण)

(१) केवलान्वयि (२) केवल व्यतिरेकि (३) अन्वय व्यतिरेकि

(२) परा | र्थ (अनुमिति कारण)

(१) केवलान्वयि (२) केवल व्य. (३) अन्वयव्य.

(३) उप | मिति

{ वात्सायन न्याय दर्शन प्रमाण }

(१) साधर्म्यज्ञानजन्य (२) वैधर्म्यज्ञानजन्य

(४) शा | ब्द

(२)

*

लौकिक प्रत्यक्ष (१)		
(१) चाक्षुष	निर्वि	(१) उद्भूत रूप (२) उद्भूतरूपवद्द्रव्य (३ संख्या ४) परिमाण (५) पृथक्त्व (६) संयोग (७) विभाग (८) परत्व (९) अपरत्व (१०) द्रवत्व (११) स्नेह (१२) वेग इन बारहों की जाति और इन सबों का अभाव।
	सवि	उक्त विषय जाति और उन के अभाव
(२) घ्राणज	निर्वि	(१) सौरभ (२ सौरभत्व (३) सौरभा भाव (४) सौरभत्वा भाव (५ असौरभ (६) असौरभत्व (७) असौरभा भाव (८ असौरभत्वा भाव (९) गन्धत्व (१०) गन्धत्वा भाव (११) गन्धा भाव
	सवि	येही विषय
(३) श्रावण	निर्वि	(१) शब्द (२ शब्दत्व (३) शब्दा भाव (४) शब्दत्वा भाव (५) शब्दत्व व्याप्य जाति (६) उनका अभाव।
	सवि	पूर्ववत्
(४) रासन	निर्वि	(१) रस (२ रसत्व (३) रसत्व व्याप्य जाति (४) इन के अभाव
	सवि	पूर्ववत्
(५) त्वाच	निर्वि	१) उद्भूत स्पर्शवत् द्रव्य (२) संख्यादि ७ (९) द्रवत्व १० स्नेह इन की जाति और इन के अभाव
	सवि	येही १ विषय, जाति और अभाव।
(६) मानस	निर्वि	(१) बुद्धि (२) सुख (३) दुःख (४) इच्छा (५) द्वेष (६) यत्न (७) जीवात्मा इन की जाति और इन के अभाव।
	सवि	उक्त विषय जाति और अभाव।

चाक्षुष (चक्षुः सन्निकृष्टपदार्थ विशेषण से तदाश्रयभूत व्यक्ति का प्रत्यक्ष) | घ्राणज (घ्राण सन्निकृष्ट इत्यादि.) | श्रावण (श्रोत्रसन्निकृष्ट इत्यादि.) | रासन (रसनासन्निकृष्ट इत्यादि.) | त्वाच (त्वक्सन्निकृष्ट इत्यादि) | मानस (म०सन्निकृष्ट इत्यादि)

अलौकिक (२)

- (१) सामान्य लक्षण जन्य
- (२) ज्ञान लक्षण जन्य — (१) चाक्षुष (२) घ्राणज (३) श्रावण (४) रासन (५) त्वाच (६) मानस
- (३) योगज धर्मजन्य — (१) युक्त (२) युञ्जान

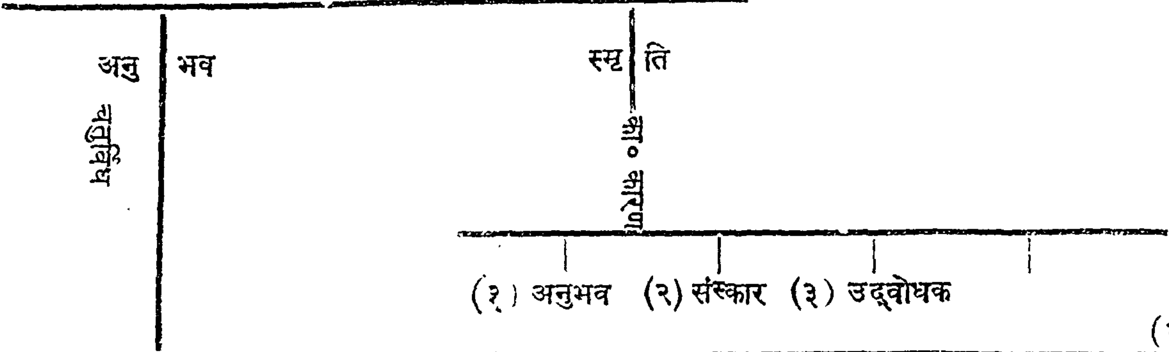
(१) नागाभाविषयक — (१) (२) (३) मति जन्य योग जन्य वै.ह.ज.

(२) लक्ष्यार्थ विषयक — (१) (२) (३) (४) जहत् स्वार्थ, अजहत् स्वा. निरूढलक्षण शास्त्रीय लक्षण जन्य, लक्षणजन्य, जन्य लक्षणजन्य,

(२) विषयक

चि० नं० २४

ज्ञान के कारणता का चित्र ।



(१) चक्षु			(२) त्वक्			(३) घ्राण			(४) रसना			(५) श्रोत्र			(६) मन	
सन्निकर्ष	विषय		सन्निकर्ष	विषय		सन्निकर्ष	विषय		सन्निकर्ष	विषय		सन्निकर्ष	विषय		सन्निकर्ष	विषय
१.संयोगसे	घटादिद्रव्य का प्र.		१.संयोगसे	घटादिद्रव्य का प्र०		१. संयुक्त समवायसे	द्रव्यगतगन्धका प्र०		१.संयुक्तसमवाय से	द्रव्यगत रसका प्र०		१. समवायसे	शब्दका प्र०		१.संयोगसे	आत्माका प्र०
२.संयुक्त समवायसे	द्र.समवेतगुणादिका प्र०		२. संयुक्त समवायसे	द्रव्यगत		२.संयुक्तसमवेत समवाय से	द्रव्यगन्धगत गन्धत्वजातिका प्र०		२. संयुक्त समवेत समवायसे	द्रव्यनिष्ठ रसगतजातिका प्र०		२.समवेत समवाय से	शब्दसमवेत शब्दत्वजातिका प्र०		२.संयुक्त समवायसे	आत्मसमवेत सुखादिका प्र०
३.संयुक्त समवेत समवायसे	द्रव्यसमवेतगुणादिगतजातिप्र०		३.संयुक्तसमवेतसमवाय से	गुणादि २ का प्र०		३. संयुक्त विशेषणतादि से	द्रव्यगत अभावादिका प्र०		३. संयुक्त विशेषणता से	द्रव्यनिष्ठ अभावका प्र०		३.समवेत विशेषणतादि से	शब्दगत अभावादि का प्र०		३. संयुक्त समवेत समवाय से	आत्मसमवेत सुखादिगत जाति का प्र०
४.संयुक्तविशेषणतादि से	चाक्षुषप्रत्यक्षविषय अभा. प्र०		४.संयुक्त विशेषणतादि से	द्रव्यवृत्तिगुणादिगत जातिका प्र० द्र.ग.अ.प्र.											४.संयुक्तविशेषणतादि से	आत्मवृत्ति अभावका प्र०

Vertical labels printed between the columns of the table:
- आलोक संयोगाभाव, महत्त्वाभाव, उ.भू.रू.अ.
- उद्भूत स्पर्शाभाव, महत्त्वाभाव
- महत्त्वाभाव, उद्भूत गन्धाभाव
- महत्त्वाभाव, उद्भूत रसाभाव
- श्रोत्र
- मन

(१) चक्षु	(२) त्वक्	(३) घ्राण	(४) रसना	(५) श्रोत्र	(६) मन
यह दिग्दर्शन मात्र है (विशेषण विशेष्यता सन्निकर्ष घटाभावसे पटाभाव का प्रत्यक्ष इत्यादि स्थलों मे होता है) इत्यादि ।	यह दिग्दर्शन मात्र है (विशेषण विशेष्यता सन्निकर्ष अभावगत अभाव का प्र. इत्यादि ।	यह दिग्दर्शन मात्र है (विशेषण विशेष्यता सन्निकर्ष अभावगत अभाव का प्र०) इत्यादि ।	यह दिग्दर्शन मात्र है (विशेषण विशेष्यता सन्निकर्ष अभावगत अभाव का प्र०) इत्यादि ।	यह दिग्दर्शन मात्र है (विशेषण विशेष्यता सन्निकर्ष अभावगत अभाव का प्र०) इत्यादि ।	यह दिग्दर्शन मात्र है (विशेषण विशेष्यता सन्निकर्ष आत्मवृत्ति अभावगत अभाव का प्र०) इत्यादि ।

(१)	(२)	(३)	(४)
व्याप्ति ज्ञान	परामर्श ज्ञान	पक्षता	प्रतीत्यभाव मात्र

(१)	(२)
सादृश्यादि ज्ञान	अतिदेशवाक्यार्थ स्मृति

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)	(७)
पदज्ञान	वृत्तिज्ञान	पदार्थोपस्थिति	आकांक्षाज्ञान	योग्यताज्ञान	आसत्तिज्ञान	तात्पर्यज्ञान

सन्निकर्ष

संयोग (१) | संयुक्त समवाय (२) | संयुक्तसमवेत समवाय (३) | समवाय (४) | समवेत समवाय (५) | विशेषणता (६)

संयोग (१)

(१) चक्षु+विषय	(२) त्वक्+विषय	(३) मनः+विषय
आलोकसंयोगावच्छिन्न, महत्वावच्छिन्न, उदभूतरूपावच्छिन्न, चक्षुर्घटादि विषय संयोग ।	उद्भूतस्पर्शावच्छिन्न, महत्वावच्छिन्न त्वक् घटादि विषय संयोग ।	आत्ममनः संयोग ।

जन्य पृथ्वी 　 जन्य जल 　 जन्य तेज

(१)	(२)	(३)	(४)
जन्य पृथ्वी	जन्य जल	जन्यतेज	जन्य वायु (अर्वाचीन मत से

संयुक्त समवाय (२)

(१)	(२)	(३)	(४)	५)	(६)
आलोकसंयोगावच्छिन्न, महत्वावच्छिन्न, उद्भूतरूपावच्छिन्न, चक्षु संयुक्तसमवाय द्रव्य समवेत गुणजाति प्र०	उ.भू. स्पर्शाव. महत्वाव. त्वक्संयुक्तसमवायसे द्रव्य समवेत १गुण २क्रिया३जाति का प्र,यक्ष होता है ।	घ्राण संयुक्त समवायसेग-न्धका प्रत्यक्ष होता है ।	रसना संयुक्त समवाय से द्रव्य समवेत रसका प्रत्यक्ष होता है ।	+	मनः संयुक्त समवाय से आत्मसमवेत बुद्धयादिगुणों का प्रत्यक्ष होता है ।

संयुक्तसमवेत समवाय (३)

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	
आलोकसंयोगावच्छिन्न, महत्वाव. उद्भूतरूपाव. चक्षुः संयुक्त समवेत समवायसेद्रव्य समवेतगुणकर्म स०जातिकाप्र०	उद्भूतस्पर्शावच्छिन्न,महत्वाव. त्वक्संसमवेतसमवायसे द्रव्यसमवेत गुणसमवेतजातिका प्र० होता है ।	घ्राण संयुक्त समवेत समवायसे द्रव्यसमवेतगन्धजमवेत जाति प्रत्यक्ष होता है ।	रसना संयुक्त समवेतसमवायसे रसगत जातिकाप्र० होता है ।	+	मनः संयुक्त समवेत समवाय से आत्म समवेत गुणसमवेत जातिका प्र० होताहै

विशेषणता (६)

(१)	(२)	(३)	(४)	(५)	(६)
आलोकसंयोगावच्छिन्नमहत्वाव.उदभूतरू० व. चक्षुसंयुक्त विशेषणता से द्रव्यगतअभावका चाक्षुष प्र० होता है ।	उद्भूतस्पर्शावच्छिन्न, महत्वावच्छिन्न त्वक्संयुक्तविशेषणतासेद्रव्यगत अभावका स्पार्शन प्रत्यक्ष होता है ।	घ्राण संयुक्त विशेषणता से द्रव्यगतगन्धाभावादि का घ्राणज प्रत्यक्ष होता है ।	रसनासंयुक्त विशेषणता से द्रव्यनिष्ठरसाभावादि का रासन प्रत्यक्ष होता है ।	श्रोत्रविशेषणतासेश०दाभावादिकाश्रावण प्रत्यक्ष होता है	मनः संयुक्त विशेषणता से आत्मगतअभावोंका मानस प्रत्यक्ष होताहै

चि० न० २६

संसार के अनुकूल कामना विषय
का नाम सुख है।

(१) ऐहिक (अनित्य) — (२) पारलौकिक (अनित्य)

(१) स्वकीय प्रत्यक्ष मे कारण है।
(२) मन से ग्राह्य है।
(३) मन का सहकारी है।
(४) आत्मा मे रहता है।
(५) विशेष गुण है।
(६) अपाकज है।
(७) निमित्त कारण है।
(८) अनित्य है।
(९) एकही भेद है।
(१०) विभु का गुण है।
(११) अकारण गुणपूर्वक है।
(१२) धर्मजन्य है।
(१३) स्वकीय ध्वंसादि का जनक है।
(१४) आत्मवृत्ति धर्मो से सामानाधिकरण्य है।
(१५) इस से भिन्न से वैयधिकरण्यहै।
(१६) संयुक्त समवाय से ग्राह्य है।
(१७) समवाय सम्बन्ध से रहता है।
(१८) सुखत्वादि प्रतियोगिक समवायादि का अनुयोगी है।
(१९) आत्मादिनिष्ठ समवायादिका प्रतियोगीहै
(२०) अकर्मज है।
(२१ अव्याप्यवृत्ति है।
(२२) आत्मा का साधर्म्य है।
(२३) इस से भिन्न का वैधर्म्य है।

चि० न० २७

संसार के प्रतिकूल कामना विषय
का नाम दुःख है।

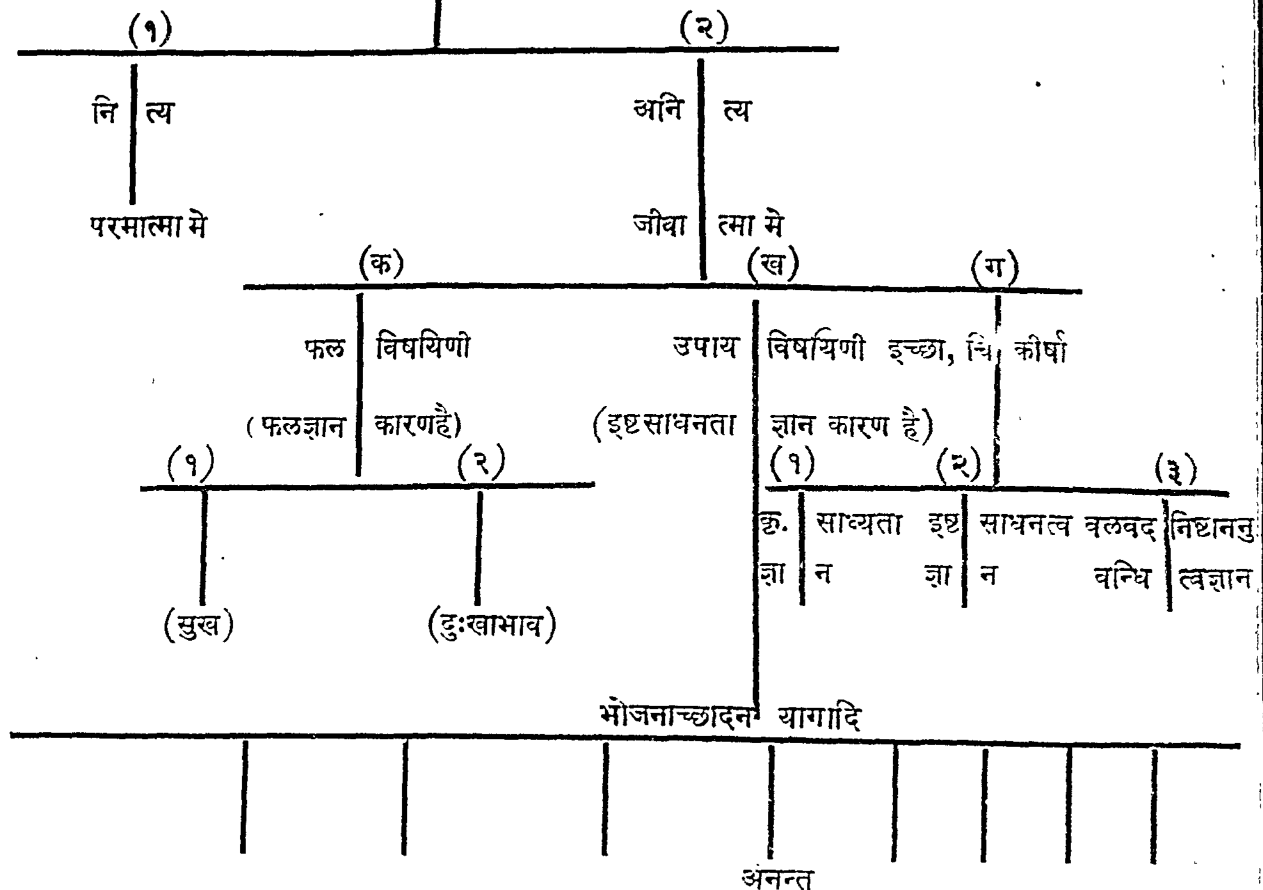
(१) ऐहिक (अनित्य) — (२) पारलौकिक (अनित्य)

(१) अधर्मजन्य है।
(२) दुःखत्वादि प्रतियोगिक समवायादिका अनुयोगी है।

टि० :- और सब सुखही के समान जानना चाहिये।

चि० न० २८

(१) स्वकीय प्रत्यक्ष मे कारण है ।
(२) मन से ग्राह्य है ।
(३) मन का सहकारी है ।
(४) आत्मा मे रहता है ।
(५) विशेष गुण है ।
(६) अपाकज है ।
(७) निमित्त कारण है ।
(८) जीवात्मा मे अनित्य है ।
(९) परमात्मा मे नित्य है ।
(१०) फलविषयिणी, उपाय विषयिणीं दो प्रकार की है ।
(११) विभुका गुण है ।
(१२) अकारण गुणपूर्वक है ।
(१३) आत्मा से जन्य है ।
(१४) ज्ञान का जनक है ।
(१५) आत्मवृत्तियों के साथ सामानाधिकरण्य है ।
(१६) आत्मा मे अवृत्तियों के साथ वैयधिकरण्य है ।
(१७) मनः संयुक्त समवाय से ग्राह्य है ।
(१८) समवाय सम्बन्ध से रहता है ।
(१९) इच्छात्व प्रतियोगीक समवायादि का अनुयोगी है ।
(२०) आत्मादिनिष्ठ समवायादि का प्रतियोगी है ।
(२१) अकर्मज है ।
(२२) अव्याप्यवृत्ति है ।
(२३) आत्मा मे रहता है ।
(२४) आत्म भिन्न मे नहीं रहता है ।



चि० न० २९

द्वेष।

(१) स्वकीय प्रत्यक्ष मे कारण है।
(२) मन से ग्राह्य है।
(३) मन का सहकारी है।
(४) आत्मा मे रहता है।
(५) विशेष गुण है।
(६) अपाकज है।
(७) निमित्त कारण है।
(८) सर्वत्र अनित्य है।
(९) एकही प्रभेद है।
(१०) विभुका गुण है।
(११) अकारण गुणपूर्वक है।
(१२) द्विष्टसाधनता ज्ञान से जन्य है।
(१३) आत्मवृत्तिकेसाथ सामानाधिकरण्यहै
(१४) आत्मामेअवृत्तियोंकेसाथवैयधिकरण्यहै
(१५) मनःसंयुक्त समवाय से ग्राह्य है।
(१६) द्वेषत्व प्रतियोगिक समवाय का अनुयोगी हैं।
(१७) आत्मादिनिष्ठ समवायादिकाप्रति-योगी है।
(१८) अकर्मज है।
(१९) अव्याप्यवृत्ति है।
(२०) आत्मा मे रहता है।
(२१) आत्मभिन्नमे नहीं रहता है। परमात्मा मे भी नहीं रहता है।

द्विष्टसाधनताज्ञान द्वेष का निमित्त कारण है

अनि | त्य है

जीवात्मा मे रहता है।

चि० न० ३०

कृति (यत्न)

जीवात्मा | परमात्मा

दोनो मे | रहती है

(१) नि | त्य (परमात्मामात्र मे)

(२) अनि | त्य (जीवात्मा | मात्रमे)

(१) प्रवृ | त्ति

(१) चिकीर्षा
(२) कृतिसाध्यत्वज्ञान
(३) इष्टसाधनताकज्ञान
(४) उपादेय पदार्थके समवाय कारणका प्रत्यक्ष

(२) नि | वृत्ति

(१) द्वे | ष

(२) इष्टसाध | नताक ज्ञा | न

(३) जीवन | योनि

{ श्वासप्रश्वासहेतुक यत्नअतीन्द्रिय है }

(१) स्वीय प्रत्यक्ष मे कारण है।

(२) मन से ग्राह्य है।

(३) मन का सहकारी है।

(४) आत्मा मे रहता है।

(५) विशेष गुण है।

(६) अपाकज है।

(७) निमित्त कारण है।

(८) नित्य गत नित्य अनित्यगत अनित्य हैं।

(९) तीन प्रकारका है।

(१०) विभुकागुण है।

(११) अकारण गुणपूर्वक है।

(१२) चिकीर्षा जन्य है।

(१३) कार्यमात्र का जनक है।

(१४) आत्मवृत्ति गुणोंके साथ सामानाधिकरण्य है।

(१५) तद्भिन्न के साथ वैयधिकरण्य है।

(१६) मनःसंयुक्त समवाय से प्रत्यक्ष होता है।

(१७) समवायसम्बन्ध से रहता है।

(१८) यत्नत्वप्रतियोगिक समवायादि का अनुयोगी है।

(१९) आत्मनिष्ठ समवायादि का प्रतियोगी है।

(२०) अकर्मज है।

(२१) अव्याप्यवृत्ति है।

(२२) आत्मामे रहता है।

(२३) आत्मा से भिन्नमे नहीं रहता है।

चि० न० ३१

गुरुत्व

(१) नित्य (परमाणुओं मे)
(२) अनित्य (द्वयणुकादिमे)

(१) किसीके प्रत्यक्षमे कारण नहीं है।
(२) किसी इन्द्रिय से ग्राह्य नहीं है।
(३) पतन का सहकारी है।
(४) पृथ्वी जल मे रहता है।
(५) सामान्य गुण है।
(६) अपाकज है।
(७) असमवायि, निमित्त कारण है।
(८) नित्य तथा अनित्य है।
(९) एकही तरह का हैं।
(१०) कारण गुणपूर्वक है।
(११) आद्यपतनस्वकीयध्वंसादि का जनकहै।
(१२) पृथ्वी जलवृत्तियोंके साथ सामानाधिकरण्य है।
(१३) पृथ्वी जल मे अवृत्तियोंके साथ वैयधिकरण्य है।
(१४) अतीन्द्रिय है। अतएव प्रत्यक्षकाअविषयहै
(१५) समवाय सम्बन्ध से रहता है।
(१६) गुरुत्वत्व प्रतियोगिक समवायका अनुयोगी है।
(१७) गुरुत्व प्रतियोगिक समवाय का प्रतियोगी है।
(१८) अकर्मज है।
(१९) व्याप्य वृत्ती है।
(२०) पृथ्वी जल, मे रहता है।
(२१) उस से भिन्न मे नहीं रहता है।

चि० न० ३२

स्यन्दन क्रिया का असमवायि कारण द्रवत्व है।

(१) सांसिद्धिक
- (१) नित्य (जलपरमाणु)
- (२) अनित्य (द्वयणुकादि)

(२) नैमित्तिक अनित्य (पृथ्वी तेज मे)

(१) स्वीय प्रत्यक्ष मे कारण है।
(२) चक्षु त्वचा से ग्राह्य है।
(३) चक्षु त्वचा का सहकारी है।
(४) पृथ्वी जलमे रहता है।
(५) सांसिद्धिक द्रवत्व विशेषगुण है। नैमित्तिक द्रवत्व सामान्य गुण है।
(६) पाकज अपाकज दोनों हैं।
(७) असमवायि, निमित्त दोनों है।
(८) पाकज सब जगह नित्य है और अपाकज नित्यगत नित्य, अनित्य गतअनित्य है।
(९) दो प्रभेद का है।
(१०) भूतमूर्त दोनों का गुण है।
(११) कारण गुणपूर्वक है।
(१२) नैमित्तिकद्रवत्वअग्निसंयोगसेजन्य है
(१३) स्यन्दन का जनक है।
(१४) पृथ्वी जल तेज वृत्तियों के साथ सामानाधिकरण्य है।
(१५) उस से भिन्नों के साथ वैयधिकरण्य है।
(१६) संयुक्त समवाय सन्निकर्षसेग्राह्य है
(१७) द्रवत्वत्वप्रतियोगिक समवाय का अनुयोगी है।
(१८) द्रवत्व प्रतियोगिक समवाय का प्रतियोगी है।
(१९) अकर्मज है।
(२०) व्याप्यवृत्ति है।
(२१) पृथ्वी जल तेज मे रहता है।
(२२) उस से भिन्न मे नहीं रहता है।

चित्र न० ३३

चूर्णादि पिण्डीभाव का कारण स्नेह है ।

(१) उत्कृष्ट
- (१) नित्य (जल परमाणुमे)
- (२) अनित्य (जल द्व्यणुकादिमे)

(२) अपकृष्ट
- (१) नित्य {दाह प्रतिकूलघृत तैलादि परमाणुके अन्तर्गत जलमे}
- (२) अनित्य {दाह प्रतिकूलघृत तैल द्व्यणुकादि के अन्तर्गत जलमे}

(१) स्वीय प्रत्यक्ष में कारण है ।
(२) त्वचासे ग्राह्य है ।
(३) त्वचा का सहकारी है ।
(४) जल में रहता है ।
(५) विशेष गुण है ।
(६) अपाकज है ।
(७) असमवायि निमित्त कारण है ।
(८) नित्यगत नित्य अनित्यगत अनित्य
(९) एकही प्रकार का है ।
(१०) भूतमूर्त का गुण है ।
(११) कारण गुणपूर्वक है ।
(१२) जलजन्य है ।
(१३) चूर्णादि पिण्डी भाव का कारण है
(१४) जलवृत्तियों के साथ सामानाधिकरण्य है ।
(१५) उससेभिन्नकेसाथ वैयधिकरण्यहै ।
(१६) संयुक्तसमवायसे ग्राह्य है ।
(१७) समवाय सम्बन्ध से रहताहै ।
(१८) स्नेहत्व प्रतियोगिक समवायादिका अनुयोगी है ।
(१९) स्नेह प्रतियोगिक समवायादिका प्रतियोगी है ।
(२०) अकर्मज है ।
(२१) व्याप्यवृत्ति है ।
(२२) जल में रहता है ।
(२३) उससे भिन्न में नहीं रहता है ।

चित्र न० ३४

संस्कार

(१) वेगाख्य (पृथिव्यादि ४ और मन मे रहता है ।)
- (१) कर्मज (नोदनसंयोग विशेष से बाणादि मे उत्पन्नहोताहै)
- (२) वेगज

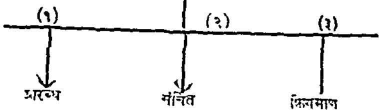
(२) स्थितिस्थापक (पृथिव्यादि चारमे रहता है ।)

(३) भावनाख्य जीवात्मा मे रहता है ।

(१) स्वकीय प्रत्यक्ष मे कारण है ।
(२) मनसे ग्राह्य है ।
(३) मन का सहकारी है ।
(४) आत्मा मे रहता है ।
(५) सामान्य गुण है ।
(६) अपाकज है ।
(७) असमवायि निमित्त कारण है ।
(८) नित्यगतनित्य अनित्यगतअनित्य है
(९) तीन प्रकार का है ।
(१०) विभुका गुण है ।
(११) स्थितिस्थापक कारण गुणपूर्वकहै इससे भिन्न अकारण गुणपूर्वकहै
(१२) अनुभव जन्य है ।
(१३) स्मरण जनक है ।
(१४) आत्मवृत्ति धर्म से सामानाधिकरण्य है ।
(१५) तद्वृत्ति धर्मसे वैयधिकरण्य है ।
(१६) संयुक्त समवाय से ग्राह्य है ।
(१७) समवाय सम्बन्ध से रहता है ।
(१८) संस्कारत्व प्रतियोगिकसमवायादि का अनुयोगी है ।
(१९) संस्कार प्रतियोगिक समवायका प्रतियोगी है ।
(२०) अकर्मज है ।
(२१) व्याप्यवृत्ति है ।
(२२) आत्मा मे रहता है ।
(२३) इस से भिन्नमे नहीं रहता है ।
(२४) अतीन्द्रिय है ।

चि० न० ३५

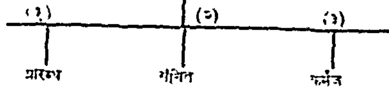
विहित कर्म जन्य
धर्म है।



(१) यागादिरूप करण से अदृष्टरूप व्यापार द्वारा स्वर्गादि रूप कार्य होता है। एवं सुखसाधक शरीरादि का भी कारण धर्म ही है।
(२) कर्मनाशा नदी इत्यादि से धर्म का नाश होता है।
(३) प्रारब्ध कर्मका नाश भोग के बिना नहीं होता है। तत्त्व ज्ञान से सञ्चित और क्रियमाण कर्म का नाश होता है।

नि० न० ३६

निषिद्ध कर्म जन्य
अधर्म है।



(१) निषिद्ध कर्म और नित्यकर्म का त्याग इन दोनों के आचरण से नरकादि और नरकादि साधन शरीर होता है।
(२) प्रारब्ध पापकर्म का भी नाश भोग के बिना नहीं होता है।
(३) एवं तत्त्वज्ञान से सञ्चित क्रियमाण पापकर्म का भी नाश हो जाता है।

अदृष्ट = (धर्म अधर्म

(१) किसी के प्रत्यक्ष में कारण नहीं है।
(२) अतीन्द्रिय है।
(३) अदृष्ट से भिन्न जो सुखदुःख का कारण उस का अदृष्ट सहकारी कारण है।
(४) आत्मा मे रहता है।
(५) विशेष गुण है।
(६) अपाकज है।
(७) निमित्त कारण है।
(८) अनित्य ही है।
(९) दो प्रकार का है।
(१०) जीवात्मा का गुण है।
(११) अकारण गुणपूर्वक है।
(१२) विहित और निषिद्ध कर्मजन्य है।
(१३) सुख दुःख का जनक है।
(१४) आत्मवृत्ति धर्मोंसे सामानाधिकरण्य है।
(१५) आत्मामें अवृत्ति धर्मोंसे वैयधिकरण्य है।
(१६) समवाय सम्बन्ध से रहता है।
(१७) अदृष्टत्व प्रतियोगिक समवायादिका अनुयोगी है।
(१८) अदृष्ट प्रतियोगिक समवायादिका प्रतियोगी है।
(१९) अकर्मज है।
(२०) अव्याप्यवृत्ति है।
(२१) जीवात्मा मे रहता है।
(२२) इस से भिन्न मे नहीं रहता है।

चि० नं० ३७

(१) स्वीय प्रत्यक्ष मे कारण है ।
(२) श्रवणेन्द्रिय ग्राह्य है ।
(३) श्रोत्र का सहकारी है ।
(४) आकाश मे रहता है ।
(५) विशेष गुण है ।
(६) अपाकज है ।
(७) निमित्त और समवायि कारण है ।
(८) अनित्यही है ।
(९) दो प्रभेद है (वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक)
(१०) विभु का गुण है ।
(११) अकारण गुणपूर्वक है ।
(१२) अभिघात जन्य है ।
(१३) शब्द ज्ञानादि का जनक है ।
(१४) गगनत्वादि के साथ सामानाधिकरण्य है ।
(१५) इससे भिन्न के साथ वैयधिकरण्य है ।
(१६) समवाय सन्निकर्ष से ग्राह्य है ।
(१७) समवाय सम्बन्ध से रहता है ।
(१८) शब्दत्वपूतियोगिक समवायादिका अनुयोगी है ।
(१९) शब्द पूतियोगिक समवायादि का पूतियोगी है ।
(२०) अकर्मज है ।
(२१) अव्याप्यवृत्ति है ।
(२२) आकाश मे रहता है ।
(२३) इस से भिन्न मे नहीं रहता है ;

(२४) शब्द की उत्पत्ति " कदम्बगोलकन्याय " और " वीचीतरंग न्याय " से मानते हैं (२५) कोई कोई शब्द को नित्य भी मानते हैं ।

वि० = विशेष गुण।
रिक्त कोष्ठसे "नहीं" समझना

नम्बर	का०	पदार्थ	वि०गु० स्पर्श	संख्या	परिमिति	पृथक्त्व	संयोग	विभाग	परत्व	अपरत्व	वेग	वि० रूप	वि० नैमित्तिक द्रवत्व	गुरुत्व	वि० रस	वि० स्नेह	वि० गन्ध	वि० बुद्धि	वि० सुख	वि० दुःख	वि० इच्छा	वि० द्वेष	वि० यत्न	वि० भावना	वि० धर्म	वि० अधर्म	वि० शब्द
			१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५
१	३०	वायु ९	है	है	है	है	है	है	है	है	है																
२	३०	तेज ११	है	है	है	है	है	है	है	है	है	है	है														
३	३१	जल १४	है	है	है	है	है	है	है	है	है	है	सां. है	है	है	है											
४	३२	पृथ्वी १४	है	है	है	है	है	है	है	है	है	है	है	है	है		है										
५	३२, ३३	आत्मा १४		है	है	है	है	है										है	है	है	है	है	है	है	है	है	
६	३३	काल ५		है	है	है	है	है																			
७	३३	दिशा ५		है	है	है	है	है																			
८	३३	आकाश ६		है	है	है	है	है																			है
९	३४	ईश्वर ८		है	है	है	है	है										है			है		है				
१०	३४	मन ८		है	है	है	है	है	है	है	है																

[illegible]

[illegible]	[illegible]	[illegible]	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२
			[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
१	[illegible]	[illegible]	मा.																															
२	[illegible]	[illegible]		मा.	मा.	मा.																												
३	[illegible]	[illegible]					मा.	मा.																										
४	[illegible]	[illegible]							मा.	मा.																								
५	[illegible]	[illegible]									मा.																							
६	[illegible]	[illegible]										मा.																						
७	[illegible]	[illegible]											मा.																					
८	[illegible]	[illegible]												मा.	मा.																			
९	[illegible]	[illegible]														मा.	मा.	मा.	मा.	मा.														
१०	[illegible]	[illegible]																			मा.	मा.												
११	[illegible]	[illegible]																					मा.											
१२	[illegible]	[illegible]																						मा.	मा.									
१३	[illegible]	[illegible]																								मा.	मा.							
१४	[illegible]	[illegible]																										मा.	मा.	मा.				
१५	[illegible]	[illegible]																													मा.	मा.		
१६	[illegible]	[illegible]																															मा.	
१७	[illegible]	[illegible]																																मा.

नम्बर	कारिका नम्बर	रूप	रस	गन्ध	स्पर्श	परत्व	अपरत्व	द्रवत्व	स्नेह	वेग	स्थितिस्था	धर्म	अधर्म	भावना	शब्द	बुद्धि	सुख	दुःख	इच्छा	द्वेष	यत्न	संख्या	परिमाण	पृथक्त्व	संयोग	विभाग	द्वित्वादि संख्या	द्विपृथक्त्वादि	गुरुत्व	एकत्व	नाम गुणों
१	८६	”	”	”	”	”	”	”	”	”	”																				ये १० गुण केवल मूर्तके हैं ।
२	८७											”	”	”	”	”	”	”	”	”	”										ये १० गुण केवल अमूर्त के हैं
३	८८																					”	”	”	”	”					ये ५ गुण मूर्त, अमूर्त के हैं ।
४	८९																								”	”	”	”			ये ४ अनेक व्यासज्यवृत्ति गुण हैं ।
५	९१	”	”	”	”			सा	”			”	”	”	”	”	”	”	”	”	”										ये १६ विशेष गुण कहाते हैं ।
६	९२					”	”	नैमि.		”												”	”	”	”	”			”		ये १० सामान्य गुण कहाते हैं ।
७	९३					”	”	द्र.	”													”	”	”	”	”					ये ९ गुणचक्षु और त्वचासे ग्राह्य
८	९३	”	”	”	”										”																ये ५गुणचक्षुरादिबाह्येन्द्रियग्राह्य हैं
९	९३-९४											”	”	”							ऌ								”		ये ५ गुण अतीन्द्रिय हैं ।
१०	९४											”	”	”	”	”	”	”	”	”	यत्न										ये १० आत्मा, आकाशके विशेष गुण हैं । अकारण गुणोत्पन्नमी हैं
११	९५-९६	अपा॰ रूप	अपा॰ रस	अपा॰ गन्ध	अपा॰ स्पर्श			सा. द्र॰	”	”	संस्कार												”	ए॰ पृ॰		”				”	ये १२ कारण गुणपूर्वक हैं ।
१२	९६									”															”	”					ये तीन कर्मज गुण हैं ।
१३	९७	रूप	रस	गन्ध	अनुष्ण स्पर्श				”		स्थि स्था				”								”	ए॰ पृ॰						”	ये १०गुण असमवायि कारणमात्र हैं
१४	९७,९८											”	”	”		”	”	”	”	”	”										ये ९ आत्माके विशेष गुण हैं।
१५	९८				उष्ण स्पर्श			द्रवत्व		”															”	”			”		ये६ असमवायिनिमित्तदोनों कारण हैं
१६	९८-९९											”	”	”	”	”	”	”	”	”	”						”	”			ये १२ विभुके विशेषगुण हैं

टि॰ अनुष्ण = शीत+अनुष्णा शीत । टि॰—द्रव्य द्रव्योंमे संयोग सम्बन्ध से, अवयवी अवयवों मे, गुणकर्म द्रव्यों मे, जातिद्रव्य गुण कर्मों मे, विशेष नित्य द्रव्यों मे समवाय सम्बन्धसे, द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेषातिरिक्त पदार्थ अपने अपने अधिकरणों मे स्वरूप सम्बन्ध से, सभी पदार्थ स्वसमान कालिक कालोपाधि और महाकाल मे कालिक सम्बन्ध से, एवं स्वसमान कालिक दिगुपाधि और दिशा मे दैशिक सम्बन्धसे, एवम् स्वात्मक पदार्थों मे अभेद (तादात्म्यक) सम्बन्ध से, रहते हैं । *अव्याप्य वृत्तिभी हैं

सि० नम्बर	१	२	३	४	५	६
नाम इन्द्रिय	चक्षुर्ग्राह्य	त्वक् ग्राह्य	रसना ग्राह्य	घ्राण ग्राह्य	श्रोत्र ग्राह्य	मनोग्रा.
पृथ्वी	द्रयणुकादिपृथ्वी	द्रय० पृथ्वी				
जल	द्रय० जल	द्रय० जल				
तेज	द्रय० तेज	द्रय० तेज				
वायु		द्रय.वायु*				
आकाश,काल						
दिशा,आत्मा						
मन						
रूप	उद्भूत रूप					
रस			उ० रस			
गन्ध				उ० गन्ध		
स्पर्श		उ० स्पर्श				
संख्या	उद्भूत संख्या	उ० संख्या				
परिमाण	उ० परिमाण	उ० परिमाण				
पृथक्त्व	उ० पृथक्त्व	उ० पृथक्त्व				
संयोग	उ० संयोग	उ० संयोग				
विभाग	उ० विभाग	उ० विभाग				
परत्व	उ० परत्व	उ० परत्व				
अपरत्व	उ० अपरत्व	उ० अपरत्व				
बुद्धि						उ०
सुख						सु०
दुःख						उ०
इच्छा						उ०
द्वेष						द्वेष
यत्न						त्न
गुरुत्व						
द्रवत्व	उ० द्र०	उ० द्र०				
स्नेह	उ० स्नेह	उ० स्नेह				
संस्कार	वेगाख्य	वेगाख्य				
धर्म						
अधर्म						
शब्द					उ० शब्द	
उत्क्षेपण	उ० उत्क्षे०	उ० उत्क्षे०				
अपक्षेपण	उ० अप०	उ० अप०				
आकुञ्चन	उ० आकु०	उ० आकु०				
प्रसारण	उ० प्रसा०	उ० प्रसा०				
गमन	उ० गमन	उ० गमन				
जाति	जाति	जाति	उ० जाति	उ० जा०	उ०जाति	उ.जाति
अनन्त विशेष						
समवाय	×	÷				
प्रागभाव	उ० प्राग०	उ० प्रा०	उ० प्रा०	उ० प्रा०	उ० प्रा०	उ०प्रा.
प्रध्वंसाभाव	उ० प्रध्वं०	उ० प्रध्वं०	उ० प्रध्वं०	उ० प्रध्वं०	उ० प्रध्वं०	उ० प्र
अत्यन्ता भाव	उ० अत्य०	उ० अत्य०	उ० अत्य०	उ० अत्य०	उ० अत्य०	उ.अत्य
अन्योन्याभाव	उ० अन्यो०	उ० अन्यो०	उ० अन्यो०	उ० अन्यो०	उ० अन्यो०	उ०अ

चि० न० ४२
का० ६८ उत्त०

व्याप्ति = साध्यवदन्य निरूपितवृत्तित्वाभाव ।

मु० न.	लक्षण	साध्य	(साध्यवत्) वत्	(साध्यवदन्य)अन्य	निरूपित	वृत्तित्व	अभाव	प्रथम व्याप्ति ।— टिप्पणी
२,३	समन्वय	वह्नि	पर्वतादि५(पर्व,चत्वर, गोष्ठ, महा०अयो)	ह्रदादि	,,	शैवालादि	अभावधूम मे	"वह्निमान् धूमात् "(समन्वय स्थल)
५	दोष	,,	वह्न्यवयव	पर्वतादि ४—	,,	धूम मे है (अतः	धूम मे वृत्तित्वाभाव नहीं रहा	"वह्निमान् धूमात्" = हेतु । अव्याप्त । यहाँ समवायेन साध्यवत् को लेकर पूर्वपक्ष किया है ।
४	निवारकलक्षण	साध्य	वत् (साध्यतावच्छेदक सम्बन्धेन) ⊛	अन्य	,,	वृत्तित्व—	अभाव	द्वितीय व्याप्ति
	स०	वन्हि	पर्वतादि ४	ह्रदादि	,,	शैवालादि मे	धूम मे	,, ,, (अव्याप्ति वारण) (निर्दिष्ट लक्षणको स्मरण करही कर पर्वतादि ४ माने हैं ।
७	द्वि० दो०	,,	पर्वत	महानसादि ३	,,	धूम मे है	धूम मे नहीं है	,, ,, (पुनः द्वि. अव्याप्ति ।
६	नि० ल०	साध्य	वद् ,,⊛	अन्य+ साध्यवत्ताव० प्रतियोगिताकभेदवान्)	,,	वृत्तित्व	अभाव	तृ० व्या० .
	स०	वन्हि	पर्वतादि ५	ह्रदादि	,,	शैवाल मे	धूम मे	,, ,, लक्षण समन्वय । द्वि० अव्या० वारण
९	तृ० दो०	,,	,,	धूमावयव	,,	धूम मे है	धूममे नहीं है	इसलिये ,, ,, यहाँ तृ० पुनः अव्याप्तिदोष हुआ।
८	नि० ल०	साध्य	वत् * (,,)	अन्य + (,,)	,,	वृत्तित्व(हेतुतावच्छे० सम्बन्धावच्छिन्न) ×	अभाव	चतु० व्याप्ति०
	स०	वन्हि	पर्वतादि ५	ह्रदादि। धूमावयवादि)	,,	(शैवालादि) वन्हि	धूम मे	,, ,,०लक्षण समन्वय । तृ०अव्या० दो. वारण
१०	च० दो०	धूम	पर्वतादि ४	ह्रदादि	,,	शैवालादि	वन्हिमे	धूमवान् वन्हेः मे अतिव्याप्ति ।

१०	नि० ल०	साध्य	वत् (,,) ❀	अन्य (,,) +	,,	वृत्तिता (×) ,,	अभाव । साध्यवदन्य निरूपित वृत्तितात्वाव च्छिन्न प्रतियोगिताक अभाव)	अवृत्तित्वाभाव पदसे वृत्तित्व सामान्याभाव विवक्षित है — अतः साध्याभावाधिकरण विशेष पकड़कर दोष नहीं होगा ।
	स०	धूम	पर्वतादि ४	ह्रदादि अयोगोलकभी	,,	शैवाल वन्हिमे है	वृत्तित्वा भाव वन्हिमे नहीं रहा	,,० अतिव्याप्ति नहीं हुई ।
११	पञ्चम दो०	द्रव्यत्व	द्रव्य	गुण कर्म	,,	सत्तापर और विशिष्ट सत्तापर भी (क्योंकि गुण कर्मान्यत्व विशिष्ट सत्ताभी शुद्धसत्तारूपहै	विशिष्ट सत्तापर नहीं रहा ।	अतः "द्रव्य विशिष्ट सत्वात्" (गुणकर्मान्यत्व) यहाँ अव्याप्ति हुई ।
१२, १३	नि० ल०	साध्य	वत् (,,) ❀	अन्य ,, +	,,	वृत्तितावच्छेदक (जो) हेतुतावच्छेदक	तद्वत्व	व्याप्ति ल०
	स०	द्रव्यत्व	द्रव्य	गुणादि	,,	गुणकर्मान्यत्व विशिष्ट सत्तात्व	तद्वत्त्व गुण कर्मा न्यत्व विशिष्टसत्तामेहै	अव अव्याप्ति नहीं
१४	ष० दो०	ज्ञेयत्व	पदार्थ मात्र	अप्रसिद्ध	×	×	×	अतः ज्ञेयत्वज्ञान् वाच्यत्वात् यहाँ अव्याप्ति
१५	स० दो०	सत्ता	द्रव्य गुण कर्म	सामान्यादि ४	,,	हेतुतावच्छेदक समवाय सम्बन्धावच्छिन्न वृत्तिता अप्रसिद्ध) तव वृत्तितानवच्छेदक तो सुतरां असम्भवही है	×	सत्तावान् जातेः । यहां भी अव्याप्ति । —

चि० न० ४३

सिद्धान्त लक्षण और उसपर परिष्कार

(क) " सद्धेतु मे साध्याभाव लक्षण घटक नहीं होना चाहिये एवम् व्यभिचारी मे साध्याभाव लक्षण घटक होना चाहिये "

(ख) सद्धेतु स्थान मे हेत्वधिकरण साध्याभाव प्रतियोगी (साध्य) का अनधिकरण नहीं होना चाहिये एवम् व्यभिचारी मे होना चाहिये ॥

×अयोगोलक भी गृहीत है

+नकि तद्वह्निका अभाव ।

का० ६९

मु० न० १	लक्षण	हेतु	(हेतु) मत्—	(हेतुमत्निष्ठ) अभाव	(हेतुमन्निष्ठ अभाव) अप्रतियोगी साध्य	तादृशसाध्य	सामानाधिकरण्य (हेतु के साथ)	व्याप्ति
	स०	वाच्यत्व	सकल पदार्थ	घटादिका (चालनी न्याय मे)	ज्ञेयत्व	ज्ञेयत्व	वाच्यत्व	"ज्ञेयत्ववान् वाच्यत्वात् " एवम् "सत्तावान् जातेः" मेंलक्षण समन्वय
	स०	जाति	द्रव्य गुण कर्म	,,	सत्ता	सत्ता	जाति	
	स०वारण	वह्नि	पर्वतादि ×अयो गोलक भी	धूमाभावादि	धूम नहीं	×	×	"धूमवान् वन्हेः" में अभावका प्रतियोगी साध्य है नकि अप्रतियोगी अतः अतिव्याप्ति नही हुई यहाँ हेतुमत से..
२	दोष (सामान्यव्याप्तिमे	धूम	पर्वतादि	तत्तद्वह्न्यभावका चा० न्याय मे	अप्रतियोगीसाध्य नहीं हुआकिन्तुप्रतियोगीहै	×	×	' वन्हिमान् धूमात् " अव्याप्ति
३	उद्धार(वि० व्याप्ति से)	तद्धूम	तद्धूमवत् तत्पर्वत	तद्वन्हिभिन्नवह्नि का अभाव+	तद्वन्हि	तादृश तद्वन्हि	सामानाधिकरण्यतद्धूम मे है	(किन्तु) विशेषव्याप्ति मे "तद्वन्हिमान् तद्धूमात् " लक्षण समन्वय हुआ
३	दोष १म (वि. व्या०	तद्धूम	तद्धूमवत् तत्पर्वत	भिन्नभावतद्वह्निघटोभयाभाव	का अप्रतियोगीतद्रूपसाध्यनहं हुआ	×	×	"तद्वन्हिमान् तद्धूमात्" विशेष व्याप्तिमेभी) अव्याप्ति
४	दोष२	द्रव्यत्व	द्रव्य	तत्तद्गुणाभाव चा० न्यायसे	का अप्रतियोगी कोई गुणरूपसाध्यनहीं हुआ,	तादृशसाध्य	सामानाधिकरण्य हेतु मे नहीं रहनेके कारण	'गुणवान् द्रव्यत्वात्' में भी अव्याप्ति
४	लक्षण	हेतु	समानाधिकरणजो	अभाव	तत्प्रतियोगितानवच्छे. जो साध्यतावच्छेदक	तद्वच्छिन्न जोसाध्य	सामानाधिकरण्य	व्याप्ति
	समन्वय	धूम	पर्वतादि ×	वन्हि घटोभयाभावादि	वन्हित्व	वन्हि	धूममे है	'वन्हिमान् धूमात्' मे भी समन्वय
	,,	द्रव्यत्व	रक्त घट	नीलाभाव	गुणत्व	गुण	द्रव्यत्व है	अतः गुणवान् द्रव्यत्वात् में भी समन्वय

५	दोष	पृथिवीत्व	पृथिवी	शुक्लादि ७ रूप का अभाव च०न्यायसे)	रूपत्व व्याप्ति शुक्लत्वादि जाति । प्रतियोगितावच्छेदक ही हुआ नकिप्रतियोगितानवच्छेदक हुआ।			रूपत्व व्याप्ति जातिमत्वान् पृथिवीत्वात्" मे अव्याप्ति	(इन अव्याप्तियों मे दूसरेका समाधान) ४० साध्य और हेतु के भेद से अर्थात् स्थल भेद से व्याप्ति का लक्षण भिन्न २ होता है । इसलिये 'रूपत्व व्याप्य जाति मत्वान् पृथिवीत्वात्' "दण्डिमान् दण्डि संयोगात्" इत्यादि स्थलों मे "हेतु समानाधिकरणाभाव प्रतियोगितावच्छेदकतानवच्छेदक जो साध्यता वच्छेदकतावच्छेदक धर्म तद्धर्म विशिष्ट जो साध्यता वच्छेदकतदवच्छिन्नसमानाधिकरण्यहीव्याप्तिहै
६	उद्धार (समाधान)	पृथिवीत्व	पृथिवी	घटपटाभाव	रूपत्व व्याप्य जातिगत जातित्व (स्वाश्रयाश्रयत्व सम्वन्ध से)	रूपत्व व्याप्य जातिमत् (नीलादि ७) का	तत्सामानाधिकरण्य । पृथिवीत्व मे है ।	इसप्रकारउक्त व्याप्ति दोष निवारण हुआ (क्योंकिरूपत्व व्याप्य जाति मत्वान्नास्ति यह सामान्याभाव नहीं है	हेतु = पृथिवीत्व, दण्डिसंयोग ।साध्य = रूपत्व व्याप्यजातिमत्‌दण्डी। हेत्वधिकरण = पक्षपृ.मठादि । उक्तदोनोंस्थलों के हेत्वधिकरणों मे यथाक्रम रूपत्वव्याप्य जातिमतका और दण्डि का अभाव नहीं है । यदि ये अभाव यथाक्रम पृथ्वी में और दण्डि संयोगाधिकरण (मठ) मे रहते तो अभावों का प्रतियोगितावच्छेदक रूपत्व व्याप्य जाति एवं तत्तत्सकल दण्ड और प्रतियोगितावच्छेदकतावच्छेदकरूपत्व व्याप्यजातित्वएवंदण्डत्वहोता
९	(उक्तसजातीय द्वितीय) दोष	दण्डि संयोग	दण्डि संयोगाधिकरण (मठ)	तत्तत्दण्डवान् का (अभाव) चा०न्या०से	तत्तत्सकल दण्डप्रतियोगितावच्छेदक ही हुआ नकिप्रतियोगितानवच्छेदक हुआ			अतः 'दण्डिमान् दण्डि संयोगात्' मे (पूर्ववत् अव्याप्ति)	जिस हेतु ये अभाव पृथ्वी और दण्डिसंयोगाधिकरण मे यथाक्रम नहीं हैं इसलिये पृथ्वी और दण्डिसंयोगाधिकरण(मठ) वृत्ति अभावका प्रतियोगितावच्छेदकतानवच्छेदकजो साध्यतावच्छेदकतावच्छेदकरूपत्वव्याप्य जातित्व और दण्डत्व तद्धर्म विशिष्ट जो रूपत्वव्याप्य जाति और दण्डरूप साध्यतावच्छेदक तदवच्छिन्न जो साध्य तत् सामानाधिकरण्य पृथ्वीत्वात्मक और दण्डि संयोगात्मक हेतुओं मे रहने के कारण लक्षण समन्वय हुआ ।
९	उद्धार (समाधान)	"	"	घटपटाभाव	दण्डत्व (स्वाश्रयाश्रयत्व परम्परा सम्बन्ध से	दण्डी	तत्सामानाधिकरण्य (दण्डि संयोगमे है)	इसलिये यहाँ भी पूर्ववत् अव्याप्तिदोष निवारणहुआ	

११	दोष	गुण कर्मान्यत्व- विशिष्टसत्ता	द्रव्य और गुण कर्म मा है (क्योंकि गुण कर्मान्यत्व विशिष्ट सत्ता और शुद्धसत्ता एक है	अतः गुण कर्ममे द्रव्यत्वाभाव है।	तत्प्रतियोगिता वच्छेदक द्रव्यत्वत्व) ही साध्यतावच्छेदक है।	×	×	अतः "द्रव्यं गुण कर्मान्यत्व विशिष्ट सत्वात्" मे अव्याप्ति।
११	लक्षणमे परिष्कार	हेतु (सामानाधिकरण) घटक हेत्वधिकरणका = हेतुतावच्छेदका वच्छिन्ना जो निरूपकतातादृशनिरूपकतानिरूपित जो अधिकरणतातद्वत् अर्थ है		तन्निष्ठ अभाव	तत्प्रतियोगितानवच्छेदक जो साध्यतावच्छेदक	तदवच्छिन्न जो साध्य	तत्सामानाधिकरण्य	व्याप्ति है।
	समन्वय	गुण कर्मान्यत्व विशिष्ट सत्ता	द्रव्य मात्र नकि गुण कर्म क्योंकि तादृश अधिकरणता द्रव्यही मे मानी जाती है।	घटाभावादि	द्रव्यत्वत्व	द्रव्यत्व	तत्सामानाधिकरण्य गुण कर्मान्यत्व वि. सत्तामे है	इसलिये उक्त अव्याप्ति दोष का वारण हुआ।
१३	दोष	धूम	धूमावयव	वन्ह्यभाव	तत्प्रतियोगितावच्छेदक ही साध्यतावच्छे. हुआ अतः	×	×	"वन्हिमान् धूमात्" मे अव्याप्ति।
१४	पुनः लक्षण मे परिस्कार	हेतु अधिकरण = हेतुतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्न (हेतुतावच्छेदका वच्छिन्ननिरूपकतानिरूपितअधिकरणतावत्) अर्थ है		अभाव	तत्प्रतियोगितानवच्छेदक जो साध्यतावच्छेदक	तदवच्छिन्न जो साध्य.	तत्सामानाधिकरण्य	व्याप्ति है।
	स० ✓	संयोगसं० व० धूमत्वावच्छिन्न निरूपकता निरूपितअधिकरणता (वत्)	पर्वतादि ४	घटाद्यभाव	वन्हित्व	वन्हि	धूममे	

१५	दोष	एतद् वृक्षत्व	एतद् वृक्ष	अपरदेशावच्छेदेनकपिसयोगाभाव	तत्प्रतियोगितानवच्छेदककपिसंयोगत्व नही	×	×	अतः "कपि संयोगी एतद् वृक्षत्वात्" मे अव्याप्ति
१४	पुनः ल. परि	प्रतियोगि व्यधिकरण	हेत्वधिकरण (हेतुतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्नहेतुतावच्छेदकावच्छिन्न निरू०नि० अधिकरणतावद्वृत्ति	अभाव	तत्प्रतियोगितानवच्छेदक जो साध्यतावच्छे.	तदवच्छिन्न जो साध्य	तत्समानाधिकरण्य	व्याप्ति है ।
	स० दो० निवारण	प्रतियोगि व्यधिकरण	हेतुसमानाधिकरण	जो अभाव सो कपिसंयोगाभा. नहीं होगा किंतु घटाभावादि	तत्प्रतियोगितानवच्छेदक जो कपि संयोत्वरू. साध्यतावच्छे०	तदवच्छिन्न जो कपि संयोग	तत्सामानाधिकरण्यएतद्वृक्षत्व रूपहेतुमे रहने कारण स.हुआ	कपि संयोगाभाव जो एतत् वृक्ष मे है सो प्रतियोगि समानाधिकरण होकर न कि प्रतियोगिव्यधिकरण होकरहै अतः अव्याप्ति वारण
१६	लक्षणान्तर्गत प्रतियोगिव्यधिकरण शब्दार्थ निरूपण	यदि प्रतियोगिव्यधिकरण प्रतियोग्यनधिकरण वृत्ति	हेतु समानाधिकरण (हेतुतावच्छेदक सं० वच्छिन्न हेतुतावच्छेदकावच्छिन्न ※	अभाव	तत्प्रतियोगितानवच्छेदक जो साध्यतावच्छेदक	तदवच्छिन्न जो साध्य	तत्सामानाधिकरण्य	व्याप्ति है । ※निरूपकता निरूपित अधिकरणतावत् वृत्ती
१६, १७	दोष	कपिसंयोग रूप प्रतियोगी का अनधिकरण जो गुणकर्मअन्य मे वृत्ती और	(अपरदेशावच्छेदेन) एतद् वृक्ष रूपहेत्वधिकरणमे वृत्ती जो	कपिसंयोगाभाव	तत्प्रतियोगितावच्छेदकहीक. संयोगत्व रूप सा० वच्छेदक हुआ अतः	×	×	यदि प्रतियोगि व्यधिकरण शब्द का प्रतियोग्यनधिकरण वृत्ती अर्थ करें तो "कपि संयोगी एतद्वृक्षत्वात्" मे अव्याप्ति बनी रहेगी ।
१८	पुनः परि०	यदि प्रतियोगि व्यधिकरण प्रतियोग्यधिकरण वृत्तिभिन्न	हेतु समानाधिकरण हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न = हेतुतावच्छेदकावच्छिन्न निरूपकतानिरूपित—	अभाव	तत्प्रतियोगितानवच्छेदक जो साध्यतावच्छेदक	तदवच्छिन्न जो साध्य	तत्सामानाधिकरण्य	व्याप्ति है । —अधिकरणतावत् वृत्ती) जो
	स०	प्रतियोग्यधिकरण वृत्तिभिन्न	एतत् वृक्षत्वरूप हेतु समानाधिकरण	कपिसंयोगाभा. नहीं होगा क्यों कि वह अपर देशावच्छेदेन※	कपि संयोत्व	कपि संयोग	तत्सामानाधिकरण्य एतत् वृक्षत्वरूपहेतु मे है ।	अतः प्रतियोगि व्यधिकरण शब्द का यदि प्रतियोग्यधिकरण वृत्ति भिन्न अर्थ कहें तो यहाँ लक्षण समन्वय हुआ । ※ प्रतियोग्यधिकरण वृत्तीहीहुआ अतःघटाभावही लेना पड़ेगा

१९	दोष	प्रतियोग्यधिकरण वृत्ति भिन्न	(और) सत्ता रूप हेतु समानाधिकरण	संयोगाभाव नहीं हुआक्यों कि वहद्रव्यमे भीअपरदेशाव च्छेदेनप्रसिद्दी+	संयोगत्व	संयोग	तत्सामानाधिक रण्य सत्तारूप हेतुमे । अत	"संयोगी सत्वात्" मे अति व्याप्ति +हुआ अतः घटाभाव है
१९	लक्षण (इस लक्षणमे सद्धेतु स्थलमे हेत्वधि करणसाध्या मा प्रतियोगीसाध्य ×	प्रतियोग्यनधिकरण	जो हेत्वधिकरण तद्वृत्तो	(जो) अभाव	तत्प्रतियोगिता नवच्छेदकजो साध्यतावच्छे दक	तदवच्छिन्न जो साध्य	तत्सामाना धि करण्य	प्रतियोगि व्यधिकरण का यदि प्रतियोग्यनधिकरण जो हेत्वधिकरण तद्वृत्ती जो अभाव ऐसाअर्थ करें तब "कपि त्वात्" इत्यादि स्थलों मे अव्याप्ति दोष नहीं हो सकता है × का अनधिकरण नहींहोनाचाहिये और व्याभि चारी होना चाहिये
(क)	स०	कपिसंयोगाभावका प्रतियोगी जो कपि संयोग उसका अनधि करण	एतत् वृक्षत्वाधिकरण नहीं हुआ । किन्तु	घटाद्यभावहीक प्रतियोग्यन धिकरणहेत्वधि करण हुआ अतः	कपिसंयोगत्व	कपि संयोग	तत्सामानाधिक रण्य एतद् वृक्ष त्वरूप हेतु मे है । अतः	यहाँ "कपि संयोगी एतद् वृक्षत्वात्" लक्षण समन्वय
(ग)	स०	संयोगाभावका प्रति योगी जो संयोगउस का अनधिकरण जो	गुणकर्मरूप हेत्वधि करण (तद्वृत्ति)	संयोगाभाव	तत्प्रतियोगिता नवच्छेदक हो सा ध्यतावच्छेदक हुआ अतः	•	×	"संयोगी सत्वात्" मे अतिव्याप्ति दोष वारण
२०	दो०	गुणकर्मान्यत्व विशिष्ट सत्ताभाव प्रतियोगीजे गुणकर्मान्यत्व विशिष्ट सत्ता(उसकोसत्ता रूप होनेकेकारण गुण *	गुण कर्मरूप हेत्वधि करण नहीं होगा अतः	गुण कर्मान्यत्व विशिष्ट सत्ताभा व नहीं लिया जा सकता किन्तु घट भावही होगा	गुणकर्मान्यत्व विशिष्टसत्तात्व (प्रतियोगिता नवच्छेदकसा ध्यतावच्छेदक	गुण कर्मान्यत्व विशिष्टसत्ता रूप साध्य	तत्सामानाधिक रण्य जातिहेतु मेरहनेकेकारण	गुणकर्मान्यत्व विशिष्ट सत्तावान् जातेः मे अतिव्याप्ति *कर्मान्यत्व विशिष्ट सत्तारूप शुद्धसत्तात्मक प्रतियोगी का अनधिकरण
२०	लक्षणमे पुनः परिस्कार	प्रतियोग्यनधिकरण प्रतियोगिता वच्छेद कावच्छिन्ननिरूपकता निरूपित अधिकरण त्वा भाववत् (जो)	हेत्वधिकरण (तद वृत्ती) ।	अभाव	तत्प्रतियोगिता नवच्छेदकजो साध्यता वच्छे दक	तदवच्छिन्न जो साध्य	तत्सामानाधि करण्य	व्याप्ति है । अधिकरणत्वा भाववत् जो हेत्वधिकरण = अधिकरणत्वा भाववत् का अनधिकरण जो हेत्वधिकरण

	स०	विशिष्ट सत्ताभाव प्रतियोगितावच्छेदक जो विशिष्टसत्तात्व तदवच्छिन्न निरूपकतानिरूपिताभिकरणत्वा भा०	जो गुणकर्मरूप हेत्वधिकरण (तद्वृत्ती)	जो गुणकर्मान्यत्व विशिष्ट सत्ताभाव	तत्प्रतियोगितानवच्छेदकविशिष्टसत्तात्वरू. साध्यतावच्छेदककोनहोनेके+	*	×	प्रतियोग्यनधि करणकायदिप्रतियोगिता वच्छेदका ४४ वच्छिन्न निरुपकता निरुपित अधिकरणत्वा भाववत् अर्थ करें तो "गुणकर्मान्यत्व विशिष्ट सत्तावान् जातेः" मे अतिव्याप्ति वारण हुआ। ०ववत् +कारण
२२	दो०	ज्ञानाभाव का प्रतियोगीजोज्ञान उसका विपयता सम्वन्धसे वस्तुमात्र अधिकरणहै अनधिकरण	हेत्वधिकरण नहीं होनेके कारण	ज्ञानाभाव लक्षण घटकनहींहोगा किन्तुअभावान्तरहो होगा	तत्प्रतियोगितानवच्छेदकज्ञानत्वरूपसाध्यतावच्छेदकको होनेके कारण	तदवच्छिन्न साध्य	सामानाधिकरण्य द्रव्यत्व रूपहेतु मे रह जायगा अतः	"ज्ञानवान् द्रव्यत्वात्" मे अतिव्याप्ति होगी।
२३	दो०	समवायसम्वन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकवह्न्यभावीयप्रतियोगिताव० वह्नित्वावच्छिन्न वह्निरूपप्रतियोगीका ※	जो पर्वतादि रूप हेत्वधिकरणतद्वृत्ति समवाय सम्वन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताक	वन्ह्यभाव	प्रतियोगितानवच्छेदक वन्हित्व रूप साध्यतावच्छे. कोनहीहोने ×	×	×	अव्याप्ति हुई। एवम् यदि प्रतियोगिता वच्छेदक सम्वन्ध से प्रतियोगी का अनधिकरणमात्र समझें। तो "वह्निमान् धूमात्" में अव्याप्ति। ※समवायसम्वन्धेन अनधिकरण। × के कारण
२१	ल० मे परि०	प्रतियोग्यनधिकरण = साध्यतावच्छेदकसम्वन्धावच्छिन्न※निरूपकतानिरूपितअधिकरणत्वाभाववत् जो	हेत्वधिकरण(तद्वृत्ती)	अभाव	तत्प्रतियोगितानवच्छेदक सा० वच्छेदक	तदवच्छि साध्य	सामानाधिकरण्य	व्याप्ति हैं। निरुपकता साध्यता वच्छेदक सम्वन्धावच्छिन्ना होना चाहिये। ※प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न
	स०	ज्ञानाभावकाप्रतियोगी जो ज्ञान उसका समवायसम्वन्धसे अनधिकरण जो	हेत्वधिकरण रूप आत्-तर द्रव्य तद्वृत्ती	ज्ञानाभ व	प्रतियोगितानव० ज्ञानत्व रू०सा० व० को नही होनेके कारण	×	×	"ज्ञानवान् द्रव्यत्वात्" में अतिव्याप्ति का वारण
	स०	समवायेन वह्न्यभाव प्रतियोगी जोवन्हि उसकासाध्यतावच्छेदकसंयोग सम्बन्धेन अनधिकरण	पर्वतादि रूप हेत्वधिकरण नहीं होनेके कारण	समवायेनवन्ह्यभावलक्षण घटकनहीं होगा किंतुघटाभावादि होगा	तत्प्रतियोगितानवच्छेदकजो वन्हित्वरूप साध्यता वच्छेदक	तदवच्छिन्न साध्य	तादृश साध्य सामानाधिकरण्य धूमरूप हेतुमें रहनेकेकारण	लक्षणसमन्वय हुआ।

२४	विकल्प १म	प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नयत्किञ्चितव्यक्तिका अनधिकरण	जो हेत्वधिकरण तद्वृत्ति	अभाव	तत्प्रतियोगितानवच्छेदक जो साध्यतावच्छेदक	तदवच्छिन्न साध्य	तत्सामानाधिकरण्य	व्याप्त है। अर्थात्— यदि प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरण का प्रतियोगिता वच्छेदकावच्छिन्न यत्किञ्चित् व्यक्ति का अनधिकरण अर्थ करें तो "कपिसंयोगी एतत् वृक्षत्वात्" में अव्याप्ति ४५
२५, २६,	दोष का उपपादन	×पिसंयोगाभावका प्रतियोगितावच्छेदकाव च्छिन्न यत्किञ्चित जो वृक्षावृत्ति कपि ×	एतत् वृक्ष रूप हेत्वधिकरण (तद्वृत्ति	कपि संयोगाभाव	तत्प्रतियोगितानवच्छेदक ही साध्यतावच्छेदक हुआ अतः	+	+	अव्याप्ति।— × संयोग उसका अनधिकरण जो + तत्प्रतियोगितानवच्छेदक
२४	विकल्प २य	प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न सामान्यानधिकरण जो	हेत्वधिकरण (तद्वृत्ति)	अभाव	तत् प्रतियोगितानवच्छेदक भी साध्यतावच्छेदक	तदवच्छिन्न जो साध्य	तत् सामानाधिकरण्य*	अव्याप्ति है। यदि प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरण का प्रति-योगितावच्छेदकावच्छिन्न सामान्यानधिकरण अर्थ करेंगे तो "कपि संयोगी एतत् वृक्षत्वात्" में अव्याप्ति वारण हुआ किन्तु प्रतियोगि व्यधिकरण अभाव ही अप्रसिद्ध होगा। यथा पूर्वक्षण वृत्तित्वविशिष्ट घटाभाव के अभाव का अभाव = पूर्वक्षण वृत्तित्वविशिष्ट घटाभाव स्वरूप है पूर्वक्षण वृत्तित्व विशिष्ट घटाभाव = शुद्धघटाभाव स्वरूप है
	पूर्व दोष का वारण	कपि संयोगाभावप्रतियोगिता वच्छेदकावच्छिन्न सामान्यान्तर्गत वृक्षवृत्ति कपि संयोग का अनधिकरण।	एतत् वृक्ष रूप हेत्वधिकरण को नहीं होनेके कारण	कपिसंयोगाभावलक्षण घटक नहीं होगा किन्तु घटाभावादि ही होगा+	कपिसंयोगत्व	कपिसंयोग	तत्सामानाधिकरण्य एतत् वृक्षत्व में है अतः अव्याप्ति नहीं हुई।	घटाभाव का प्रतियोगी = जैसे घट है वैसे पूर्वक्षण वृत्तित्व विशिष्ट घटाभाव का अभाव भी है। तब घटाभाव के प्रतियोगिता वच्छे-दकावच्छिन्न सामान्य में पूर्वक्षण वृत्तित्व विशिष्ट घटाभावका अभाव भी लिया जायगा जो केवलान्वयि है। अतः उस का अनधिकरण हेत्वधिकरण कोई नहीं होगा इसलिये कोई अभाव प्रतियोगि व्यधि-करण होही नहीं सकता। किन्तु वन्हिमान् धूमात्" इत्यादि स्थलों
२९	समन्वय "वन्हिमान् धूमात्" मे दोष निवारक ↓	साध्यता वच्छेदक संयोग सम्बन्ध से पूर्वक्षणवृत्तित्व विशिष्ट घटाभावाभाव रूप प्रतियोगी का अधिकरण ही अप्रसिद्ध है तब अनधिकरण तो सुतरां अप्रसिद्ध है अतः पूर्वक्षण वृत्तित्व विशिष्ट घटाभावाभाव रूप प्रतियोगी नहीं	पर्वतादि रूप हेत्वधिकरणको होने के कारण तद्वृत्ति	घटादिही प्रतियोगीव्यधिकरण हो जायगा अतः	तत्प्रतियोगितानवच्छेदक वन्हित्व रूप साध्यतावच्छेदक होने के कारण	तदवच्छिन्न जो वन्हि रूप साध्य	तत्सामानाधिकरण्य धूम रूप हेतु में रहने के कारण।	में प्रतियोगि व्यधिकरण अभाव अप्रसिद्ध नहीं होगा क्योंकि प्रति योगिव्यधिकरण आपने साध्यतावच्छेदक सम्बन्ध से कहा है तब घटाभाव का पूर्वक्षण वृत्तित्व विशिष्ट घटाभाव का जो अभाव तद्रूप जो प्रतियोगी उस का साध्यता वच्छेदक संयोग सम्बन्ध से अधि करण ही अप्रसिद्ध है अतः उस प्रतियोगी को नहीं लेकर घटरूप ही प्रतियोगी लिया जायगा उस का संयोग सम्बन्ध से अनधिकरण पर्वतादि रूप हेत्वधिकरण को होने के कारण घटाभावादि ही प्रति-योगि व्यधिकरण होजायगा। अतः इनस्थलोंमे अव्याप्ति नहीं होगी।

		लिया जायगा। किन्तु घटरूप प्रतियोगी लिया जायगा साध्यतावच्छेदक संयोग ..म्वन्धसे घटरूप प्रतियोगीकाअनधिकरण	अधिकरणही संसार है तव				
२९	दोष	घटाभाव का प्रतियोगी जैसे घट है वैसे ही पूर्वक्षण वृत्तित्वविशिष्ट घटाभावका अभाव भी है। (उसका	उसका अनधिकरण) हेत्वधिकरण नहीं होनेके कारण	घटाभावादिप्रतियोगिव्यधिकरण नहीं होगाअत ०	×	×	+
२९	ल० परि०	साध्यता वच्छेदक सम्बन्धेन प्रतियोगिता वच्छेदकावच्छिन्न सामान्यानधिकरण	जो हेत्वधिकरण तद्वृत्ति	जो अभाव	तत्प्रतियोगिता नवच्छेदकजो साध्यता वच्छेदक	तदवच्छिन्न	सामानाधिकरण्य ※
३०	समन्वय	साध्यतावच्छेदक सम्बन्धेन पूर्वक्षणवृत्तित्व विशिष्ट घटाभावाभावात्मकप्रतियोगीका अधिकरणही अप्रसिद्ध है अतः घटरूप प्रतियोगीकाअनधिकरणजो	हेत्वधिकरण तद्वृत्ति "	जोअभाव	वन्हित्व	वन्हि	धूम मे हैं। +
३०	पुनः दो०	घटाभावमे वृत्ती जो वन्ह्यभाव वह घटाभाव स्वरूप है अतः घटाभावकावन्हि भी प्रतियोगी हुआ उसका अनधिकरणजो	हेत्वधि करणजो वह अप्रसिद्ध है अतः	×	×	×	ऽ

+अव्याप्ति वारण हुआ। (स्पष्टार्थ) यद्यपि "अभावाधिकरणकजो अभाव वह अधिकरण स्वरूप है। अतः घटाभाव निष्ठ = जोहत्याभाववह घटाभावरूप है तव घटाभावकाप्रतियोगीजैसे घट हुआवैसा ही वन्हि भी हुआ। तव साध्यतावच्छेदक सम्बन्ध से घटाभाव प्रतियोगिता वच्छेदकावच्छिन्न सामान्यान्तर्गत वन्हि रुप प्रतियोगी का अनधिकरण हेत्वधिकरण नहीं होने के कारण प्रतियोगि व्यधिकरणअभाव पुनः अप्रसिद्ध ही रह जायगा अतः वन्हिमान् धूमात् मे भी अव्याप्ति वारण नहीं हुआ। परन्तु यदि उक्त नियम न मानें तो घटाभाव निष्ठ वहन्यभाव घटाभाव रुप न होगा तव घटाभाव का प्रतियोगी वन्हि नहीं हो सकता, यदि पूर्वक्षण वृत्तित्वविशिष्ट घटाभाव का अभाव घटाभाव का प्रतियोगी हो सकता तो उसका संयोग सम्बन्धेन अधिकरणअप्रसिद्ध होने के कारण प्रतियोगिता वच्छेदकावच्छिन्न सामान्य मे वह नहीं लिया जायगा किन्तु घटाभाव लिया जायगा। तव घटरुप प्रतियोगी का संयोग सम्बन्धसे अनधिकरण पर्वतादि रुप हेत्वधिकरण होने के कारण घटाभावही प्रतियोगी व्यधिकरण हो जायगा अतः "वन्हिमान् धूमात्" मे अव्याप्ति नहीं भी हो तथापि "धूमाभाववान् वन्ह्यभावात्" यहां स्वरुप सम्बन्धको साध्यतावच्छेदक सम्बन्ध होने के कारण उक्त रीति से कोई अभाव प्रतियोगिव्यधिकरण नहीं होगा अतः अव्याप्ति होगी।

०अव्याप्ति हुई।

※व्याप्ति।

+ अतः अव्याप्ति नहीं हुई।

ऽअव्याप्ति हुई।

३१,३२	७ दोष विकल्प ३य,	७ प्रतियोगितावच्छेदकीभूत यत्किञ्चित् धर्मावच्छिन्नानधिकरण जो	हेत्वधिकरणतद्वृत्तीजो	अभाव	तत्प्रतियोगितानवच्छेदक जो साध्यतावच्छेदक	तदवच्छिन्न साध्य	सामानाधिकरण्यव्याप्ति	+ अभावाधिकरणक अभाव यदि अधिकरणस्वरूप नहीं माना जाय तथापि "धूमाभाववान् वह्न्यभावात्" इत्यादिस्थल मे अव्याप्ति हुई।
	समन्वय	"धूमाभाववान् वह्न्यभावात्" यहाँ घटाभाव प्रतियोगितावच्छेदक घटत्वरूप यत्किञ्चित् धर्मा ...	जलादिरूप हेत्वधिकरण होनेके कारण	घटाभावादि है। प्रतियोगीव्यधिकरण होगा	धूमाभावत्व	धूमाभाव	वह्न्यभावरूप हेतु मे है।	अतः उक्त समन्वय हुआ। *व्यधिकरणान्तर्गत
३३,३४	दोष	कपिसंयोगाभावाभाव कपिसंयोग और गुणसामान्याभावाभाव गुणसामान्यरूप है तब कपिसंयोगको भी गुण+	आत्मरूप हेत्वधिकरणतद्वृत्ति	कपिसंयोगाभावाभाव	तत्प्रतियोगितानवच्छेदक कपिसंयोगाभावत्व रूप साध्यतावच्छेदक के नहीं होने के कारण	×	×	-- सामान्यान्तर्गत होनेके कारण गुणसामान्याभावाभावसे भिन्न कपिसंयोगाभावाभाव नहीं है अतः कपिसंयोगाभावाभाव प्रतियोगितावच्छेदक जो गुणसामान्याभावत्व तदवच्छिन्न जो गुणसामान्याभाव उसका अनधि• "कपिसंयोगाभाववान् आत्मत्वात्" मे अव्याप्ति

इस लक्षण मे सद्धेतु मे साध्यतावच्छेदक घटित प्रतियोगिता लक्षण घटक नहीं होनी चाहिये।

और व्यभिचारी मे साध्यतावच्छेदक घटित प्रतियोगिता लक्षण घटक होनी चाहिये॥

३५	परि०	यादृश प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नका	अनधिकरण	हेत्वधिकरण हो	तादृश प्रतियोगितानवच्छेदक साध्यतावच्छेदक	तदवच्छिन्न साध्य	सामानाधिकरण्य	व्याप्ति है। नवीन लक्षण (तदवच्छिन्न साध्य सामानाधिकरण्य तदवच्छिन्न निरूपकता निरूपिताधिकरणतावद्वृत्तित्व) करनेसे "कपिसंयोगी एतद् वृक्षत्वात्" "धूमाभाववान् वह्न्यभावात्" "कपिसंयोगाभाववान् आत्मत्वात्" इत्यादि स्थलों मे अव्याप्ति वारण हुआ क्योंकि (१) कपिसंयोगत्व (२) धूमाभावत्व (३) कपिसंयोगाभावत्व धर्मावच्छिन्ना प्रतियोगिता यादृश प्रतियोगिता मे गृहीत नहीं होगी क्योंकि एतद् धर्मावच्छिन्नानधिकरण हेत्वधिकरण नहीं होगा।
३५	दोष	साध्यतावच्छेदक सम्बन्धेन यादृश प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरण कहने से "कालो घटवान् कालपरिमाणात्" यहाँ	अधिकरण ही (नकि अनधिकरण)	महाकाल रूप हेत्वधिकरण है अतः	×	×	×	

		साध्यतावच्छेदक सम्वन्ध कालिक है। उस सम्वन्धसे सभी पदार्थ महाकालरुप हेत्वधिकरणमे रहतेहैंअतः यादृशप्रतियोगितामें किसी प्रतियोगिताके नहीं ले सकते क्योंकि जिस प्रतियोगिता को लेगेतादृशप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नके						कालो वटवान् कालपरिमाणात् मे अव्याप्ति।
३७,३८	मतान्तरसे दोष निवारण	महाकालान्यत्वविशिष्ट घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदक जो महाकालान्यत्वविशिष्ट घटत्व तदवच्छिन्न का	अनधिकरण	महाकाल रूप हेत्वधि करण होने के कारण	तादृश प्रतियोगितानवच्छेदक जो घटत्व रुप साध्यता वच्छेदक	तदवच्छिन्न साध्य	सामानाधिकरण्य काल परिमाण रूप हेतुमें रहनेकेकारण लक्षण समन्वय हुआ अतः	यादृशप्रतियोगिता महाकालान्यत्व विशिष्ट घटत्वा वच्छिन्ना प्रतियोगिता यहाँ लक्षण घटक है
३९	चरम लक्षण	प्रतियोगितावच्छेदक सम्वन्ध से यादृश प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न का	अनधिकरण	हेत्वधि करण हो	तादृश प्रतियोगिता सामान्यमेयत्सम्वन्धावच्छिन्नत्व यद्धर्माववच्छिन्नत्व उभयाभाव रहे	तद्धर्मावच्छिन्न तेनसम्बन्धेन हेतुका व्यापक है	औरतादृशव्यापकका तेनसम्वन्धेन हेतुनिष्ठ सामानाधिकरण्य व्याप्तिहै	

१. गुरु धर्म को प्रतियोगिता वच्छेदकत्व मानकर उक्त लक्षणकिया गया है अतएव "कम्वुग्रीवादि मत्वान् कपालत्वात्" इत्यादि स्थल में अव्याप्ति न हुई।

पञ्चलक्षणी व्याप्तिलक्षण तथा परिष्कार।

१ साध्यवदन्य निरूपित वृत्तित्वाभाव।
२ साध्यवत् (साध्यतावच्छेदक सम्बन्धेन) अन्य निरूपित वृत्तित्वाभाव ।
३ साध्यवदन्य निरूपित वृत्तित्व (हेतुतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्न) अभाव ।
४ साध्यवदन्य निरूपित वृत्तित्वाभाव (साध्यवदन्य निरूपित वृत्तितात्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक अभाव)
५ साध्यवदन्य निरूपितवृत्तितानवच्छेदक जो हेतुतावच्छेदक तद्वत्व ।

सिद्धान्त लक्षण।

१ हेतुमन्निष्ठ जो अभावतत्प्रतियोगी जो साध्य तादृश साध्य सामानाधिकरण्य
२ हेतु समानाधिकरण जो अभाव तत्प्रतियोगिता नवच्छेदक जो साध्यतावच्छेदक तदवच्छिन्न साध्य सामानाधिकरण्य ।
टि॰ नं॰ १ हेतुमत = हेतुतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्न हेतुनिष्ठ निरूपकता निरूपिताधिकरणतावत् ।
टि॰ नं॰ २ हेतुसमानाधिकरण = हेतुतावच्छेदकावच्छिन्न निरूपकता निरूपिताधिकरणतावत् ।

३ प्रतियोगिव्यधिकरण हेतुसमानाधिकरण जो अभाव तत्प्रतियोगितानवच्छेदकसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्न साध्य सामानाधिकरण्य ।

टि॰ प्रतियोगिव्यधिकरण = (क) प्रतियोग्यनधिकरण वृत्ति ।
तथा (ख) प्रतियोग्यधिकरण वृत्तिभिन्न ।

४ प्रतियोग्यनधिकरण हेत्वधिकरण वृत्ति जो अभाव तत्प्रतियोगितानवच्छेदक साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न साध्य सामानाधिकरण्य ।

टि॰ प्रतियोग्यनधिकरण = प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न निरूपकतानिरूपिताधिकरणत्वाभाववत् ।

या

साध्यतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपिताधिकरणत्वाभाववत् ।

प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न = (क किञ्चित् व्यक्त्यनधिकरण या (ख) सामान्यानधिकरण (ग) प्रतियोगितावच्छेदकीभूत यत्किञ्चित् धर्मावच्छिन्नानधिकरण ।

५ यादृशप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरण हेत्वधिकरण हो तत्प्रतियोगितानवच्छेदक साध्यता वच्छेदकावच्छिन्न साध्य सामानाधिकरण्य ।

६ चरम, प्रतियोगितावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्न यादृश प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरण हेत्वधिकरण हो तादृश प्रतियोगिता सामान्यमें यत्सम्बन्धावच्छिन्नत्व (साध्यतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्नत्व) यद्धर्मावच्छिन्नत्व (साध्यतावच्छेदक धर्मावच्छिन्नत्व) उभयाभाव तद्धर्मावच्छिन्न = (साध्यता वच्छेदक धर्मावच्छिन्नत्व) तेनसम्बन्धेन । (साध्यतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्नत्व) हेतुका व्यापक है । और तादृश व्यापक का तेन सम्बन्धेन हेतु निष्ठ समानाधिकरण व्याप्ति है ।

१	लक्षण	साध्य	(साध्यवत्) वत्	(साध्यवदन्य) अन्य	निरूपि.	साध्यवदन्य निरूपितवृत्तित्व
२	परिस्कृत लक्षण	,,	वत् (साध्यतावच्छेदक सम्बन्धेन) १	,, अन्य	,,	,,
३	,,	,,	,,	२ अन्य(साध्यवत्वाव० प्रतियोगिताकभेदवान्	,,	,,
४	,,	,,	,,	,,	,,	वृत्तित्व हेतुताव० सम्वन्धावच्छिन्न) ३
५	,,	,,	,,	,,	,,	वृत्तिता
६	,,	,,	,,	,,	,,	वृत्तिता नवच्छेदक (जो) हेतुतावच्छेदक ५

सिद्धान्त

टि० (क) " सद्धेतुमे साध्याभाव लक्षण घटक नहीं हना चाहिये " व्यभिचारी में साध्याभाव लक्षण घटक होना चाहिये ।

१	ल०	हेतु	हेतुमत्	(हेतुमन्निष्ठ) अभाव	(हेतुमन्निष्ठ अ०) अप्रतियोगी साध्य	तादृशसाध्य
२	प० ल०	,,	समानाधिकरण हेतुमत् वृत्ति जो	अभाव	तत्प्रतियोगिता नव० सा० व०	तद्वच्छिन्न जो साध्य तत्
३		हेतु-हेतुता वच्छेदकावच्छिन्न जो निरूपकतानिरूपित जो अधिकरणता तद्वत् अर्थहै	समानाधिकरण)	निष्ठ अभाव	,,	,,
४		(हेतु = -हेतुतावच्छेदकसम्वन्धावच्छिन्नहेतुनिष्ठ निरूपकतानिरूपिताधिकरणतावत्	मत्	अभाव	,,	,,
५	,,	प्रतियोगिव्यधिकरण	हेतुसमानाधिकरण	,,	,,	,,
६	,,	यदि प्रतियोगिव्यधिकरण = प्रतियोग्यनधिकरण वृत्ति	,,	,,	,,	,,
७	,,	यदिप्रतियोगि व्यधिकरण = प्रतियोग्यधिकरण वृत्तिभिन्न	,,	,,	,,	,,

पा क प स) ५१

सप्तमी)

साध्यवदन्य [illegible] का अभाव	समन्वय स्थल "वह्निमान्धूमात्"	[illegible] ३ ([illegible])	"वह्निमान्धूमात्" अव्याप्ति
"	"	महानसादि ४ [illegible] ६	"
"	"	धूम[illegible] ३	"
"	"	[illegible] में है। ४	("धूमवान्वह्नेः" में अतिव्याप्ति
अभाव (साध्यवदन्य[illegible] [illegible] [illegible]) ४	"धूमवान् वह्नेः" (अयोगोलक [illegible])	[illegible] और [illegible] दूर होने के कारण। ५	'द्रव्यं[illegible] त्वात्' में अव्याप्ति।
[illegible]	द्रव्य विशिष्ट[illegible]	(१) [illegible] होने के कारण (२) (द्रव्यम्) सामान्यादि में समवाय सम्बन्ध से [illegible] को नहीं रहने के कारण	"सत्तावान् [illegible] त्वात्" "सत्तावान् जातेः" में क्रमशः अव्याप्ति

सप्तम

टि० (अ) [illegible] प्रतियोगी का अनधिकरण नहीं होना चाहिये एवं[illegible] होना चाहिये।

सामानाधिकरण्य हेतु के साथ	"सत्तावान् द्रव्यत्वात्" "सत्तावान् जातेः"	[illegible]	"तद्वान्हिमान् तद्मान्" गुणवान् द्रव्यत्वात् में क्रमशः अव्याप्ति।
सामानाधिकरण्य	"तद्वान्हिमान् तद्मान्" "गुणवान् द्रव्यत्वात्"	[illegible] "वह्निमान् [illegible]" में [illegible] सम्बन्ध करके [illegible] निषेध।	किन्तु 'द्रव्यं गुण कर्मान्यत्वविशिष्ट सत्वात्' में अव्याप्ति
"	गुणकर्मान्यत्वविशिष्ट सत्वात्'	[illegible] [illegible] में माना जाती है अतः समन्वय हुआ किन्तु [illegible]।	'वह्निमान् धूमात्' में अव्याप्ति।
"	'वह्निमान् धूमात्'	किन्तु वृक्ष में शाखादेशावच्छेदेन कपिसंयोगाभाव के हेतु	'कपिसंयोगी एतद् वृक्षत्वात्' में अव्याप्ति
"	कपिसंयोगी एतद् वृक्षत्वात्'	कपिसंयोगाभाव का प्रतियोगी सामानाधिकरण होने से समन्वय। अतः प्रतियोगिव्यधिकरणपर विचार।	×
"	×	कपिसंयोग रूप प्रतियोगी का अनधिकरण गुण कर्म होने के कारण। कपिसंयोगाभाव लिया गया अतः पुनः।	कपिसंयोगी एतद् वृक्षत्वात् में अव्याप्ति।
"	"	कपिसंयोगाभाव को प्रतियोगिव्यधिकरण वृत्तिभिन्न नहीं होने के कारण समन्वय किन्तु संयोग अव्याप्यवृत्ती है अतः।	संयोगी सत्वात् में अतिव्याप्ति।

८	टि० (ख) "	प्रतियोग्यनधिकरण	(जो) हेत्वधिकरण (तद्वृत्ति)	अभाव "	तत्प्रतियोगितानवच्छेदकजो सा.वच्छेद	तद्वच्छिन्न जो साध्य तत्
९	"	प्रतियोग्यनधिकरण = प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न निरूपकतानिरूपितअधिकरणत्वाभाववत् जो	"	"	"	"
१०	"	प्रतियोग्यनधिकरण = साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्ननिरूपकतानिरूपित अधिकरणत्वाभाववत् (जो)	"	"	"	"
११	"	प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न = यत्किञ्चित व्यक्ति का अनधिकरण	जो हेत्वधिकरण वृत्ति	"	"	"
१२	"	प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न = सामान्यानधिकरण जो	हेत्वधिकरण	"	"	"
१३	"	प्रतियोगितावच्छेदकीभूत यत्किञ्चित् धर्मावच्छिन्नानधिकरण(जो)	"	"	"	"
१४	"	यादृश प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न	अनधिकरण	हेत्वधिकरणहो	"	"
१५	चरम ल० "	प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धसेयादृश प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नका	"	"	तादृशप्रतियोगितासामान्यमेयत्सम्बन्धावच्छिन्नत्वसाध्यतानवच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्नत्व यद्धर्मावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकधर्मावच्छिन्नत्व उभयाभाव	तद्धर्मावच्छिन्न सा०) तेन सम्बन्धेन(सा०) हेतु का व्यापक है

सामानाधिकरण्य	संयोगी सत्वात्	शुद्धसत्ता और विशिष्टसत्ता एक है अतः विशिष्ट सत्ता का अधिकरण गुणकर्म भी होने के कारण।	गुण कर्मोन्यत्व विशिष्टसत्तावान् जातेः मे अति व्याप्ति ।
,,	"गुण कर्मोन्यत्व विशिष्ट सत्तावान्जातेः	ऐसा निवेश से अनधिकरण गुणकर्म रूप हेत्वधिकरण हुआ अतः वारण किन्तु ।	ज्ञानवान् द्रव्यत्वात् औरवन्हिमान्धूमात्' मे क्रमशः अतिव्याप्ति और अव्याप्ति
,,	'ज्ञानवान्द्रव्यत्वात्' 'वन्हिमान् धूमात्'	अब क्रमशः समवाय और संयोग सम्बन्ध के ग्रहण से वारण और समन्वय किन्तु प्रतियोगिता वच्छेदकावच्छिन्न पर विचार	×
,,	×	वृक्षावृत्ति कपिसंयोगको लेकर	कपिसंयोगी एतद् वृक्षत्वात्मे अव्याप्ति ।
,,	'कपिसंयोगी एतद् वृक्षत्वात्'	साध्यता वच्छेदक सम्बन्ध के कारण अभाव अप्रसिद्ध नहीं होगा। विस्तृत व्याप्ति चिह्न की टिप्पणी देखो	"धूमाभाववान् वन्हयभावात् मे अव्याप्ति ।
,,	"धूमाभाववान् वन्हिभावात्"	यत्किञ्चित धर्म से घटत्व को लेकर समन्वय किन्तु	"कपिसंयोगाभाव वान् आत्मत्वात्' मे अव्याप्ति ।
,,	कपिसंयोगाभाववान् आत्मत्वात्' इत्यादिमे	यादृश तादृश के निवेश से समन्वय हुआ, किन्तु	"कालो घटवान् कालपरिमाणात्'मे अव्याप्ति ।
और तादृश व्यापकका तेन सम्बन्धेनहेतु निष्ठसमानाधिकरणव्याप्ति है	कालो घटवान् काल परिमाणात्'	कोई तो महाकालान्यत्व विशिष्ट घटाभाव को लेकर समन्वय करते है, तद्भिन्न केवल परिष्कार से	

टि० गुरुधर्म को प्रतियोगिता वच्छेदकत्व मानकर उक्त लक्षण किया गया है अतएव "कम्बुग्रीवादि मत्वान् कपालत्वात्" इत्यादि सद्धेतु मे अव्याप्ति न हुई ।

१	ल०	सिषाधयिषा = साध्यानुमितीच्छा—	विरहविशिष्ट	सिद्धि (साध्यनिश्चय)	तादृश सिध्यभाव	पक्षता है	एतावता तादृश साध्य निश्चयाभाव रूप (पक्षता) धर्मवान् पक्ष है।
२	समन्वय	वह्न्यनुमितीच्छा—	,,	वन्हि निश्चय	वन्हि निश्चयाभाव	पक्षता है	
३	दो०	यत्किञ्चित् ज्ञानेच्छा रूप शिषाधयिषा	विरह विशिष्ट सिद्धि नहीं है				क्योंकि "वन्हिव्याप्य धूमवान् पर्वतो वन्हिमाञ्च" सिद्धयत्किञ्चित् ज्ञानम् मे जायताम् " सिषाधयिषा) इस स्थल मे अनुमिति नहीं होती है अब हो जायगी अतः परिस्कार।
४	ल०	यादृश शिषाधयिषा और यादृश यादृश सिद्धिसत्वमेंयल्लिङ्ग जन्य अनुमिति हो तादृश सिषाधयिषा	विरह विशिष्ट	जो सिद्धि, अनुमितिप्रतिवन्धक है)	तादृश सिद्धिका अभाव	तल्लिङ्गजन्य अनुमितिजनक पक्षता है	(एवम् तादृश धर्मवान् पक्ष है, ऐसा लक्षण करने से "पर्वतस्तेजस्वी पाषाणमयो वह्निमान् इत्यादि निश्चय करने पर भी अनुमित्यनुपपत्ति नहीं हुई।

चि० नं० ४६ (सिषाधयिषा विरह विशिष्ट्य विशेषण देने पर भी समन्वय हो जायगा

१	ल०				सिद्ध्यभाव	पक्षता है	* क्योंकि सिद्धिभावरूप कारण ३य क्षण मे रहगया
२	स०	सिद्धि १म लक्षण मे	सिषाधयिषा (२य क्षणमे)	परामर्श (३यक्षणमे)	अनुमिति (४र्थ क्षणमे)	यहाँ अनुमिति होतीहै सो हो जायगी *	इसी तरह सिद्धिसिषाधयिषा परामर्श इन तीनों के व्युत्क्रम करने से जहाँ अनुमिति होती है वहाँ होगी जहाँ नहीं वहाँ न होगी — अतः समन्वय हुआ।
३	दो०	सिद्धिपरामर्श (१म क्षणमे समूहालम्बन	सिषाधयिषा (२य क्षणमे)	×	३य क्षणमे अनुमिति	यहाँ अनुमिति होतीहै सो न होगी	क्योंकि सिद्धिरूप प्रतिवन्धक ही है। अतः उक्त निवेश करना आवश्यक है।
४	प०ल०	सिषाधयिषा	विरह विशिष्ट	सिद्धि	तादृशसिद्ध्याभाव	पक्षता है	अव पूर्ववत् समन्वय हुआ।

चि० ४७ का० नं० ७०-का मुक्तावली पक्षताके लक्षण मे सिषाधयिषा विरह विशिष्टत्व विशेषणका वैयर्थ्य बोधक पूर्वगत चित्र ।

	क्षण १	क्षण २	क्षण ३	क्षण ४	क्षण ५
१	परामर्श	(सिद्धि)	अनुमित्सा	अनुमिति	अनुमिति नहीं होगी, क्योंकि अनुमितिक कारण परामर्श का नाश ३य क्षण मे हो गया ।
२	सिद्धि	परामर्श	,,	,,	अनुमिति होगी, क्योंकि सिद्धिरूप प्रतिबन्धक का नाश ३य क्षण ही मे होगया ।
३	सिषाधयिषा	सिद्धि	परामर्श	,,	अनुमिति न होनी चाहिये या नहीं होगी क्योंकि सिषाधयिषा का ३य क्षणमे नाश हो जायगा । और सिद्धि ३य क्षण मे रह जायगी ।
४	परामर्श	सिषाधयिषा	सिद्धि	,,	अनुमिति नहीं होगी क्योंकि परामर्श का ३य क्षणमें नाश हो जायगा ।
५	सिद्धि	,,	परामर्श	,	अनुमिति होगी क्योंकि सिद्धिरूप प्रतिबन्धक का अभाव ३य क्षण मे हुआ ।
६	सिषाधयिषा	परामर्श	सिद्धि	,,	अनुमिति नहीं होगी क्योंकि ३य क्षण मे इच्छा के नाश से इच्छा विरह विशिष्ट सिद्धरूप प्रतिबन्धक रह जायगा ।

चि० नं० ४८ का० नं० ७० का मुक्तावली, पक्षता के लक्षण मे सिषाधयिषा विरहविशिष्टत्व विशेषण का सार्थक्य बोधक सिद्धान्त चित्र ।

	१ क्षण	२ क्षण	३यय क्षण	
१	परामर्श + सिद्धि प्रत्यक्षात्मक वास्मरणात्मकप्रत्यक्षात्मकवास्मरणात्मक	अनुमित्सा	अनुमिति	इस प्रकार समूहालम्बनसे ३य क्षणमें अनुमितिहोगी और अनुमिति के पूर्वक्षण मे सिषाधयिषासिद्धिपरामर्शो के विद्यमानता के कारणसिषाधयिषा विरह विशिष्टत्व विशेषणकी सार्थकता हुई
२	अनुमित्सा	परामर्श + प्रत्यक्षात्मक वास्मरणात्मकप्रत्यक्षात्मकवास्मरणात्मक	अनुमिति	

१. जिसमे साध्यका सन्देह या सिषाधयिषा विरह विशिष्ट सिद्धयभाव हो वह पक्ष है (२) जिसमे साध्य का निश्चय हो वह सपक्ष है (३) जिसमे साध्याभावका निश्चय हो वह विपक्ष है

चि० नं० ४९ यद्विषयकत्वेन ज्ञानस्यानुमिति विरोधित्वम् तत्त्वम् हेत्वाभासत्वम् ' यह दोष का लक्षण है। उसका समन्वय ।

यद्विषयकत्वेन	ज्ञानस्य	अनुमिति-	विरोधित्वम्	तत्व म्	हेत्वाभासत्वम्	यहाँ अनुमिति पदसे अनुमिति तत्कारण परामर्श दो मेसे एकका ग्रहण होता है ।
वन्ह्यभाववद्ध्रद विषयकत्वेन	वन्ह्यभाववान् ह्रदः	वन्हिमान् ह्रदः	×	वह्न्यभाव वद्ध्रद त्वम्	×	वन्ह्यभाववान्ह्रद मे है इसलिये यह दोष हुआ । तद्वत्ता धूममे है । इसलिये ह्रद पक्षक वह्नि साध्यक स्थल मे धूम दुष्ट हुआ ।
वन्ह्यभाव विषयक त्वेन	वन्ह्यभाववान् पर्वतः इसभ्रमको	वन्हिमानपर्वतः	+	वन्ह्यभाव मे है	+	इसलिये वाध भ्रमैक देश मे अतिव्याप्ति हुई ।
यादृश विशिष्ट विषयकत्वेन	ज्ञानस्य	अनुमिति-	विरोधित्वम्	तत्त्वम्	हेत्वा भासत्वम्	एक देशमे अतिव्याप्ति वारण हुआ ।
वन्ह्यभाववत् पर्वत अप्रसिद्ध है	०	०	०	०	०	अतः अतिव्याप्ति नही है ।

चि० न० ५० — का० ७०, ७२ में मुक्तावली ।

यद्विषयक निश्चय अनुमिति या परामर्श अन्यतर का प्रतिबन्धक हो वही हेत्वाभास दोष है तदाश्रय दुष्ट है ।

हेत्वाभास

- (१) अनैकान्तिक
  - (१) साधारण
    - (१) विरुद्ध साधारण
    - (२) समानाधिकरण साधारण
  - (२) असाधारण
  - (३) अनुपसंहारी
- (२) विरुद्ध
- (३) असिद्ध
  - (१) आश्रयासिद्ध
  - (२) स्वरूपासिद्ध
    - (१) भागासिद्ध
    - (२) तद्भिन्न स्वरूपा सिद्ध (सम्पूर्णा सिद्ध)
  - (३) व्याप्यत्वासिद्ध
    - (१) साध्याप्रसिद्ध
    - (२) साधनाप्रसिद्ध
    - (३) व्याप्यत्वाभाववद्धेतु
- (४) प्रतिपक्षित (सत्प्रतिपक्षित)
- (५) कालात्ययापदिष्ट (बाधित)

चि० न० ५१ हेत्वाभास के पाँचो प्रभेदों का सामान्यविवरण ।

नाम हेत्वाभास	प्रभेद	लक्षण	नित्य	अनित्य	प्रतिबन्धक	प्रतिवध्य	उदाहरण	टिप्पणी
अनैकान्तिक (व्यभिचार)	१. साधारण २. असाधारण ३. अनुपसंहारी	साधारणद्यन्यतमत्वम्	नवीन और कुछ प्राचीनोंके मत से	कुछ प्राचीनोंके मत से	व्यभिचारग्रह	व्याप्तिग्रह	(१) पवतोवह्निमान् (२) शब्दोऽनित्यः (३) सर्वमभिधेयम्	प्रमेयत्वात् शब्दत्वात् प्रमेयत्वात्
विरुद्ध	×	हेतुनिष्ठसाध्यव्यापकीभूताभाव प्रतियोगित्ववत्वम्	नवीनोंकेमत से	प्राचीनोंकेमत से	साध्याभाव व्याप्यहेतुग्रह	साध्यग्रह	अयं गौः अश्वत्वात्	हेतुमे विरुद्धत्व ज्ञान साध्याभावनिरूपित व्यतिरेकव्याप्तिज्ञानरूप होनेकेकारणसाध्याभावानुमिति होतीहै अतःसाध्यानुमिति नहीं
असिद्ध	(१)आश्रयासिद्ध (२)स्वरुपासिद्ध (३)व्याप्यत्वासिद्ध	आश्रयासिद्धाद्यन्यतमत्वम्परामर्श प्रतिबन्धकयथार्थज्ञानविषयत्वं वा	,, केवल नित्य है	,,	पक्षादौपक्षतावच्छेदकाभाव ज्ञानम्	परामर्श	(१)काञ्चनमयपवतो वह्निमान्(२)हृदोद्रव्यं धूमात्(३)पर्वतो वन्हिमान्नीलधूमात्	साधनाप्रसिद्धिसाध्याप्रसिद्धिप्रभृति,व्याप्यत्वासिद्धि मे ही आजाती है। इसलिये विभागमे न्यूनता नहीं है।
सत्प्रतिपक्ष		अगृहीताप्रामाण्यकपक्षधर्मिकसाध्यविरोधिव्याप्यवत्तोपस्थितिकालीनपक्षधार्मिकसाध्यव्याप्यवत्तोपस्थिति विषयत्वम्	नवीनोंके मतसे	प्राचीनोकेमत से	परस्पराभाव व्याप्यवत्ताग्रह	साध्यानुमिति एवंसाध्याभावानुमिति		सत्प्रतिपक्षस्थल में दो हेतु रहते हैं विरोध स्थल मे एक ही हेतु रहता है
कालात्ययापदिष्ट (वाधित)		साध्याभाववत् पक्षकत्वम्	,,	,,	साध्याभाववत् पक्षज्ञान	पक्षमेसाध्यवत्ताज्ञान	उत्पत्तिकालीनोघटो गन्धवान्	

चि० न० ५२ हेत्वाभास का विस्तृत चित्र ।⁂जो विपक्षमात्र में रहताहै वह विरुद्ध साधारणऔर जोसपक्षविपक्षदोनों में रहता है वहसमानाधिकरणसाधारण है।

	नाम हेत्वाभास	प्रभेद और नाम	नित्यथा अनित्यदोष		लक्षण प्रतिवन्धक		प्रतिवध्य		दृष्टान्त		टिप्पणी
			नित्य	अनित्य	प्रा० मत	न० मत	प्रा० मत	न० मत	प्रा० मत	न० मत	
१	अनैकान्तिकत्व (व्यभिचार)वा अनैकान्तिक (सव्यभिचार)	तीन प्रभेदहैं (क) साधारण(ख) असाधारण (ग) अनुपसंहारी	नित्य	अनित्य	(क) "निश्चितसाध्यवद्भिन्न वृत्तित्व"	"साध्यवद्भिन्न वृत्तित्वत्वादि	"साध्यवद्भिन्नावृत्तित्व इत्यादि अन्वयव्याप्ति ज्ञान	एवम्	पर्वतो बन्हिमान्प्रमेयत्वात् (दोनोंकेमत से	एवम्	कुछप्राचीनोंकेमत सेअनित्य औरतद्भिन्नप्राचीनएवंनवीनों केमतसेनित्य दोष है।
क)	साधारणत्व वासाधारण	विरुद्ध, समानाधि०	,,	,,	,,	,,					

ख	असाधारणत्व (व्यभिचार) वा असाधारण (सव्यभिचार)	१	(न. मत) नित्य	(प्रा॰मत) =अनित्य	प्रा॰ मत पक्षमात्र वृत्तित्वत्व	(न॰ मत) हेतुनिष्ठ साध्य व्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वत्व	साध्यसामानाधिकरण्य घटित व्याप्ति ज्ञान	पक्षः साध्यवत्इत्याकारक ज्ञान	शब्दः अनित्यः शब्दत्वात्	पर्वतो वन्हिमान् जलात्
(ग)	अनुपसंहारित्व (व्यभिचार) वा अनुपसंहारी सव्यभिचारी)	,,	(न॰मत) नित्य	(प्रा॰मत) अनित्य	१साध्यसन्देहविषयविरवकत्व (२)साध्यएवंहेतुनिष्ठ अत्यन्ताभाव प्रतियोगित्वत्व	एवम्	साध्य सामानाधिकरण्य ज्ञान	व्यतिरेक व्याप्तिज्ञान	सर्वमभिधेयं प्रमेयत्वात् दोनोंकेमतोंसे	एवम्
२	विरोध वा विरुद्ध	,,	,	,,	अनवगतसाध्यसहचारत्वे सति अवगत साध्याभाव सहचारकत्व	हेतुनिष्ठसाध्या सामानाधि करण्य	व्याप्ति ज्ञान	साध्य सामानाधिकरण्यज्ञान	अयं गौः अश्वत्वात् (दोनों के मतों से)	एवम्
३	असिद्धिवा असिद्ध	(३ भेद) (क)आश्रयासिद्धि (ख) स्वरुपासिद्धि (ग)व्याप्यत्वासि.			परामर्श प्रतिबन्धक यथार्थ ज्ञान विषयत्व	एवम्				
(क)	आश्रयासिद्धि आश्रया सिद्ध				पक्षनिष्ठ पक्षतावच्छेदकाभावत्व	,,	पक्षमे पक्षतावच्छेदक ज्ञानचाहेअनुमित्यात्मक हो या परामर्शात्मक	एवम्	काञ्चनमय पर्वतो वन्हिमान् धूमात्	एवम्
(ख)	स्वरुपा सिद्धिवा स्वरुपा सिद्ध	दोपूभेद ख-भागासिद्धि ख-तद्भिन्नस्वरुपासिद्धि (सम्पूर्णासि.			(ख) पक्षनिष्ठहेत्वभावत्व	,,	पक्ष मे हेतुका ज्ञान	,,	ह्रदोवन्हिमान् धूमात्	,,
ख २ १	भागासिद्धि तदन्यस्वरुपा सिद्धि	,,			१ पक्षैकदेशनिष्ठहेत्वभावत्व २ सकलपक्षनिष्ठहेत्वभावत्व		ख-१ पक्षमे हेतुका ज्ञान ख-२ ,,		ख-नरोपार्मिकः १-विद्यावत्त्वात् २-ह्रदोद्रव्यं धू.	
ग	व्याप्यत्वासिद्धिवा व्याप्यत्वासिद्ध	३ भेद ग-साध्याप्रसिद्धि ग-साधनाप्रसिद्धि ग-व्यात्वभाववत् हेतु	ग-नित्य ग-१ ,, ग-२ ,, ग-३ ,,		साध्यव्याप्यत्तानवच्छेदक हेतुतावच्छेदक १साध्यनिष्ठसाध्यता वच्छेदकाभावत्व २हेतुनिष्ठहेतुतावच्छेदकाभावत्व		ग-१साध्यमेसाध्यतावच्छेदककाज्ञान ग-२ हेतुमेहेतुतावच्छेदककाज्ञान ग-३ हेतुमे व्याप्ति ज्ञान		१-पर्वतःकाञ्चनमयवन्हि॰धू॰ २-पर्वतोवन्हिमान् कां॰ धू॰ ३- ,, ,, नील धूमात्	
४	सत्प्रतिपक्षत्व वा सत्प्रतिपक्ष	१	नित्य नवीन	अनित्य (प्राचीन)	१ हेतुनिष्ठव्याप्त्यभावत्व साध्यविरोधि साधक परामर्श कालीनसाध्य-साधकपरामर्श विषयत्व	पक्षनिष्ठ साध्याभाव व्याप्यत्वत्व	पक्षमे साध्य का ज्ञान	पक्षमे साध्य का ज्ञान	पर्वतो वन्हिमान् धूमात्	ह्रदोवन्हिमान् धूमात्
५	कालात्ययापदिष्टत्व (ग्ध) वा कालात्ययापदिष्ट (वाधित)	,,	,,	,,	पक्षनिष्ठ साध्याभावत्व		पक्षमे साध्यका ज्ञान		उत्पत्तिकालीन घटोगन्धवान् पृथिवीत्वात्	

गवये गो सादृश्य ज्ञानम्=उपमानम्

उपमान खण्ड चित्र

काο नο ७९,८० में मुक्तावली ।

चि० नं० ५३

उपमितिः—गवयो गवय पद वाच्यः इत्याकारक | गवयादि पद, शक्ति ज्ञान

करण	व्यापार (करण का)	सहकारी करण
(गवयादि में गो सादृश्य ज्ञान)	("गो सदृशोगवय पद वाच्यः इत्यादि अतिदेश वाक्यार्थ स्मरण)	(मन)

शब्दखण्ड चित्र

कारिका नο ८१—में मुक्तावली

शाब्दबोध

चि० नं० ५४

करण	व्यापार (कारण का)	सहकारीकारण	कारण
पद ज्ञान है शक्ति ज्ञान मानपद	(पदजन्य पदार्थोपस्थिति)	पदतदर्थो का सम्बन्ध विशेषरुप जो शक्ति है उसकाज्ञान सहकारीकारण है आत्म मनः संयोग	१ आशत्ति ज्ञान २ योग्यता ज्ञान ३ तात्पर्य्य ज्ञान ४ आकांक्षा ज्ञान

शक्तिग्रह के भेद	लक्षण का बीज	लक्षण का स्वरुप	लक्षण के भेद
		शक्य सम्बन्ध	

शक्ति ग्रह प्रभेद

१ व्याकरण (भूसत्तायाम् इत्यादि)
२ उपमान (गोसदृशोगवयः)
३ कोष (शीतंगुणेतद्वदर्थाः सुपीमः शिशिरोजड़ इत्यादि)
४ आप्तवाक्य (कोकिलःपिकः)
५ वृद्धव्यवहार (घटमानयइत्यादि)
६ वाक्यशेष (वसन्तेसर्वंस्यानामित्यादि)
७ विवरण (पचतिपाकं करोति)
८ प्रसिद्ध पदसान्निध्य (इहसहकारतरौपिको मधुररौति)

टि० पद की शक्ति अर्थ मे है नकि वाक्य की तथा समास की—

अन्वयानुपपत्ति मे लक्षणा बीज मूल ही मे खण्डित है।

लक्षण प्रभेद

१ जहत् स्वार्था० उ०गङ्गायां घोषः
(२) अजहत् स्वार्था० काकेभ्योदधिरक्षताम्
(३) निरुढ़ा० नीलोघटः
(४) आधुनिकी० वन्हिनासिञ्चति
(५) गौण० गौर्वाहीकः

टि० १ वहुव्रीहि मे उत्तरपद की लक्षणा होती है पूर्वपद तात्पर्य्य ग्राहक है

तत्पुरुष मे पूर्वपद की लक्षणा होती है क्वचित् उत्तर पद कीऽ—

२ समाहार द्वन्द और कर्मधारय मे लक्षणा नहीं है।

विशेष्य विशेषण भाव :—

शब्द के शब्द मे, अर्थ के अर्थ मे, शब्द के अर्थ मे अर्थ के शब्द मे विशेष्य विशेषण भाव रहता है ।

अवच्छेद्यावच्छेदक भाव :—संसर्गतारूप विषयता अवच्छिन्ना ही होती है निर्विकल्पक ज्ञानीय विषयता निरवच्छिन्ना ही होती है । तद्भिन्न सावच्छिन्ना निरवच्छिन्ना दोनो होती है विषयतादियों के अधिकरण में जो विशेषण वह विषयतादियों का अवच्छेदक होता है (अर्थात् स्वाधिकरण का जो विशेषण हो वह स्वावच्छेदक होता है) । यथा घटवद् भूतलम् यहाँ घटनिष्ठ प्रकारता का अधिकरण जो घट उसमें घटत्व विशेषण है । इसलिये घटनिष्ठ प्रकारता का अवच्छेदक घटत्व हुआ ।

येन सम्बन्धेन प्रकार विशेष्य मे ज्ञात होता है वह सम्बन्ध भी प्रकारता का अवच्छेदक होता है । यथा "घटवद्भूतलम्" इस स्थल मे घट (प्रकार) संयोग सम्बन्ध से "विशेष्य" भूतल मे ज्ञात होता है । इस लिये घटनिष्ठ प्रकारता का अवच्छेदक संयोग सम्बन्ध भी हुआ ।

जो जिस का अवच्छेदक होता है उससे वह अवच्छिन्न (अवच्छेद्य) होता है । यथा "घटवद् भूतलम्" इत्याकारक ज्ञानीय घटनिष्ठ प्रकारता का संयोग सम्बन्ध और घटत्व रूप धर्म अवच्छेदक हुआ । इसलिये वह प्रकारता संयोग सम्बन्धावच्छिन्ना और घटत्व रूप धर्मावच्छिन्ना है ।

तदवच्छिन्न (तद्धर्मावच्छिन्न) शब्द का

(१) तन्निष्ठावच्छेदकता निरूपक अर्थ मे और

(२) तदाश्रयरूप अर्थ मे भी प्रयोग होता है ।

यथा (१) घटनिष्ठ प्रकारता को घटत्वनिष्ठ अवच्छेदकता निरूपक होने के कारण घटनिष्ठ प्रकारता घटत्वावच्छिन्ना है ।

(२) एवं घट को घटत्वाश्रय होने के कारण घट भी घटत्वावच्छिन्न होता है । अवच्छिन्न शब्द का प्रयोग इस के अतिरिक्त भी अनेक-अर्थो मे होता है । यथा मूलावच्छिन्नो वृक्षः, मूलावच्छिन्नः समवायः, पर्वतत्वावच्छिन्नो वह्निः, वीणावच्छिन्नः शब्दः एतत्कालावच्छिन्नो घटः इत्यादि ।

अवच्छेद्याऽवच्छेदक भाव ।

* जाति और अखण्डोपाधि से भिन्न पदार्थों का अनुल्लेख रहने पर भी तद्गत विषयता निरवच्छिन्ना नहीं होती है । और जाति एवं अखण्डोपाधि का उल्लेख रहने पर तद्गत विषयता सावच्छिन्ना एवं अनुल्लेख रहने पर निरवच्छिन्ना होती है ।

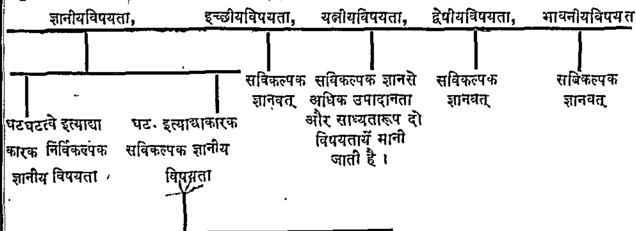
निरूप्य निरूपक भाव :—जिस का जो निरूपक होता है वह उस से निरूपित होता है । यथा ज्ञान विषयता का निरूपक है इसलिये विषयता ज्ञान से निरूपित होती है । कितने को परस्पर निरूप्य निरूपक भाव भी होता है । यथा प्रकारता, विशेष्यता इन दोनों मे विशेष्यता निरूपित प्रकारता और प्रकारता निरूपित विशेष्यता अतएव

टि० (१) +किसी के मत मे संसर्गताही के साथ प्रकारता विशेष्यता को निरूप्य निरूपक भाव होता है। आपस मे साक्षात् नहीं।

(२) * जाति अखण्डोपाधि से भिन्न पदार्थों का भी स्वरूपतः भान होता है। यह नवीन नैयायिक लोग मानते हैं।

+ धर्मनिष्ठ अवच्छेदकता सम्बन्धावच्छिन्ना होती है और सम्बन्धनिष्ठ अवच्छेदकता सम्बन्धानवच्छिन्ना होती है जो संसर्गता कहलाती है।

विषयता चित्र।



शाब्द बोध।

पहले शब्दका प्रत्यक्ष होता है तब पद, पदार्थ सम्बन्ध रूप शक्ति और लक्षणा इन दोनों मे अन्यतर के ग्रह से उपस्थित (धर्म धर्मी सम्बन्ध रूप अर्थ स्मरण) तब शाब्द बोध होता है।

उपस्थिति का उदाहरण (—यथा "घटो नीलः" यहाँ घट पद से समवाय सम्बन्धावच्छिन्न घटत्वनिष्ठ प्रकारता निरूपित घटनिष्ठ विशेष्यताक उपस्थिति शक्तिग्रह से एवं समवाय सम्बन्धावच्छिन्न नीलनिष्ठ प्रकारता निरूपित नीलाश्रयनिष्ठ विशेष्यताक उपस्थिति निरूढ़ लक्षणा ग्रह से होती है।

इन दोनों उपस्थितियों मे घटत्वनिष्ठ प्रकारता एवं नीलाश्रय और घटनिष्ठ विशेष्यताद्वय ये तीनों निरवच्छिन्न हैं।

शाब्द बोधका उदाहरण।

नील प्रकार है, घट विशेष्य है और तादात्म्य सम्बन्ध है तथा च — समवाय सम्बन्धावच्छिन्न नीलत्वनिष्ठ अवच्छेदकता निरूपित तादात्म्य सम्बन्धावच्छिन्न नीलनिष्ठ प्रकारता निरूपिता जो समवाय सम्बन्धावच्छिन्न घटत्वनिष्ठ अवच्छेदकता निरूपित घटनिष्ठ विशेष्यता तादृश विशेष्यता शाली शाब्दबोध होता है।

+ टि० (१) अवच्छेदकता ४ प्रकार की होती है (१) स्वरूप सम्बन्ध रूप (२) अनतिरिक्तवृत्तित्व रूप

क्रम संख्या	हेत्वाभास के नाम और अवान्तर भेद	स्थल, जहाँ हेतु दुष्ट होता है	दोषस्वरूप, जिसका ज्ञान प्रतिबन्धक होता है	प्रतिबध्यज्ञान
१ अनैकान्तिक	(क) साधारण	पर्वतो वह्निमान् प्रमेयत्वात्	हेतुनिष्ठ विपक्ष वृत्तित्व	अन्वयव्याप्तिज्ञान
	(ख) असाधारण	शब्दोनित्यः शब्दत्वात्	हेतुनिष्ठ सपक्षव्यावृत्तत्व	साध्यसामानाधिकरण्यज्ञान
	(ग) अनुपसंहारी	सर्वमभिधेयं प्रमेयत्वात्	हेतुनिष्ठ अत्यन्ताभावाप्रतियोगिसाध्यकत्वादि	व्यतिरेक व्याप्तिज्ञान
२	विरुद्ध	अयं गौरश्वत्वात्	हेतुनिष्ठ साध्यासामानाधिकरण्य	साध्य सामानाधिकरण्यज्ञान
३ असिद्ध	(क) आश्रयासिद्ध	काञ्चनमयः पर्वतो वह्निमान् धूमात्	पक्षतावच्छेदकाभाववत्पक्ष	अनुमिति और पक्षधर्मताज्ञान
	(ख-१) स्वरूपासिद्ध	ह्रदो द्रव्यं धूमात्	हेत्वभाववत्पक्ष	पक्ष-धर्मताज्ञान
	(ख-२) भागासिद्ध	द्रव्यं गुणवत् पृथिवीत्वात्	पक्षतावच्छेदक सामानाधिकरण्येन हेत्वभाववत्पक्ष	पक्ष धर्मताज्ञान
	(ग-१) व्याप्यत्वासिद्ध	पर्वतो वह्निमान् नीलधूमात्	व्याप्यत्वाभाववद्धेतु	व्याप्तिज्ञान
	(ग-२) साध्याप्रसिद्ध	पर्वतः काञ्चनमयवह्निमान् धूमात्	साध्यतावच्छेदकाभाववत्साध्य	अनुमिति और व्याप्तिज्ञान
	(ग-३) साधनाप्रसिद्ध	पर्वतो वह्निमान् काञ्चनमयधूमात्	हेतुतावच्छेदकाभाववद्धेतु	पक्ष धर्मताज्ञान
४	* सत्प्रतिपक्ष	ह्रदो वह्निमान् धूमात्	साध्याभावव्याप्यवत्पक्ष	अनुमिति
५	कालात्ययापदिष्ट (बाधित)	ह्रदोवह्निमान् धूमात्	साध्याभाववत्पक्ष	अनुमिति

* परस्पर विरुद्ध साध्यतदभावोभय परामर्श दशामें दोनो हेतुओंमें सत्प्रतिपक्षितत्व व्यवहार होता है ।

अथ व्याप्तेर्लक्षणं तद्दोषाश्च सक्षेपतोनिर्दिश्यन्ते ।

लक्षणम्	दोषः
साध्यवदन्यावृत्तित्वं (साध्यतावच्छेदकनिष्ठावच्छेदकतानिरूपित साध्य-निष्ठावच्छेदकताक प्रतियोगिताक भेदवदन्यावृत्तित्वम्) व्याप्तिः	वह्निमान् धूमादित्राव्याप्तिः
साध्यतावच्छेदक सम्बन्धेन यः साध्यवान् तदन्यावृत्तित्वं (साध्यतावच्छेदकनिष्ठावच्छेदकता निरूपित साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न साध्यनिष्ठावच्छेदकताक प्रतियोगिताक भेद वदन्यावृत्तित्वम्) व्याप्तिः	"
साध्यतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्न साध्यवत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक भेदवदवृत्तित्वम् व्याप्तिः	"
साध्यतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्न साध्यवत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताकभेदवन्निरूपित हेतुतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्न वृत्तित्वाभावो व्याप्तिः	धूमवान् वह्नेरित्यत्रातिव्याप्तिः
साध्यतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्न साध्यवत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक भेदवन्निरूपित हेतुतावच्छेक सम्बन्धावच्छिन्नवृत्तितात्वावच्छिन्न प्रतियोगिता-काभावो व्याप्तिः	द्रव्यं गुणकर्मान्यत्वेसति सत्त्वादित्यत्रा व्याप्तिः
साध्यतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्न साध्यवत्वावच्छिन्न प्रतियोगिताक भेदवन्निरूपित हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न वृत्तितावच्छेदकतात्वावच्छिन्न प्रतियोगिताकाभावद्धेतुतावच्छेदकं व्याप्तिः	"ज्ञेयत्ववान् वाच्यत्वात् "सत्तावान् जातेः" इत्यादावव्याप्तिः
अथ सिद्धान्त लक्षणम्	
हेतुसमानाधिकरणाभावप्रतियोगिभिन्न साध्यसामानाधिकरण्यं व्याप्तिः	वह्निमान् धूमादित्यत्र गुण-वानूधूमादित्यत्र चा व्याप्तिः
हेतुसमानाधिकरणाभावप्रतियोगितावच्छेदकभिन्न साध्यतावच्छेदकाव-च्छिन्न सामानाधिकरण्यं व्याप्तिः	रूपत्वव्याप्य जातिमत्वान् रूपादित्यत्राव्याप्तिः
[नानासाध्यतावच्छेदककस्थले] हेतुसमानाधिकरणाभावप्रातियो-गितावच्छेदकता नवच्छेदकसाध्यतावच्छेदकतावच्केदकावच्छिन्नावच्छिन्नसामा-नाधिकरण्यं व्याप्तिः	द्रव्यंगुणकर्मान्यत्वे सतिसत्वादि-त्यत्राव्याप्तिः
हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरण वृत्यभावप्रतियोगितानवच्छेदकसाध्य-तावच्छेदकावच्छिन्न सामानाधिकरण्यंव्याप्तिः (मतमिदंकेषाञ्चित् । अत्र सामाधानान्तरं मूल ग्रन्थादवसेयम्)	वह्निमान् धूमादित्यत्रा व्याप्तिः
हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणवृत्यभावीयप्रतियोगितानवच्छेदक साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसामानाधिकरण्यं व्याप्तिः	कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वादित्यत्रा व्याप्तिः
हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणवृत्ति प्रतियोगिव्यधिकरणा भावप्रतियोगितानवच्छेदक साध्यतावच्छेदकावच्छि सामानाधिकरण्यम् व्याप्तिः	"

लक्षण स्वरूपम्	दोषः ६९ ग
हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणवृत्ति प्रतियोग्यधिकरणावृत्त्यभाव प्रतियोगितानवच्छेदक साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसामानाधिकरण्यम्	संयोगी सत्त्वादित्यत्रातिव्याप्तिः
(१) स्वप्रतियोग्यनधिकरणीभूत हेत्वधिकरणवृत्त्यभाव प्रतियोगितानवच्छेदक साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न सामानाधिकरण्यं व्याप्तिः	गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्तावान् जाते रित्यत्रातिव्याप्तिः
स्वप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरणीभूत हेत्वधिकरणवृत्त्यभाव प्रतियोगितानवच्छेदक साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न सामानाधिकरण्यं व्याप्तिः	ज्ञानवान् सत्त्वादित्यत्रातिव्याप्तिः
स्वप्रतियोगितावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्न स्वप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणत्वाभाववद्धेत्वधिकरण वृत्त्यभाव प्रतियोगितानवच्छेदक साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न सामानाधिकरण्यं व्याप्तिः	वह्निमान् धूमादित्यत्राव्याप्तिः।
साध्यतावच्छेदक सम्बन्धेन प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नस्य यस्यकस्यचिदनधिकरणे हेत्वधिकरणेवर्तमानो योऽभावस्तदीयप्रतियोगितानवच्छेदक साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न सामानाधिकरण्यं व्याप्तिः।	कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वादित्यत्राव्याप्तिः।
साध्यतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न सामान्यानधिकरण हेत्वधिकरणवृत्त्यभावप्रतियोगितानवच्छेदक साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न सामानाधिकरण्यं व्याप्तिः	असम्भवः, धूमाभाववान् वह्न्यभावादित्यत्राव्याप्तिर्वा।
साध्यतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्न यत्किञ्चित् प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नसामान्यानधिकरण हेत्वधिकरण वृत्त्यभाव प्रतियोगितानवच्छेदक साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न सामानाधिकरण्यं व्याप्तिः	कपिसंयोगाभाववान् आत्मत्वादित्यत्राव्याप्तिः।
साध्यतावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्नयावत्प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरणत्वं हेत्वधिकरणस्य तादृश प्रतियोगितानवच्छेदक साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न सामानाधिकरण्यं व्याप्तिः	कालो घटवान् कालपरिमाणादित्यत्राव्याप्तिः (एतद्दोषवारणोपायान्तरं मूलेस्पष्टम्)
प्रतियोगितावच्छेदक सम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नानधिकरणीभूत हेत्वधिकरण वृत्त्यभाव प्रतियोगिता सामान्ये यत्सम्बन्धावच्छिन्नत्व यद्धर्मावच्छिन्नत्वोभयाभावः तद्धर्मावच्छिन्न सामानाधिकरण्यं व्याप्तिः।	प्रमेयवह्निमान् धूमादित्यत्राव्याप्तिर्यद्यप्यत्रापिलक्षणे तथापि गुरुधर्मस्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वस्वीकारात्सा वारणीया।

(१) हेत्वधिकरणस्य परिष्कारः पूर्वोक्तोऽत्राप्यतिदेशनीयः।

शाब्दबोध विषयक आचार्योंके भिन्न २ तरीके ।

घटवद्भूतलम् ।

साधारण रूप (अनुलोम)

संयोग सम्बन्धावच्छिन्न घटत्वावच्छिन्न प्रकारता-निरूपित सम्बन्धित्वावच्छिन्न विशेष्यतावच्छिन्न प्रकारता निरूपित भूतलत्वावच्छिन्न (भूतलनिष्ठ) विशेष्यता निरूपक जो ज्ञान वह "घटवद्भूतलम्" इत्याकारक ज्ञान है ।

साधारण रूप (विलोम)

भूतलत्वावच्छिन्नविशेष्यता निरूपित सम्बन्धित्वावच्छिन्न प्रकारत्वावच्छिन्न विशेष्यता निरूपित संयोग सम्बन्धावच्छिन्न घटत्वावच्छिन्न प्रकारता निरूपक जो ज्ञान वह " घटवद्भूतलम् " इत्याकारक ज्ञान है ।

नीलघटवद्भूतलम् ।

गदाधर मत (अनुलोम)

तादात्म्य सम्बन्धावच्छिन्न नीलत्वावच्छिन्न-प्रकारता निरूपित घटत्वावच्छिन्न विशेष्यतावच्छिन्न संयोगसम्बन्धावच्छिन्न घटत्वावच्छिन्न-प्रकारता निरूपित सम्बन्धित्वावच्छिन्न विशेष्यतावच्छिन्न प्रकारता निरूपित भूतलत्वावच्छिन्न भूतलनिष्ठ विशेष्यता निरूपक जोज्ञान वह नील घटवद्भूतलम् इत्याकारक ज्ञान है ।

गदाधर मत (विलोम)

भूतलत्वावच्छिन्न विशेष्यता निरूपित सम्बन्धित्वावच्छिन्न प्रकारत्वावच्छिन्न विशेष्यता निरूपित संयोग सम्बन्धावच्छिन्न घटत्वावच्छिन्न प्रकारत्वावच्छिन्न विशेष्यता निरूपित तादात्म्य सम्बन्धावच्छिन्न नीलत्वावच्छिन्न प्रकारता निरूपकज्ञान वहनीलघटवद्भूतलम् इत्याकारक ज्ञान है ।

जगदीश मत (अनुलोम)

तादात्म्य सम्बन्धावच्छिन्न नीलत्वावच्छिन्न-प्रकारता निरूपित संयोगसम्बन्धावच्छिन्न घटत्वावच्छिन्न प्रकारता निरूपित तादात्म्य सम्बन्धावच्छिन्न-सम्बन्धित्वावच्छिन्न प्रकारता निरूपित भूतलत्वावच्छिन्न (भूतलनिष्ठ) विशेष्यता निरूपक जो ज्ञान वह नील घटवद्भूतलम् इत्याकारक ज्ञान है ।

जगदीश मत (विलोम)

भूतलत्वावच्छिन्न विशेष्यता निरूपित तादात्म्य सम्बन्धावच्छिन्न सम्बन्धित्वावच्छिन्न प्रकारतानिरूपित संयोग सम्बन्धावच्छिन्न घटत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपित तादात्म्य सम्बन्धावच्छिन्न नीलत्वावच्छिन्न प्रकारता निरूपक जो ज्ञान वह नील घटवद्भूतलम् इत्याकारक ज्ञान है ।

(गदाधर मत)

नीलत्वावच्छिन्न प्रकारता निरूपित तादात्म्यत्वावच्छिन्नसंसर्गता निरूपित घटत्वावच्छिन्न विशेष्यत्वावच्छिन्नप्रकारता निरूपित संयोगत्वावच्छिन्न संसर्गता-निरूपित सम्बन्धित्वावच्छिन्न विशेष्यत्वावच्छिन्न-प्रकारता निरूपित तादात्म्यत्वा वच्छिन्न संसर्गता निरूपित भूतलत्वावच्छिन्न विशेष्यतानिरूपक नील घटवद्भूतलम् इत्याकारक ज्ञान है ।

(जगदीश मत)

नीलत्वावच्छिन्न प्रकारता निरूपित तादात्म्यत्वावच्छिन्न संसर्गता निरूपित घटत्वावच्छिन्न प्रकारता निरूपित संयोगत्वावच्छिन्न संसर्गता निरूपित सम्बन्धित्वावच्छिन्न प्रकारता निरूपित तादात्म्यत्वावच्छिन्न संसर्गता निरूपित भूतलत्वावच्छिन्न विशेष्यता निरूपक नीलघटवद्भूतलम् इत्याकारकज्ञान है ।

अथ न्याय कोषः ॥

अ ।

अखण्डोपाधिः—जातिभिन्नोऽखण्डः धर्म विशेषः । असमवेतत्वे सत्यनुगतत्वम् ।

अघटकत्वम्—तद्विषयत्वा व्यापक विषयताकत्वम् ।

अति व्याप्तिः—लक्ष्यवृत्तित्वे सत्यलक्ष्यवृत्तित्वम् यथा गोः श्रृङ्गित्वं लक्षणम्, लक्ष्यगोवृत्तित्वे सत्यलक्ष्यमहिष्यादिवृत्ति । लक्ष्यतावच्छेदकसामानाधिकरण्ये सति लक्ष्यतावच्छेदकावच्छिन्न प्रतियोगिताक भेद सामानाधिकरण्यम् ।

अधिकरणत्वम्—यथार्थ विशिष्ट धी विशेष्यत्वम् विषयताविशेष इतिकेचन ।

अनतिरिक्तवृत्तित्वम्—स्वान्यूनवृत्तितत्कत्वम् ।

अनवस्था (अनवस्थितिः)—कल्पतवस्तुसजात यवस्तुपरम्पराकल्पनस्य विरामाभावः ।

अनित्यत्वम्— ध्वंस प्रागभावान्यतरप्रतियोगित्वम् ।

अनुमितिः—व्याप्तिज्ञानकरणकं ज्ञानम् । परामर्श जन्यं ज्ञानम् । व्याप्ति विशिष्टपक्षधर्मत्व विषयता शालि निश्चयत्वावच्छिन्न कारणता निरूपित कार्यता शालि ज्ञानम् ।

अन्यतमत्वम्—तावद्भेदावच्छिन्न प्रतियोगिताक भेदवत्त्वम् ।

अन्यतरत्वम्—भेदद्वयावच्छिन्नप्रतियोगिताक भेदवत्त्वम् ।

अर्थान्तरम्—प्रकृतानाकांक्षितार्थाभिधानम्, प्रकृतोपयुक्तार्थमुपेक्ष्यासम्बद्धार्थाभिधानम् ।

अवच्छिन्नत्वम्—अवच्छेद्यत्वम्—इदमेतद्विशिष्टे एतत्प्रकारकम् इति प्रतीति साक्षिकः स्वरूप सम्बन्ध विशेषः इदमेतद्विशिष्यकत्वांशे एतत्प्रकारक मितिप्रतीति साक्षिकोवा ।

अवच्छेदः—विशेषणोपाधिना विशेषकारणम् ।

अवच्छेदकत्वम् = अनतिरिक्तदेशवृत्तित्वम् । अवच्छित्त्यान्यूनानतिरिक्त कालीनविशेषसम्बन्धवत्त्वंवा

अवच्छेदकत्वम्—प्रतियोग्यंशे प्रकारीभूत धर्मत्वम् । अनतिरिक्त वृत्तित्वम् तच्च व्यावर्तकत्व सामानाधिकरण्य स्वनिष्ठावच्छेदकताकत्वैतदुभय सम्बन्धेन यत्किञ्चिद्धर्मविशिष्टत्वम् ।

अव्याप्तिः— लक्ष्यतावच्छेदकसामानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगित्वम्

अव्याप्यवृत्तित्वम्-स्वात्यन्ताभावसमानाधिकरणत्वम् स्व प्रतियोगित्व स्वसामानाधिकरण्यैतदुभयसम्बन्धेनाभाववत्त्वम् ।

असम्भवः--लक्ष्यतावच्छेदकव्यापकीभूताभाव प्रतियोगित्वम् ।

अखण्डोपाधिः —असमवेतत्वे सत्यनुगतत्वम् ।

अख्यातिः—स्वरूपतो विषयतयागृहीत भेदेनैकत्वज्ञानम्

अजहल्लक्षणा शक्यार्थापरित्यागेनतत्सम्बद्धार्थोऽन्तरे वृत्तिः, यथा शोणोधावतीत्यत्र शोणपदस्य शोणगुणविशिष्टेऽश्वादि द्रव्ये ।

अज्ञातत्वम् :--प्रमाणजन्य ज्ञाना विषयत्वम् ।

अज्ञाननिग्रहस्थानम्--परिषदा विज्ञातस्य वादिनात्रिरभिहितस्यापि वाक्यार्थस्याबोधः ।

अणुत्वम् – सूक्ष्मपदार्थत्वे सत्यारम्भकत्व म् ।

अतिदेशः – स्वविषयमुल्लङ्घ्यान्यविषये उपदेशः । एकत्र श्रुतस्यान्यत्र सम्बन्धः ।

अतिप्रसंगः – यस्यबोधो यत्रापि सतस्तत्रतदन्यस्यापि बोधप्रसंगः । प्रस्तुतविषयादन्यत्र प्रसक्तिर्वा ।

अतीन्द्रियत्वम् – लौकिक साक्षात्कार विषय गुणत्व न्यूनवृत्ति संस्कारत्वान्यधर्मसमवाय्यन्य गुणत्वम् ।

अत्यन्तनिवृत्तिः – कारणसहितकार्यनिवृत्तिः ।

अत्यन्ताभावः – त्रैकालिक संसर्गावच्छिन्न प्रतियोगिताऽकोऽभावः यथा भूतले घटोनास्ति ।

अद्वैतत्वम् – सजातीयविजातीयस्वगतभेद शून्यत्वम्

अधिकरणम् – साक्षात्परम्परया वा क्रियाश्रयः –

अधिगमः – प्राप्तिः ।

अधिकारी – मुख्यगौण प्रयोजन प्राप्ति कामी ।

अध्यात्मशास्त्रं – आत्मानमधिकृत्य प्रवृत्तंशास्त्रम् ।

अनादित्वम् - उत्पत्ति रहितत्वम् ।

अनिर्वचनीय ख्यातिः – सदसदादि प्रकारैर निर्वाच्य

स्वैयाक्तस्य पदार्थस्य भानम् ।

अनुगतत्वम् – एकत्वे सत्यनेक वृत्तित्वम् ।

अनुपलब्धिप्रमाणम् – योग्यस्य सतोऽनुपलम्भोऽभाव-प्रमाकरणम् ।

अनुमानप्रमाणम् – अनुमिति-प्रमाकरणम् ।

अनुयोगी – यत्र स भावः, यस्मिन् सम्बन्धः यस्मिन् सादृश्यम्, यास्ति यः विशिष्टप्रतीति विषयविशेषः

अनुव्यवसायत्वम् – ज्ञान विषयक ज्ञानत्वम् ।

अनेकत्वम् – दोषा यत्र विषयत्वम् । [illegible] संख्यादि विशिष्टता ।

अन्यतरकर्मजसंयोगः – क्रियाऽभावपन्नमवेत [illegible] तिक्रियावदसमवेतः संयोगः ।

अन्यथाख्यातिः – अन्याकारज्ञानस्यान्यथात्वम् । तदभाववति तत्प्रकारकज्ञानं मिथ्याज्ञानं विशिष्टः ।

अन्यथासिद्धत्वम् – स्वकारण कारणत्वम् लघुगमनियतपूर्ववर्तिनः कार्यसम्भवेतद्भिन्नत्वम् ।

अन्वयः – स्वसत्तानियतसत्ताकत्वं सम्बन्धः । यत्सत्त्वे यत्सत्त्वम् ।

अन्वयदृष्टान्तः – साध्यव्याप्तसाधनं यत्र प्रदर्श्यते सः

अन्वयव्यभिचारः – कारण सत्वे कार्याभावः । स्वाधिकरण वृत्यत्यन्ताभावप्रतियोगिकार्यकत्वम् ।

अन्वयव्याप्तिः – हेतु समानाधिकरणात्यन्ताभावा प्रतियोगिसाध्य सामानाधिकरण्यम् ।

अन्वयसहचारः – कारण सत्वे कार्यसत्त्वम् ।

अपरत्वम् – अपर व्यवहारा साधारण कारणम् ।

अपरसामान्यत्वम् – न्यूनदेशवृत्तिजातित्वम् ।

अपसिद्धान्तनिग्रहस्थानम् – एकसिद्धान्तमत माश्रित्य कथा प्रवृत्तौ तद्विरुद्ध सिद्धान्त मत मालम्ब्यो-त्तर दानम् ।

अपूर्वम् – विध निषिद्धक्रिया जन्ययोः कालान्तर भाविनोः सुखदुःखयो र्हेतु भूते पुण्य पापे ।

अपेक्षा – कार्य निमित्तयोरन्योन्याभि सम्बन्धः ।

अपेक्षाबुद्धिः – विनाशक विनाशप्रतियोगिनी बुद्धिः, अनेकैकत्व विषयिणी बुद्धिर्वा ।

अपोहः – शिष्यस्य मिथ्या ग्रहणाया करण सामर्थ्यम् ।

अपौरुषेयत्वम् – वाक्यार्थ ज्ञानविशेषोच्चारणक मात्र वृत्त्यानुपूर्वी शून्यत्वम्,

अप्रामाण्यं- अप्रामाण्यं–दोष सहकृत ज्ञान सामग्री जन्यत्वम् । तद भाववति तत्प्रकारकत्वम् ।

अबाध्यत्वम् – त्रैकालिक निषेधा प्रतियोगित्वम् ।

अभावः – निषेध मुख प्रतीति विषयः ।

अभावप्रमा – योग्यानुपलब्धि करणिका प्रमा यथा घटाद्यनुपलब्ध्या घटाभाव प्रमा भूतले जायते ।

अभिज्ञात्वम् – इदन्तामात्रावगाहिज्ञानम् विषय सम्पर्केन्द्रियजन्यं ज्ञानम् । यथाऽयं घटोऽयंपट इत्यादि ।

अभिधानत्वम् – अन्वयबोध फलक शब्द प्रयोगत्वम्

अभिधेयविधित्वम् – कृतिसाध्यत्वेसतीष्ट साधनत्वम्

अभिन्नत्वम् – भेदानधिकरणत्वम् ।

अभिभवः – बलवत्सजातीय सम्बन्धकृतमग्रहणम् । बलवत् सजातीय तिरस्करणम् ।

अभिव्यञ्जकत्वम् – अस्ति व्यवहार जनकत्वम् ।

अभ्युपगमवादः – वादिबलनिरीक्षणार्थमनिष्ट स्वीकरणम्

अयुतसिद्धत्वम् – असम्बद्धयोरविद्यमानत्वम् ।

अरणिः – घर्षणद्वाराग्नि जनक काष्ठम् ।

अलीकम् – तादृश प्रतियोगिता विशिष्टत्वे सत्यप्रतीय मानम् ।

अवच्छिन्नत्वम् – तत्तत्पदार्थ विशिष्टत्वम् ।

अवधानत्वम् – विषयान्तरसञ्चाराभाववत्त्वम् ।

अवधारणत्वम् – एकाकारावगाहिज्ञानत्वम् । अन्ययोग व्यवच्छेदकत्वम् ।

अवयवः – समुदायांशरूपः । अवच्छिन्नपरिमाणवान्

अवयवित्वम्–कार्यद्रव्यत्वम् अवयवजन्यद्रव्यत्वंवा

अवगीतत्वम् – बलवदनिष्टाननुबन्धित्वम् ।

अव्यभिचरितत्वम् – साधनसमानिकरणात्यन्ताभावा प्रतियोगित्वम् । साध्यवदन्यावृत्तित्वंवा ।

अव्याप्तिः – लक्ष्यैकदेशावृत्तित्वम् यथा गोः कपिलत्वं लक्षणम् श्वेत गवादौ लक्ष्यैकदेशेऽवृत्तिलक्ष्यता— वच्छेदक समानाधिकरणा त्यन्ताभाव प्रतियोगित्वम् ।

असमवायिकारणम् – समवायेन कार्याधिकरणेसमवाय स्वसमवायि समवेतत्वान्यतर सम्बन्धेनसम्बद्धं कारणम् ।

असाधारणकारणत्वम्—कार्य (त्वातिरिक्त धर्माव च्छिन्नकार्यता निरूपित कारणता शालित्वम्) तावच्छेदकावच्छिन्न कार्यानुत्पादकत्वेसति कार्यविशेषोत्पादकत्वम् ।

असाधारणत्वम् – तद्वृत्तित्वेसति तदितरावृत्तित्वम् लक्ष्यतावच्छेदक व्यापकत्वेसति लक्ष्यतावच्छेदक व्याप्यत्वम् ।

अहंकारः – अभिमानात्मिकान्तःकरणवृत्तिः ।

आ

आकांक्षा – स्वरूपयोग्यत्वेसति अजनितान्वयबोध जनकत्वम् । यत्पदस्य यत्पदाभाव प्रयुक्तमन्वयबोधाजनकत्वं तत्पद समभिव्याहृततत्पदत्वम् ।

आक्षेपः—प्रतिषेधपुरस्सरोक्तिः

आख्यातत्वम्—सुप्भिन्नत्वेसति संख्या बोधक प्रत्ययत्वम् ।

आख्यानम्—पूर्ववृत्त कथनम् स्वाभिप्रायार्थ कथनंवा

आचार्यः— मत प्रस्थापकः मन्त्रव्याख्याकृत्

आचिनोतिच शास्त्रार्थं मानारे स्थापयत्यपि स्वयमप्या चरतेस्तु स आचार्य इतिस्मृतः ॥

आत्मा—ज्ञानाधिकरणम् १ अमूर्त समवेत द्रव्यत्वा परजातिमत्त्वं वेति तार्किकाः ।

१ **आत्माश्रयत्वम्**—स्वग्रहणापेक्षग्रहत्वम् २ स्वापेक्षापादकप्रसंगत्वम् ।

आदिः—पर्तेसमस्तानि अवयवार्थान्तराणि समुदाय— विशिष्टत्वम् आदित्वम् वै० स्वघटकत्व स्वघटकोत्तरत्वाभाववत्त्व स्वघटकपूर्ववैतत्त्रितय सम्बन्धेन ।

आधेयता—आधेयमित्याकारक प्रतीतिनियामक धर्मविशेषः ।

आपत्तिः—सम्यग्वर्त्तनोपायानुपलम्भः ।

आपातत्वम्—संशयादिग्रस्तत्वम् १ अविचारित वाक्यजन्यत्वंवा २ अज्ञान निवृत्तावसमर्थज्ञानमापात ज्ञानम् ।

अप्रामाण्यम् – शंकास्पदज्ञानत्वम् ।

आप्तत्वम्—प्रयोग हेतुभूत यथार्थ ज्ञानवत्वम् १लोक वेद साधारण प्रतारणाद्यजन्य हिताहितोपदेश कर्तृत्वे सति तद्भिन्नोपदेशाकर्तृत्वम् ।

आरादुपकारकम्—द्रव्याद्यनुद्दिश्य केवलं विधीयमानं कर्म ।

आरोपः—अतद्वति तत्प्रकारकं बाधज्ञानकालीनं ज्ञानम् ।

आलयविज्ञानम् – आलयं, लयपर्यन्तंस्थायिविज्ञानम्

आश्रयासिद्धत्वम्—पक्षतावच्छेदकाभाववत्पक्षकत्वम्

आसक्तिः— विषयान्तर परिहारेणैक विषयावलम्बनम्

आसत्तिः—यत्पदार्थेन सह यत्पदार्थस्यान्वयोपेक्षितस्तयोःपदयोरव्यवधानम् । शक्ति लक्षणान्यतरसम्बन्धेनाव्यवधानेन पदजन्य पदार्थोपस्थितिर्वा ।

आहार्यम्—स्वविरोधिधर्म धर्मितावच्छेदकक स्वप्रकारकं ज्ञानम् ।

आहार्यज्ञानम्—बाध कालीनेच्छाजन्यंज्ञानं यथा माणवके प्रेम्णा चिन्तामणि बुद्धिः ।

उ

उपचारः – शक्यार्थत्यागेनान्यार्थबोधनम् अनियत सम्बन्धेनान्यत्र वृत्तिः यथा मञ्चाःक्रोशन्ति इत्यादौ पुरुषैः समं मञ्चसम्बन्धोऽनियतः ।

उपलक्षणत्वम् – स्वप्रतिपादकत्वेसति स्वेतर प्रतिपादकत्वम् १ स्वार्थबोधकत्वेसति इतरार्थबोधकत्वम् २ कादाचित्कत्वेसति व्यावर्त्तकत्वम् यथा काकादिर्देवदत्तगृहादेः ।

उपायः—साक्षात्परम्परया वा फलविशिष्टकार्यजनने समर्थः ।

उपलक्षितत्वम्—एतत्समानाधिकरण भेदक धर्मेण स्वप्रतियोगिका भाववत्त्व सम्बन्धेन सम्बन्धित्वम् ।

उपसर्जनत्वम्—स्वार्थविशिष्टपदार्थान्तर बोधकत्वम् १ अन्य पदार्थनिरूपितप्रकारतानिरूपित प्रकारताप्रयोजकत्वम् ।

उपसंहारः—विस्तरेण निरूपितस्य पदार्थस्य सारांश कथनेन संक्षेपेण समापनम् १ ग्रन्थ तात्पर्यावधारक लिंगविशेषः ।२।

उपलक्षणत्वम्—विशेषणान्वय प्रतियोगिता नवच्छेदकत्वे सति व्यावर्तकत्वम् ? ।

एकत्वम्—स्वसजातीयनिष्ठ भेदप्रतियोगिता नवच्छेदकत्वम् ।

एकवृत्ति गुणत्वम्—स्वाश्रयान्योन्याभावव्याप्य स्वत्ताभाव प्रतियोगि गुणत्वम् ।

क

कल्पना—अविद्यमानपदार्थस्य अन्यत्रदृष्टस्यान्यत्र प्रतिभास रूपो मानस व्यापार ।

कादाचित्कत्वम्—सदेवेति विशिष्टात्यन्ताभाव प्रतियोगित्वम् ।

कुतर्कः—श्रुतिविरोधितर्कः ।

केवललक्षणा—शक्यसाक्षात्सम्बन्धः ।

केवलव्यतिरेकित्वम्—अन्वयव्याप्ति शून्यत्वे सति व्यतिरेकव्याप्तिमत्त्वम् ।

केवलान्वयित्वम्—अत्यन्ताभा(वाप्रतियोगित्वम्) वीयप्रतियोगितानवच्छेदक धर्मवत्त्वम् असद्विपक्षत्वम्

कालोपाधिः—क्षणादिना व्यवहारविषयत्वनियामको धर्मः २ क्रियामात्र वा ३

क्षणः—निमेषक्रियावच्छिन्नस्य कालस्य चतुर्थोभागः १ स्वाधेय पदार्थप्रागभावानाधारः समयः ।

क्षणिकत्वम्—स्वाधिकरण समय प्रागभावाधिकरण (वृत्त्युत्पत्तिकत्वम् १) वृत्तित्वमिति बौद्धाधिकारे २ तृतीय क्षणवृत्तिध्वंस प्रतियोगित्वम् घटादिवारणाय तृतीयक्षण इति । ४ क्षणान्तरासम्बन्धित्वेसति क्षणसम्बन्धित्वम्

ख

खण्ड प्रलयः—जन्यद्रव्यानधिकरण कालः ।

ग

गमकत्वम्—निश्चयार्हत्वम् ।

घ

घटकत्वम्—तद्विषयताव्यापक विषयतावत्त्वम् ।

घटितत्वम्—तद्विषयिताव्याप्य विषयतावत्त्वम्

च

चक्षुः—रूपोपलब्धि साधनमिन्द्रियम् ।

चरमत्वम्—स्वसजातीयपदार्थप्रागभावानधिकरणत्वम् स्वेतरभावकारणतावच्छेदक धर्मवत्त्वम् (२)

चेष्टा—इष्टानिष्टप्राप्ति परिहारानुकूल व्यापारः ।

ज

जनकत्वम्—अन्यथासिद्धशून्यत्वे सति नियतपूर्ववृत्तित्वम् ।

जल्पः—उभयपक्ष स्थापनवती विजिगीषु कथा । परमतनिराकरणपूर्वकमिति स्वमतस्थापनम् ।

जहदजहल्लक्षणा वाच्यार्थैकदेशत्यागेनैकदेशवृत्तिः

जहल्लक्षणा—वाक्यमात्रपरित्यागेन तत्सम्बन्ध्यर्थान्तरे वृत्तिः । यथा गंगायांघोष इत्यत्र गंगापदस्यतीरे, अजहल्लक्षणायामतिव्याप्तिवारणाय शक्यमात्रपरित्यागेनेति (१)

जात्युत्तरम्—असदुत्तरम्,

जीवः—प्राणधारणानुकूलव्यापाराश्रयः (१) सुखादि समवायिकारणम् (२)

जीवनम्—प्राणधारणानुकूलो व्यापारः ।

ज्ञानलक्षणसन्निकर्षः—स्वविषयविषयक प्रत्यक्षजनकः

ज्ञानेन्द्रियम्—ज्ञानकरणमिन्द्रियम् ।

त

तर्कः—अनिष्टप्रसञ्जकः (१) व्याप्यारोपेण व्यापकारोपः, यदिपर्वतेवह्निर्नस्यात् तर्हि धूमोऽपि न स्यात् ।

तात्पर्यम्—वक्तुरिच्छा (१) तत्प्रतीति जननानुकूल वृत्तिमत्त्वम् ।

तादात्म्यम्—भेदसहिष्णुवभेदत्वमिति केचित् (१) तद्भिन्नत्वेसति तदभेदेन प्रतीयमानत्वम् ।

तुल्यत्वम्—स्वभिन्नजाति समनियतत्वम् ।

तुल्यबलविरोधः— अन्यत्रान्यत्रलब्धावकाशयोर्द्वयो शास्त्रयोरेकत्र युगपत्प्राप्तिः ।

द

दार्ष्टान्तिकत्वम्—दृष्टान्तप्रयुक्तत्वम् ।

द्वित्वम्— अपेक्षाबुद्धि विशेषविषयत्वम् । (१) अपेक्षाबुद्धिजन्यो गुणविशेषः (२)

देहः—प्रतिक्षणमुपचीयमानावयवः (१) इन्द्रियाश्रयोवा ।

द्रवत्वम्—आद्यस्यन्दनासमवायि कारणम् ।

द्रव्यत्वम् – गुणसमवायित्वम् ।

नान्तरीयकत्वम्—अन्यनिष्पादक यत्ननिष्पाद्यत्वम् ।

नास्तिकः—परलोकाद्यभावप्रतिपादकः (१) वेद निन्दकोवा (२)

निरूपणम्—लक्षणप्रमाणस्वरूपाभिधानम् ।

निरूपकत्वम्—स्वरूपसम्बन्ध विशेषः

निर्विकल्पकम्—संसर्गानवगाहि ज्ञानम् यथा घट घटत्वे इति ज्ञानम् ।

नैयायिकः – षोडशपदार्थानुसारिन्यायज्ञः ।

नोदनसंयोग–स्पर्शवद्द्रव्यसंयोगः ।

नोदना—क्रियासु प्रवर्तकं वचनम् ।

न्यायः—लोकशास्त्रप्रसिद्धदृष्टान्तः १प्रमाणैरर्थपरीक्षणम् प्रमाणानुग्राहकस्तर्कः ।२

न्यायशास्त्रम्—पदार्थानांसर्वेषामनुगमरूपेण-प्रकाशको ग्रन्थः ।

निरूपितत्वम्—स्वरूपसम्बन्धविशेषः (१)

निर्णयः—तदभावाप्रकारकं तत्प्रकारकं ज्ञानम् , (१) विमृश्यपक्षप्रतिपक्षाभ्यामर्थावधारणम् (२) ।

प

पदार्थत्वम्—पद (निष्ठवृत्तिनिरूपकत्वम् १) जन्य ज्ञान विषयत्वम् , (२) द्रव्याद्यन्यतमत्वम् ।

परीक्षा—परमतनिराकरणपूर्वकस्वमतस्थापनम् ।

परममहत्वम् - अपकर्षानाश्रयपरिमाणत्वम् ।

परमाणुः—मूर्तत्वेसतिनिरवयवः (१) । जालसूत्रमरीचिस्थं यत्सूक्ष्मंदृश्यतेरजः , तस्यषष्ठितमोभागः परमाणुः स उच्यते ।

परसामान्यत्वम्—अधिकदेशवृत्तिजातित्वम्

परामर्शः—व्याप्तिविशिष्ट पक्षधर्मताज्ञानम् ।

परार्थानुमानम्—न्यायप्रयोज्यानुमानम् ।

परार्थानुमितिः--स्वयंव्याप्याद्व्यापकं प्रतीत्य परप्रतिपत्त्यर्थं प्रयुक्तादवयववाक्यात्परस्य व्यापकप्रत्ययः

पौरुषेयत्वम्—प्रमाणान्तरेणार्थमुपलभ्यविनिर्मितत्वम् (१) पूर्वानुपूर्व्यनपेक्षपुंविशेषबुद्ध्यधीनानुपूर्वीमत्त्वंवा (२) सजातीयोच्चारणानपेक्षोच्चारणविषयत्वम् ।

प्रतितन्त्र सिद्धान्तः— वादिप्रतिवाद्येकतरमात्राभ्युपगतप्रतिपादनं प्रतिपाद्य मुख्यतः प्रतिज्ञाय पश्चात् तत्सिद्धिहेतु प्रदर्शनम् उपोद्घातवारणायमुख्यइति, असम्बद्धहेतुव्यावृत्त्यर्थं तत्सिद्धीति ।

प्रतियोगी—यस्याभावः यस्यसम्बन्धः यस्य सादृश्यंवा सः ३ । धर्मिभिन्नत्वेसति भेदनिरूपकत्वम् ।

प्रत्यक्षम्—इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नज्ञानम् । सन्निकर्षध्वंसवारणाय ज्ञानमिति, अनुमित्यादिवारणायेन्द्रियार्थसन्निकर्षेति, ज्ञानाकरणकं ज्ञानम् ।

प्रत्यक्षप्रमाणम्--प्रत्यक्षप्रमाकरणकम् । प्रमाकरणानुमानादावतिव्याप्तिवारणाय प्रत्यक्षेति, भ्रमप्रत्यक्षकरणेऽतिप्रसंगवारणाय प्रमापदम् ।

प्रत्यभिज्ञा—तत्तेदन्तावगाहिज्ञानम् (१) संस्का-

रैन्द्रिय संप्रयोगोभमजन्यज्ञानम् (२) ,यथासोऽयं देवदत्त इति ।

प्रध्वंसाभावत्वम्–अविनाशित्वेसति (जन्यत्वम्) प्रतियोगिसमवायिमात्रवृत्त्यभावत्वम् । अन्योन्याभाववारणाय मात्रेति, सामयिकाभावादिवारणाय सत्यन्तम् ।

प्रमेयत्वम्–प्रमाविषयत्वम् ।

प्रसङ्गसङ्गतित्वम्— उपोद्घाताभिन्नत्वेसत्यनन्तराभिधान प्रयोजक जिज्ञासाजनक ज्ञानविषयत्वम् ।

प्रागभावत्वम्— अजन्यत्वेसति विनाशित्वम् । घटादिवारणाय सत्यन्तम्, परमाणुवारणाय विनाशित्वमिति ।

प्राणः –शरीरान्तःसञ्चारीवायुः । महावाय्वादावतिव्याप्तिवारणाय विशेषणम्, मनआदिवारणाय विशेष्यम्, धनञ्जय वारणायसञ्चारीति ।

पुनरुक्तिः— अनुवादान्यत्वेसति निष्प्रयोजनंपुनरभिधानम् ।

प्रतियोगितावच्छेदकः—येनरूपेणा भावादेः प्रतियोगिता बोध्यते स धर्मः (१) येन सम्बन्धेनाभावः स सम्बन्धः (२) ।

प्रतियोगित्वम्—स्वरूपसम्बन्धविशेषः (१)

प्रतिसन्धानम्—अनुचिन्तनम् ।

फलोपधायकत्वम्—कार्याव्यवहितपूर्ववृत्तित्वसम्बन्धेन फलविशिष्टत्वम् यथा कुलालहस्तस्थ दण्डे ।

भ

भावनासंस्कारः—जन्यज्ञानजन्यसंस्कारः (१) पूर्वानुभवजन्यः स्मृतिहेतुः (२), आत्मादिवारणाय प्रथमदलम्, अनुभवध्वंस वारणाय द्वितीयदलम् ।

भाविकालः, भविष्यत्वम्–सूर्यपरिस्पन्दादि क्रिया प्रागभावावच्छिन्नः कालः (१) वर्तमानप्रागभावप्रतियोगित्वम् (२) ।

भूतकालः—सूर्यपरिस्पन्दादि क्रियाध्वंसावच्छिन्नः कालः (१) वर्तमानध्वंसप्रतियोगित्वम् (२)

भेदः—पृथक्करणम् (१) अन्योन्याभावो वा ।

म

मनः—सुखदुःखादि साक्षात्कारकारणमिन्द्रियम्, आत्ममनःसंयोगादि वारणायेन्द्रियमिति, चक्षुरादिवारणायसुखेति ।

महाकालः—अनवच्छिन्न. कालः । उपाध्यनवच्छिन्नः कालः ।

य

यथार्थज्ञानम्—फलवत्प्रवृत्तिजननयोग्यम्, यथा रजते इदं रजतमितिज्ञानम् (१) दुष्टसामग्र्यजन्यं ज्ञानम् (२)

युक्तिः शास्त्रीयधारणम् (१) स्वपक्षसाधक विपक्ष बाधकप्रमाणोपन्यासः (२)

योग्यानुपलब्धिः—अभावप्रतियोगिसत्त्व प्रसञ्जन प्रसञ्जितोपलब्धि रूप प्रतियोगिकानुपलब्धिः, यथा भूतलेघटोनास्तीति प्रतीति सिद्ध घटाभाव प्रतियोगिनो घटस्य यद्यत्र घटः स्यादिति प्रसञ्जनेन (आपादनेन) तर्ह्युपलभ्येतेति प्रसञ्जितोपलब्धिरूपप्रतियोगिका घटस्यानुपलब्धिस्तस्या भूतले घटाभाव प्रमा जायते ।

योनिजशरीरं—शुक्रशोणितयोः परस्पर मेलन जन्यम्

ल

लक्षणा—बोध्यसम्बन्ध इति मी० १ शक्य सम्बन्धः २ सा द्विविधा केवललक्षणा लक्षितलक्षणा चेति शक्य परम्परा सम्बन्धः लक्षितलक्षणा यथा द्विरेफोऽस्तीति वाक्ये द्विरेफस्य भ्रमरपदे सम्बन्धस्तस्य च मधुकरे ।

लक्ष्यम्—वक्तृतात्पर्य विषयत्वे सति शक्य सम्बद्धम् लक्षितुं योग्यम् ।

लक्षणम्—यो धर्मो लक्ष्येऽव्याप्त्या वर्तते, न वर्तते चान्यत्र स धर्मः १ लक्ष्यतावच्छेदक समनियतम् २।

व

वितण्डा—स्वपक्ष स्थाप (न हीना विजिगीपुकथा) ना राहित्येन परपक्ष निराकरण वाक्यम् ।

वितर्कः—संदेहाद्यनन्तरं जायमान ऊहः ।

विनिगमना विरहः—एकतर पक्षपाति युक्तिविरहः

विपर्ययः—बाध्यमानं ज्ञानम् । अतस्मिँस्तत्प्रत्ययः

विप्रतिपत्तिः—संशय जनक वाक्यम् १ परस्पर विरुद्धार्थ (प्रतिपादकवादि वचनम २) क वाक्य द्वय जन्यप्रतीतिद्वयम् ३ ।

विभुत्वं—सर्वमूर्तद्रव्य संयोगित्वम् । सर्वदेशवृत्तित्वम्

वृत्तित्वम्— आधेयत्वम. । (क्वचिन्निरूपकता)

वृत्तिः—शक्तिः लक्षणा, कृतद्धितान्तसमासाना-मन्यतमः

वैयधिकरण्यं – भिन्नविभक्त्यन्तानां पदानां विभिन्नार्थं निष्ठत्वम् ।

व्यतिरेकः – यदभावे यदभावः यथा यत्र यत्र सर्वप्राणिहिंसनशीलत्वे सति पञ्चस्वाकृतिविशिष्टा काचन व्यक्तिर्नभवति तत्र तत्र सिंहप्रत्ययोऽपि न भवति ।

व्यतिरेक व्याप्तिः – साध्याभाव (पुरस्सर त्वम्) व्यापकी भूताभावप्रतियोगित्वम् ।

व्यतिरेक सहचारः – कारणाभावे कार्याभावः ।

व्यतिरेक्यनुमानम् – व्यतिरेक व्याप्ति विशिष्ट हेतु-कानुमानं ।

व्यधिकरणत्वम्—तदधिकरणावृत्तित्वम् ।

व्यपदेशः—निमित्त सद्भावाद्विशिष्टो ऽपदेशो मुख्यो-व्यवहारः ।

व्यभिचारः—साध्याभाववद्वृत्तित्वम् ।

व्यापकत्वम्—अधिकदेशवृत्तित्वम् -हेतुसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं वा तत्समानाधिकरणात्यन्ताभाव प्रतियोगितानवच्छेदक धर्मवत्त्वम् । तन्निष्ठाऽन्योन्याभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वम् । प्रतियोग्यनधिकरण हेतुमन्निष्ठा भाव प्रतियोगिता सामान्ये यत्सम्बन्धावच्छिन्नत्वं यद्धर्मावच्छिन्नत्व मेतदु भयाभावस्तेन सम्बन्धेन तद्धर्मावच्छिन्नस्य तद्धेतु व्यापकत्वम् ।

व्याप्तिः—साध्य (ा भाववदवृत्तित्वम् १) साधन योरव्यभिचरित सम्बन्धः २ ।

व्युत्पत्तिः— शास्त्रजन्य शब्दार्थ ज्ञानादि सम्पाद्य संस्कार विशेषः ।

व्यासज्यवृत्तित्वम् – एकत्वानवच्छिन्न पर्याप्तिकत्वम्

विग्रहः—वृत्यर्थाववोधकं वाक्यम् । समासादिवृत्ति समानार्थकवाक्य विशेषः

विनिगमकम्—अन्यतरपक्षपातिनी युक्तिः (विनिगमना वा)

विशेषणता— स्वरुपसम्बन्धरुप सन्निकर्ष विशेषः प्रकारताख्यो विषयता विशेषः ।

वैयधिकरण्यम्—तदनधिकरण वृत्तित्वम् तदधिकरणा वृत्तित्वम् ।

वैशिष्ट्यम्— सम्बन्धः । यस्य यत्र यः सम्बन्धः स एव तत्र तस्य वैशिष्ट्यम् ।

व्यभिचारः - साध्याभाववद्वृत्तित्वम्

श

शक्तत्वम्—कार्योत्पादनयोग्यत्वम् । शक्तिमत्त्वम् ।

शरीरत्वम्—भोगावच्छेदकत्वम् ।

शाब्दबोधः—एक पदार्थेऽपर पदार्थ संसर्ग विषयकं शक्तिज्ञानाधीनोपस्थिति प्रयोज्यं ज्ञानम् ।

स

सखण्डोपाधिः —बहु पदार्थघटितो धर्मः ।

सङ्गतिः—अनन्तराभिधानप्रयोजकजिज्ञासाजनक ज्ञान विषयत्वम् ।

समवायः—अयुत सिद्धयोः सम्बन्धः नित्यत्वे सति सम्बन्धत्वम् आकाशादि वारणाय सम्बन्धत्व मिति संयोग वारणाय सत्यन्तम् ।

सविकल्पकम्— वैशिष्ट्यावगाहिज्ञानम् यथा घटमहं जानामीत्यादि ज्ञानम् । इच्छादि वारणाय ज्ञानमिति निर्विकल्पक वारणाय वैशिष्ट्यावगाहीति ।

सहकारित्वम् एतत्कार्ये सति स्वकार्यत्वम्.

साक्षात्सम्बन्धः—स्वस्य संसर्गतया प्रति-योगितानुयोगि विषयता निर्विकल्पकमिति हरिनाथ मतार्थः।

संसर्गता—सम्बन्धनिष्ठ विषयता।

सादृश्यम्—तद्भिन्नत्वे सति तद्गतभूयो धर्मवत्त्वम्

समनियतत्वम्—व्यापकत्वे सति व्याप्यत्वम्

समारब्धत्वम्—वर्तमानकाल वृत्तिध्वंस अप्रतियोगित्वाय इति विषयत्वम्।

सामानाधिकरण्यम्—एकाधिकरण वृत्तित्वम्।

संशयः एकधर्मिक ज्ञानम्। १, एकत्रैकधर्मिणि विरुद्ध (नानाकोटिक ज्ञानम्)

संसर्गाभावः—संसर्ग प्रतियोगिकोऽभावः १ तादात्म्यभिन्न सम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिताकोऽभावो वा

स्थूलशरीरं शुक्र शोणित निर्मितत्वे सति करचरणादि समुदायः।

स्मृतिः—उद्बुद्ध संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानम् संस्कारध्वंसेऽपि स्मृति कारणत्व ज्ञान मिति, प्रत्यभिज्ञायामपि स्मृति कारणत्व ज्ञान पदम् अनुभवेऽपि स्मृतिकारणत्व भ्रमात् जन्यमिति ज्ञानस्य कारणतोक्तेति]

स्वतःप्रामाण्यम् प्रामाण्यस्य यावत्स्वाश्रय ग्राहक सामग्री (मात्र) ग्राह्यत्वम्।

सुषुप्तिः—पुरीतति मनःसंयोगः।

स्वरूपयोग्यकारणत्वम्—कारणतावच्छेदक धर्मवत्त्वम् यथा वनस्थ दण्डे।

स्वरूपसम्बन्धः—प्रतियोग्यनुयोग्यन्यतरात्मक सम्बन्धः १, सम्बन्धान्तरमन्तरेण विशिष्ट प्रतीतिजनन योग्यत्वम्।

स्वरूपासिद्ध हेत्वाभासः—पक्षेऽभाववत्त्वम्।

स्वारसिक तात्पर्यम्—अधुनातन तात्पर्य विषयीभूतार्थ निष्ठानुकूलता।

स्वार्थानुमानं—स्वानुमितिजनकानुमानम्

स्वार्थानुमितिः—स्वस्य व्याप्य प्रतीत्यनन्तरं स्वात्मक प्रत्ययः।

ह

हेत्वाभासत्वम्—अनुमिति तत्करणान्यतर प्रतिबन्धक यथार्थ ज्ञान विषयत्वम्।

इति न्यायकोषः।



१ नूतनजलधररुचये गोपवधूटीदुकूलचौराय
तस्मैकृष्णाय नमः संसार महीरुहस्यवीजाय ॥

१ नवीन मेघवत् कान्तिवाले, तथा गोप युवतियों के वस्त्रों को चुरानेवाले संसार के निमित्तकारण जो कृष्ण उन्हें नमस्कार है।

२ द्रव्यं गुणस्तथाकर्म सामान्यं सविशेषकम्
समवायस्तथाऽभावः पदार्थाः सप्तकीर्तिताः ॥

२ द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय अभाव, ये सात "पदार्थ" कहे जाते हैं।

३ क्षित्यप्तेजोमरुद्व्योम कालदिग्देहिनोमनः।
द्रव्याण्यथ गुणारूपं रसोगन्धस्ततः परम् ॥

३ पृथ्वी, जल तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन, ये (नौ) द्रव्य हैं ॥ (रुप, रस, गन्ध,

४ स्पर्शः संख्या परिमितिः पृथक्त्वञ्चततःपरम्
संयोगश्च विभागश्च परत्वं चा परत्वकम् ॥

४ स्पर्श, संख्या, परिमिति, पृथक्त्व, संयोग विभाग, परत्व, अपरत्व,

५ बुद्धिः सुखं दुःखमिच्छाद्वेषोयत्नोगुरुत्वकम्
द्रवत्वं स्नेहसंस्कारावदृष्टं शब्द एव च) ॥

५ बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेप, यत्न, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, संस्कार, धर्म, अधर्म, शब्द, ये गुणहैं)

६ उत्क्षेपणं ततोऽपक्षेपणमाकुञ्चनं तथा।
प्रसारणं च गमनं कर्माण्येतानि पञ्च च ॥

६ उत्क्षेपण, अपक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन ये पाँच कर्म हैं।

७ भ्रमणं रेचनं स्यन्दनोर्ध्वज्वलनमेवच।
तिर्यग्गमनमप्यत्र गमनादेव लभ्यते ॥

७ भ्रमण, रेचन, स्यन्दन, ऊर्ध्वज्वलन, तिर्य्यग्गमन ये गमन ही पद से लिये जाते हैं।

८ सामान्यं द्विविधं प्रोक्तं परं चापरमेवच।
द्रव्यादित्रिक वृत्तिस्तु सत्तापरतयोच्यते ॥

८ पर और अपर ये दो सामान्य हैं। द्रव्य गुण, कर्म्म में रहने वाली सत्ता पर सामान्य कहाती है।

९ परभिन्नाच या जातिः सैवाऽपरतयोच्यते।
(द्रव्यत्वादिक जातिस्तु परापरतयोच्यते ॥

९ पर सामान्य से भिन्न जाति अपर (व्याप्य) जाति कहलाती है। और द्रव्यत्वादि परापर दोनों जाति कहाती है।

१० व्यापकत्वात्परापि स्याद्व्याप्यत्वादपरापिच
अन्त्योनित्यद्रव्यवृत्तिर्विशेषः परिकीर्तितः ॥

१० द्रव्यत्वादि जाति घटत्वापेक्षया व्यापक और सत्तापेक्षया व्याप्य है। अन्त्य व्यावर्तकोंके अवसान में रहनेवाला विशेष नित्य द्रव्य में समवाय सम्बन्ध से रहता है।

११ घटादीनां कपालादौ द्रव्येषु गुण कर्मणोः।
तेषु जातेश्च सम्बन्धः समवायः प्रकीर्तितः ॥

११ घटादि कपालादि में गुण और कर्म्म-द्रव्य में जाति-द्रव्य गुणकर्म्म में और विशेष नित्य द्रव्य में समवाय सम्बन्ध से रहते हैं।

१२ अभावस्तुद्विधा संसर्गान्योन्याभावभेदतः
(प्रागभावस्तथाध्वंसोऽप्यत्यन्ताभावएवच ॥

१२ अभाव दो प्रकार के हैं, संसर्गाभाव, अन्योन्याभाव, प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव अत्यन्ताभाव के

१३ एवं त्रैविध्यमापन्नः संसर्गाभाव इष्यते)
सप्तानामपि साधर्म्यं ज्ञेयत्वादिक मुच्यते ॥

१३ भेदसे संसर्गाभाव भी तीन प्रकार का है) सातो पदार्थों का साधर्म्य ज्ञेयत्व वाच्यत्व और प्रमेयत्व है

१४ द्रव्यादयः पञ्च भावा अनेके समवायिनः
सत्तावन्तस्त्रय स्त्वाद्या गुणादिर्निर्गुणक्रियः ॥

१४ द्रव्यादि पाँच पदार्थ के (१) अनेकत्वे सति भावत्व (२) समवायित्व। द्रव्य, गुण, कर्म्म का सत्तावत्त्व और गुणादि छौ का निर्गुणत्व एवं निष्क्रियत्व साधर्म्य हैं।

१५ सामान्य परिहीनास्तु सर्वेजात्यादयोमता पारिमाण्डल्यभिन्नानां कारणत्वमुदाहृतम् ॥	१५ सामान्यादि चार का सामान्य शून्यत्व एवं अणु परिमाण परममहत्परिमाण अतीन्द्रिय सामान्य और विशेष से भिन्नका कारणत्वसाधर्म्य है ।
१६ अन्यथासिद्धिशून्यस्य नियता पूर्ववर्तिता कारणत्वं भवेत्तस्य त्रैविध्यं परिकीर्तितम् ॥	१६ अन्यथा सिद्ध भिन्ननियतपूर्ववर्ती कारण कहलाते हैं । यह तीन प्रकार का है ।
१७ समवायिकारणत्वं ज्ञेय ्थाप्य समवायि हेतुत्वम् । एवं न्यायनयज्ञैस्तृतीय मुक्तं निमित्तहेतुत्वम् ॥	१७ न्यायज्ञों से समवायि असमवायि और तीसरा निमित्त कारण कहा गया है ।
१८ यत्समवेतंकार्यं भवतिज्ञेयंतुसमवायि जनकं तत् । तत्रासन्नं जनकं द्वितीयमाभ्यां परंतृतीयंस्यात्	१८ जिस में समवाय सम्बन्धेन कार्य उत्पन्न हो वह समवायि कारण है । एवं-उसीमें समवाय या स्व समवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से वृत्ती होकर जो कार्य जनक हो वह असमवायि कारण है । इन दोनों से भिन्न निमित्त कारण है ।
१९ (येनसह पूर्वभावः कारणमादाय वायस्य अन्यं प्रतिपूर्वभावे ज्ञाते यत्पूर्वभाव विज्ञानम्	१९ (कार्य के प्रति कारण का नियत पूर्व वृत्तित्व जिस रूपसे गृहीत हो " जिसका कारणद्वारा ही अन्वय व्यतिरेक हो " जिस में अन्यत्र पूर्व वृत्तता ज्ञान होकर ही कार्य के प्रति पूर्व वृतिता का ज्ञानहो
२० जनकं प्रतिपूर्ववृत्तितामपरिज्ञायनयस्यगृह्यते अतिरिक्तमथापि यद्भवेन्नियतावश्यकपूर्व— भाविनः) ।	२० यत्कार्य जनकके प्रति पूर्व वृत्तता का ज्ञान होकर ही यत्कार्य के प्रति जिसमे पूर्व वृत्तिता का ज्ञान हो और लघु नियत पूर्व वृत्ती को छोड़कर सभी अन्यथा सिद्ध हैं)
२१ (प पञ्चान्यथासिद्धा दण्डत्वादिक मादिमम् । घटादौ दण्ड रूपादि द्वितीय मपि दर्शितम् ॥	२१ (उक्त पाँच अन्यथा सिद्ध हैं-घटादि कार्य्य के प्रति दण्डत्वादि पहला, दण्ड रूपादि दूसरा ।
२२ तृतीयंतु भवेद्व्योम कुलाल-जनकोऽपरः पञ्चमो रासभादिः स्यादेतेष्वावश्यकस्त्वसौ	२२ आकाश तीसरा,, कुलाल पिता चौथा और गदहा इत्यादि पाँचमा अन्यथा सिद्ध हैं) इन पाँच अन्यथा सिद्धों मे पाँचवाँ अन्यथा सिद्धही आवश्यक है (पूर्व चार अन्यथा सिद्धो का उसी मे समावेश हो जाता है ।
२३ समवायिकारणत्वं द्रव्यस्यैवेति विज्ञेयम्॥ गुणकर्ममात्रवृत्तिज्ञेय मथाप्यसमवायिहेतुत्वम्	२३ समवायि कारणत्व द्रव्यमात्र वृत्ती एवं-असमवायि कारणत्व गुण कर्ममात्र वृत्ती हैं ।
२४ अन्यत्र नित्यद्रव्येभ्य आश्रितत्वमिहोच्यते क्षित्यादीनां नवानां तु द्रव्यत्वं गुण योगिता	२४ नित्य द्रव्यों से भिन्न का साधर्म्य द्रव्यत्व और गुणवत्त्व है ।

२५ क्षितिर्जलं तथातेजः पवनो मन एवच ।
परापरत्व मूर्तत्व क्रियो वेगाश्रया अमी ॥
२६ कालखात्म दिशांसर्वगतत्वं परमं महत् ।
क्षित्यादि पञ्च भूतानिचत्वारिस्पर्शवन्तिहि ॥

२५ पृथ्वी, जल, तेज, वायु, और मन इनके साधर्म्य परत्व अपरत्व मूर्तत्व क्रियावत्व और वेगवत्व है ।
२६ आकाशादि ४ चार का सर्वगतत्व तथा परममहत्परिमाणवत्व पृथिव्यादि ५ का भूतत्व और पृथिव्यादि ४ का स्पर्शवत्व ।

२७ द्रव्यारम्भश्चतुर्षु स्यादथाकाशशरीरिणाम्
अव्याप्यवृत्तिः क्षणिको विशेष गुण इष्यते ॥

२७ द्रव्य समवायि कारणत्व तथा आकाश और जीवात्मा का अव्याप्य वृति विशेष गुणवत्त्व और क्षणिक विशेष गुणवत्त्व साधर्म्य हैं ।

२८ रूपद्रवत्वप्रत्यक्ष योगिनः प्रथमास्त्रयः ।
गुरुणी द्वे रसवती द्वयोर्नैमित्तिको द्रवः ॥

२८ पृथ्वी, जल, तेज का रूपवत्व द्रवत्ववत्त्व प्रत्यक्ष विषयत्व, पृथ्वी जल का गुरुत्व और रसवत्त्व पृथ्वी तेजका नैमित्तिक द्रवत्वकत्व ।

२९ आत्मानो भूतवर्गाश्च विशेष गुणयोगिनः
यदुक्तं यस्यसाधर्म्यं वैधर्म्य मितरस्य तत् ॥

२९ आत्मा भूतवर्ग का विशेषगुणवत्त्व साधर्म्य है । जो जिसका साधर्म्य कहा गया है-तद्भिन्न का वह धर्म्य है ।

३० स्पर्शादयोऽष्टौवेगाख्यःसंस्कारोमरुतोगुणा
स्पर्शाद्यष्टौ रुप वेगौ द्रवत्वं तेजसोगुणाः ॥

३० वायु के स्पर्शादि ८ और वेगाख्य संस्कार ये ९ एवं तेज के स्पर्शादि ८, रुप, वेग और नैमित्तकद्रवत्व ये ११ गुण है ।

स्पर्शादयोऽष्टौ वेगश्च गुरुत्वंच द्रवत्वकम् ।
रुपं रसस्तथास्नेहो वारिण्येते चतुर्दश ॥

३१ जल के स्पर्शादि ८, वेग, गुरुत्व, सांसिद्धिकद्रवत्व रुप, रस, और स्नेह ये १४ गुण है ।

३२ स्नेहहीना गन्धयुताः क्षितावेते चतुर्दश
बुद्ध्यादिषट्कंसंख्यादिपञ्चकं भावनातथा
३३ धर्माधर्मौ गुणाएते आत्मानः स्युश्चतुर्दश
संख्यादि पञ्चकं कालदिशोः शब्दश्चतेचखे

३२ स्पर्शादि ८, वेग, गुरुत्व, सांसिद्धिकद्रवत्व रुप, रस, और गन्ध, ये १४ पृथ्वी के गुण है । बुद्ध्यादि छः संख्यादि पाच तथा भावना ३३ धर्म और अधर्म ये चौदह गुण जीवात्मा के है । संख्यादि पाँच. और काल दिशाके गुण है । संख्यादि पाँच और शब्द ये छः गुण आकाश के हैं ।

३४ संख्यादयःपञ्चबुद्धिरिच्छायत्नोऽपिचेश्वरे
परापरत्वे संख्याद्याः पञ्चवेगश्च मानसे ॥

३४ संख्यादि पाँच एवं बुद्धि, इच्छा, और यत्न, ये आठ गुण परमेश्वर के हैं । संख्यादि पाँच परत्व, अपरत्व और वेग ये आठ गुण मनके हैं ।

३५ तत्रक्षितिर्गन्धहेतुर्नानारुपवती मता ।
षड्विधस्तु रसस्तत्र गन्धस्तु द्विविधोमतः ।

३५ नवों द्रव्यो मे केवल पृथ्वी गन्धका समवायि कारण है और नाना रुपवती है । पृथ्वी ही मे छंवो तरह के रस और दोनों तरह के गन्ध (दुर्गन्ध और सुगन्धि) हैं ।

स्पर्शस्तस्यास्तु विज्ञेयो ह्यनुष्णाशीतपाकजः ।

३६ पाकज अनुष्णाशीतस्पर्शवत्त्व भी पृथ्वीका लक्षण जानना चाहिये ।

नित्यानित्या च सा द्वेधा नित्या स्यादणुलक्षणा ।
३७ अनित्या तु तदन्या स्यात् सैवावयवयोगिनी
सा च त्रिधा भवेद्देहमिन्द्रियं विषयस्तथा ॥

नित्य तथा अनित्य भेद से पृथ्वी दोप्रकार की
३७ है । परमाणुरूप पृथ्वी नित्य है और उस से भिन्न पृथ्वी अनित्य (कार्यरूपा) है । यही अनित्य पृथ्वी अवयववती है । यह अनित्य पृथ्वी शरीर, इन्द्रिय, और विषयभेद से तीन प्रकार की होती है ।

३८ योनिजादिर्भवेद्देहमिन्द्रियं घ्राणलक्षणम् ।
विषयो द्व्यणुकादिश्च ब्रह्माण्डान्त उदाहृतः ॥

३८ (क) योनिज और अयोनिज शरीर रूप पृथ्वी है । (ख) घ्राणादि इन्द्रिय रूप पृथ्वी है । (ग) द्व्यणुक से ब्रह्माण्डपर्यन्त विषय रूप पृथ्वी है ।

३९ वर्णः शुक्लो रसस्पर्शौ जले मधुरशीतलौ ।
स्नेहस्तत्र द्रवत्वं तु सांसिद्धिकमुदाहृतम् ॥

३९ जलमें शुक्ल रूप मधुररस शीतस्पर्श स्नेह (चिकनापन) और सांसिद्धिक द्रवत्व रहते हैं ऐसा कहा गया है ।

४० नित्यतादि प्रथमवत्किन्तु देहमयोनिजम् ।
इन्द्रियं रसनं सिन्धुर्हिमादिर्विषयो मतः ॥

४० प्रथमवत् (अर्थात् पृथ्वी के समान) जल भी नित्य अनित्य भेदसे दो प्रकारका होता है । किन्तु पृथ्वी से जलमें इतनाही विशेष है कि जलीय शरीर अयोनिज मात्र है । जलीय इन्द्रिय रसनेन्द्रिय है और समुद्र बर्फ प्रभृति (नदी, सरोवरपनीरी इत्यादि) सब विषय जल रूप है ।

४१ उष्णःस्पर्शस्तेजसस्तु स्याद्रूपं शुक्लभास्वरम् ।
नैमित्तिकं द्रवत्वंतुनित्यतादि च पूर्ववत् ॥

४१ तेज का स्पर्श उष्ण है । रूप भास्वर शुक्ल (परकीय रूपादि का व्यञ्जक) है द्रवत्व नैमित्तिक है (अग्नि संयोगादि से द्रवत्व होता है) एवं नित्यता और अनित्यता जल के समान है ।

४२ इन्द्रियं नयनं वह्निःस्वर्णादि विषयो मतः ।

४२ तैजस इन्द्रिय नेत्र है और अग्नि तथा सोना चान्दी लोहा इत्यादि धातु तैजस विषय है । यह शास्त्रों का अभिमत है ।

अपाकजोऽनुष्णाशीत स्पर्शस्तु पवने मतः ॥
४३ तिर्यग्गमन वानेषज्ञेयः स्पर्शादि लिङ्गकः
पूर्ववन्नित्यताद्युक्तं देहव्यापित्वगिन्द्रियम् ॥

वायु अपाकज अनुष्णाशीतस्पर्शवान् है । तिर्यग्गमनवान् (टेढ़ी चाल चलनेवाला) है ।
४३ और स्पर्शादि हेतुओं से अनुमान करने योग्य है (एतावता उसका प्रत्यक्ष नहीं होता है) । उस की नित्यता और अनित्यता पूर्ववत् जाननी चाहिये । शरीर मे व्यापी जो त्वचा वही वायवीय इन्द्रिय है ।

४४ प्राणादिस्तु महावायुपर्यन्तो विषयोमतः ।
आकाशस्यतु विज्ञेयः शब्दोवैशेषिको गुणः ॥

४४ प्राणादि से लेकर महावायुपर्यन्त वायवी विषय है आकाश का विशेषगुण शब्द है ।

४५ इन्द्रियंतु भवेच्छ्रोत्रमेकः सन्नप्युपाधितः।
जन्यानां जनकःकालो जगतामाश्रयोमतः॥

४५ श्रोत्र आकाश का इन्द्रिय है। आकाश एक रहने पर भी उपाधि भेद से (नाना प्रतीत होता है)। जन्य पदार्थ मात्र का काल जनक है (साधारण निमित्त कारण है) और सम्पूर्ण संसारका कालिक सम्बन्धसे आश्रय है।

४६ परापरत्वधीहेतुः क्षणादि स्यादुपाधितः।
दूरान्तिकादिधीहेतुरेका नित्यादिगुच्यते॥

४६ कालकृत परत्व और अपरत्व के ज्ञान का असाधारण कारण काल है। क्षण आदि कालके औपाधिक भेद हैं दूरत्व और समीपत्व के ज्ञान का असाधारण कारण दिशा है वह एक है और नित्य है।

४७ उपाधिभेदादेकापि प्राच्यादिव्यप देशभाक्
आत्मेन्द्रियाद्यधिष्ठाता करणंहि सकर्तृकम्॥

४७ दिशा एक रहने पर भी उपाधि भेद से प्राची प्रतीची आदि विभिन्न व्यवहार का विषय होती है। आत्मा सब इन्द्रियों का अधिष्ठाता है (अर्थात् प्रत्येक इन्द्रिय से उत्पन्न हुए का ज्ञान का अधिकरण है) इस का कारण यह है कि करण सतृ्क होता है (करण कार्य--सम्पादन में कर्त्ता की अपेक्षा करता है)

४८ शरीरस्य न चैतन्यं मृतेषु व्यभिचारतः।
तथात्वं चेदिन्द्रियाणा मुपघाते कथंस्मृतिः॥

४८ शरीर ज्ञानादिक्रियाका कर्ता नहीं हो सकता है क्योंकि मृत शरीर में ज्ञान नहीं रहता है। यदि तत्तदिन्द्रियों को तत्तदिन्द्रियजन्य ज्ञान का आश्रय मानें तो एक इन्द्रिय के नाश हो जानेपर उस इन्द्रिय से अनुभूत पदार्थ का स्मरण द्वितीय इन्द्रिय को कैसे होगा क्योंकि नियम है कि एक व्यक्ति से अनुभूत पदार्थ व्यक्त्यन्तर को स्मरण नहीं होता। इसलिए यही स्थिर हुआ कि इन्द्रिय भी कर्त्ता नहीं हो सकता

४९ मनोऽपि न तथा ज्ञानाद्यनध्यक्षं तदा भवेत्
धर्मा धर्माश्रयोऽध्यक्षो विशेषगुणयोगतः॥

४९ मन को भी चेतन नहीं मान सकते हैं। क्योंकि मन को ज्ञानादिका आश्रय माननेपर ज्ञानादिका प्रत्यक्ष नहीं हो सकेगा। इसलिये यही पर्यवसित होता है कि जीवात्मा धर्म अधर्म का आश्रय है। और सुखदुःखादि विशेष गुण के सम्बन्ध से प्रत्यक्ष का विषय होता है।

५० प्रवृत्त्याद्यनुमेयोऽयं रथगत्येव सारथिः।
अहंकारस्याश्रयोऽयं मनोमात्रस्य गोचरः॥

५ जैसे चलते हुए रथ में कोचवान् नहीं देखे जाने पर भी उसका अनुमान किया जाता है कि इस रथमें कोचवान् अवश्य है। उसी प्रकार दूसरे जीवात्मा का (प्रत्यक्ष नहीं होने पर भी उस व्यक्ति की) प्रवृत्ति से उस जीवात्मा का अनुमान होता है। आत्मा "अहंकार" का आश्रय है (अहम् इत्याकारक प्रत्यक्ष का विषय है) और मन ही से यह ग्रहण किया जाता है (मनोमात्रजन्य प्रत्यक्ष का विषय है)

विभुर्बुद्ध्यादि गुणवान्बुद्धिस्तु द्विविधामता ।
अनुभूतिः स्मृतिश्च स्यादनुभूतिश्चतुर्विधा ॥

५१ आत्मा विभु (सर्वमूर्त संयोगी) है । और बुद्ध्यादि १४ गुणवाला है । बुद्धि-अनुभव और स्मरण के भेद से दो प्रकार की है। अनुभव के चार प्रभेद हैं ।

५२ प्रत्यक्षमप्यनुमिति स्तथोपमितिशब्दजे ।
घ्राणजादिप्रभेदेन प्रत्यक्षं षड्विधं मतम् ॥

५२ (१) प्रत्यक्ष (२) अनुमिति (३) उपमिति (४) और शाब्द । घ्राणज, त्वाच, चाक्षुष, श्रावण, रासन, मानस, इन के प्रभेद से प्रत्यक्ष ६ प्रकार का माना जाता है ।

५३ घ्राणस्य गोचरोगन्धो गन्धत्वादिरपिस्मृतः
तथारसोरसज्ञायास्तथा शब्दोऽपिचश्रुतेः ॥

५३ गन्ध, गन्धत्वादि (आदि शब्द से गन्धाभाव और गन्धत्वाभाव) घ्राणेन्द्रिय का गोचर है । घ्राणेन्द्रिय जन्य प्रत्यक्ष विषय है । एवं रसरसत्वादि रसनेन्द्रिय ग्राह्य हैं और शब्दत्वादि कर्णेन्द्रिय के गोचर हैं ।

५४ उद्भूतरूपं नयनस्य गोचरो
द्रव्याणितद्वन्तिपृथक्त्वसंख्ये ।
विभागसंयोगपरापरत्व,
स्नेहद्रवत्वं परिमाण युक्तम् ॥

५४ उद्भूत रूप का, तथा उद्भूत रूपवाले द्रव्यका, पृथक्त्व तथा संख्याका, विभाग तथा संयोग का, परत्व तथा अपरत्व का, स्नेह तथा द्रवत्व का, और परिमाण का, चक्षुसे ग्रहण होता है (उक्त पृथक्त्वादि को योग्यवृत्ति समझना चाहिये) ।

५५ क्रिया जातियोग्यवृत्तिः समवायश्चतादृशः
गृह्णातिचक्षुः संयोगादालोकोद्भूत रूपयो ॥

५५ योग्यवृत्ति क्रिया जाति समवाय का ग्रहण चक्षुरिन्द्रिय से होता है । आलोक (प्रकाश) तथा उद्भूत रूपके सम्बन्ध से चक्षु उक्त रूपादि विषयोंको ग्रहण करता है ।

५६ उद्भूतस्पर्शवद्द्रव्यंगोचरःसोऽपिचत्वचः
रूपान्यच्चक्षुषो योग्यं रूपमत्रापि कारणम् ॥
द्रव्याध्यक्षे--*

५६ जिस द्रव्य का स्पर्श उद्भूत हैं वह द्रव्य तथा उद्भूतस्पर्श और रूप को छोड़कर जो पदार्थ चक्षुरिन्द्रिय से ग्रहण किये जाते हैं ये सब त्वगिन्द्रिय से भी ग्रहण किये जाते हैं । द्रव्यके त्वाच प्रत्यक्षकेप्रति रूपको भी कारणता है (इसलिये वायुके अनुमानही होताहै किन्तु प्रत्यक्ष नहीं होता है)

५७ * त्वचो योगो मनसा ज्ञानकारणम् ।
मनोग्राह्यं सुखंदुःखमिच्छाद्वेषोमतिःकृति ॥

५७ मनके साथ त्वगिन्द्रिय का संयोग ज्ञानका कारण है । (अतएव सुषुप्ति कालमें उपपन्न होता है) । सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, ज्ञान, यत्न (अपनी आत्मा) अपने मनसे ग्रहण किये जाते हैं ।

५८ ज्ञानंयन्निर्विकल्पाख्यं तदतीन्द्रियमिष्यते ।
महत्वं षड्विधेहेतुरिन्द्रियं करणंमतम् ॥

५८ निर्विकल्पक ज्ञान अतीन्द्रिय होता है अर्थात् किसी इन्द्रिय से ग्राह्य नहीं होता है । षडविध प्रत्यक्ष प्रति महत्परिमाण कारण होता है और इन्द्रिय करण होता हैं ।

५९ विषयेन्द्रिय संबन्धो व्यापारः सोऽपि षड्विधः ।
द्रव्यग्रहस्तु संयोगात्संयुक्त समवायतः

६० द्रव्येषुसमवेतानांतथातत्सम ायतः
तत्रापिससवेतानां शब्दस्यसमवायतः ॥

६१ तद्वृत्तीनां समवेतसमवायेनतुग्रहः
प्रत्यक्षंसमवायस्य विशेषणतयाभवेत् ॥

६२ विशेषणतया तद्वद्भावानां ग्रहोभवेत्
यदिस्यादुपलभ्येतेत्येवं यत्र प्रसज्यते ॥

५९ घटपटादि विषयोंके साथ नेत्रादि इन्द्रियो का जो प्रत्यक्षानुकूल सम्बन्ध होता है वह पूर्वोक्त षड्विध प्रत्यक्षके प्रति व्यापार कहा जाता है यह सम्बन्ध रूप व्यापार ६ प्रकारके होते हैं । द्रव्य का ग्रहण संयोग सम्बन्ध से होता है ।

६० द्रव्य स वेत रुपादि का ग्रहण संयुक्त समवाय सम्बन्ध से होता है । द्रव्य समवेत समवेत रुपत्वादि का "संयुक्तसमवेत समवाय" सम्बन्ध से होता है । शब्द का समवाय सम्बन्धसे होता है ।

६१ शब्द मे समवाय सम्बन्धसे रहनेवाले "शब्दत्वादिका" समवेत समवाय सम्बन्ध से ग्रहण होता है और समवाय का विशेषणता सम्बन्ध से ग्रहण होता है ।

६२ उसी प्रकार अभावों का भी ग्रहण विशेष-षणता सम्बन्ध से होता है "अत्र यदि घटः स्यात्तर्हि उपलभ्येत" इस प्रकार प्रतियोगि प्रत्यक्ष की आपत्ति जहां दी जासकती है वहीं घटाभावादि का प्रत्यक्ष होता है । इसी हेतु अन्धकार मे घटादि के अभावों का प्रत्यक्ष नहीं होता है ।

६३ अलौकिकस्तुव्यापारस्त्रिविधः परिकीर्त्तितः
सामान्य लक्षणो ज्ञानलक्षणो योगजस्तथा ॥
६४ आसत्तिराश्रयाणां तु सामान्यज्ञानमिष्यते
तदिन्द्रियजतद्धर्म बोध सामग्र्यपेक्ष्यते ॥

६३ अलौकिक सन्निकर्ष तीन प्रकार के होते हैं— सामान्य लक्षण ज्ञान लक्षण और योगज ।

६४ सामान्याश्रय विषयक जो अलौकिक प्रत्यक्ष उस मे सामान्य ज्ञान प्रत्यासत्ति अर्थात् सन्निकर्ष है ।

तदिन्द्रियजन्य तद्धर्म प्रकारक अलौकिक प्रत्यक्षकेप्रति तदिन्द्रिय जन्य तद्धर्म प्रकारक लौकिक प्रत्यक्ष की सामग्री प्रयोजक है ।

६५ विषयी यस्य तस्यैव व्यापारोज्ञानलक्षणः
योगजो द्विविधः प्रोक्तो युक्त युञ्जानभेदतः ।

६५ ज्ञान लक्षण प्रत्यासत्ति यद्विषयक है वह तद्विषयक ज्ञानोत्पादक होती है । युक्त युञ्जान भेद से योगज धर्म दो प्रकार के होते हैं ।

६६ युक्तस्यसर्वदाभानं चिन्तासहकृतोऽपरः ।

६६ युक्त योगी को सर्वदा विषय का ज्ञान होता रहता है और युञ्जान को ध्यान करने से ज्ञान होता है ।

६७ व्यापारस्तु परामर्शः करणंव्याप्तिधीर्भवेत्
अनुमायांज्ञायमानं लिङ्गंतु करणं नहि ।
अनागतादि लिङ्गेन नस्यादनुमितिस्तदा ।

६७ अनुमिति मे परामर्श व्यापार है । एवं व्याप्ति ज्ञान कारण है और व्याप्यत्वेन ज्ञायमानलिङ्ग (अनुमितिका) करण नही है, क्योंकि अनागत एवं अतीत लिङ्ग से अनुमिति होती है सो नहीं होगी ।

६८ व्याप्यस्यपक्षवृत्तित्वधीः परामर्शउच्यते ।
व्याप्तिःसाध्यवदन्यस्मिन्न सम्बन्धउदाहृतः ॥

६८ साध्य व्याप्तिविशिष्ट हेतु मे पक्षवृत्तित्वावगाही जो ज्ञान वह परामर्श कहलाता है साध्यवद् भिन्न निरूपित वृत्तित्वाभाव व्याप्ति है अर्थात् साध्याधिकरण से भिन्न मे हेतुका सम्बन्ध नहीं रहनाही व्याप्ति है ।

६९ अथवाहेतुमन्निष्ठविरहाप्रतियोगिना ।
साध्येनहेतोरैकाधिकरण्यं व्याप्तिरुच्यते ॥

६९ हेतुके अधिकरण मे रहने वाला जो विरह-अभाव उस अभाव का अप्रतियोगी जो साध्य तादृश साध्य के साथ हेतुका सामानाधिकरण्य साध्य निरूपित व्याप्ति है ।

७० सिषाधयिषया शून्यासिद्धिर्यत्र न विद्यते ।
सपक्षस्तत्र वृत्तित्वज्ञानादनुमितिर्भवेत् ॥

७० साध्य के निश्चय करने की इच्छाको "सिषाधयिषा कहते हैं तादृश सिषाधयिषा के अभाव सहित जो सिद्धि (पक्षमे साध्यका निश्चय) उसका अभाव पक्षता है वह जहां रहे वह पक्ष है और उक्त पक्षके साथ जो व्याप्ति विशिष्ट हेतु वैशिष्ट्यावगाहि ज्ञानात्मक परामर्श उसको रहने से अनुमिति होती है ।

७१ अनैकान्तोविरुद्धश्चाप्यसिद्धः प्रतिपक्षितः
कालात्ययापदिष्टश्च हेत्वाभासास्तुपञ्चधा
७२ आद्यःसाधारणस्तुस्यादसाधारणकोऽपरः
तथैवानुपसंहारी त्रिधानैकान्तिकोभवेत् ॥

७१ यद्विषयक निश्चय अनुमिति या परामर्श अन्यतर का प्रतिबन्धक हो वही हेत्वाभास कहाता है ।) । हेत्वाभास ५ प्रकार के हैं यथा (१) अनैकान्तिक (२) विरुद्ध (३) असिद्ध (४) प्रतिपक्षित (सत्प्रतिपक्ष) (५) और कालात्ययापदिष्ट (बाधित) । अनैकान्तिक (सव्यभिचार) के तीन प्रभेद हैं । यथा (१)
७२ साधारण (२) असाधारण (३) अनुपसंहारी

७३ यः सपक्षेविपक्षे च भवेत्साधारणस्तुसः ।
यस्तूभयस्माद्व्यावृत्तः सचासाधारणो मतः ॥

७३ जो हेतु सपक्ष और विपक्ष दोनों मे रहे वह "साधारण" नामका हेत्वाभास कहाता है ।

जो हेतु "सपक्ष वा विपक्ष" किसी मे नहीं रहे (किन्तु पक्षमात्र मे रहे) वह असाधारण हेत्वाभासहै

७४ तथैवानुपसंहारी केवलान्वयिपक्षकः ।
यः साध्यवतिनैवास्ति सविरुद्ध उदाहृतः ॥

७४ जिस स्थल में वस्तुमात्र पक्ष है अर्थात् पक्षता केवलान्वयि है वह हेतु अनुपसंहारी (हेत्वाभास) कहाता है। जो हेतु साध्यवत् में नहीं रहे वह विरुद्ध हेत्वाभास कहाता है।

७५ आश्रयासिद्धिराद्यास्यात्स्वरुपासिद्धिरप्यथ ।
व्याप्यत्वासिद्धि रपरा-स्यादसिद्धिरतस्त्रिधा ॥
७६ पक्षासिद्धिर्यत्रपक्षोभवेन्मणिमयोगिरिः
ह्रदोद्रव्यंधूमवत्त्वादत्रासिद्धि रथापरा ॥
७७ व्याप्यत्वासिद्धिरपरा-नीलधूमादिके भवेत् ॥

७५ (१) आश्रयासिद्धि (२) स्वरुपासिद्धि (३) व्याप्यत्वासिद्धि के भेद से असिद्धि तीन प्रकार के हैं। "मणिमयः पर्वतो वह्निमान् धूमात्" इस स्थलमे पर्वत रुप पक्षमे मणिमयत्वका अभाव आश्रयासिद्धि है। अतः धूमरुप हेतु यहां आश्रयासिद्ध्यात्मक दोष से हेत्वाभास है। ह्रदोद्रव्यं धूमवत्वात्" इस स्थलमे ह्रद रुप पक्षमे धूमवत्व का अभाव स्वरुपासिद्धि है अतः धूमवत्वरुप हेतु स्वरुपासिद्ध्यात्मक दोष से हेत्वाभास) है। (व्यर्थ विशेषण घटित हेतु व्याप्यत्वासिद्धि दोष कहाताहै) पर्वतो वह्निमान् नीलधूमात् यहां नील धूम व्याप्यत्वा सिद्धिदोष से हेत्वाभास है।

विरुद्धयोः परामर्शे हेत्वोः सत्प्रतिपक्षता ।

७७ परस्पर विरुद्ध साध्यद्वय साधक जो हेतु द्वय उस के परामर्श होनेपर उक्त दोनोंहेतु सत्प्रतिपक्ष कहाते हैं।

७८ साध्यशून्यो यत्रपक्षस्त्वसौ बाधउदाहृतः ।
उत्पत्तिकालीनघटे गन्धादिर्यत्र साध्यते ॥

७८ जिस स्थल मे साध्याभाववत् पक्षतावच्छेदक विशिष्ट पक्ष है वहां हेतु कालात्ययापदिष्ट (बाधित) कहाता है—"यथा उत्पत्तिकालीनघटः गन्धवान्पृथ्वीत्वात्" यहां पक्षतावच्छेदक उत्पत्ति कालविशिष्ट घट रुप पक्ष गन्धाभाववत् है। अतः इस स्थल का पृथ्वीत्वरुपहेतु बाधित कहाता है।

७९ ग्रामीणस्य प्रथमतः—पश्यतो गवयादिकम् ।
सादृश्यधीर्गवादीनां-यास्यात्साकरणं मतम् ॥
८० वाक्यार्थं स्यातिदेशस्य-स्मृतिर्व्यापारउच्यते ।
गवयादि पदानांतु शक्तिधीरुपमाफलम्

७९ प्रथमतः गवयादिको देखतेहुए ग्रामीण की जो अपरिचित गवयादि मे गोसादृश्य की बुद्धि हुई वही बुद्धि उपमिति रूप ज्ञान में करण माना जाता है। किसी आरण्यक कथित जो "गो सादृश्योगवयपद वाच्यः" इत्याकारक अतिदेश वाक्य तदर्थ की स्मृति हुई वह उप-
८०-मिति मे व्यापार कहाजाता है और पीछे उस ग्रामीण को "गवयो गवयपदवाच्यः इत्याकारक जो गवयादिपदनिरूपित शक्तिका ज्ञान हुआ वही उपमित्यात्मक ज्ञान रूप कार्य्य है।

८१ पदज्ञानंतु करणं द्वारं तत्र पदार्थधीः ।
शाब्दबोधः फलं तत्र शक्तिधीः सहकारिणी ॥

८१ शाब्दबोध के प्रति पदज्ञान करण और पदजन्य पदार्थोपस्थिति व्यापार है पद और अर्थ इन दोनों मे शक्तिरूप जो विशेष सम्बन्ध उसका ज्ञान सहकारी कारण है अर्थात् पदज्ञानोत्तर शक्ति ज्ञानजन्य पदार्थोपस्थिति द्वारा शाब्दबोध रूप फल होता है ।

८२ लक्षणा शक्यसम्बन्धस्तात्पर्यानुपपत्तितः

८२ शक्य सम्बन्धका नाम लक्षणा है । तात्पर्य की अनुपपत्ति जहां ज्ञात होती है उस जगह लक्षणा से पदार्थ की स्मृति और शाब्दबोध होते हैं ।

८३ आसत्तियोग्यताकांक्षा तात्पर्यज्ञानमिष्यते
कारणंसन्निधानं तु पदस्यासत्तिरुच्यते ॥

आसत्तिज्ञान योग्यताज्ञान आकाङ्क्षा और तात्पर्यज्ञान ये शाब्दबोध के प्रति कारण हैं । पदों के परस्पर सान्निध्य को आसत्ति कहते हैं (कारिका मे आसत्ति पद आसत्ति ८३ ज्ञानार्थक है ।

पदार्थे तत्र तद्वत्ता योग्यता परिकीर्तिता ।

८३ पदार्थ इत्यादि कारिका से योग्यता का निरूपण करते हैं ।

८४ यत्पदेन विनायस्याननुभावकताभवेत् ।
आकांक्षावक्तुरिच्छातु तात्पर्यं परिकीर्तितम् ॥

८४ जिस पदके विना जिस पद मे यादृश शाब्द बोध जनकत्व नहीं होता है तत्पद रहित तत्पद मे तादृश शाब्दबोधानुकूल आकांक्षा रहती है । और वक्ता की इच्छा तात्पर्य है ।

८५ साक्षात्कारे सुखादीनां करणं मन उच्यते ।
अयौगपद्याज्ज्ञानानां तस्याणुत्वमिहेष्यते ॥

८५ सुखादिप्रत्यक्ष के प्रति मन करण कहाजाता है । एक काल मे अनेक इन्द्रियों से नाना ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होती है इसलिये वह अणु मानाजाताहै ।

८६ अथ द्रव्याश्रिता ज्ञेया–
निर्गुणानिष्क्रियागुणाः ।

८६ गुण, द्रव्यमें समवाय सम्बन्धसे रहते हैं किन्तु गुणमे, गुण और क्रिया नहीं रहती है ऐसा जानना चाहिये ।

८७ रूपं रसः स्पर्शगन्धौ परत्वमपरत्वकम्
द्रवत्वं स्नेहवेगाश्च मतामूर्त गुणाअमी

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व, वेग, स्थितिस्थापक ये सब मूर्त (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, ८७ मन के गुण हैं ।

८८ धर्माधर्मौ भावनाचशब्दोबुद्ध्यादयोऽपिच
एतेऽमूर्तगुणाः सर्वे विद्वद्भिः परिकीर्तिताः

धर्म, अधर्म, भावना, शब्द, बुद्धि, सुख, दुःख ८८ इच्छा, द्वेष, यत्न ये दस अमूर्त के गुणहैं ऐसा विद्वानो ने कहा है ।

संख्यादयोविभागान्ता उभयेषां गुणामताः ॥

संख्या, परिमाण पृथक्त्व संयोग और विभाग येपांचो गुण मूर्त (पृथ्वी जल तेज वायु और मन) और अमूर्त (आकाश, काल दिशा और आत्मा) इन दोनों मे अर्थात् द्रव्य मात्र मे रहते हैं ।

८९ संयोगश्च विभागश्चसंख्याद्वित्वादिकास्तथा
द्विपृथक्त्वादयस्तद्वदेतेऽनेकाश्रिता गुणाः ॥

८९ संयोग विभाग द्वित्वादि संख्या द्विपृथक्त्वादि ये चार अनेक मे रहनेवाले गुण हैं।

(९० अतःशेषगुणाः सर्वे मताएकैकवृत्तयः ।

९० उक्त चारो गुणों से भिन्न जितने गुण हैं वे सव एक एकमात्र मे रहने वाले हैं)

बुद्धयादिषट्कं स्पर्शान्ताः स्नेहःसांसि-
द्धिकोद्रवः ।
९१ अदृष्टभावनाशब्दाअमीवैशेषिकागुणाः

९० बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, रूप रस, गन्ध, स्पर्श, स्नेह, सांसिद्धिक द्रवत्व, ९१ धर्म, अधर्म, भावना और शब्द ये विशेष गुण कहे जाते हैं।

९१ संख्यादिरपरत्वान्तो-
द्रवोऽसांसिद्धिकस्तथा ।
९२ गुरुत्ववेगौ सामान्य-
गुणा एते प्रकीर्तिताः॥

९१ संख्या, परिमाण पृथक्त्व, संयोग, विभाग परत्व, अपरत्व, असांसिद्धिक ९२ अर्थात् नैमित्तिक द्रवत्व गुरुत्व और वेग सामान्य गुण है।

९२ संख्यादिरपरत्वान्तो
द्रवत्वं स्नेह एवच ।
९३ एतेतुद्वीन्द्रिय ग्राह्याः-

९२ संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व । ९३ और स्नेह ये गुण दो इन्द्रियों से ग्राह्य हैं

९३ अथ स्पर्शान्त शब्दकाः ।
बाह्यैकैकेन्द्रिया ग्राह्याः ॥

९३ रुप रस गन्ध स्पर्श और शब्द ये सवगुण बाह्य एक एक इन्द्रिय से ग्राह्य हैं।

९३ गुरुत्वादृष्ट भावनाः ।
९४ अतीन्द्रियाविभूनां तु ये
स्युर्वैशेषिका गुणाः ।
अकारणगुणोत्पन्ना एतेतु परिकीर्तिताः

९३ गुरुत्व, अदृष्ट, और भावना ये अतीन्द्रिय हैं। विभुके विशेष गुण अर्थात् वुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, धर्म, अधर्म, भावना, शब्द ये दश गुण अकारण गुणोत्पन्न हैं

९५ अपाकजास्तु स्पर्शान्ता द्रवत्वं च
तथाविधम् ।
स्नेहवेगगुरुत्वैक पृथक्त्वपरिमाणकम्

९५ अपाकज, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और असांसिद्धिक द्रवत्व, स्नेह, वेग, गुरूत्व, एकत्व, एक पृथक्त्व, परिमाण स्थितिस्थापक ये सव कारण गुणोत्पन्न हैं।

९६ स्थितिस्थापक इत्येतेस्युःकारण-
गुणोद्भवाः ॥

९६ संयोग विभाग और वेग ये तीन गुण कर्मजहैं।

(९६ संयोगश्च विभागश्च वेगश्चैतेतु कर्मजाः
९७ स्पर्शान्तपरिमाणैक पृथक्त्वंस्नेहशब्दके
भवेद् समवायित्वम्—

९७ रुप रस गन्ध स्पर्श परिमाण एकत्व एक पृथक्त्व (एकमात्रनिष्ठपृथक्त्व) स्नेह शब्द (और स्थितिस्थापक) ये गुण असमवायि कारणमात्र होते हैं।

९७ अथवैशेषिके गुणे ॥
९८ आत्मनः स्यान्निमित्तत्वम्—

९७ आत्मामे जो विशेष गुण हैं (वुद्धि सुख दुःख इच्छा द्वेष यत्न धर्म अधर्म भावना) वे निमित्त कारण मात्र होते हैं।

९८ उष्णस्पर्श गुरुत्वयोः ॥
९९ वेगोऽपिच द्रवत्वेच संयोगादिद्वयेतथा
द्विधैव कारणत्वं स्याद्—
अथ प्रादेशिको भवेत् ॥

९८ उष्ण स्पर्श, गुरुत्व, ९९ वेग द्रवत्व संयोग विभाग ये सव असमवायि और निमित्त दोनों तरह के कारण होतेहै

विभुके विशेष गुण (वुद्धि सुखदुःख इच्छा

(९९ वैशेषिको विभुगुणः संयोगादिद्वयं तथा

९९ द्वेष यत्न धर्म अधर्म भावना शब्द संयोग विभाग) ये सब प्रादेशिक हैं।

१०० चक्षुर्ग्राह्यं भवेद्रूपं द्रव्यादेरुपलम्भकम्
चक्षुषः सहकारी स्याच्छुक्लादिकमनेकधा

१०० जो रूप चक्षुमात्र से ग्राह्य और द्रव्यादि के प्रत्यक्ष में कारण तथा चक्षुका सहकारी (सहायक) भी है। वह रूप शुक्लादि प्रभेद से सात प्रकारका है।

(१०१ जलादिपरमाणौ तन्नित्यमन्यत्सहेतुकम्

१०१ जल और तेजके परमाणु में जो रूप है वह नित्य है उससे भिन्न जितने रूप हैं वे सब अनित्य हैं।

१०१ रसस्तु रसनाग्राह्यो मधुरादिरनेकधा
१०२ सहकारी रसज्ञाया नित्यतादि च पूर्ववत्॥

१०१ रस रसनेन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष का विषय है और मधुरादि भेद से ६ प्रकार का है
१०२ एवं रसना का सहकारी है और उसमें भी रूप के तरह नित्यत्व, अनित्यत्व माना जाता है।

(१०२ घ्राणग्राह्यो भवेद्गन्धो घ्राणस्यैवोपकारकः

१०२ गन्ध घ्राणेन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष का विषय है और घ्राण का सहकारी है।)

(१०३ सौरभश्चासौरभश्च स द्वेधा परिकीर्तितः
(स्पर्शस्त्वगिन्द्रियग्राह्यस्त्वचः स्यादुपकारकः

१०३ सौरभ असौरभ भेदसे गन्ध दो प्रकारका है।)
स्पर्श त्वगिन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष का विषय है एवं त्वचा का सहकारी है।)

१०४ अनुष्णाशीतशीतोष्णभेदात्स त्रिविधो मतः
काठिन्यादि क्षितावेव नित्यतादि च पूर्ववत्

१०४ अनुष्णाशीत, शीत तथा उष्ण भेद से स्पर्श तीन प्रकार के हैं। कठिन स्पर्श और सुकुमारस्पर्श पृथ्वी मात्र में रहता है। स्पर्श में नित्यत्वानित्यत्व-रूप के समान समझना चाहिये।

१०५ एतेषां पाकजत्वं तु क्षितौ नान्यत्र कुत्रचित्
तत्रापि परमाणौ स्यात्पाको वैशेषिके नये॥

१०५ पृथ्वीमात्र में रूप रस गन्ध स्पर्श पाकज होते हैं वैशेषिक के मत में पृथ्वी में भी पार्थिव परमाणु मात्रमें पाक होता है, इसलिये उनके मतसे पार्थिव परमाणु मात्रमें रहनेवाले रूपादि पाकज हैं।

(१०६ नैयायिकानां तु नये द्व्यणुकादावपीष्यते।

१०६ नैयायिकों के मतसे परमाणु और द्व्यणुकादि अवयवी में भी पाक होता है।)

(गणना व्यवहारे तु हेतुः संख्याभिधीयते॥

गणना व्यवहार का असाधारण कारण संख्या है।)

१०७ नित्येषु नित्यमेकत्वमनित्येऽनित्यमिष्यते
द्वित्वादयः परार्धान्ता अपेक्षाबुद्धिजा मताः

१०७ नित्यमें रहनेवाली एकत्व संख्या नित्य है और अनित्यमें रहनेवाली अनित्य है द्वित्व से लेकर परार्द्ध पर्यन्त संख्या अपेक्षा बुद्धि से उत्पन्न होती है अतएव वह अनित्य होगी।

१०८ अनेकाश्रयपर्याप्ता एते तु परिकीर्तिताः।
अपेक्षाबुद्धिनाशाच्च नाशस्तेषां निरूपितः॥

१०८ द्वित्वादि संख्या अनेकाश्रय में पर्याप्ति सम्बन्ध से रहती है और अपेक्षा बुद्धिके नाश से उन संख्याओं का नाश होता है।

१०९ अनेकैकत्वबुद्धिर्या सापेक्षाबुद्धिरिष्यते।
(परिमाणं भवेन्मान व्यवहारस्य कारणम् ॥

(१०९ अनेक तत्तद्धर्म्म विशेष्यक एकत्व प्रकारक जो 'अयमेकः अयमेकः' इत्याकारक ज्ञान वह अपेक्षा बुद्धि कही जाती है।
मान व्यवहार का असाधारण कारण "परिमाण" अर्थात् परिमिति है।)

(११० अणुदीर्घं महद्ध्रस्वमितितद्भेद ईरितः।

११० उक्त "परिमाण" अणु, दीर्घ, महत् तथा ह्रस्वके भेद से चार प्रकार का है।)

अनित्येतदनित्यंस्यान्नित्ये नित्य मुदाहृतम्
१११ संख्यातः परिमाणाच्च प्रचयादपि
जायते।
(अनित्यं द्व्यणुकादौ तु संख्याजन्यमुदाहृतम्

अनित्य द्रव्यगत परिमाण अनित्य है और नित्य द्रव्यगत परिमाण नित्यहै अनित्यपरिमाण १११ संख्या परिमाण प्रचय इनतीनों सेउत्पन्न होते हैं।
द्व्यणुक, त्र्यणुकगत अनित्य परिमाण संख्या जन्य कहा गया है।)

११२ परिमाणंघटादौतु परिमाणज मुच्यते
प्रचयः शिथिलाख्यो यः संयोगस्तेनउच्यते
११३ परिमाणं तूलकादौ—
नाशस्त्वाश्रय नाशतः।

११२ घटादि (अवयवी) गत परिमाण कपालादि (अवयव) गत परिमाण से उत्पन्न होता है, तूलकादिगत शिथिल (ढीला) संयोग प्रचय कहा जाता है और प्रचय से तूलकादि में परिमाण की उत्पत्ति होती है। ११३ परिमाण का नाश आश्रय नाश के अधीन है।)

संख्यावत्तुपृथक्त्वंस्यात्पृथक्प्रत्ययकारणम्
११४ अन्योन्याभावतो नास्य—
चरितार्थत्वमिष्यते।
अस्मात्पृथगिदं नेति प्रतीतिर्हि विलक्षणा

११४ यह इससे पृथक् है इस व्यवहार का असाधारण कारण पृथक्त्व है उस में नित्यत्वा नित्यत्व संख्या के समान है, वह पृथक्त्व अन्योन्याभावसे गतार्थ नहीं हो सकता है क्योंकि "इदमस्मात् पृथक्" इत्याकारक पृथक्त्व प्रतीतिसे "इदमिदन्न" इत्याकारक अन्योन्या भाव की प्रतीति में वैलक्षण्य का स्पष्ट भान होता है।

११५ अप्राप्तयोस्तु या प्राप्तिः सैवसंयोगईरितः
कीर्तितस्त्रिविधस्त्वेष आद्योऽन्यतर कर्मजः॥

११५ अमिलित द्रव्यद्वय का जो मिलन वह संयोग कहा जाता है वह संयोग तीन प्रकार का है जिसमें प्रथम अन्यतर कर्मजन्य है अर्थात् संयुक्त होनेवाले दो द्रव्यों में किसी एक द्रव्यके कर्म से पैदा होनेवाला है।

११६ तथोभयक्रियाजन्यो —
भवेत्संयोगजोऽपरः ।
आद्यः श्येनशैलादि संयोगः परिकीर्तितः
११७ मेषयोः संनिपातो यः —
स द्वितीय उदाहृतः ।

११६ दूसरा उभय कर्मजन्य और तीसरा संयोगजन्य है इन तीनों में पर्वत के साथ श्येन पक्षी का संयोग प्रथम अन्यतर कर्मज संयोग है ।

११७ भेड़ों का सन्निपात (टक्कर) रूप द्वितीय उभय कर्मजन्य संयोग है ।

११७ कपालतरु संयोगा —
त्संयोगस्तरु कुम्भयोः ॥
११८ तृतीयः स्यात्कर्मजोऽपि —
द्विधैव परिकीर्तितः ।
अभिघातो नोदनंच शब्दहेतुरिहादिमः ॥
११९ शब्दाहेतुर्द्वितीयः स्याद्
विभागोऽपि त्रिधा भवेत् ।
एककर्मोद्भवस्त्वाद्यो द्वयकर्मोद्भवोऽपरः

११७ कपाल वृक्ष संयोग से उत्पन्न घट का संयोग तृतीय संयोगजन्य संयोग है ।
११८ अन्यतर कर्मजन्य और उभय रूप जो कर्मज संयोग वह अभिघात नोदन के भेद से दो प्रकार का होता है
११९ शब्द का जनक जो संयोग वह अभिघात कहा जाता है और शब्द का अजनक संयोग वह नोदन कहा जाता है ।

विभाग भी तीन प्रकार का होता है प्रथम एक कर्मजन्य (अन्यतर कर्मजन्य) है द्वितीय उभय कर्मजन्य है और तृतीय

१२० विभागजस्तृतीयः स्या —
त्तृतीयोऽपि द्विधा भवेत् ।
हेतुमात्र विभागोत्थो हेत्वहेतु विभागजः ॥

१२० विभाग जन्य है । तृतीय जो विभाग जन्य विभाग वह भी कारण मात्र विभागज विभाग और कारणाकारण विभागजन्य विभाग इस भेद से दो प्रकार का होता है ।

१२१ परत्वञ्चापरत्वञ्च
द्विविधं परिकीर्तितम् ।
दैशिकं कालिकं चापि
मूर्त एव तु दैशिकम् ॥
१२२ परत्वं मूर्तसंयोग
भूयस्त्व ज्ञानतो भवेत् ।
अपरत्वं तदल्पत्व बुद्धितः स्यादितीरितम्

१२१ दैशिक और कालिक भेदसे परत्व तथा अपरत्व दो दो प्रकार के होते हैं । जिन में दूरत्व, समीपत्व रूप दैशिक परत्वापरत्व मूर्त
१२२ मात्र में रहते हैं । दैशिक परत्व बहुतर मूर्त संयोगान्तरितत्व ज्ञान से उत्पन्न होता है और दैशिक अपरत्व अल्पतर मूर्त संयोगान्तरितत्व ज्ञान से उत्पन्न होता है ।

१२३ तयोरसमवायीतु दिक्संयोगस्तदाश्रये ।

१२३ दैशिक परत्वापरत्व का असमवायि कारण दैशिक परत्वापरत्वाश्रय के साथ दिशा का संयोग है ।

(दिवाकर परिस्पन्द भूयस्त्व ज्ञानतोभवेत्

दिवाकर के परिस्पन्द (क्रिया) में भूयस्त्व ज्ञान से ज्येष्ठत्व रूप कालिक परत्व उत्पन्न होता है ।

१२४ परत्वमपरत्वं तु तदीयाल्पत्वबुद्धितः
असत्वसमवायीस्या—
स्संयोगः कालपिण्डयोः ॥

१२४ एवं दिवाकर परिस्पन्द में अल्पत्व ज्ञान से कनिष्ठत्व रूप कालिक अपरत्व उत्पन्न होता है। कालिक परत्वापरत्व का असमवायि कारण कालिक परत्वा परत्वाश्रय के साथ कालका संयोग है।

१२५ अपेक्षाबुद्धि नाशेन नाशस्तेषां निरूपितः

१२५ अपेक्षा बुद्धि के नाश से दैशिक और कालिक परत्वा परत्व का नाश होता है।)

बुद्धेः प्रपञ्च प्रागेव प्रायशो विनिरूपितः

१२६ अथावशिष्टोऽप्यपरः
प्रकारः परिदृश्यते।
अप्रमाचप्रमाचेति ज्ञानं द्विविधमिष्यते ॥

बुद्धि के प्रभेद (प्रकार) का निरूपण पूर्वही अधिक हो चुका है।

१२६ अब उसके अवशिष्ट प्रकार बतलाए जाते हैं। यथार्थ और अयथार्थ के भेद से ज्ञान दो प्रकार के होते हैं। तदभाववद्विशेष्यक और तत्प्रकारक जो ज्ञान वह अयथार्थ ज्ञान कहा जाता है।

१२७ तच्छून्येतन्मतिर्यास्याद
प्रमासानिरूपिता।
तत्प्रपञ्चो विपर्यासः
संशयोऽपि प्रकीर्तितः ॥

१२७ अयथार्थ ज्ञान विपर्यास और संशय के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

१२८ आद्योदेहेष्वात्मबुद्धिः शंखादौपीततामतिः
भवेन्निश्चयरूपाया संशयोऽथ प्रदर्श्यते ॥

१२८ निश्चयात्मक भ्रम विपर्यास कहलाता है यथा "गौरोहम्" इत्याकारक देह विशेष्यक आत्मत्व प्रकारक निश्चय एवं "शंखः पीतः" इत्याकारक शंख विशेष्यक पीतत्व प्रकारक निश्चय विपर्यास है। अब संशय का स्वरूप बतलाते है।

१२९ किंस्विन्नरोवास्थाणुर्वेत्यादिबुद्धिस्तुसंशयः
तदभावाप्रकाराधीस्तत्प्रकारातु निश्चयः ॥

१२९ "अयं नरोवा स्थाणुर्वा" इत्याकारक बुद्धि संशय रूप है एवं तदभावाप्रकारक तत्प्रकारक ज्ञान निश्चय है।

१३० स संशयो मतिर्या स्यादेकत्राभावभावयोः
साधारणादिधर्मस्य ज्ञानंसंशय कारणम् ॥

१३० एक वस्तु विशेष्यक विरुद्धभावाभाव प्रकारक ज्ञान संशय होता है। साधारणादि धर्मज्ञान संशय का कारण है।
ज्ञान संशय है। साधारणादि धर्म ज्ञान संशय का कारण है।

१३१ दोषोऽप्रमायाजनकःप्रमायास्तुगुणोभवेत्
पित्तदूरत्वादिरूपो दोषो नानाविधःस्मृतः ॥

१३१ अप्रमाके प्रति दोष और प्रमाके प्रति गुण कारण है। पित्त दूरत्वादि भेदसे दोष अनन्त प्रकारके हैं।

१३२ प्रत्यक्षेतु विशेष्येण विशेषणवतासमम्
संन्निकर्षो गुणस्तुस्यादथ त्वनुमितौपुनः

१३२ विशेषण विशिष्ट विशेष्य के साथ जो इन्द्रिय का सन्निकर्ष वह प्रत्यक्ष प्रमा में गुण है। साध्य विशिष्ट पक्ष में जो साध्य

व्याप्य हेतु विशिष्टपक्षावगाही।

१३३ पक्षे साध्यविशिष्टे तु परामर्शो गुणो भवेत्।
गवये सादृश्यबुद्धिस्तु भवेदुपमितौ गुणः

१३३ परामर्श यह अनुमिति प्रमामें गुण है। गवयादि पदके शक्यार्थ गवयादिकों में जो गवादिका सादृश्य ज्ञान यह उपमिति प्रमा में गुण है।

१३४ शाब्दबोधे योग्यताया-
स्तात्पर्यस्याथवा प्रमा।
गुणः स्याद् भ्रमभिन्नं तु ज्ञानमत्रोच्यते प्रमा॥

१३४ प्रमात्मक योग्यता ज्ञान अथवा प्रमात्मक ज्ञान तात्पर्य ज्ञान शाब्दबोध प्रमाने गुण है।

१३५ अथवा तत्प्रकारं
यज्ज्ञानं तद्विशेष्यकम्।
तत्प्रमा न प्रमा नापि भ्रमः स्यान्निर्विकल्पकम्
१३६ प्रकारतादिशून्यं हि
सम्बन्धानवगाहि तत्।
प्रमात्वं न स्वतो ग्राह्यं संशयानुपपत्तितः॥

१३५ "तत्प्रकारक विशेष्यक तत्प्रकारक ज्ञान" प्रमा है और निर्विकल्पक ज्ञान न प्रमा है न भ्रम है।

१३६ क्योंकि निर्विकल्पक ज्ञान प्रकारता विशेष्यता शून्य और सम्बन्धानवगाही होता है।

प्रमात्व स्वतो ग्राह्य नहीं है अर्थात् जिस सामग्री से ज्ञान का ग्रह होता है उसी सामग्री से तद्गतनिष्ठ प्रमात्व का ग्रह नहीं होता है यदि ऐसा न माना जाय तो ज्ञानोत्पत्त्यनन्तर "इदं ज्ञानं प्रमा न वा" इत्याकारक संशय नहीं होगा। (इसका हेतु ग्रन्थकारों ने बतलाया गया है)।

१३७ व्यभिचारस्याग्रहोऽपि सहचारग्रहस्तथा हेतुर्व्याप्तिग्रहे तर्कः क्वचिच्छङ्कानिवर्तकः॥

१३७ व्यभिचार ज्ञानाभाव और सहचार ग्रह ये दोनों व्याप्ति ज्ञान के कारण हैं और तर्क कहीं कहीं व्याप्ति ज्ञान के प्रतिबन्धक व्यभिचार शंका का निवर्तक होने से व्याप्ति ज्ञान में उपयोगी होता है।

१३८ साध्यस्य व्यापको यस्तु हेतोरव्यापकस्तथा स उपाधिर्भवेत्तस्य निष्कर्षोऽयं प्रदर्श्यते॥

१३८ साध्य का व्यापक और हेतु अर्थात् साधनका अव्यापक जो पदार्थ वह उपाधि कहलाता है। उस उपाधि का निष्कर्ष बतलाते हैं।

१३९ सर्वे साध्य समानाधिकरणाः स्युरुपाधयः हेतोरेकाश्रये येषां स्वसाध्यव्यभिचारिता॥

१३९ सभी उपाधि साध्य के समानाधिकरण होते हैं और हेतु के किसी अधिकरण में उन उपाधियों का व्यभिचारित्व (अभाव) और साध्य का व्यभिचारित्व (अभाव) रहा करता है।

(१४० व्यभिचारस्यानुमानमुपाधेस्तु प्रयोजनम्

१४० हेतु में व्यभिचार का अनुमान करना उपाधि का प्रयोजन है।)

शब्दोपमानयोर्नैव पृथक्प्रामाण्यमिष्यते
१४१ अनुमानगतार्थत्वा
दितिवैशेषिकं मतम् ।
तन्न सम्यग्विनाव्याप्तिबोधंशब्दादिबोधतः

वैशेषिक (कणाद) के मत से शब्द और उपमान इन दोनों में अनुमान से पृथक प्रामाण्य नहीं है। अर्थात् अनुमानही में ये दोनों अन्तर्गत है किन्तु नैयायिक मत से यह ठीक नही है क्योंकि शब्द और उपमानजन्य बोध व्याप्ति ज्ञान की अपेक्षा नहीं करता है।

१४२ त्रैविध्यमनुमानस्यकेवलान्वयिभेदतः
द्वैविध्यंतु भवेद्व्याप्तेरन्वयव्यतिरेकतः
१४३ अन्वयव्याप्तिरुक्तैव
व्यतिरेकादिहोच्यते।
(साध्याभाव व्यापकत्वंहेत्वभावस्य यद्भवेत्

१४२ केवलान्वयि केवल व्यतिरेकि और अन्वय व्यतिरेकि के भेद से अनुमान तीन प्रकार का होता है एवं अन्वय और व्यतिरेक के भेदसे व्याप्ति दोप्रकारकी होती है। १४३ उसमें अन्वयव्याप्ति का प्रदर्शन पूर्व ग्रन्थसे किया जा चुका है अब व्यतिरेक व्याप्ति का प्रदर्शन यहाँ किया जा रहा है।

(साध्याभाव व्यापकी भूत जो अभाव तादृशाभाव प्रतियोगित्व व्यतिरेक व्याप्ति है।

१४४ अर्थापत्तिस्तु नैवेह प्रमाणान्तर मिष्यते
व्यतिरेकव्याप्तिबुद्ध्याचरितार्थाहिसायतः॥

१४४ अर्थापत्ति प्रमाणान्तर और अनुमानातिरिक्त प्रमाण नहीं है क्योंकि व्यतिरेक व्याप्ति ज्ञान ही में वह अन्तर्भूत हो सकती है।

(१४५ सुखंतुजगतामेव काम्यं धर्मेणजायते।
(अधर्मजन्यंदुःखंस्यात्प्रतिकूलं सचेतसाम्।

१४५ सकल प्राणियों की इच्छा का विषय जो सुख वह धर्म से उत्पन्न होता है।)
सकल प्राणियों के द्वेष का विषय जो सुख दुःख वह अधर्म से उत्पन्न होता है।)

१४६ निर्दुःखत्वे सुखेचेच्छातज्ज्ञानादेवजायते
इच्छातु तदुपाये स्यादिष्टोपायत्वधीर्यदि॥

१४६ दुःखाभाव की इच्छा में दुःखाभाव ज्ञान और सुखकी इच्छामें सुख ज्ञान कारण है। दुःखाभाव और सुख के साधन में इष्ट साधनता ज्ञान रहने से उस साधन की इच्छा होती है।

१४७ चिकीर्षा कृतिसाध्यत्व
प्रकारेच्छाचया भवेत्।
तद्धतुः कृतिसाध्येष्ट साधनत्व मति र्भवेत्॥
१४८ बलवद्द्विष्टहेतुत्व मतिःस्यात्प्रतिबन्धिका

१४७ कृति साध्यत्व प्रकारक इच्छा को चिकीर्षा कहा जाता है। कृति साध्यताका ज्ञान और इष्टसाधनता का ज्ञान उस (चिकीर्षा) का कारण है।
१४८ चिकीर्षा के प्रति बलवद्द्विष्ट साधनता का ज्ञान प्रतिबन्धक है।)

(तद्धेतुत्व बुद्धेस्तु हेतुत्वं कस्यचिन्मते॥

एवं किसी के मत से चिकीर्षाके प्रति बलवत् अनिष्ट के अजनकत्व का ज्ञान ही कारण है।

१४९ द्विष्टसाधनताबुद्धिर्भवेद्द्वेषस्य कारणम्
प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च तथा जीवन कारणम्
१५० एवंप्रयत्नत्रैविध्यं
तान्त्रिकैः परिकीर्तितम् ॥

१४९ उपाय द्वेष के प्रति द्विष्टसाधनता ज्ञान कारण है। एवं दुःख और सुखाभाव रूप फल के द्वेषप्रति तत्तत्फलका ज्ञान कारण है
प्रवृत्ति, निवृत्ति और जीवन योनि भेद से प्रयत्न तीन प्रकार का होता है।
१५० ऐसा पण्डितों ने कहा है।

चिकीर्षा कृति साध्येष्टसाधनत्वमतिस्तथा
१५१ उपादानस्य चाध्यक्षं
प्रवृत्तौ जनकं भवेत्।
निवृत्तिस्तु भवेद्द्वेषाद्द्विष्टसाधनताधियः ॥

चिकीर्षा, कृति साध्यता ज्ञान इष्ट साधनता ज्ञान और प्रवृत्ति का साध्य जो पदार्थ उसके १५१ समवायि कारणका प्रत्यक्ष-ये प्रवृत्तिके कारण है द्विष्ट साधनताबुद्धि के द्वेषसे निवृत्ति होती है।

१५२ यत्नो जीवन योनिस्तु
सर्वदातीन्द्रियो भवेत्)
शरीरेण प्राणसंचारे कारणं परिकीर्तितम्)

१५२ प्राणियों के जीवन पर्य्यन्त रहने वाला जीवन-योनि नामका यत्न अतीन्द्रिय है और यह शरीर में प्राण सञ्चार का कारण माना जाता है।

१५३ अतीन्द्रियंगुरुत्वंस्यात्पृथिव्यादि द्वयेतुतत्
(अनित्ये तदनित्यं स्या)न्नित्ये नित्यमुदाहृतम्

१५३, १५४ गुरुत्व पृथ्वी और जल में रहता है और अतीन्द्रिय है परमाणुगत गुरुत्व नित्य और तदन्यगत गुरुत्व अनित्य है। और यही गुरुत्व आद्यपतन का असमवायि कारण है।

१५४ तथैवा समवायिस्य त्पतनाख्येतुकर्म्मणि
सांसिद्धिकंद्रवत्वंस्यान्नैमित्तिक मथापरम् ॥
१५५ सांसिद्धिकं तु सलिले द्वितीयं क्षितितेजसोः
परमाणौ जलेनित्य, मन्यथा नित्यमुच्यते ॥

१५४,१५५ सांसिद्धिक नैमित्तिक भेदसे द्रवत्व दो प्रकारके होते हैं। उनमें सांसिद्धिक द्रवत्व जल में और नैमित्तिक द्रवत्व पृथ्वी और तेज में रहता है। जल परमाणु में रहनेवाला द्रवत्व नित्य और पार्थिव तैजस परमाण्वादि एवं जलीय द्व्यणुकादि में रहनेवाला द्रवत्व अनित्य है।

१५६ नैमित्तिकं वह्नियोगात्तपनीय घृतादिषु,
द्रवत्वं स्यन्दने हेतुर्निमित्तं संग्रहे तु तत्, ॥

१५६ सुवर्णादि रूप तेज में और घृत लाक्षादिरूप पृथ्वी में रहनेवाला द्रवत्व वह्नि संयोगरूप निमित्त से पैदा होने के कारण नैमित्तिक कहा जाता है। द्रवत्व स्यन्दन का असमवायि कारण और संग्रह का निमित्त कारण है।

१५७ स्नेहोजले, सनित्योऽणा
वनित्योऽवयविन्यसौ, ।
तैलान्तरे तत्प्रकर्षाद्दहनस्यानुकूलता ॥

१५७ जलमात्र मे रहनेवाला स्नेह नित्य अनित्य के भेद से दो प्रकार का है। अणुपरमाणु में नित्य और जन्य जल में अनित्य स्नेह रहता है। तैल में जल रहने पर भी उस जल में अधिक स्नेह रहने के कारण वह जल अग्नि के अनुकूल ही होता है।

१५८ संस्कारभेदो वेगोऽथस्थितिस्थापकभावने
मूर्तमात्रे तु वेगः स्यात्कर्मजो,वेगजःक्वचित् ॥

१५८ वेग स्थिति स्थापक और भावना के भेद से संस्कार तीन प्रकार का होता है। वेग मूर्त मात्र में रहता है और कर्मज और वेगज के भेद से दो प्रकार का होता है।

१५६ स्थितिस्थापक संस्कारः
क्षितौ,केचिच्चतुर्ष्वपि, ।
अतीन्द्रियोऽसौ विज्ञेयःक्वचित्स्पन्देऽपि कारणम्

१५९ स्थिति स्थापक संस्कार पृथ्वी में माना जाता है और किसी के मत से वह पृथिव्यादि चारों में माना जाता है । वह संस्कार अतीन्द्रिय है और कहीं कहीं आकृष्ट शाखादि में जो स्पन्द होता है उसका कारणहै

१६० भावनाख्यस्तुसंस्कारोजीववृत्तिरतीन्द्रियः
उपेक्षानात्मकस्तस्य निश्चयः कारणं भवेत् ॥

१६० जीवात्मा में रहनेवाला भावनाख्य संस्कार अतीन्द्रिय है । और उपेक्षानात्मक निश्चय उसका कारण होता है ।

१६१ स्मरणे प्रत्यभिज्ञाया मप्यसौ हेतुरुच्यते
धर्माधर्मावदृष्टंस्याद्धर्मःस्वर्गादि साधनम्

१६१ 'सएवायं देवदत्तः' इत्यादि प्रत्यभिज्ञा और स्मरण का कारण भावनाख्य संस्कार हैं ।

१६१,१६२ पूर्वा० धर्म अधर्म दोनों अदृष्ट शब्दके अर्थ है उनमें धर्म स्वर्ग का कारण है । और वह धर्म गङ्गा स्नानादि यागादिरूप क्रिया का व्यापार है

१६२ गंगास्नानादियागादिव्यापारःसतुकीर्तितः
कर्मनाशाजलस्पर्शा दिनानाश्यस्त्वसौमतः ॥

१६२ उत्त० कर्मनाशा नदी के जल स्पर्शादि से धर्म का नाश होता है ।

१६३ अधर्मोनरकादीनां हेतुर्निन्दित कर्मजः
प्रायश्चित्तादिनाश्योऽसौ जीववृत्तीरिमौगुणौ

१६३, श्रुति स्मृति निषिद्ध कर्म से उत्पन्न होनेवाला अधर्म नरकादि सकल दुःखों का कारण है । और प्रायश्चित्तादि से नाश्य है । एवं धर्म अधर्म दोनों जीवात्मा में रहते हैं ।

१६४ इमौतु वासना जन्यौ ज्ञानादपि विनश्यतः
शब्दोध्वनिश्चवर्णश्च मृदङ्गादि भवोध्वनिः ॥

१६४पूर्वा. धर्म और अधर्म मिथ्या ज्ञान जन्य वासना से उत्पन्न होते हैं और तत्त्वज्ञान से नष्ट होते हैं ।

१६५ कण्ठसंयोगादिजन्या वर्णास्तेकादयोमताः
सर्वःशब्दोनभोवृत्तिः श्रोत्रोत्पन्नस्तु गृह्यते ॥

१६४, १६५, १६६ पू० ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक के भेद से शब्द दो प्रकार के होते हैं । उनमें मृदङ्गादिजन्य शब्द ध्वन्यात्मक है और कण्ठ संयोगादि जन्य ककाराद्यात्मक शब्द वर्णात्मक है । ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक दोनों प्रकार के शब्द आकाश में समवेत है और श्रोत्रेन्द्रिय में उत्पन्न होनेपर ज्ञात होते हैं । वीचीतरंगन्याय से शब्द की उत्पत्ति होती है ।

१६६ वीचीतरङ्ग न्यायेन तदुपत्तिस्तुकीर्तिता
कदम्बगोलकन्यायादुत्पत्तिः कस्यचिन्मते ॥

१६६, उत्त० किसी के मत से कदम्बगोलक न्याय से शब्द की उत्पत्ति होती है ।

१६७ उत्पन्नःको विनष्टः क इति बुद्धेरनित्यता ।
(सोऽयं क इति बुद्धिस्तु साजात्यमवलम्बते

१६७, ककारादि शब्दों के उत्पाद विनाश की प्रतीति होने के कारण शब्द में अनित्यता मानी जाती है । यह वही ककार हैं जिसको पूर्व में सुन चुका हूं यह प्रतीति पूर्वश्रुत ककार के सजातीय ककार को विषय करती है ।

१६८ तदेवौषधमित्यादौ सजातीयेऽपिदर्शनात्)
तस्मादनित्या एवेति वर्णाः सर्वे मतं हिनः ॥

१६८, जिस औषध को मैंने किया था वही औषध दूसरेसेभी किया गया है । इत्यादि स्थलमें अन्यकृत औषध को स्वकृत औषध से भिन्न रहने पर भी उसकी प्रत्यभिज्ञा होने के कारण उस प्रत्यभिज्ञा को सजातीय विषयक अवश्य मानना होगा । अतः ध्वन्यात्मक एवं वर्णात्मक सभी शब्द अनित्य ही है । यह हम नैयायिकों का सिद्धान्त है ।

इति सार्थं न्याय कारिकावली समाप्ता ॥